रामकुमार ओझा का कथा साहित्य : कथ्य एवं शिल्प

(Ramkumar Ojha ka Katha Sahitya: Kathya Awam Shilp)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

कृष्ण कुमार

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. आदित्य कुमार गुप्त

सह आचार्य

हिन्दी विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2020

प्रमाण पत्र

मुझे प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता हो रही है, कि शोध प्रबन्ध ''**रामकुमार ओझा का कथा साहित्य : कथ्य एवं शिल्प**'' शोधार्थी **कृष्ण कुमार (RS/14734/35)** ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के कला संकाय में पीएच.डी. (हिन्दी) के नियमानुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ मेरे निर्देशन में पूर्ण किया है।

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्सवर्क पूर्ण किया है।
2. शोधार्थी ने 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूरा किया है।
3. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार समय–समय पर अपने कार्य का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है।
4. शोधार्थी ने विभाग व संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोधकार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी द्वारा यू.जी.सी से अनुमोदित शोध–पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन किया है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. उपाधि प्रदत्त किये जाने हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुशंसा करता हूँ।

दिनांक :

स्थान :

शोध पर्यवेक्षक
डॉ. आदित्य कुमार गुप्त
सह आचार्य, हिन्दी विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that Ph.D. thesis titled ''रामकुमार ओझा का कथा साहित्य : कथ्य एवं शिल्प'' by **Krishan Kumar** (**RS/14734/35**) has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/Knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim for previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.
b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of other have been presented as author's own work.
c. There is no fabrication of data or result which have been compiled and analyzed.
d. There is no falsification by manipulation research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or result such that the research is not accurately represented in the research record.
e. The thesis has been checked using '**Urkund'** software and found within limits as per HEC plagiarism policy and instructions issued from time to time.

(Krishan Kumar)	**(Dr. Aditya Kumar Gupta)**
(Research Scholar)	(Research Supervisor)
Place : Kota	Place : Kota
Date :	Date:

शोध सार

सतत् गतिशील रहते हुए अधिक–से–अधिक ज्ञानार्जन करना मनुष्य जीवन का मूल उद्देश्य है। मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। अपने चिन्तन एवं ज्ञान से वह निरन्तर अपने जीवन में नयी–नयी उपलब्धियां प्राप्त करते हुए, नयी–नयी खोजों एवं आविष्कारों से सभ्यता एवं संस्कृति के विकास से नये एवं उच्च आयामों पर पहुंच रहा है। शोध का मुख्य प्रयोजन होता है– ज्ञानार्जन करना। शोध, वैज्ञानिक अथवा साहित्यिक किसी भी क्षेत्र का हो, उससे ज्ञानार्जन होने के साथ–साथ मनुष्य के चिन्तन एवं विकास के नये मार्ग खुलते जाते हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहते हुए, उसे अनेक दायित्वों का निर्वह्न करना पड़ता है। जो अपने आप में असंभव है। अतः ज्ञानार्जन के साथ–साथ व्यावसायिक सफलता–प्राप्ति भी शोधकार्य का मुख्य प्रयोजन माना जाने लगा है। वर्तमान में शोध का मूल उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति मानना शायद अपवाद हो।

साहित्य और जीवन का कथ्य एवं शिल्प एक दूसरे से सम्पृक्त है। जीवन जगत और सामाजिक परिवेश से जुड़ी वे सभी घटनाएं जो कथा है उनमें प्रमुख संवेदना होती है। संवेदना, अनुभव एवं दृष्टि किसी भी साहित्य को कथा–साहित्य से जोड़ते हैं। कथा–साहित्य जीवन की अनुभूति है, जो जीवन को विविध रूपों में सत्य की कसौटी पर परख कर प्रस्तुत करती है। कथा–साहित्य का सम्बन्ध समसामयिकता से है, गतिशील कथा–साहित्य से तात्पर्य समय की धारा को पहचान कर उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना है। कथा–साहित्य का चिन्तन आधुनिक युग में प्रकाश में आया इससे पहले कथा–साहित्य का मात्र उल्लेख मिलता है। भारतीय साहित्य में पौराणिक कथाओं का यही महत्त्व रहा है। प्रारंभ से ही मानव में कुछ कहने व सुनने की ललक रही है। कहने व सुनने का माध्यम मानव ने कथा को बनाया। कथाओं ने जहाँ मनोरंजन किया, वहीं उपदेश भी दिया है। किन्तु आज हम कहानी विधा के जिस रूप को मान्यता देते हैं। वह सर्वथा आधुनिक विधा है।

प्रस्तुत शोध में 'रामकुमार ओझा का कथा–साहित्य : कथ्य एवं शिल्प' विषय को आधार बनाकर उनके कथा–साहित्य में व्यक्त कथा–साहित्य से सम्बन्धित विविध आयामों व शिल्पगत तथा आधुनिक बोध को विस्तार दिया है। वैसे तो साहित्यकार संवेदनशील होता है, वह साहित्य में समाज के अन्दर हो रही गतिविधियों को अपनी अनुभूति के आधार पर व्यक्त करता है। फिर कथा–साहित्य के विविध स्तर होते हैं, जिन्हें कथाकार अपने ढंग से

व्यक्त करता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को निम्नलिखित अध्यायों में विभाजित किया है, जिसका सार इस प्रकार है।

प्रथम अध्याय में रामकुमार ओझा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व : जन्म, स्थान, बाल्यकाल, पारिवारिक जीवन, परिचय, : परिवार, माता–पिता, पत्नी, पुत्र–पुत्रियां, शिक्षा, लेखन की प्रेरणा, परिवेश व प्रभाव, उपलब्धियां व सम्मान, सामाजिक परिवेश, कथा–साहित्य का कालक्रम व वर्गीकरण का जिक्र किया गया है।

द्वितीय अध्याय : रामकुमार ओझा का कथा–साहित्य एवं युग प्रभाव में राजनैतिक संदर्भ और कथा–साहित्य, कहानी साहित्य : व्युत्पति अर्थ एवं परिभाषा, कथा–साहित्य का विकास, प्रेमचन्द पूर्व युग, प्रेमचन्द्र एवं प्रसाद युग, प्रेमचन्दोत्तर युग, स्वातंत्र्योत्तर युग, नई कहानी, समकालीन कहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी अकहानी के बारे में बतलाया गया है।

तृतीय अध्याय में रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्य विश्लेषण परिवेशगत कथा (ग्रामीण और शहरी), पारिवारिक कथा (ग्रामीण और शहरी), मध्य एवं निम्न वर्ग की कथा, सांस्कृतिक संदर्भ। इसे ध्यान में रखते हुए विश्लेषण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य में कथ्य विशलेषण उपन्यास, उपन्यास का अर्थ, परिभाषा, उपन्यास के तत्व, उपन्यास के भेद– धार्मिक व सांस्कृतिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, आँचलिक उपन्यास, यौन सम्बन्धी उपन्यास, मनौवैज्ञानिक उपन्यास, साहित्य का कालक्रमानुसार विकास विवेचना, प्रेमचन्द पूर्व युग उपन्यास साहित्य, समकालीन उपन्यास, रामकुमार ओझा के उपन्यास–अश्वत्थामा, रावराजा, पात्र, शिक्षित–अशिक्षित, चरित्र–चित्रण, देशकाल वातावरण, संवाद, उद्देश्य एवं मूल संवेदना, निशीथ (काव्य संग्रह), का स्पष्ट वर्णन किया गया है।

पंचम अध्याय में रामकुमार ओझा के कथा–साहित्य में नारी, रामकुमार ओझा का कथासार, भारतीय नारी, हिन्दी कथा साहित्य में नारी, ओझा के कथा–साहित्य में नारी, पत्नी के रूप मे, नारी के वियोग का चित्रण, नारी माँ के रूप में, नारी का बंधवा के रूप में चित्रण, नारी की त्याग भावना का चित्रण, भारतीय नारी का संघर्षपूर्ण जीवन, नारी का अन्तः संघर्ष एवं उलझन का चित्रण, नारी का दादी–अम्मा के रूप में चित्रण, नारी का पत्नी के रूप में चित्रण, रामकुमार ओझा की दृष्टि में नारी निष्कलंक रूप में, विविध प्रकार की नारियों का वर्णन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में 'शैली एवं भाषागत सौन्दर्य', में शैली सामान्य विवेचन, शैली का अर्थ, परिभाषा, शैलीगत विशेषताएं, विचारात्मक शैली, संवादात्मक शैली –संक्षिप्त संवाद,

दीर्घ संवाद, हाजिर जवाबी संवाद, नाटकीय संवाद, चरित्रोद्घाटक संवाद, प्रसंगानुकूल संवाद, कथा को गति देने वाले संवाद, लाक्षणिक शैली, वर्णनात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, आँचलिकता, अर्थ–परिभाषा, संस्कृतनिष्ठ शैली, अंलकारिक शैली, भाषा, भाषा का अर्थ, विविध रूप, गंभीर तथा परिष्कृत भाषा, चित्रात्मक भाषा, आंचलिक भाषा, काव्यात्मक भाषा, अंलकारिक भाषा, ध्वन्यात्मक भाषा, वाक्य–विन्यास, वाक्य भेद और उनके वर्गीकरण के आधार, रचना के आधार पर – साधारण वाक्य, मिश्र या मिश्रित वाक्य, संयुक्त वाक्य, अर्थ के आधार पर – स्वीकारात्मक वाक्य, निषेधात्मक वाक्य, प्रश्नबोधक वाक्य, विस्मयबोधक वाक्य, आज्ञार्थक वाक्य, विध्यर्थक वाक्य, शब्द भण्डार– तत्सम्, तद्भव, देशज, विदेशी, उर्दू, चीनी, पुर्तगाली, अरबी, अंग्रेजी, लोकोक्ति–मुहावरे, बिम्बात्मकता, प्रतीकात्मकता, आदि। और अन्तिम अध्याय उपसंहार से सम्बन्धित है, जिसमें रामकुमार ओझा जी के कथा–साहित्यः कथ्य एवं शिल्प की बहुविध देन को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। इसे पूरे शोध–प्रबन्ध का निष्कर्ष भी कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा।

उपसंहार के पश्चात् सन्दर्भ ग्रन्थ सूची दी गई है। आधार ग्रन्थों के अतिरिक्त सहायक ग्रन्थों, हिन्दी–अंग्रेजी कोश ग्रन्थों व ऑक्सफार्ड डिक्शनरी से भी प्रसंगानुसार सन्दर्भ लिए गए हैं। और कुछ पत्र–पत्रिकाओं से भी लिये गये हैं, जिनकी सूची भी पृथक–पृथक दी गई है।

घोषणा शोधार्थी

मैं **कृष्ण कुमार** (शोधार्थी–हिन्दी विभाग) यह घोषणा करता हूँ, कि मेरा यह शोध–प्रबन्ध **''रामकुमार ओझा का कथा साहित्य : कथ्य एवं शिल्प''** जो मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है, यह मेरा अपना शोध कार्य है। मैंने यह शोध कार्य **डॉ. आदित्य कुमार गुप्त** सह आचार्य हिन्दी के निर्देशन में पूरा किया है। यह मेरा अपना मौलिक कार्य है। मैनें अपने विचारों को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है और जहाँ दूसरे विचारों व शब्दों का प्रयोग किया है, वह मेरे द्वारा मान्य स्रोतों से लिया गया है। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथास्थान सन्दर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया गया है, जो कार्य इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मैंने विश्वविद्यालय के सभी अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारी से पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत प्रस्तुत नहीं किया है। मैं समझता हूँ कि मेरे द्वारा किसी भी नियम उल्लंघन पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है। मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है यदि मैंने किसी स्रोत से बिना उसका नाम दर्शाये या जिस स्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांक : **कृष्ण कुमार**

स्थान : **शोधार्थी**

(RS/14734/35)

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी कृष्ण कुमार **(RS/14734/35)** द्वारा दी गई उपर्युक्त सभी सूचनाएँ मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

शोध पर्यवेक्षक

दिनांक : **डॉ.आदित्य कुमार गुप्त**

स्थान : **सह आचार्य, हिन्दी**

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

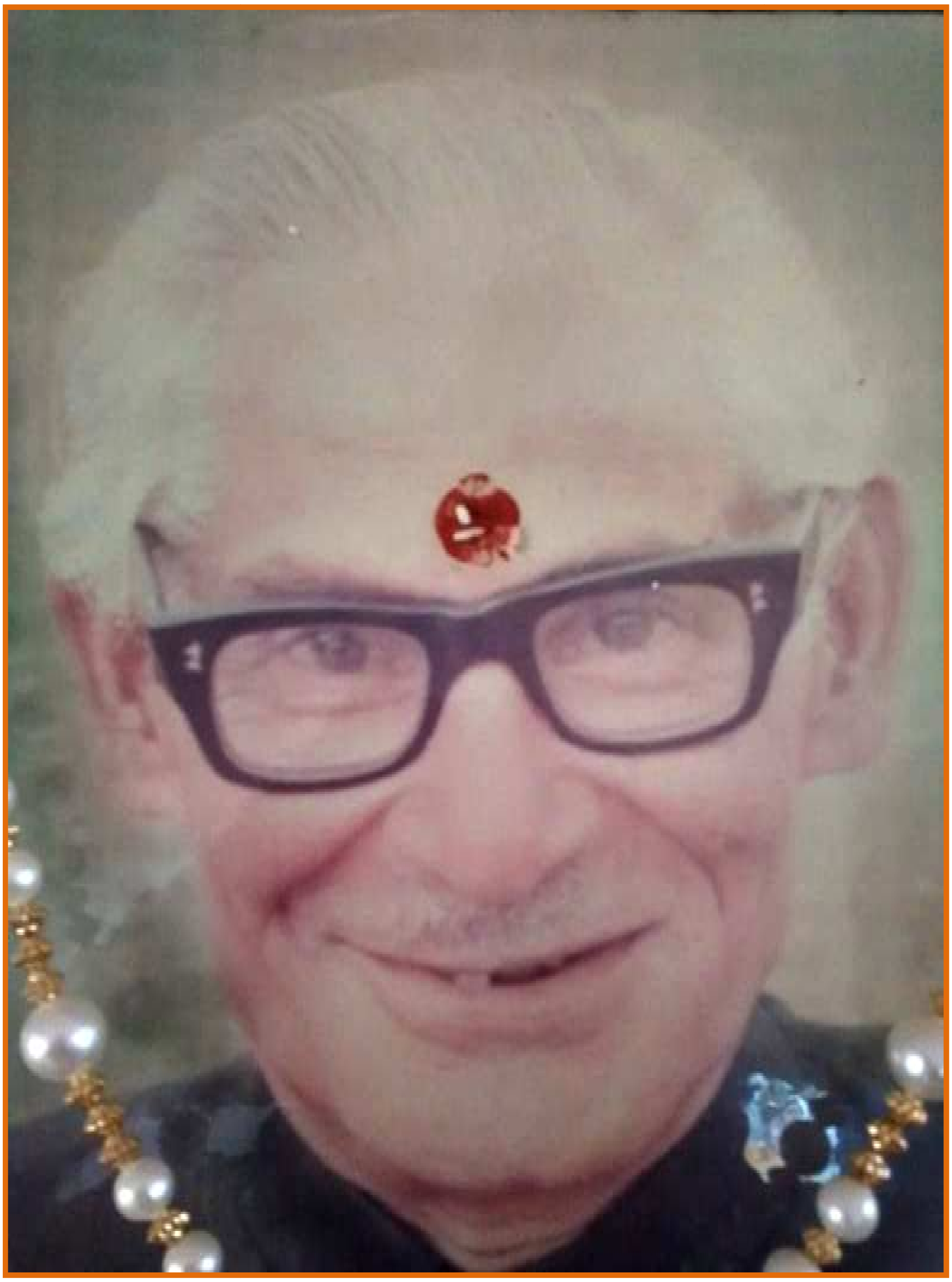

स्व. रामकुमार ओझा

प्राक्कथन

शोध–प्रबन्ध में रामकुमार ओझा का चित्र भी दिया गया है। जिससे उनके व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष झलक हमें दिखलाई पड़ती है।

मैं कोटा विश्वविद्यालय, कोटा का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरा चयन कर मुझे अनुसंधान का अवसर प्रदान किया।

मैं राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा प्राचार्य, डॉ. आर.एन.सोनी जी का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। जिनकी अनुमति से यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर सका हूँ।

शोध–प्रबन्ध का कलेवर अवश्य ही कुछ बड़ा हो गया है, परन्तु यह सायास नहीं है। प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखन में श्रद्धेय गुरूवर डॉ॰ आदित्य कुमार गुप्त, सह आचार्य (हिन्दी–विभाग), राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा का विद्वतापूर्ण एवं स्नेहिल निर्देशन निरंतर मिलता रहा है। उन्होंने समय समय पर परामर्श देकर मेरे मनोबल को बढ़ाया और शोध कार्य को गति प्रदान की। इस कार्य के आरम्भ से लेकर सम्पन्न होने तक सहृदयता एवं आत्मीयता के साथ समय–समय पर बहुमूल्य सुझाव देकर आपने आलोक स्तम्भ की भांति मेरा मार्गदर्शन किया है। उनकी तत्परता व प्रबन्धपूर्ण निर्देशन के बिना इस अनुष्ठान की पूर्ति कदापि संभव नहीं थी। इतना ही नहीं इन्होंने मेरे ज़रा से निवेदन करने पर तुरन्त पढ़ने के लिए अनेक पुस्तकें देकर मुझे उपकृत किया है। समय–समय पर दूरी की थकान व समय की उपयोगिता को समझते हुए कागजी कार्यवाही में उन्होंने मेरा जो सहयोग दिया व शोध निर्देशन के अलावा जो मेरी सहायता की उसके लिए तो मेरे पास कोई शब्द ही नहीं है कि मैं उनका आभार व्यक्त कर सकूं। शोध–निर्देशन में गुरुदेव के प्रति मैं आभार–प्रदर्शन का अभिनय नहीं करना चाहता क्योंकि गुरु ऋण तो जीवन–पर्यन्त साथ रहने वाला है, उससे चाहकर भी निवृत नहीं हुआ जा सकता है। इन शब्दों से मैं केवल उनके प्रति मेरे हृदय में निहित श्रद्धाभाव का संकेत मात्र कर रहा हूँ। गुरु माता–श्रीमती सरिता गुप्ता जी का आशीर्वाद भी मेरे लिये कम महत्त्व की बात नहीं है, जब भी मैं शोध कार्य के लिए गुरूदेव के घर गया तो उन्होंने अपने बच्चों की तरह मुझे भी खाना–पीना करवाया और समय–समय पर मेरा मनोबल बढ़ाया करती थी। मैं उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ।

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा से हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. कंचना सक्सेना, डॉ. शशि प्रकाश चौधरी, डॉ. अनिता वर्मा, डॉ. लड्डू लाल मीना, डॉ. रामावतार सागर तथा विभाग के सभी गुरूजनों की प्रति मैं श्रद्धानवत हूँ। जिन्होंने मुझे समय–समय पर अमूल्य परामर्श देकर मेरे शोध कार्य को गति प्रदान की, डॉ. राज कुमार गर्ग, विभागाध्यक्ष लोक–

प्रशासन द्वारा समय–समय पर दिये गये परामर्श हेतु उनके प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

डॉ॰ सत्यनारायण जी सोनी और डॉ॰ भरत जी ओला, डॉ. नन्दकिशोर महावर एवं डॉ. श्यो चन्द बाकोलिया (उदयपुर) के विषय में तो क्या कहूँ, उन्होंने रामकुमार ओझा के कथा–साहित्य पर जो भी संगोष्ठियां होती रही, उनकी सूचना मुझे समय–समय पर दी व आमंत्रित किया और शोध–पत्र लिखने हेतु प्रेरित करते रहे, उनकी कृपा के कारण ओझा जी पर अनेक शोध पत्र लिखकर प्रकाशित करवा चुका हूँ, इसके अतिरिक्त उन्होंने ओझा जी पर साहित्य संगोष्ठी करवाकर मुझे कृतार्थ किया, जिसके कारण ओझा जी के अनेक पहलुओं को जानने–समझने का मौका मिला। इन्हीं संगोष्ठियों में मुझे ओझा जी के निवास स्थान नोहर (हनुमानगढ़) को देखने का मौका मिला, साथ ही उनके परिवार के लोगों से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। ओझा जी के छोटे लाडले बेटे श्रीमान सुमन कुमार ओझा 'भटनेर' पत्रिका के संवाददाता व मालिक है, जो (हनुमानगढ़) जिला मुख्यालय पर कार्यरत हैं। उन्होंने ओझा जी के बारे में अनेक महत्वपूर्ण बातें बताई, जो मेरे लिए न केवल ज्ञानवर्धक का कारण साबित हुई, अपितु शोध–प्रबन्ध में भी सहायक सिद्ध हुई हैं। अपने पूर्वजों के प्रति उनके मन में जो आदर था उसे देखकर मैं नतमस्तक हो गया। इतना ही नहीं डॉ॰ सत्यनारायण सोनी व विनोद जी स्वामी– (कथेसर पत्रिका के मालिक व संवाददाता) और ओझा जी के परिवार द्वारा मुझे मेरे शोध के आधार ग्रन्थ देने के लिए तहेदिल से आभारी हूँ। ऐसा करके इन्होंने मुझे ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण हिन्दी शोध जगत् को उपकृत किया है। मेरा विश्वास है कि उनके इस कार्य से कथ्य एवं शिल्प क्षेत्र में कार्य करने की इच्छा रखने वाले शोधकर्ताओं का उत्साहवर्धन होगा और भविष्य में इसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त होंगे।

इस पुनीत कार्य को पूर्ण करने हेतु आरम्भ से लेकर समाप्ति तक मेरे परिवार का जो सहयोग व प्यार मुझे मिला वह भी अमूल्य है। मेरे माता–पिता निरन्तर मेरे शोधकार्य की प्रगति की खबर लेकर मुझे समय पर कार्य करने हेतु उत्साहित करते रहे हैं, इतना ही नहीं नोहर से कोटा तक लगभग 700 कि॰मी॰ लम्बे सफर की थकान व मेरे साथ शोध कार्य हेतु कोटा में प्रवास कर निरन्तर मेरा हौंसला बनाए रखना उनकी खासियत रही है। मेरे परिवारजनों में मेरे आदरणीय माता–पिता श्रीमती सुखदेवी–श्री छज्जुराम कासोटिया व दीदी–जीजा जी, श्रीमती गीता देवी (पंचायत सहायक) श्री गंगाराम जी (लिपिक) के असीम प्यार व सहयोग के साथ ही मेरा छोटा भाई–बहू, श्री मुकेश कुमार–श्रीमती रेणू, बहिन–कविता व लाडले भांजे शुभम– नैतिक और मेरे कलेजे का टुकड़ा मेरी प्यारी बेटी

नव्या (नन्नू) आदि का अत्यंत ऋणी हूॅं। जिनकी अनन्त प्रेरणा एवं सहयोग के फलस्वरूप यह शोध–प्रबन्ध वर्तमान स्वरूप तक पहुंचा।

मेरी पत्नी–श्रीमती किरण रानी कासोटिया का उत्साहवर्धन व प्रेमपूर्ण सहयोग के लिए हमेशा आभारी रहूंगा। साथ ही मेरे सास–ससुर, श्रीमती रामप्यारी देवी–स्व॰ श्री प्रभुराम जी जग्रवाल, साला–सालेली जी, श्रीमती कविता–श्री विनोद कुमार (असिस्टेंट मैनेजर कॉर्पोरशन बैंक) व श्री हरीश कुमार जी (वैज्ञानिक तकनीकी सहायक–ए) का और मेरे अभिन्न मित्र श्री कृष्ण कुमार पारीक (एफ॰सी॰आई॰ –एरिया मैंनेजर)–श्रीमती माया देवी व हरीश आचार्य (रिर्पोटर इंडिया न्यूज राजस्थान) और ननिहाल पक्ष द्वारा दिये गये अमूल्य सहयोग के लिए हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही मेरे चाचा जी–श्री राजेन्द्र कासोटिया (प्रधानाचार्य) का रहा साथ ही प्रस्तुत शोध कार्य कई अन्य व्यक्तियों व मित्रगण के सहयोग का परिणाम है। डॉ. चन्द्र प्रकाश बंसल, (श्रीगंगानगर) एवं मैं कम्प्यूटर ऑपरेटर, श्री योगेश कुमार नामा, निकुंज कम्प्यूटर एण्ड जॉब वर्क सेन्टर, केशवपुरा, कोटा (राज.) को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अपनी व्यस्तता और व्यक्तिगत कार्यों की मजबूरी के बाद भी अथक सहयोग प्रदान किया उनके सहयोग से ही अपने शोध प्रबन्ध को इच्छित समय में प्रस्तुत करने में मैं समर्थ हो पाया हूँ।

मैं उन सभी लेखक सम्पादकों एवं अनुसन्धानकर्त्ताओं को आभार व्यक्त करता हूँ जिनके लेखन कार्यों, सम्पादित सामग्री एवं अधययनों का उपयोग प्रस्तुत शोधकार्य को सम्पन्न करने किया गया इस कड़ी में मैं अपने महाविद्यालय के समस्त गुरूजनों एवं पुस्तकालयाध्यक्ष तथा कार्यालय के कार्मिकों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ । जिनके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप सहयोग से शोध कार्य आगे बढ़ सका।

इस शोध–प्रबन्ध में क्या, कुछ कितना और कैसा है ? इसके निर्णय का अधिकार तो सुधी विद्धानों के पास ही सुरक्षित है। मुझे तो इस विषय में इतना ही कहना है कि इसमें जो कुछ भी अच्छा है वह विभिन्न गुरूजनों और ओझा जी के परिवार द्वारा दिया गया आशीर्वाद का फल है, तथा जहाँ–तहाँ हुआ स्खलन मेरी बुद्धि की जड़ता का परिणाम एवं प्रमाण है। इस शोध–प्रबन्ध को इसी विश्वास के साथ प्रस्तुत कर रहा हूँ कि सुधीजन इसमें रही कमियों पर ध्यान न देकर मुझे अपना आशिर्वाद प्रदान करेंगे।

स्थान : कोटा
दिनांक :

कृष्ण कुमार
शोधार्थी, हिन्दी
पंजीयन क्रमांक RS/14734/35
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	पृ.सं.
	अनुक्रमणिका	
	तालिका सूची	
	रेखाचित्र सूची	
1.	अध्याय प्रथम – रामकुमार ओझा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1–32
1.1	भूमिका	1
1.2	जन्म	1
1.3	शिक्षा	2
1.4	पारिवारिक जीवन	3
1.5	वैवाहिक जीवन	3
1.6	संस्कार	4
1.7	नौकरी	4
1.8	व्यक्ति और अभिव्यक्ति	5
1.9	पुरस्कार एवं सम्मान	6
1.10	व्यक्तित्व विश्लेषण	7
1.10.1	मिलनसार एवं अतिथिशील	9
1.10.2	समय के पाबन्द	10
1.10.3	सहायता करने की प्रवृत्ति	10
1.10.4	यात्राओं का दर्शन	11
1.11	सामाजिक आन्दोलन और रामकुमार ओझा	11
1.12	साहित्य सृजन	12
	प्रकाशित कृतियों का परिचय	13
1.12.1	1.12.1 "आदमी वहशी हो जाएगा" (कहानी संग्रह)	13
	(क) "आदमी वहशी हो जाएगा"	13
	(ख) 'मुकामों'	14
	(ग) 'सड़क'	14

क्र.सं.	विवरण	पृ.सं.
	(घ) 'रब्बो'	15
1.12.2	"सिराजी और अन्य कहानियाँ" (कहानी संग्रह)	15
	(क) ''बूढ़े बरगद और चिल्लर लंगड़ की कहानी''	16
	(ख) ''सयाना''	16
	(ग) ''एक दिन गुस्ताखियों का''	17
1.12.3	''कौन जात कबीरा'' (कहानी संग्रह)	18
	(क) ''पहाड़''	18
	(ख) 'अकेली रात'	20
	(ग) ''उद्‌घाटन भाषण''	21
	(घ) "भारमली नहीं भागी"	21
1.12.4	"अश्वत्थामा" (उपन्यास)	22
1.12.5	''रावराजा (उपन्यास)''	23
1.12.6	''निशीथ'' (काव्य संग्रह)	25
1.13	मृत्यु	25
1.14	सामाजिक परिस्थितियाँ	26
1.15	साहित्यिक परिस्थितियाँ	27
1.15.1	आदिकाल (1050 से 1375 ई.)	28
1.15.2	भक्तिकाल (1375 से 1700 ई.)	29
1.15.3	रीतिकाल (1700 से 1900 ई.)	30
1.15.4	आधुनिक काल (1900 से अब तक)	31
1.16	निष्कर्ष	32
2.	अध्याय द्वितीय– रामकुमार ओझा का कथा साहित्य एवं युग प्रभाव	33–64
2.1	2.1 कहानी' साहित्य : व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा	34
2.2	2.2 हिंदी कथा साहित्य का विकास	39
	(क) कहानी साहित्य –	39
2.2.1	प्रेमचन्द पूर्व युग	40

क्र.सं.	विवरण	पृ.सं.
2.2.2	प्रेमचन्द एवं प्रसाद युग (1916 से 1936 तक)	41
2.2.3	प्रेमचन्दोत्तर युग (1937 ई0 से 1950 ई.)	43
2.2.4	स्वातंत्र्योत्तर युग (1950 ई. से अधावधि)	46
2.2.5	नई कहानी	49
2.2.6	समकालीन कहानी	51
2.2.7	सचेतन कहानी	53
2.2.8	सहज कहानी	54
2.2.9	अकहानी	55
2.3	**निष्कर्ष**	**61**
3.	**अध्याय तृतीय – रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्य विश्लेषण**	**65–95**
3.1	**परिवेशगत कथा (ग्रामीण और शहरी)**	**65**
3.2	**पारिवारिक कथा (ग्रामीण और शहरी)**	**70**
3.3	**मध्य एवं निम्न वर्ग की कथा**	**77**
3.4	**सांस्कृतिक सन्दर्भ**	**87**
3.5	**निष्कर्ष**	**92**
4.	**अध्याय चतुर्थ – रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य में कथ्य विश्लेषण**	**96–142**
4.1	**प्रस्तावना**	96
4.2	**'उपन्यास' शब्द का अर्थ**	97
4.3	**उपन्यास की परिभाषा**	97
4.4	**उपन्यास के तत्त्व**	98
4.5	**उपन्यास के भेद**	99
4.5.1	धार्मिक व सांस्कृतिक उपन्यास	99
4.5.2	सामाजिक उपन्यास	100
4.5.3	ऐतिहासिक उपन्यास	101
4.5.4	आँचलिक उपन्यास	102

क्र.सं.	विवरण	पृ.सं.
4.5.5	यौन–सम्बन्धी उपन्यास	103
4.5.6	मनोवैज्ञानिक उपन्यास	104
4.6	**उपन्यास साहित्य का कालक्रमानुसार विकास विवेचन**	**106**
4.6.1	प्रेमचन्द पूर्व युग उपन्यास साहित्य	106
4.6.2	प्रेमचन्द पूर्व युग का उपन्यास साहित्य	107
4.6.3	प्रेमचन्दोत्तर युग का उपन्यास साहित्य	108
4.6.4	समकालीन उपन्यास	110
4.7	**रामकुमार ओझा के उपन्यास**	**111**
4.7.1	**(अ) अश्वत्थामा**	111
4.7.1.1	परिचय	111
4.7.1.2	अश्वत्थामा का कथासार	111
4.7.1.3	पात्र	115
4.7.1.4	चरित्र–चित्रण	121
4.7.1.5	देशकाल वातावरण	122
4.7.1.6	संवाद	123
4.7.1.7	उद्‌देश्य एवं मूल संवेदना	125
4.7.2	**(ब) रावराजा**	125
4.7.2.1	परिचय	125
4.7.2.2	कथासार	125
4.7.2.3	पात्र	132
4.7.2.4	चरित्र–चित्रण	135
4.7.2.5	संवाद–योजना	135
4.7.2.6	देशकाल एवं वातावरण	136
4.7.2.7	उद्‌देश्य एवं मूल संवेदना	137
4.8	**निशीथ (काव्य संग्रह)**	138
4.9	**निष्कर्ष**	140

क्र.सं.	विवरण	पृ.सं.
5.	अध्याय पंचम– रामकुमार ओझा के कथा साहित्य में नारी चित्रण	143–184
5.1	पात्र	143
5.2	नारी का विविध रूपों में चित्रण	148
5.3	निष्कर्ष	182
6.	अध्याय षष्ठम् – शैली एवं भाषागत सौन्दर्य	185–246
6.1	शैली : सामान्य विवेचन	185
6.2	'शैली' अर्थ एवं परिभाषा	186
6.3	'शैली' परिभाषा	186
6.4	शैलीगत विशेषताएँ	187
	(क) विचारात्मक शैली	187
	(ख) संवादात्मक शैली	189
	(ग) संक्षिप्त संवाद	190
	(घ) दीर्घ संवाद	192
	(ङ) हाजिर जवाबी संवाद	193
	(च) नाटकीय संवाद	194
	(छ) चरित्रोद्घाटक संवाद	196
	(ज) प्रसंगानुकूल संवाद	197
	(झ) कथा को गति देने वाले संवाद	200
	(ञ) लाक्षणिक शैली	201
	(ट) वर्णनात्मक शैली	203
	(ठ) काव्यात्मक शैली	206
6.5	आँचलिकता	210
6.5.1	आँचलिकता की परिभाषा	210
6.5.2	संस्कृतनिष्ठ शैली	213
6.5.3	अलंकारिक शैली	215
6.6	भाषा प्रयोग	217

क्र.सं.	विवरण	पृ.सं.
	(क) परिष्कृत भाषा	217
	(ख) चित्रात्मक भाषा	217
	(ग) आँचलिक भाषा	218
	(घ) काव्यात्मक भाषा	219
	(ङ) अलंकारिक भाषा	220
	(च) ध्वन्यात्मक भाषा	221
6.7	**वाक्य विन्यास**	**221**
	(क) वाक्य भेद और उनके वर्गीकरण के आधार	**223**
	(ख) रचना के आधार पर	**224**
	(ग) अर्थ के आधार पर	**226**
6.8	**शब्द भण्डार**	**230**
	(क) तत्सम् शब्द	230
	(ख) तद्भव शब्द	232
	(ग) देशज शब्द	233
	(घ) विदेशी शब्द	234
	(ङ) अंग्रेजी शब्द (आदमी वहशी हो जाएगा)	235
	(च) लोकोक्ति	237
	(छ) मुहावरे	237
	(ज) बिम्बात्मकता	238
	(झ) प्रतीकात्मकता	239
6.9	**निष्कर्ष**	**241**
7.	**अध्याय सप्तम – उपसंहार**	**247–261**
	शोध सारांश	**262–292**
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	**293–296**
	प्रकाशित शोध पत्र	**297–312**

शब्द संक्षिप्तीकरण

डॉ. – डॉक्टर

सं. – सम्पादक, संवत्, संकलन

पं. – पण्डित

अ.भा. – अखिल भारतीय

आ. – आचार्य

वि.वि. – विश्वविद्यालय

एम.ए.हिन्दी – स्नातकोत्तर हिन्दी

आ.प्र. – आन्ध्र प्रदेश

प.बंगाल – पश्चिम बंगाल

राउमा – राजकीय उच्च माध्यमिक

राज. – राजस्थान, राजकीय

प.ब. – पश्चिम बंगाल

उ.प्र. – उत्तर प्रदेश

पृ. – पृष्ठ

सं. – संख्या,

स. – सहायक

प्रा. लि. – प्राइवेट लिमिटेड

अध्याय प्रथम

रामकुमार ओझा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अध्याय प्रथम

रामकुमार ओझा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.1 भूमिका –

राजस्थान के साहित्यिक इतिहास में रामकुमार ओझा एक ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने सृजन की शास्त्रीय शर्तों और परम्पराओं को तोड़ते हुए अपनी अलग राह बनाई और कथा साहित्य में ऐसे चरित्रों की रचना की जो आम होते हुए भी खास हो जाते हैं। रचना का वातावरण और लेखक की दृष्टि मिलकर ऐसे जीवट पात्रों की रचना करते हैं, जो जीवन समर में संघर्ष करते हुए कभी हार नहीं मानते। ओझा जी की पहली रचना सन् 1937 में 'दीपक' में छपी थी। उस समय बाबा नागार्जुन बैजनाथ मिसिर के नाम से 'दीपक' का सम्पादन किया करते थे। लेखक के नाते बालक ओझा का मिसिर जी से व्यक्तिगत सम्पर्क हुआ। बाबा के विचारों की उन पर जो अमिट छाप पड़ी। वह आजीवन ज्यों की त्यों बनी रही। वैचारिक तिक्तता, शोषण, वहशीपन तथा साम्प्रदायिकता के विरुद्ध तीखे तेवर दिखाई देते है। रामकुमार ओझा छठे दशक में एक बड़े कहानीकार के रूप में सामने आये।

महान रचनाकार रामकुमार ओझा का जन्म 08 जुलाई, 1926 को दार्जिलिंग में हुआ। ग्यारह बरस की उम्र से शुरू हुआ ओझा जी के लेखन और प्रकाशन का सिलसिला 8 अक्टूबर, 2001 को उनके महाप्रयाण के साथ ही थमा। ओझा राजस्थान के उन गिने–चुने लेखकों में से हैं, जिनकी रचनाएँ 'कल्पना' और 'विशाल भारत' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। ये हिन्दी और राजस्थानी में समान रूप से लिखते थे और उनका ग्रामीण परिवेश और जनजीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध था। दोनों ही भाषाओं में रामकुमार ओझा के उपन्यास, कहानी संग्रह और बाल उपन्यास प्रकाशित हुए। अभी भी उनकी कई रचनाएँ अप्रकाशित हैं।

ओझा की सबसे बड़ी विशिष्टता चरित्र–चित्रण है। उनका विश्वास था कि जो कहानी एक–दो कालजयी, अविस्मरणीय चरित्र नहीं छोड़ जाती, वह कहानी, कहानी ही नहीं, ओझा की कहानियों के पात्र जैसे मुकामों, सिराजी, अच्चन काका आदि कालजयी कहे जा सकते हैं।

1.2 जन्म –

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में लेखक बहुत हैं, लेकिन ऐसे लेखकों का अभाव है, जिन्हें परिवेशगत सिद्धता प्राप्त हुई हो, जिनकी दृष्टि वैश्विक हो तथा लेखक के रूप में अपने व्यक्तित्व से अलग होने की क्षमता प्राप्त हुई हो। इन तीन तत्वों का एक साथ समावेश

असाधारण प्रतिभा की अपेक्षा रखता है। ऐसे ही साहित्य के क्षेत्र में एक लेखक रामकुमार ओझा है, इनका जन्म एक मध्यमवर्गीय साहित्य एवं कलानुरागी ओझा परिवार में हुआ। चार भाई और तीन बहनों के पश्चात् इनका जन्म हुआ।

1.3 शिक्षा –

किसी भी व्यक्ति पर शिक्षा–दीक्षा का प्रभाव चाहे वह औपचारिक हो या अनौपचारिक अवश्य पड़ता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत अध्ययन तथा अनुभव का भी प्रभाव व्यक्तित्व तथा मान्यताओं पर पड़ता है। एक तरह से ये साहित्य रचना की प्रेरणा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साहित्य की ऊँचाईयों को प्राप्त करने के लिए या एक स्थापित साहित्यकार की श्रेणी में अपने को स्थापित करने के लिए साहित्यकार को किसी भाषा, देश विशेष की संकीर्ण परिधि से उठना आवश्यक है। कहना न होगा कि ओझा जी प्रारम्भ से ही अध्ययनशील एवं मननशील रहे हैं। उनकी दिनचर्या में स्वाध्याय के लिए समय निश्चित रहा है। इस निश्चित समय में उन्होंने देश के महान साहित्यकारों के साथ–साथ दर्शन का भी गहन अध्ययन किया है। कहानी को ध्यान में रखकर कहानी कुशलता प्राप्त करने के बारे में उनकी मान्यता है "मैं तो उसका एक ही ढंग जानता हूँ– बड़े कहानीकारों को पढ़ना।

इनकी प्रारम्भिक, इंटरमीडियट तक की शिक्षा दार्जिलिंग में हुई। उन्होंने लाहौर विश्वविद्यालय से 'साहित्य रतन प्रभाकर' की उपाधि प्राप्त की। विश्वविद्यालय में प्रथम वर्ष के छात्र अपने–अपने पुराने इण्टर कॉलेज या मुहल्ले के हिसाब से अलग–अलग समूह में घूमते थे। छात्रावास में रहने वाले छात्र अपने–अपने समूह में रहते थे। रामकुमार ओझा के लिए किसी भी समूह में जगह न थी। नये लड़के भी उन्हें कार्टून मानते थे, इसकी खास वजह यह थी कि वे अपनी बोली–सवारी से अमीर लगते थे और लिबास से कंगाल।

लाहौर में वे मेधावी छात्र माने जाते थे। उनके सामान्य ज्ञान का भी बड़ा दबदबा था और वे सामान्य ज्ञान के लिए विद्यालय और महाविद्यालय में पुरस्कार प्राप्त कर चुके थे। गहन चिंतन मनन के बाद उन्होंने यह पाया कि श्रेष्ठ साहित्य का सृजन केवल अध्ययन कर लेने मात्र से नहीं हो सकता । अध्ययन के साथ–साथ चिंतन मनन कर श्रेष्ठ भावों को परिवेश के अनुरूप ढ़ालना आवश्यक है। भावों का परिवेश साहित्य का प्राकृत धर्म है। यह कार्य साहित्यकार जीवन के तथ्यों को साहित्य का सत्य बनाकर पूरा करता है, जो शिल्प की विदग्धता के बिना सम्भव नहीं है। पर अकेले शिल्प से यह सिद्धि नहीं मिलती। ओझा जी ने अपने चिंतन में पाया कि ''साहित्य में क्षणिकता या सनातनता का गुण वस्तु में

नहीं, उस वस्तु को साहित्य की वस्तु बनाने वाले चित्त में होता है। कोई वस्तु स्वतः न सामयिक होती है और न सनातन, कृति ही प्रमाण है।''

1.4 पारिवारिक जीवन –

व्यक्तित्व के निर्माण में सबसे अधिक सहायक पारिवारिक वातावरण होता है, क्योंकि घर और परिवार के स्वस्थ वातावरण में बच्चे को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित अवसर प्राप्त हो सकते हैं, जबकि घर का बिगड़ा हुआ वातावरण उनके व्यक्तित्व को गलत दिशा प्रदान कर सकता है। ओझा जी का परिवार संयुक्त था, घर के सभी सदस्य पढ़े–लिखे थे। पिता की यही इच्छा थी, बेटा आगे चलकर अपना और परिवार का नाम रोशन करें। साहित्यानुरागी परिवार होने के कारण अपने बेटे के प्रति यह प्रेम रखना स्वाभाविक था। स्वयं रामकुमार ओझा इस सन्दर्भ में कहते हैं– "मुझे यह सौभाग्य मिला कि मैं संयुक्त परिवार में पला। बहनों तथा अन्य बहुत सी स्त्रियों के बीच बढ़ा, शायद इसलिए लिख सका।" इस कारण वे अपने आपको खुशनसीब मानते हैं। ओझा जी अपने परिवार में सबसे छोटे लाडले बेटे की भूमिका अदा करते आये थे, इस परिवार में कला संकाय के छात्र होने के कारण वे बुजुर्गों की दाद पाने के लिए कला के तथ्य और कला से जुड़े रोचक प्रसंग जम कर सुनाया करते थे। रामकुमार ओझा प्रतिभाशाली छात्र थे, इसलिए स्नात्तक की पढ़ाई के लिए परिवार वालों ने उन्हें कोलकाता भेजा था। माँ का अपने बेटे पर पूरा विश्वास था। इस सन्दर्भ में श्रीमती मैनादेवी ने लिखा है– ''माताजी ने अपने पुत्र के निर्णय को सदा सर्वोपरि माना कि जो करेगा उचित ही करेगा।'' माता के इसी विश्वास के वे पात्र बने परन्तु परिवार के बाकी सदस्यों को इनके प्रति बड़ी चोट पहुंची। बड़े भाई कमल कुमार रचनात्मक प्रतिभा के धनी होते हुए भी कभी अपने आपको साबित नहीं कर पाये। ओझा जी को भी कलकत्ता के एक पाठशाला में अध्यापक के रूप में नौकरी करनी पड़ी परन्तु इनके विद्रोही स्वभाव के कारण वे वहाँ पर भी ज्यादा दिन तक टिक नहीं पाये। अपनी जिम्मेदारियों को सम्भालने पर भी उनके परिवार वालों में दरार आ गई।

1.5 वैवाहिक जीवन –

28 नवम्बर, 1937 में उनका विवाह श्रीमती मैनादेवी के साथ ओझा परिवार के रीति–रिवाज से हुआ। बुजुर्गों के होते हुए विवाह का फैसला लेने की उन्हें बिल्कुल भी इजाजत नहीं थी। वे आत्मनिर्भर थे। इसलिए अपनी जीवनसाथी के साथ वैवाहिक जीवन का आनन्द भोगते रहे। इनके पाँच पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं। इनका एक पुत्र श्रीमान् सुमन ओझा वर्तमान में एक पत्रकार हैं, जो हनुमानगढ़ जिले से निकलने वाली 'भटनेर', साप्ताहिक पत्रिका में वर्तमान में भी सम्पादक पद पर कार्यरत हैं। इनकी एक पुत्री श्रीमती

सरोज आदर्श राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय नोहर, जिला हनुमानगढ़ में व्याख्याता पद पर कार्यरत है।

1.6 संस्कार –

समकालीन युग के कहानीकार रामकुमार ओझा ने माना है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से बड़ा नहीं होता। बड़ा होने के लिए सबसे बड़ा योगदान संस्कारों का होता है, उसके बाद लालन–पालन व परिवेश का। व्यक्ति क्रियाओं और मनोभावों की एक मजबूत इकाई है जो अपने–अपने समाज के बीच पनपता है, फूलता फलता है। ओझा जी का जीवन भी हर व्यक्ति की तरह समाज में फलता फूलता दिखाई देता है। वे अपने परिचितों को भी अच्छी शिक्षा ही देते थे और बताते थे ओझा जी का का मानना है– कोई लेखक अभिव्यक्ति का संस्कार अपने माता–पिता या किसी सम्बन्धी या रिश्तेदार से ग्रहण कर सकता है। हाँ, वातावरण निश्चय ही उसमें उसके प्रति सम्मान उत्पन्न कर सकता है। लिखने का कारण विसंगतियों से उपजते व आन्तरिक दबाव ओर असंतोष होते हैं, जो किसी भी अतिसंवदेनशील व्यक्ति को अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करते हैं।

1.7 नौकरी –

रामकुमार ओझा के पिता श्री जगन्नाथ जी ओझा जिनकी आकस्मिक मृत्यु होने के कारण उन्हें अपनी इच्छा के विपरीत निजी क्षेत्र में नौकरी करनी पड़ी। पिता की मृत्यु के बाद बहुत कठिनाइयों व आर्थिक समस्याओं से गुजरना पड़ा। सबसे पहले कुछ महीने कलकत्ता में अध्यापक की नौकरी की। प्रबन्धकों से झगड़ा होने पर उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी, यहाँ तक कि क्रोधित स्वभाव को रखते हुए अपना वेतन भी नहीं लिया। उसके बाद कुछ महीने कलकत्ता में ही इधर–उधर काम करते रहे। अपने एक अजीज मित्र के भरसक प्रयास से उन्हें विद्यालय में 'लिपिक' का पद प्राप्त हो गया। अपने स्वाभिमानी तथा क्रोधित स्वभाव के कारण वहाँ पर भी ज्यादा दिन रूक नहीं पाये। सन् 1950–52 ई. में दिल्ली आ गए। रोजी–रोटी के खातिर पत्र–पत्रिकाओं के लिए लेखन कार्य किया। इस संघर्षपूर्ण परिस्थिति में रिश्तेदारों ने भी कभी सहारा नहीं दिया और उसके बाद में नोहर, जिला श्रीगंगानगर (राज.) में आ गए जो कि वर्तमान में हनुमानगढ़ जिले में आता है और तब से लेकर आज तक निवास स्थान नोहर में है। करीब पाँच वर्ष वे जयपुर दूरदर्शन/सूरतगढ़ रेडियो आकाशवाणी में निरन्तर कार्यरत रहे। वहीं पर सहायक सम्पादक भी रह चुके हैं। उसके पश्चात् सन् 1950 से 1990 तक 'बुद्धिजीवी साप्ताहिक' का प्रकाशक व सम्पादक बने। उन्होंने 'साप्ताहिक' के लिए सम्पादक के रूप में भी कार्य किया। इस प्रकार चौंतीस वर्ष की आयु में ओझा सम्पादक बन गए। रामकुमार ओझा के समग्र व्यक्तित्व का निर्माण

पत्रकारिता और विभिन्न समाचार, पत्र–पत्रिकाओं के लिए किए गए उनके लेखन से ज्ञात होता है, जहाँ उन्होंने हिन्दी की उपयोगिता को शुरूआती दौर में स्थापित कर दिया था। साहित्य के क्षेत्र में अपनी एक नयी महत्त्वपूर्ण पहचान कायम की थी।

1.8 व्यक्ति और अभिव्यक्ति –

रामकुमार ओझा जी राजस्थानी अँचल में ही नहीं वरन राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ऐसे कहानीकार हैं, जो कथा–साहित्य के क्षेत्र में पूरी निष्ठा व निःस्वार्थ भावना से आजीवन समर्पित रहे हैं। वे पिछले पाँच दशक से निरन्तर सृजनरत है। कथा–साहित्य क्षेत्र के मंच पर भी उतने ही लोकप्रिय है। जितने पत्र–पत्रिकाओं और आकाशवाणी के साथ दूरदर्शन से प्रसारित रहे हैं। ओझा जी के कथा–साहित्य को जीवन के प्रत्येक अनुभव को रसशील करने का भरसक प्रयास किया है। कथा–साहित्य के प्रति 'ओझा जी' का प्रबल आग्रह रहा है। एक साक्षात्कार में उन्होंने यह तथ्य स्पष्ट करते हुए लिखा कि "यह मेरी पीढ़ी के साहित्यकारों का दुर्भाग्य था कि छठे दशक के आरम्भ से ही कहानी, कविता के घनघोर बादल छा गये हमने तब 'कथा–साहित्य' का पल्ला पकड़ा जो अन्तिम समय तक नहीं छोडा।"

रामकुमार ओझा एक प्रतिभाशाली रचनाकार व काल की मुख्य देन माने जाते है वह अपने समय के साथ–साथ अपने पूर्व अनुभवों, संघर्ष को अपनी रचनाओं द्वारा चित्रित करते हैं। बीसवीं सदी में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में जो भी रचनाकार हुए हैं उन्होंने अपने समय में होने वाले परिवर्तनों को, परम्परा को तथा नयी सोच को अपनी रचनाओं द्वारा अभिव्यक्त किया है। आदिकाल हिन्दी साहित्य में सबसे पहले परिवर्तन का विचार भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र ने व्यक्त किया। मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध के 'साकेत' और 'प्रियप्रवास' में इसी प्रकार के बदलाव की ध्वनि व्यक्त हुई है। छायावाद के कवियों ने तो प्रकृति चित्रण के अनुसार कुछ नयी बातें हमारे सम्मुख रखी हैं। उसी समय संसार में साम्यवादी क्रांति का परिवेश बड़े जोर–शोर से था, जिसके परिणामस्वरूप प्रगतिवादी विचारधारा का एक सशक्त प्रवाह शुरू हुआ। इस प्रवाह ने हमारे साहित्य की लगभग सारी प्राचीन मान्यताओं को बदल दिया। साधारण से साधारण मनुष्य भी कथा–साहित्य के क्षेत्र का रचनाकार होने लगा। इस साधारण मनुष्य के दुख–दर्द की ओर इन रचनाकारों का ध्यान बरबस खींचा गया। इसी समय गतिमान होने वाले आजादी के स्वर भी उनकी रचनाओं में कूट–कूट कर भरे हुए थे। इस समय के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में इन्हीं बातों को अपनी लेखनी का मुख्य विषय बनाया। अपनी पीड़ा, दुख–दर्द, जीवन–संघर्ष, उनकी रचनाओं में चित्रित होने लगा। ऐसे समय में अनेक प्रतिभाशाली

साहित्यकारों में से एक साहित्यकार, जिनका नाम है 'रामकुमार ओझा' जो अपने जीवन में संघर्ष को बखूबी चित्रित करते रहे। उनका सारा साहित्य उनके ही जीवन के विविध अनुभवों का लेखा–जोखा है।

'रामकुमार ओझा जी' के व्यक्तित्व के सामान्यतः दो पहलू हैं– एक बाह्य व्यक्तित्व और दूसरा आन्तरिक। उनका बाह्य व्यक्तित्व इतना साधारण स्वभाव को लेकर अच्छा है कि पहली बार उनसे मिलने वालों को कभी नहीं लगता कि वे ओझा जी से अपरिचित हैं या पहली मुलाकात है। ओझा जी पहली भेंट में ही आगन्तुक के प्रश्नों की, समस्याओं का समाधान कर उसका उत्तर खोजकर निस्तारण कर देते थे। जब वे आगन्तुक से बात करते थे तब एक हल्की सी मुस्कान उनके चेहरे पर रहती थी। सादा जीवन और उच्च विचार उनके व्यक्तित्व में झलकता था।

1.9 पुरस्कार एवं सम्मान –

रामकुमार ओझा को उनके व्यक्तिगत गुणों और उनकी सेवाओं, साहित्यिक कृति के प्रति सम्मानार्थ अनेक मंचों ने समय–समय पर पुरस्कृत किया गया। जीवन के विविध पहलुओं को गहनतम ज्ञान, पांडित्य और विद्वता की छाप, बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण विविध सम्मानों से सम्मानित किया गया। विद्यार्थी जीवन से ही पुरस्कारों की प्राप्ति होती रही।

रामकुमार ओझा को प्राप्त पुरस्कार एवं सम्मानों की प्राप्ति से उनके बहुमुखी व्यक्तित्व तथा कृतित्व में और निखार आया है। उन्हें प्राप्त पुरस्कारों की गिनती सम्भव नहीं है। प्रतिनिधिक तौर पर कुछ पुरस्कारों का जिक्र किया गया है। लेकिन ओझा जी पुरस्कारों के लिए कभी आवेदन नहीं करते थे। ना ही उन्हें चमचागिरी करके पुरस्कार प्राप्त करने का शौक था इसलिए ऐसी भीड़ से हमेशा ही दूर रहे। इसके बावजूद भी रामकुमार ओझा जी को सम्मानित किया गया है। अपनी उत्कृष्ट कथा–साहित्य के उपलक्ष्य में 'ओझा जी' सरकारी, गैर सरकारी, और साहित्यिक–सांस्कृतिक संस्थाओं के द्वारा पुरस्कार, सम्मान एवं अभिनन्दन स्वीकारते हुए अपने रचना–पथ पर अनवरत अग्रसर रहे है। समय–समय पर हो रहे सम्मान 'ओझा' जी की कथा–साहित्य साधनों के प्रति समाज के श्रद्धाबोध का द्योतक तो हैं ही उनके लेखन की उदारता के स्वीकृतिमूलक प्रशस्ति पत्र भी हैं। अतः ओझा जी ने स्वयं के अनुभवों से अर्थात् जीवन की पाठशाला से ज्ञान प्राप्त किया है, किसी ज्ञानी या दार्शनिक से नहीं उन्होंने अपने जीवन में मानवीय संवेदना को बरकरार रखने के लिए गिट्टी और रेत के बीच अपनी रागानुकूलता को जीवित रखा है। 'ओझा' जी का व्यक्तित्व

उनके अभिव्यक्ति में ही समाहित है, क्योंकि पाठक को ओझा जी का दर्शन उनके अभिव्यक्ति से ही होता है।

रामकुमार ओझा को मिले पुरस्कारों की सूची –

1. चुरु साहित्य परिषद् से सम्मानित – 1995
2. 'नोहर श्री' की उपाधि मिली – जयपुर से – 1992 में
3. 'मुकामों' कहानी के लिए – द्वितीय पुरस्कार 'अखिल भारतीय स्तर का साहित्य अकादमी'–दिल्ली।
4. कला परिषद् से सम्मानित, पं. दीनदयाल शर्मा द्वारा हनुमानगढ़ से सम्मानित
5. राजस्थानी के लिए डॉ. सत्यनारायण सोनी द्वारा सम्मानित परलीका, (नोहर)
6. स्वतंत्रता सेनानी के रूप में प्रजा परिषद् के सदस्य के रूप में सम्मानित।
7. पत्रिका ग्रुप कलकत्ता द्वारा सम्मानित किया गया।
8. ओमप्रकाश बिहाणी (भामाशाह) कलकत्ता द्वारा सम्मानित।
9. हनुमानगढ़ पत्रिका द्वारा सम्मानित
10. हनुमान प्रसाद दीक्षित पुरस्कार से सम्मानित।
11. डॉ. भरत ओला (राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता) के द्वारा सम्मानित

1.10 व्यक्तित्व विश्लेषण –

रामकुमार ओझा मृदुभाषी स्वभाव के व्यक्ति थे। उनमें विनम्रता की पराकाष्ठा दिखाई देती हैं, क्योंकि वे एक महान प्रतिभाशाली कवि होते हुए भी सदैव अन्य कवियों के प्रति भी आदर भाव रखते थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा और कवित्व शक्ति को अपनी माँ के सान्निध्य में रहकर नैसर्गिक रूप से प्राप्त किया था। बचपन में माँ के द्वारा गुनगुनाते हुए कहानी स्वरूप सुनने पर ही उन्हें कथा–साहित्य लिखने की प्रेरणा मिली। उनकी माताजी द्वारा कही जाने वाली कथा अमिट छाप छोड़ती थी। वे कथा को अपने भाव अभिभूत करते थे। जीवन के प्रति मोह व विरक्ति के भाव वहीं से उत्पन्न हुए। वे बड़े ही कर्त्तव्यनिष्ठ एवं आडम्बरहीन व्यक्ति थे। उनमें सहजता, सहृदयता, सारग्रहिता, अनुभव, गम्भीरता, संयम आदि उनके स्वभाव के सहज गुण हमें थे। बचपन से ही 'ओझा– जी ने गरीबी को बहुत करीब से देखा, महसूस किया और भोगा था। इस समय के परिवेश की उत्पन्न विषमताओं ने ओझा जी के मन पर अमिट छाप छोड़ी जो उनकी जीवन में ज्यों की त्यों आजीवन बनी रही थी। व्यक्तित्व की कई तरह से परिभाषा दी गई है। अशोक मानक हिन्दी शब्दकोश में इसे निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है– ''व्यक्ति के गुण या भाव, वे विशेष गुण जिनके द्वारा किसी व्यक्ति की स्पष्ट और स्वतंत्र सत्ता सूचित होती है।''[1] ओझा जी सहज

और सरल विश्वास वाले व्यक्ति थे। वे अपने विचारों एवं सिद्धांतों पर अटल रहते थे। यह गुण उन्हें अपने पिता से प्राप्त हुआ। आज साहित्यिक जगत में प्रसिद्धि पाने की होड़ मची हुई है। इस होड़ संस्कृति में सत्य–असत्य को जाने समझे बिना प्रभावी, ख्याति प्राप्त साहित्यकार का भी गलत बातों के आगे सिर झुकाना सहज है। व्यक्तित्व को सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है। अंतरंग व्यक्तित्व और बहिरंग व्यक्तित्व।

ओझा जी के उपन्यासो एवं कहानियों में ग्रामीण और शहरी परिवेश अपनी–अपनी विशेषताओं को समेटे हुए है। उनके शब्दों में "कहानीकार कहानी में सत्य को काल्पनिक कथानक के माध्यम से प्रेषित करता है, पर उसके अन्तराल में वास्तविक जीवित पात्र वास करते हैं। हर कहानी में एक और कहानी होती है। हर पात्र के अन्दर दूसरा पात्र वास करता है।" इसी तथ्य को ओझा जी की कहानी 'सत्यमेव जयते' में देखा जा सकता है। गाँधी और साक्षी बाबा दोनों ऐसे चरित्र हैं, जिन्हें ओझा जी ने तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। गाँधी चाहे शहरी परिवेश के हों किन्तु उन्होंने गाँवों की जनता को इस कद्र प्रभावित किया कि गाँधी के विषय में लोग शहरी और ग्रामीण का अन्तर करना भूल गए। उनकी दृष्टि में गाँव हो या शहर जनता जनार्दन ही होती है। आजादी की लड़ाई में गाँव और शहर का भेद मिट गया वहाँ तो केवल आजादी की लड़ाई थी। एक ऐसी लड़ाई, जिसमें गाँव और शहर का भेद ना किसी ने जाना और ना ही जानने की इच्छा की। "जन जनार्दन होता है और जब जन उद्वेलित होता है तो साक्षात रूद्र बनकर ताण्डव करने लगता है। आजादी की आखिरी लड़ाई का ताण्डव शुरू हो चुका था।

कहानीकार अपने गाँव के परिवेश को कभी नहीं भुला पाता। उन्होंने स्पष्ट कहा हैं "मेरा गाँव, बस इतने भर को, कि मैंने कभी वहाँ जन्म लिया था। होश सम्भालते ही उससे कट गया था और फिर उस मरूस्थलीय गाँव से मेरा सम्बन्ध उतना ही रह गया था, जितना कि कटी नाल से किसी शिशु का रह जाता है। किन्तु जब सुना कि वह गाँव भीषण सूखे की चपेट में है तो मेरे मन में एक मरियल सी ममता उस उजाड़ खेड़े के प्रति जागी" इससे ओझा जी ने यह स्पष्ट किया है कि जन्म भूमि से किसी का भी रिश्ता कभी भी नहीं छूटता। चाहे व्यक्ति कहीं भी जाकर रहे अपने ग्रामीण परिवेश को, अपने गाँव की संस्कृति को कभी भी नहीं भूला पाता। यही कारण है कि जब अपनी जन्म भूमि पर कोई संकट आता है तो अपनी अंतरात्मा में एक कचोट सी पैदा होती है और व्यक्ति के कदम अचानक ही अपने गाँव की ओर बढ़ जाते है।

'सूखे की एक रपट' कहानी में अकाल के समय जहाँ कुत्तों का चित्रण लेखक ने किया है वहीं प्रतीक रूप में इंसानियत को नोचने वाले व्यक्तियों पर भी करारा व्यंग्य किया

है। लेखक ने एक जगह जो शब्द चित्र प्रस्तुत किया है वह दर्शनीय है। "सूखे में कुत्ते पुष्ट हो जाते हैं। कुत्ते कई किस्म के होते हैं। कुत्ते जो होते हैं वे तो होते ही हैं पर आदमियों में कुत्ते वे होते हैं जो सूखा–पीड़ितों के लिए जुटाई गई राहत सामग्री को बीच में ही खा जाते हैं। वहाँ एक कुत्ता, जो असल कुत्ता था, एक शिशु को अपने जबड़े में दबाये पूरे वेग से दौड़े जा रहा था। कई एक पुष्ट कुत्ते उसका पीछा किए जा रहे थे। शिशु भी हो सकता था, नवजात मेमना भी। हम फोटो उतारने में तल्लीन थे। नस्ल की पहचान करना हमारा काम भी न था।"

1.10.1 मिलनसार एवं अतिथिशील –

ओझा जी अत्यन्त मिलनसार प्रवृत्ति के थे। उनके घर में हमेशा मिलने वालों की भीड़ लगी रहती है। वह कितने भी व्यस्त क्यों न हो आने वाले मेहमानों का स्वागत किया करते थे। उनके घर वक्त–बेवक्त मेहमान, दोस्त और रिश्तेदार आते रहते थे, फिर भी ओझा जी में ऊर्जा का एक स्रोत निरन्तर बहता हुआ दिखाई देता था। उनके अति प्रिय शिष्य डॉ. सत्य नारायण सोनी द्वारा अमुक वार्तालाप में शोधार्थी को ज्ञात हुआ कि रामकुमार ओझा जी से मिलकर ही मेरी साहित्य के प्रति प्रेम रूपी भावना जागृत हुई और तभी मैंने अपना वैकल्पिक विषय हिन्दी साहित्य को चुना व एम.ए. हिन्दी साहित्य से उत्तीर्ण करके बीकानेर विश्वविद्यालय, बीकानेर से शोधार्थी के रूप में कार्य करते हुए पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। मैं जब भी ओझा जी के पास मिलने जाता तो हर रोज कुछ न कुछ नया ज्ञान ही प्राप्त होता था और निष्पक्ष व निःस्वार्थ भावना से बिना किसी भेदभाव के ओझा जी हमारी बात को सुना करते थे। मैंने तो शोधार्थी रहते हुए जो पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की है वो उनकी ही देन है व उनके अभिन्न मित्र रामस्वरूप किसान (केन्द्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता) का भी कहना है कि मुझे आज भी रामकुमार ओझा के साथ बिताया एक–एक पल याद है। जैसे पिकाशो चित्रकार एक मुट्ठी भर कर रेत की ही फेंक देता है तो वो भी कोई कलाकृति के रूप में उभरकर सामने आती है वैसे ही मेरे अभिन्न मित्र व साहित्यकार रामकुमार ओझा के मुख से भी जो शब्द निकलते थे वो माँ सरस्वती की दया से किसी न किसी रचना की शब्द शैली के रूप में बन जाया करते थे। ऐसे ही उन्होंने हर एक काव्यकृति का लेखन कार्य किया है। 'रावराजा', 'चन्दा मामा दूर के' (बाल उपन्यास), 'निशीथ', 'करवटें' जैसी रचनाओं का कार्य तो स्वयं मैंने अपनी आँखों से देखा है। ओझा जी बड़े ही दिलचस्प या फिर कोई दुःख भरे समय में होते थे तब ही वो लेखन कार्य किया करते थे।

1.10.2 समय के पाबन्द –

रामकुमार ओझा काम को बड़ा महत्त्व देते थे। ईमानदारी तथा बड़ी लगन से अपना काम बखूबी निभाते थे। वे समय के पाबन्द थे। काम के लिए समय देने को महत्त्व देते थे। जब पत्रकारिता के क्षेत्र में थे तब सम्पादक होने के नाते उनका अतिव्यस्त जीवन था। सुबह जल्दी उठ जाते थे। सुबह चाय के साथ सभी अखबार पढ़ते थे। फिर स्नानादि से निवृत्त होकर भोजन करके दफ्तर जाते थे। शाम को ही लौटते थे। वह समय को व्यर्थ नहीं गंवाया करते थे। यह विशेषता अंत तक बनी रही है। हर काम निश्चित समय पर किया करते थे।

1.10.3 सहायता करने की प्रवृत्ति –

रामकुमार ओझा में दूसरों की सहायता करने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। उनके घर में एक दो लोग नहीं अनेक लोग आश्रय पाते थे। शोधार्थी द्वारा उनकी बेटी सरोज (व्याख्याता) व शशि से विचार–विमर्श कर ज्ञात हुआ कि ओझा जी शिक्षा के क्षेत्र में अपने निवास स्थान पर कोई भी व्यक्ति/विद्यार्थी वर्ग सहायता के लिए आते तो वे उनकी तुरन्त प्रभाव से किसी न किसी रूप में सहायता किया करते थे, चाहे वो नकद राशि के रूप में हो या फिर किताबें देने से सम्बन्धित हो। ओझा जी हमेशा ही विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु प्रेरित किया करते थे, उनका मानना था कि शिक्षा ही व्यक्ति की सफलता और सर्वांगीण विकास में सहायक है। ओझा जी द्वारा अनेक छात्र–छात्राओं को शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं प्रदान की गई, उनके सान्निध्य में शिक्षा प्राप्त करने वाले विनोद स्वामी (परलीका) जो कि वर्तमान में 'कथेसर पत्रिका' का सम्पादन कार्य कर रहे हैं, ने बताया कि ओझा जी बहुत ही सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। वे मुश्किल से मुश्किल बात को भी बड़े ही सरल तरीके से विद्यार्थियों को समझा देते थे। विनोद स्वामी का मानना है कि ये ओझा जी के सान्निध्य का ही प्रभाव है कि मैं आज इस पद पर कार्यरत हूँ।

ऐसे ही एक अन्य शिष्य राजेन्द्र कुमार कासोटिया, (प्रधानाचार्य) से शोधार्थी द्वारा विचार–विमर्श कर ज्ञात हुआ कि मेरी पारिवारिक व आर्थिक परिस्थिति ऐसी नहीं थी कि मैं अपने पढ़ाई के लिए किताबें जुटा पाता। उसी समय एक देवता के रूप में मिले सज्जन विद्वान ओझा जी ने मुझे प्रेरित किया व मेरी अच्छी पुस्तकों की जानकारी देकर सहायता भी कि, जिससे की मेरी शिक्षा के प्रति फिर से वही रूचि व लगन लग गई और मैंने अपनी पढ़ाई पूरी की। उनकी अच्छी प्रेरणा व सद्मार्ग पर चलने की इन बातों को ग्रहण कर ही मैं आज ईश्वर व ओझा जी की असीम अनुकम्पा से आदर्श राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, नणाऊ (हनुमानगढ़) में प्रधानाचार्य पद पर कार्यरत हूँ। ओझा जी की लगभग

सभी पुस्तकों का अध्ययन मैंने किया है व उनकी समस्त प्रकार की शिक्षाओं पर अमल भी किया है। उनसे प्रेरणा लेकर मैंने भी तभी से सोच लिया कि जीवन में संघर्षरत रहने वाले विद्यार्थियों का हमेशा सहयोग करूँगा और इसी बीच मुझे शोधार्थी के रूप में एक विद्यार्थी मिला, जिसकी पारिवारिक व आर्थिक परिस्थिति बहुत खराब थी और मन में उच्च शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा भी थी, लेकिन मन में सब कुछ होते हुए भी वह अपनी परिस्थितिवश कुछ नहीं कर सकता था। मुझसे पहली मुलाकात में ही शोधार्थी ने प्रथम दृष्टया समस्त बातें बताई तभी मैंने विद्यार्थी की पीठ थपथपाते हुए कहा कि आज के बाद तुझे किसी भी प्रकार की कमी नहीं आने दी जाएगी तथा नकद राशि सहयोग के रूप में प्रदान करते हुए अपनी उच्च शिक्षा को नियमित रखने की प्रेरणा दी। ये सब हमें हमारे गुरुजी व साहित्यकार रामकुमार ओझा जी से मिली प्रेरणा ही है, जिसको हम आजीवन कायम रखना चाहते हैं और हम अपने शिष्यों से भी यही इच्छा रखते हैं कि वो भी इसे आगे निरन्तर बनाए रखें।

1.10.4 यात्राओं का दर्शन –

समकालीन युग के कहानीकार रामकुमार ओझा को यात्राएँ करना बेहद पसन्द था। भारत की यात्राओं में खासतौर पर रूचि थी। उनके लेखकीय व्यक्तित्व और बहुमुखी प्रतिभा में उनके स्व–अर्जित ज्ञान का बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने अनेक राज्यों की यात्राएँ की, जिससे निश्चित रूप में अतिरिक्त ज्ञानवृद्धि हुई। भारत में कश्मीर से कच्छ तक पत्रकार के रूप में भ्रमण किया, वे लक्षद्वीप भी गए। चारों धाम की यात्रा का आनन्द लिया। अण्डमान निकोबार का सफर किया। भारत तो लगभग पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक घूमें। इन यात्राओं का सम्बन्ध पत्रकारिता तथा साहित्यिक सन्दर्भों से है।

1.11 सामाजिक आन्दोलन और रामकुमार ओझा –

लेखन कार्य के अलावा ओझा जी अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं से जुड़े हुए थे। उन्होंने शोषित समाज के बीच बैठकर काम किया है। ओझा जी का आन्दोलनमुखी संगठनों से गहरा नाता रहा है। ओझा जी को हमेशा संघर्ष के मोर्चे पर तैनात रहना पड़ा है, लेकिन उन्होंने कभी हार नहीं मानी है। ओझा जी ने साहित्य लेखन के साथ–साथ अनेक संगठनों के लिए भी काम किया है। उनके मित्र हनुमान प्रसाद दीक्षित जी से शोधार्थी द्वारा वार्तालाप कर यह ज्ञात हुआ है कि रामकुमार ओझा स्वयं एक मध्यमवर्गीय परिवार के होते हुए भी बड़ा हृदय रखते थे। वे निःसंकोच व निःस्वार्थ भाव से किसी भी जाति का भेदभाव न रखते हुए हर एक वर्ग की भावना को समझा करते थे। यहाँ तक कि ओझा जी साहित्य के क्षेत्र में भी मध्यमवर्गीय परिवार के लिए बहुत कुछ लिखा करते थे

और ओझा के अनेक निबन्ध और कहानियां भी 'भटनेर' साप्ताहिक पत्रिका व 'नोहर टाइम्स' में भी प्रकाशित हो चुकी व आज तक हो रही हैं। इस प्रकार से ओझा जी हर एक व्यक्ति की अपनी हृदयगत भावना को रखते हुए सहायता के लिए तैयार रहते थे। इसी प्रकार से उनके पुत्र श्री सुमन ओझा के साथ विचार विमर्श में यह जानकारी प्राप्त हुई है कि ओझा जी के एक मित्र जो कि जूतों की दुकान करने के इच्छुक थे और रामकुमार ओझा से सहयोग की बात की तो पिताजी ने बिना कुछ देखे हाँ कर दी और अपने मित्र को जूतों की दुकान खुलवाने में सहयोग किया। व अपना कुछ समय बिताने के लिए अपने मित्र की दुकान पर भी जाया करते थे। इस बात पर हमारा समाज कुण्ठित हो गया और हमारे परिवार को समाज से बहिष्कृत करने तक की नौबत आ गई थी, तो भी पिताजी पीछे नहीं हटे और समाज के साथ अपने मित्र के लिए संघर्ष किया और अपने समाज में अपनी निष्कलंक व बेदाग छवि को ज्यों की त्यों बनाए रखा। मुझे भी अपने पिताजी से ही ये प्रेरणा मिली और आज मैं एक अच्छा संवाददाता हूँ व हनुमानगढ़ (राजस्थान) से 'भटनेर' साप्ताहिक पत्रिका का संचालन कर रहा हूँ।

1.12 साहित्य सृजन –

बातचीत करने और रोमांचकता में रामकुमार ओझा माहिर थे। विश्वविद्यालय में उनके सहपाठी मित्र व प्रशंसकों ने उनसे कहा कि ओझा जो तुम बोलते हो वही लिख दो तो साहित्यकार कहलाओगे। तब ओझा ने 'कौन जात कबीरा' कहानी लिखी जो बीकानेर से प्रकाशित तत्कालीन पत्रिका 'जागती जोत' में छपी और जिसकी हनुमान प्रसाद जी दीक्षित और पत्नी श्रीमती मैनादेवी व समाज आदि ने बड़ी सराहना की।

रामकुमार ओझा की पत्नी श्रीमती मैनादेवी से सम्पर्क करने पर शोधार्थी को यह ज्ञात हुआ है कि उनको साहित्यिक क्षेत्र में लिखने का बहुत शौक था। उन्होंने बताया मेरा जब विवाह हुआ तब मैं उन्हें चाय पीने को देती थी, तो वह अपने कथा साहित्य में इतने मदमस्त हो जाया करते थे कि चाय भी पड़ी–पड़ी ठण्डी हो जाती थी और जब मैं जूठा कप लेने के लिए जाती थी तो पता चलता था, कि इन्होंने तो अभी चाय भी नहीं पी है। मेरे द्वारा उनको चाय पीने के लिए कहा जाता था तो वो एक डॉयलाग सुनाया करते थे कि "रोमांचक अवस्था में ओझा का साहित्य के क्षेत्र में लेखन कार्य करना और बाद में ठण्डी चाय की चुस्की लेने का मजा ही कुछ और है।" यह बात कहकर चाय पी लेते थे। उनका जीवन बिल्कुल सादगीपूर्ण व उच्च विचारों से परिपूर्ण था और अपने बच्चों के प्रति तो बहुत ही प्रेम पूर्ण व्यवहार रखते थे। एक दिन तो जब विद्यालय जाते समय उनकी पत्नी अपने बच्चों को सही समय पर तैयार नहीं कर सकी तो उन्होंने उस दिन के बाद से

ही हर रोज बच्चों को विद्यालय जाते समय तैयार करने के लिए दिलचस्पी दिखाना प्रारम्भ कर दिया। आज भी मुझे गर्व है कि एक मध्यमवर्गीय ओझा परिवार में जन्म लेने वाले युवक रामकुमार ओझा नामक व्यक्ति मुझे पति रूप में मिले। इस बात की खुशी हुई थी पर आज मेरा ह्रदय व आँखों से दुःख के आँसू झलक आते हैं, जब मैं उनकी तस्वीर में खुली आँखों पर लगा हुआ बड़ा सा चश्मा देखती हूँ तो मुझे विवाह के समय जितनी खुशी हुई उससे ज्यादा दुःख प्रकट होता है कि मैंने अपने साहित्यकार पति को जीवनसाथी के रूप में खो दिया है। लिखने की कला उन्हें छात्र जीवन से अवगत हुई और वे निरन्तर लिखते ही गए। मगर सही रूप में उसे दिशा मिलना अभी बाकी था। बाद में उन्हें वह सुअवसर मिला। रोमांस शैली के लिए वो मशहूर हुए।

प्रकाशित कृतियों का परिचय –

1.12.1 "आदमी वहशी हो जाएगा" (कहानी संग्रह) –

रामकुमार ओझा ने 'आदमी वहशी हो जाएगा', जो बोधि प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित है, इस संग्रह में 'आदमी वहशी हो जाएगा', 'मुकामों', 'त्रिकाल', 'सड़क', 'सफीनों', 'रब्बों', 'प्रेतकुण्ठा', 'हाड़फरोश', 'चीता', 'खून', 'फट्टा', 'सर्प नियति', 'वो', 'बहस्तरीय–योजना', 'बाबा बोलने लगे', 'मुर्गी हत्या काण्ड' और 'चोर' ये 17 कहानियाँ है। इन सभी कहानियों में ओझा जी ने मानवीय जीवन की विविध समस्याओं को उठाया ही नहीं, अपितु उनके समाधान के संकेत भी दिए है, जो पाठकों के ऊपर छोड़ दिए है। इसी कहानी संग्रह की भूमिका में लिखा है कि "कहानी की शास्त्रीय पद्धति अब केवल विश्वविद्यालय की कक्षाओं तक ही सीमित रह गई है। व्यवहार में कहानी एक मुक्त विधा के रूप में उभरकर निखरी है। कहानीकार यदि शास्त्रीयता से जकड़कर कथा का कलेवर खड़ा करता है तो वह मात्र एक निर्जीव कंकाल की संरचना भर कर पाता है अथवा रीतिकालीन काव्य–पद्धति की अटपटी गद्य अनुकृति। संवेदना और मानवीय निसर्गता सांचों से नहीं ढल पाते। ये तो शाश्वत अनुभूतियाँ हैं।"

हिन्दी कथा–साहित्य में प्रेमचन्द की धारा से जुड़ाव, मुख्य–धारा से जुड़ना माना जाने लगा है, किन्तु मैंने सप्रयास ऐसा कुछ नहीं किया है कि प्रेमचन्द की परम्परा के अनुगामियों के दावेदारों की पंक्ति में खड़ा नजर आऊँ। इसका आंकलन तो स्वयं पाठक ही करेंगे।

(क) 'आदमी वहशी हो जाएगा' –

'आदमी वहशी हो जाएगा', कहानी संग्रह में संकलित है इसमें आदमी को भी आज के युग की मशीन के बराबर मान लिया है। परन्तु उसका जीवन्त दृष्टिकोण के कारण

मशीन उसकी समकक्षता को नहीं रख सकती है। उसी को ओझा जी ने अपनी कहानी में व्यक्त किया है, देखिए–'मशीन काम करते–करते थककर सोने लगती है। धागे टूटने लगते है। पर थकी मशीनें ज्यादा शोर करती है। वे आदमी को झांसा देती हैं और आदमी उनको ठोक–पीटकर राह पर लाता है। हर हाल शोर बढ़ता है। बहरहाल आदमी अपने दिमाग की ईजाद मशीन के अधीन होकर जीना सीख रहा है। मशीन शनैः–शनैः उसे बहशी बनाने का ताना–बाना बुनती है। आदमी हजार हाल शोर से बचना चाहता है। पर वगैर शोर अब गुजारा भी नहीं होता।

''और यह शोर ही है कि जिसके मारे दुनिया के सारे आदमी पगलाये जा रहे हैं। 'आज का दिन भी बरकतों वाला है। उसे अपने सवाल का जवाब मिलने लगा है।''

(ख) 'मुकामों' –

'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह में संकलित 'मुकामों' कहानी में मुकामों की जीवन–यापन की परिस्थिति और संघर्ष को बताया है, जिसमें इसके पति परदेश में रहते हैं, तो उसके पीछे से उसके देवर करमू की नीयत खराब रहती है और मुकामों के सम्पर्क में आना चाहता है, तो इधर से मुकामों ने भी अपने देवर की परिस्थिति को समझकर उसकी कामुकता को देखकर आमंत्रित करती है व शादी तक करने का प्रस्ताव दे देती है, उसी को ओझा जी ने कहानी में बताया है –''ताका–झांका मत करे रे करमू देवर। सीधे से बोल, जे कुछ चाहिए तो!''

'पूछ रहा था, एक डोल (कनस्तर) पानी है तेरे पै भाभी ?'

पानी का कौन टोटा, मुकामों का पलींडा कभी खाली नहीं रहता।

व्यवहार की खरी, स्वभाव से अनबूझ लुगाई। मीठी बोले तो मिश्री घोले। मिठास का मारा करमू धम्म से दीवार पर आ रहा। तभी आकाश में बिजली कड़की और साथ ही मुकामो गरजी–'अरे आये करमू, उतर दीवार से। तनिक मीठी क्या बोली बस, सींव की उलंघना को त्यार हो गया।''

(ग) 'सड़क' –

'आदमी वहशी हो जाएगा', कहानी संग्रह में संकलित 'सड़क' कहानी में कहानी की मुख्य पात्रा व पत्नी अपने ही पति को शक की दृष्टि से देखती है। उसी को ओझा जी ने स्पष्ट किया है – ''औरत काफी सयानी साबित हो रही थी। उसने सहज ग्रामीण सूझ से मेरा आशय भांप लिया तो मैं विराम पर आते बोला।

'नौकरानी बनकर रह सकोगी ?'

'नौकरानी छोड़ पटरानी बनाकर कौन मुझे अपने घर रखेगा।' औरत ने हाशिये पर खड़ी होते उत्तर दिया।

'चौका, पोछो, बुहारी, झाडू, जूठे बर्तन.... और.....'

'और' के अलावा सब संभाल लूंगी। बस, इसी एक 'और' के सिवा, जिसकी घिन से घिनाकर घर छोड़ आई हूँ।'

(घ) 'रब्बो' –

'आदमी वहशी हो जायेगा' कहानी संग्रह में संकलित 'रब्बो' कहानी में शरीफों के मौहल्ले में शराफत भरी जिन्दगी जीने वाले लोगों की लड़कियाँ जो अपना होशो–हव्वास खो चुकी व अपनी मान–मर्यादा को भी दांव पर लगाने तक की नौबत ला देती है। उसी को कहानी में बताया है, देखिए– यह मुहल्ला अराकनी शरीफों का दरबा है कि मुहल्ले के सारे के सारे बाशिन्दान सफेदपोश मुहज्जब (सभ्य) इन्सान हैं। यहाँ दीनदार मुसलमान रिहायिस करते है, नौकरीपेशा कायस्थ रहते हैं। अमृत छके सिखों का यह मुहल्ला है। हिन्दू यहाँ के कदीमी बासिन्दे हैं। होटलों का कारोबार करते एंगलो इंडियनों की यह मोहल्ला रिहायशगाह है। गरज कि यह सारे हिन्दुस्तान के शरीफों का मोहल्ला है।

यहाँ सबकी मायें साझे की मायें हैं। बेटियां, बहनें, बुवा–फूफियां साझे की धरोहर हैं। अलबता बीबियाँ सबकी जुदा–जुदा निजी हैं। इस महल्ले की लौंडियां जाहिरा औबास नहीं है।

जबकि लौंडियां जानती थीं कि कोई 'खास' नहीं है। जब किसी कुंवारी का साबिका किसी अफताब (सूरज) से पड़ जाता तब मायें उसकी मददगार होतीं। कर्ण की पेदाइश का हवाला पोशीदा रहता। इस पर भी वे चाहतीं औबास लौंडों द्वारा छेड़ी जाना। मगर यह उनकी लाचारी थी कि जाहिरा नाराजगी का इजहार करें। वे जानती थीं कि उनके बलिदान जानते हैं कि उनकी साहबजादियों कैसी क्या हैं, मगर वे मुकाफ्ल लब (होठों पर ताले डाले) रहते।

1.12.2 "सिराजी और अन्य कहानियाँ" (कहानी संग्रह) –

'सिराजी और अन्य कहानियाँ संग्रह', सम्पर्क प्रकाशन 7/101 आर.एच.बी., हनुमानगढ़ संगम (राज.) से प्रकाशित है। इस संग्रह में 'सिराजी', 'लाट बाबा', 'हिश्श! भूख से भी आदमी मरता है ?', 'बूढ़े बरगद और चिल्लर लंगड़', 'दरख्त पर टंगी रोटी', और 'बंधवा', ये 9 कहानियां है। सभी कहानियों में ओझा जी ने आधुनिक युग के मानव की विविध प्रकार की समस्याओं का समाधान के संकेत दिये है और निर्णय पाठकों के ऊपर छोड़ दिया है।

(क) ''बूढ़े बरगद और चिल्लर लंगड़ की कहानी'' –

इस संग्रह के विषय में उन्होंने संग्रह में संकलित 'बूढ़े बरगद और चिल्लर लंगड़ की कहनी' से बताया है, देखिए– 'उस बस्ती पर शनैः शनैः शहर की सारी मनहूसितें उतरने लगीं। बस्ती की नियामतें उठने लगीं। उसकी सहज गँवई संस्कृति पर एक अन्धे साँप की केंचुली जैसी कस्बाई सभ्यता की परत चढ़ने लगी। एकरस गँवई जिन्दगी में शहराती शराफत में सराबोर सबरस की घुलमेल हुई तो गाँव की भोली सूरत से सीरत झड़ गई और जो शख्सीयत, सकूनत उभरी उसके नीम सूरत और ना–काबिले कबूल सीरत मुखौटे चढ़ाने के लिए हर शख्श ललचाने लगा।'

(ख) ''सयाना'' –

'सिराजी और अन्य कहानियां' कहानी संग्रह में संकलित 'सयाना' कहानी में ओझा जी ने बताया है कि इस समय का व्यक्ति चिलम–तम्बाकू के नशे मदमस्त रहता था और जादू–टोना, भूत–प्रेत, झाड़ू फूँक जैसी तंत्र–मंत्र की विधाओं में ज्यादा विश्वास रखता था। यहाँ प्रस्तुत है –''चिलम भक्–भक् कर सुलग उठी। हरखू के मुँह और नथुने निगालियां बन धुआँ उगलने लगे, आखिर तृप्त हो बोला, "गांजा असली नेपाली नजर आता है, रे मोतिया।"

"हाँ, हाँ, जाओ काका। सुलखनी नार बड़भागी को मिलती है। तुम्हें सुलाये तो दो घर और सुलटाये।" हरखू 'ही–ही' कर हँसा। जाते–जाते माणक को लक्ष्य कर इस दफा बाई आँख का इस्तेमाल किया। कबूतर कुआं दिखलाने वाले का आशय समझ गया। मुस्कराया। नेवगण तो आदत भर डाल खिसक गई। शेष काम तो काका ने ही सुलटाना है।

पर किशनू से उस्ताद की लाग–डाट। वह तो मोती की सच्चाई और साख की दुहाई थी, जो सोना पचा गया। कोई दूसरा कम इज्जतदार आदमी होता तो मारा जाता। पर सयाने के विरुद्ध किशनू की किसी ने न सुनी।

"काली महाकाली कलकत्ते वाली। दोनों हाथ बजाए ताली। हुम् कामाख्या वाली। जती–सती की कर रखवाली। बम–बम बोले।" उस्ताद ने दम मारा तो लपट उठी। माणक की ओर बढ़ा दी। नया दमबाज। नौसिखिया गंजेड़ी। साधारण से दम में उखड़ गया। पर अमरू ने तम्बाकू गुल बना दी, मोती के हाथ आई तो पूरी चाँदी बन गई। उसने निर्बुझ चिलम झाड़ी। गुरु निवृत्त हुआ तो अमरू ने सवालिया नजर उसके चेहरे पर गड़ा दी। पर भीड़ भी राधा के रोसपूर्ण शब्दों में सचाई का आभास पा रही थी। उधर मोती मौका देख

खिसक लिया। कुत्ते उस पर भौंक रहे थे। उसने सोचा, जानवर चेतावनी दे रहे हैं। उसका धन्धा अब और न चलेगा।

उसने सुना, गाँव में भारी कोलाहल मचा था। वह हंडिया को शमशान में पटक बनराजी की ओर दौड़ चला।

(ग) ''एक दिन गुस्ताखियों का'' –

'एक दिन गुस्ताखियों का' कहानी संग्रह 'सिराजी और अन्य कहानियां' संग्रह में संकलित है। यह पूरी कहानी हँसी–मजाक से सम्बन्ध रखती है। इसमें उस्ताद–रहमान कभी मूंगफली चबाते, कभी कमरे में पटकलें, एक–दूसरे अपने आप में बेवकूफियां व गुस्ताखियां करते रहते उसी को ओझा जी ने बताया है, देखिए –''उस दिन मैं बड़ी सिद्दत के साथ उस्ताद रहमान की पड़ताल में था। उस गुस्ताख की सोहबत मेरे लिए निहायत जरूरी थी। वैसे मैं जब भी आता वह आप ही मुझे आ घेरता। लमद्र भी वह मेरे लिवास के रूआब में रहता, मेरी हैसियत का ख्याल रखता और फिर गुस्ताखियों पर उतर आता। मैं उसके प्रति ईर्ष्यालु हो जाता। काश! मैं एक दिन के लिए ही सही, रहमान बन पाता। वह वैसे ही मिलता रहता, किन्तु उस दिन उस हरामी की जरूरत थी तो वह न मिल रहा था। काम–काजी वक्त पर शैतान की मानिन्द हाजिर और जरूरत के समय गायब। आवारा लोगों का यही तो चलन होता है। लोग ठीक कहने लगे थे। "रहमान अव्वल दर्जे का औबास हो चुका है।"

मैं बिगड़ा, "यों उजबक के समान क्यों घूर रहा है?"

"इसलिए कि आज तुम्हारी सेहत ठीक नहीं है।"

"क्या हुआ है मुझे? मेरा हाजमा जरूर बिगड़ चुका है, जिसे दुरूस्त करने के लिए मैं तेरे पास आया हूँ।"

उसने सीधा कोई उत्तर न दिया। जैसा कि उसकी आदत थी, जबड़ा सिकोड़ा और रूखा–सा उत्तर दिया। जैसे वह मेरी जरूरत से वाकिफ हो, "मुझे बहुत काम है।"

वह मेरा लंगोटिया यार था। वह मुझे लगभग घसीटे चला। मुझे भय था वह मुझे कमरे में ला पटकेगा और बाहर से जंजीर चढ़ाकर चला जाएगा। पर उसने ऐसा कुछ नहीं किया, मुझे झील के किनारे ले गया। मूँगफलियों का थैला उसके साथ में था। मैं झील के किनारे नीले पानी और सुरमई रेती के बीच एक बदरंग लकीर के समान पसर गया।

तुम सचमुच मेरे उस्ताद हुए। अच्छा सलाम। मैं चला। अब मेरे–तेरे रास्ते जुदा। जू जीनसाज ओर मैं शहजादा बना रहूं। इसी विभाजन पर वह व्यवस्था चलानी है जिसका मैं

अब अविभाज्य अंग हूँ। मेरे जेहन में अब कभी अपने आपको मारने का जुज पैदा न होगा। तुम तसल्ली रखो।"

वहाँ दोराहा था। मैं एक पर चल पड़ा मगर रहमान अभी वहीं खड़ा ईसू को घूर रहा था।

1.12.3 ''कौन जात कबीरा'' (कहानी संग्रह) –

"कौन जात कबीरा" कहानी संग्रह बोधि प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित है। इस संग्रह में 'सत्यमेव जयते', 'अच्चन काका', 'सूखे की एक रपट', 'सरदी और साँप', 'खून लामजहब है', 'पहाड़', 'अकेली रात', 'शेष सब 'कौन जात कबीरा', 'कोट', 'बनो घोड़ा', 'चौपाटी का चेतक और हुसैन का घोड़ा' ये 15 कहानियां है। ये समस्त कहानियां आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आँचलिकता से सम्बन्धित है। इन कहानियों में ओझा जी ने स्त्री–पुरूष पात्रों की विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उठाया ही नहीं, उनकी समस्या का समाधान भी किया है, जो पाठकों के ऊपर छोड़ दिये है।

इस कहानी संग्रह में 'कौन जात कबीरा' की कहानियाँ जितनी सामाजिक है– उतनी ही मनोवैज्ञानिक भी। व्यक्ति की चेतना के अन्तरतम में झांकने का प्रयास करती ये कहानियां अनजाने ही सूक्ष्म की ओर क्रम में अवस्थित है। किन्तु ओझा जी का सूक्ष्म कोई लोकोत्तर सत्ता नहीं बल्कि पूर्ण लौकिक इन्सान का अन्तर्मन है, जिसमें क्रमशः जटिलतायें बढ़ती गई हैं। एक प्रकार से इन कहानियों का विकास स्थूल कर्त्तव्य भावना से मानवीय चेतना की गुत्थियों को समझने तक में हुआ है। वीथी से जनपथ तक की यह यात्रा पाठक के मन में केवल रोमांच पैदा नहीं करती बल्कि उसे गम्भीर मानवीय चिन्ताओं से जोड़ती है। पाठक को अपने साथ ले चलने की अद्‌भुत क्षमता इन कहानियों में है। इसका सबसे बड़ा कारण इन कहानियों के सजीव पात्र है। इनमें से कुछ पात्र साक्षी बाबा जैसे प्रत्यक्ष हैं तो कुछ माधुरी दीक्षित जैसे सांकेतिक कुछ स्थूलभद्र जैसे पूर्ण वैयक्तिक पात्र हैं तो कुछ दादी जैसे वर्ग पात्र।

साक्षी बाबा, अच्चन काका, रिपोर्टर, दादी, बाबू जी और मुँगेरीलाल अपने–अपने समय और परिस्थिति के ईमानदार प्रतिनिधि हैं। यह ईमानदारी ही उनके समय का सच्चा बोध करा पाने में समर्थ है।

(क) ''पहाड़'' –

'कौन जात कबीरा' संग्रह में संकलित 'पहाड़' कहानी में लगभग पर्वतीय शहरों का वर्णन किया गया है, जिसमें दार्जिलिंग, शिमला, श्रीनगर के सौन्दर्य का रमणीय वर्णन विविध संदर्भों में हुआ है। इसी का ओझा जी ने अपनी 'पहाड़' कहानी में इस प्रकार से

स्पष्ट किया है, देखिए – 'हर पर्वतीय शहर का एक न एक विशेष स्थान प्रसिद्ध होता है, जैसे शिमला की रिज, श्रीनगर की डल झील और दार्जिलिंग का चौड़ा रास्ता। शिमला के मुकाबले दार्जिलिंग छोटा है इसलिए इधर आने वाले मैदानी सैलानियों की आवासीय समस्या आसानी से हल हो जाती है। सिलीगुड़ी से जिगजैग सर्पिली गति से आती दार्जिलिंग मेल से उतर कर जैसे ही मैं काकझोरा राजमार्ग पर थोड़ा आगे बढ़ा कि सड़क की दायीं ओर एक दो एपार्टमेंट वाले फ्लेट पर लटकती 'टू लेट' की तख्ती देख ठिठका कि एक खिड़की से हाथ का एक पंजा बाहर निकला और पंजेवाला व्यक्ति भीतर से बोला 'चले आओ' ।'

आसमान खुला–खुला था। बाहर धूप खिलखिल रही थी। मैदान की धूप झुलसाती है। पहाड़ की धूप सुहाती है। मैं धूप स्नान के मूड में पगले झरने की बगलवाली चट्‌टानी धरती की ओर चला गया। सूरज पहाड़ की ओट में ढल चुका तो लौट कर आया। देखा! बूढ़ा मेरे कमरे में बैठा गिटार बजा रहा था।

पहाड़ गरजता नहीं, बरसता है। जब बरसात होती है तो बादल पूरा फट जाता है। चट्‌टानें तैर जाती हैं। बस्तियाँ बह जाती हैं। तब भी अचानक बरसने लगा। रात भर धमक कर बरसता रहा। पगला झरना दहाड़ता रहा, पहाड़ खा–खा कर बहता गया। न जाने कितने न कितने प्रेमी जोड़े निराश व आवेश में इस पगले के अन्तराल में डूब मरे होंगे। डूब मरने वालों का इतिहास कौन लिखता हैं?

उस रात नेरिमन और मैं दोनों अपने ही एपार्टमेंट में सो रहे थे। वह बड़ी रात गये तक प्रलाप करती रही।

मेरी माँ को पापा ने मारा, मैंने पापा को मार डाला। पर मैं हरगिज एक भले आदमी, उसकी भलमन्साहत को नहीं मरने दूंगी।

मैंने उसे प्रलाप करने दिया, न रोका, न कोई भरोसा दिया। वह कलपती, सुबकती सो गई। उसके भीतर की कुण्ठा बहुत कुछ बेरोक बहाव में बह गई तो मुझे भी नींद आ गई।

रात अपने ढंग से ढल गई। भोर होते ही वह छात्रावास से अपना असबाब उठा लाई तो मैंने अनुमान से जाना कि उस कांटों भरी झाड़ी के बीच से एक पुष्पलता फूटने लगी है और धीरे–धीरे अनुभव किया कि मेरे अपने भीतर भी पहाड़ो के बीच एक और पहाड़ उग रहा है, जो मेरी पलायनवृत्ति का पथ रोके खड़ा है।

(ख) 'अकेली रात' –

'कौन जात कबीरा' संग्रह में संकलित 'अकेली रात' कहानी में मिलखाराम और उसकी पत्नी व नर्स का जिक्र किया गया है। जिसमें मिलखाराम अपनी पत्नी की खैर–खबर जानने के लिए वार्ड में घुस जाता है। तभी नर्स के द्वारा उसे टोका जाता है और उसके हाथ में डिस्चार्ज का पर्चा थमा दिया जाता है। ओझा जी ने इस कहानी में मनुष्य की आर्थिक व दयनीय दशा को व्यक्त किया है। जो इस प्रकार से है, देखिए –''नर्स हड़बड़ाती हुई वार्ड में घुसी तो मिलखाराम डरा। मुलाकात का वक्त पूरा हो जाने के बावजूद उसे मरीज के पास देखकर जरूर उसके साथ डाँट–फटकार करेगी। अतः वह भी उसी हड़बड़ाहट में उठते हुए मनभरी से बोला– "अच्छा अब चलूँ, कल जरा जल्दी आ जाऊँगा।" और वह नर्स की नजर बचाकर जाने लगा तो नर्स ने टोका, "रुको।"

ठीक नहीं है। पर लुगाई जात मरते दम तक मर्द मानस को परेशान नहीं करना चाहती। आज की रात बच जाये तो बजरंग बली की जोत जलाये।

लाला और मनभरी को बजरंग बली की सुपुर्दगी में छोड़ उसका ध्यान जंगल की निःशब्द भयानकता की ओर गया। सन्नाटा दर सन्नाटा। वह किसी आम चलती सड़क पर न था। यह तो दूर–दूर तक छितरे गाँवों को मुख्य मार्ग से जोड़ने वाली संकरी सी लिंक रोड थी।

"ये लड़के क्या चाहते हैं?" जब इत्ती बड़ी सरकार ही न जान पायी तो मिलखाराम कैसे जान पाता। वे कहाँ जा रहे थे, मिलखाराम तभी जान पाया जब गाड़ी एक फॉर्म के कोठे के आगे जा खड़ी हुई। कोठे से चार स्वस्थ खाड़कू निकल आये उन्होंने घायल को कोठे में पहुँचा दिया। फिर अलग जाकर थोड़ी देर सलाह मशविरा किया। घायल के साथ आया खाड़कू कुछ बतला रहा था। मिलखाराम समझ गया बात उसी के सम्बन्ध में है। शायद उनकी मौत की तहवीज के बारे में सलाह कर रहे हैं। साथ आने वाला कह रहा था "आदमी अधेड़ सा है, औरत बीमार है, जरा डरा कर भगा दें।" वही मिलखाराम के पास आया। "सीधे चले जाओ, मुँह सिये रहना। हमारे आदमी साये की तरह पीछे लगे रहेंगे। जिस दिन इस रात और रास्ते का राज खोलोगे वही तुम्हारी जिन्दगी का आखिरी दिन होगा। और यह लो उसने पेन्ट की जेब से निकाल कर व्हिस्की का अद्धा मिलखाराम के हाथ में थमाते हुए कहा। "बीमार ताई को घूँट–घूँट भरकर पिलाते रहना। वाहेगूरु ने चाहा तो सही सलामत घर तक पहुँच जायेगी।"

मिलखाराम की आँखों में आँसू भर आये अपनी हालत पर तरस खाकर या लड़कों

की मासूमियत पर। मन के किसी कोने से उसी के प्रति–व्यक्ति बोलने लगा। "लड़के तो भले लगते हैं पर बहकाने वाले चालाक और धूर्त हैं।"

वह गाड़ी हाँक चला। "गुरु सीधी राह चला! वह अपनी राह के लिए अरदास कर रहा था या भटके लड़कों के लिए?" ...गनीमत थी पक्की सड़क पर पहुंचने तक सबेरा हो चुका था।

(ग) ''उद्घाटन भाषण'' –

''कौन जात कबीरा' कहानी संग्रह में संकलित 'उद्घाटन–भाषण' कहानी में मंत्री व पी.ए.का जिक्र किया है, जिसमें मंत्री महोदय किसी कुक्कुटालय का उद्घाटन करने जाते है। लेकिन उनके लिखे भाषण में किसी को भी नहीं पता की मुर्गी पशु श्रेणी का है, पक्षी श्रेणी का जीव ? उसी का वर्णन ओझा जी ने अपनी कहानी में व्यक्त किया है। जो इस प्रकार से है, देखिए –''एक सप्ताह बाद मंत्री महोदय को अपने ही निर्वाचन–क्षेत्र के एक गाँव में 'आदर्श कुक्कुटालय' की ईमारत का उद्घाटन करने के लिए जाना था। समस्त आवश्यक तैयारियां हो चुकी थीं, पर एक अत्यावश्यक कार्य करना अभी बाकी था, यानी हजार प्रयत्नों के बावजूद भी समयोचित भाषण अभी न लिखा जा सकता था। अतः आप चिन्तापूर्ण मुद्रा में बैठे थे और झुँझला पड़ने की भी सम्भावना थी।''

''आखिर यह क्या बात है? आप लोगों ने इस बात का कहीं जिक्र तक न किया कि मुर्गा पशु श्रेणी का प्राणी है या पक्षी वर्ग का।''

लोग फिर चक्कर में पड़ गये। पी.ए. महोदय भी इस पहले प्रश्न का उत्तर न दे सके। पर अब इतना समय न था कि इस प्रश्न पर बहस की जा सके। अतः मंत्री महोदय का प्रश्न कबाब में हड्डी के समान अटका रहा और पाण्डुलिपि प्रेस में दे दी गई। समय इतना तंग था कि आपके मंत्री महोदय के स्पेशल ट्रेन में बैठ आने के बाद छपे हुए भाषण की दो हजार प्रतियाँ उनकी बगल में ला कर रख दी गई। ट्रेन रवाना हो गई, पर आप अब भी उदास थे, क्योंकि आप का भाषण अधूरा था। आपके मस्तिष्क में एक ही प्रश्न दौड़ रहा था।

मुर्गा पशु श्रेणी का प्राणी है या पक्षी वर्ग का जीव ?

(घ) "भारमली नहीं भागी" –

''कौन जात कबीरा' संग्रह में संकलित 'भारमली नहीं भागी' कहानी में ऐसी युवती का वर्णन किया गया है, जो अपनी पच्चीसी की अल्पायु में ही विधवा हो गई है फिर भी वह अपने गाँव, घर–परिवार और अपने पुरखों, बुर्जुगों की इज्जत को बनाए रखती है। कहानी में मानमर्यादा को भारमली द्वारा बनाए रखने का संदेश मिलता है। भारमली फिर

अपना विवाह चूड़ी वाले लड़के के साथ सम्पन्न करती है। वो भी रीति–रिवाज के अनुसार उसी को ओझा जी ने बताया है, देखिए – ''कृतिकाएँ सिर पर आ गई थीं। चाँद क्षितिज–सागर में डूब गया। रात का दूसरा प्रहर बीत गया। प्रहर बीतते पपीहा बोलेगा और भारमली को घर, यह गाँव छोड़कर जाना होगा। चूड़ी वाला हूबहू पपीहे की बोली बोलता। वह चकोरी की भाँति उससे बंधी हुई चली जाएगी।''

नींद तो आई ही नहीं। हृदय–मानों चलता रहा। भारमली, तूने यह क्या किया। तुम्हारा आचरण गाँव के लिए मर्यादा की सीमा रेखा! पंच प्रधान पँचायत के बीच तुम्हारी साख भरते हैं। पर सुबह पता चलने पर सारा गाँव तुम्हारे नाम थू–थू करेगा। मुकर जा भारमली, अभी भी समय है।

वह खड़ी हुई, खटिया पर बैठ गई। अब आकाश में चन्द्रमा नहीं था। अथाह गगन–सागर में डूब गया था। चूड़ीवाला ही कह रहा था, 'भारमली, मैं डूब मरूंगा यदि तुमने मेरा साथ नहीं दिया।'

भारमली ने बार–बार चेतना चाहा पर उसके भीतर सोई औरत ऐसी जागी कि फिर उसे चैन नहीं पड़ा। भीतर ही भीतर प्रीत का गूमड़ा पकने लगा। छोरा सिर पर पेटी उठाए गली–गुवाड़ आवाज देता, 'चूड़ीवाला .... चूड़ी ले लो.... रंग–बिरंगी चूड़ियाँ।' भारमली पुकार सुनती और अपनी सूनी कलाइयों को देखती–गोरे हाथ चूड़ी बिना अपने नहीं लगते। उसे महसूस होता कि ये किसी दूसरे के हाथ हैं। उसके हाथों में तो चूड़ियां फबती हैं–

नहीं रे झूठ मत बोल। संभाल अपनी कमाई की बचत।

तू अपना पराया करती है तो तेरी मर्जी, पर मैंने तो तुझे..........। उसने आव देखा न ताव, भारमली की कलाई पकड़कर चूड़ियाँ पहना दी।

भारमली ने गर्दन ऊँची करके उसे जी भर कर देखा। वह बोली, 'आ, भीतर आ। अब मैं भागूँगी नहीं। तूने अँधेरे में चूड़ी पहनाई, यह तेरी भूल है। मैं तो दिन के उजाले में माँग भरवाऊँगी। देखती हूँ कौन रोकता है मुझे।'

1.12.4 "अश्वत्थामा" (उपन्यास) –

अश्वत्थामा मानक पब्लिकेशन्स प्रा.लि., 3ए, वीर सावरकर ब्लॉक, मधुबन रोड, शकरपुर, दिल्ली – 110092 से व लेजर टाइप सैन्टर नोवा लेजर प्रिंटस, 1/485 बलवीरनगर, गली नं. 10, शाहदरा दिल्ली–110032 प्रकाशित है। महाभारत जैसे दीर्घाकार ग्रन्थ में से एक उपन्यास के लिए महत्त्वपूर्ण स्थलों से घटनाओं को उठाना और उस महत्त नायक का चुनाव करना एक दुरुह कार्य है। किन्तु अश्वत्थामा उपन्यास को ओझा जी ने

बड़े ही मार्मिक ढंग से लिखा है। 'अश्वत्थामा' उपन्यास ओझा जी की दृष्टि से साहित्य के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक उपन्यास माना जाता है, जो कि महाभारत कालीन युद्ध पर आधारित पौराणिक कथाओं को होकर लिखा गया है। इस उपन्यास में शिक्षित, अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित नारी–पुरूषों को चित्रित किया गया है। 'अश्वत्थामा' युद्ध पर आधारित व पौराणिक कथाओं पर आधारित होने के कारण साहित्यिक क्षेत्र में एक अनूठा प्रयोग लगता है। जिससे ओझा जी की लेखन शैली उनकी विशिष्टता का परिचायक है। इस उपन्यास के माध्यम से आधुनिक समाज को एक नई प्रेरणा मिलती है। इसमें जीवन के प्रत्येक दर्शन पर व्याख्या और टिप्पणी सटीक प्रतीत होती है। उपन्यास में देशकाल वातावरण, संवेदना, चरित्र–चित्रण, संवाद आदि का वर्णन भी किया है। 'अश्वत्थामा' का जिक्र शुरू लेकर अंत तक हुआ है। क्योंकि उपन्यास का प्रमुख पात्र अश्वत्थामा ही है। सम्पूर्ण कथानक इनके आस–पास ही घूमता है। महाभारत जैसे ग्रन्थ की पठनीय रोचकता उसके पात्रों पर निर्भर करती है। उनका चारित्रिक उत्थान, देवोपम है। किन्तु उनकी अनुभूतियां और संवेदनाएं मानवीय है। जिसकी इनको रचनाधर्मिता हमें संगठित कर एकत्रित करती है। यह उपन्यास आज भी पाठकों पठन–पाठन के लिए उत्साहित करता है। 'अश्वत्थामा' आज भी वृद्ध पंड़ितों, विद्वानों के अनुसार अमर है और अमर रहेंगे। ऐसी भविष्यवाणी शुरू से लेकर अंत तक की जाती है। इसमें ओझा जी सरस, सरल, सहज एवं विशिष्ट शैली में लेखन कार्य किया है। जिससे आधुनिक उपन्यास साहित्य में इसकी एक अलग पहचान बन गयी है।

1.12.5 ''रावराजा (उपन्यास)'' –

उक्त उपन्यास के अतिरिक्त राजा, रजवाड़ों, सामंतों, ठाकुरों, ऐश्वर्य, कुटेव, ज्यादतियों को दर्शाने वाले कई उपन्यास स्वातंत्रयोत्तर दशाब्दियों में देखने को मिले, किन्तु उन सबकी कथावस्तु और चरित्रों के प्रस्तुतीकरण की विधि प्रायः एक पक्षीय ही मिली। राजस्थान के लोक–जीवन, लोक–विश्वास, व रूढ़ दृष्टि ओझा जी के वर्णनीय विषय का महत्त्वपूर्ण अंग है।

प्रस्तुत उपन्यास में समस्त नारियां– केवल रेखा को छोड़कर– अशिक्षित, अर्द्धशिक्षित और एक ऐसे समाज की देन हैं जहाँ नारी की अवमानना, उसका उत्पीड़न, उस पर रूढ़िगत प्रथाओं का बलात आरोपण सामान्य रिवाज है। किसी काल–खण्ड में घटित युगांतकारी घटनाएँ कब इतिहास बन जाती हैं, ऐसा कोई निर्धारित मानक नहीं। महत्त्वपूर्ण होने के बावजदू कुछ घटनाएं कभी इतिहास नहीं बन पाती और कुछेक दो–चार दशाब्दियों में ही इतिहास का महत्त्व भाव बन जाती हैं।

पूर्ववर्ती राजपूताने की धरती अनेक रजवाड़ों की भोग्या सम्पत्ति थी। इस भूखण्ड के सर्व साधारण जन तिहरी परतंत्रता के शिकार थे। रियासतों के एकीकरण के बाद राजपूताना, राजस्थान के रूप में नक्शे पर उभरा इस संक्राति काल में यहाँ जो कुछ घटित हुआ वह ओझा जी का प्रतिपाद्य विषय है। यह वस्तुतः आँखों देखी घटनाओं का लेखा जोखा हैं। केवल घटना–स्थल और पात्र काल्पनिक हैं

उक्त के अतिरिक्त भी ओझा जी की कुछ अप्रकाशित कृतियाँ हैं, जो निम्न प्रकार हैं–

1. "करवट"
2. "सूरज अभी मरा नहीं"
3. "कांटे कंकड़ और इंसान"
4. "तन धूलि धूसर–मन गौरीशंकर (यात्रा वृत्तांत)"
5. "चन्दा मामा दूर के" (बाल उपन्यास)
6. "धूड़ भरा पद डूंगर ढेरा"
7. "बाबर और राणा सांगा" (अपूर्ण)

8 अक्टूबर, 2001 को निधन से पूर्व अन्तिम दिनों में वे 'बाबर और सांगा' ऐतिहासिक उपन्यास पर काम कर रहे थे जो अधूरा रह गया। यह अधूरा कार्य इनके पुत्र श्रीमान् सुमन ओझा के द्वारा पूर्ण किया गया।

हिन्दी साहित्य के चर्चित कथाकार 'रामकुमार ओझा' सम्मानित रचनाकार है। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तक संकलनों ओर अपनी खुद की किताबों में इनकी सौ से ज्यादा कहानियाँ छप चुकी हैं। छठे दशक तक आप एक स्थापित कथाकार माने जाने लगे थे। ओझा राजस्थान के उन विरले लेखकों में से हैं, जिन्होंने अँचल की सीमाओं का अतिक्रमण कर न केवल अखिल भारतीय स्तर पर प्रशंसा पाई है बल्कि एक विशिष्ट विचारधारा के प्रवर्तक माने गये हैं। उनके जीवन चरित्र तथा रचनाओं को देखने के बाद उनका व्यक्तित्व एक सफल रचनाकार के रूप में सामने आता है। ओझा जी जीवन संघर्ष करते हुए इस मुकाम तक पहुँचे है। उनको अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। उनके साहित्य में मानवीय संवेदना, नारी चेतना, विज्ञापन जगत की दुनिया, सामाजिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य, नौकरीपेशा नारी की समस्या महानगरों में पनप रही, झोंपड़पटि्टयों का दर्दनाक चित्रण, मीडिया और समाज, आदि अनछूए विषयों पर रामकुमार ओझा ने अपनी लेखनी से वार किया है।

1.12.6 ''निशीथ'' (काव्य संग्रह) –

प्रस्तुत ग्रन्थ श्री रामकुमार ओझा की कविताओं का संग्रह है, जो तरूण साहित्य गोष्ठी, नोहर से प्रकाशित है। कवि मानव–जीवन की गहराई तक पहुंचने में बहुत हद तक सफल हुआ है। जीवन के अनुभूत प्रयोगों को व्यक्त करने में भी कवि ने पूर्ण मौलिकता से काम लिया है– कल्पना की उड़ान मजबूत पंखों पर आधारित है। सम्पूर्ण चराचर की वेदना को कवि अपनी पीड़ा समझता हैं।

साथ ही शोषित वर्ग के प्रति भी कवि पूर्ण सहानुभूति रखता है। कहीं–कहीं भाषा और शब्द चयन में शिथिलता तो है परन्तु भावों के उग्र प्रवाह में उन पर दृष्टि अधिक नहीं जमने पाती। कविताओं में मौलिकता प्रचुर मात्रा में हैं।

1.13 मृत्यु –

कथा साहित्य, पत्रकारिता लेखन अभिव्यक्ति के इन दोनों माध्यमों में साधिकार लेखन करने वाले रामकुमार ओझा हिन्दी लेखन को एक नई ऊँचाई, विविधता और कुछ नये आयाम देकर 08 अक्टूबर, 2001 ई. को विदा हो गए। उनकी मृत्यु सुबह पाँच बजे थोड़े से ज्वर एवं व साँस की समस्या के कारण हुई। संस्मरण के तौर पर उनके मित्र हनुमान प्रसाद जी दीक्षित ने अपने अविस्मरणीय क्षणों को रेखांकित करते हुए लिखा है– ''रात को जेबीसी खोला। ओझा जी की अंतिम यात्रा जेबीसी चैनल पर दिखाई जा रही थी। ओझा जी की अन्तिम विदाई का यह करूण दृश्य बड़ा शोकामय था। खुली आँखों पर चश्मा लगाए हुए ओझा जी अन्तिम समय में भी सबको व्यंग्य दृष्टि से अलविदा कह रहे थे। उस दृश्य को देखने वाली मेरी आँखे नम व शोकग्रस्त हो रही थी।'' इसी तरह उनके अभिन्न मित्र रामस्वरूप किसान (केन्द्रीय साहित्य पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता) जिन्होंने रामकुमार ओझा के साथ अपना अमूल्य समय बिताया, उनकी आँखों की तो अश्रुधारा अन्तिम संस्कार के बाद तक भी लाख प्रयासों के बावजूद कोई भी नहीं रोक पाया और अन्त समय में अपने स्वर्गलोग में जा बसे मित्र को अपनी नम आँखों से अन्तिम विदाई देते समय इन शब्दों को बयां किया कि ''वो अक्सर जब भी मिलते थे तो ओझा जी को इन शब्दों के माध्यम से मजाकिया रूप में पुकारा करते थे ''आज मैंने अपना कथा साहित्य के क्षेत्र का बिना लगाम का घोड़ा खो दिया है।'' यह शब्द कहकर ओझा जी कि अंतिम संस्कार में आये हुए समाज, गाँव, कस्बे से आये व्यक्तियों के बीच में फिर से जोर–जोर से रोने लगे और अपने दुःखी हृदय के साथ अपने मित्र को अंतिम विदाई दी। इसी तरह ओझा जी ने अपनी कृतियों के साथ–साथ लोगों के दिलों में अपनी एक अलग प्रतिमा बनाकर इस जीवन से विराम लिया।

1.14 सामाजिक परिस्थितियाँ –

आदिकालीन राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का देश की सामाजिक परिस्थितियों पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ रहा था। जाति–व्यवस्था गुण और कर्म के आधार पर न होकर वर्ण के आधार पर निरूपित की गयी। एक जाति अनेक उपजातियों में विभक्त हो गई। अल्बरूनी ने कहा है "उन्हें (हिन्दुओं को) इस बात की इच्छा नहीं होती कि जो वस्तु एक बार भ्रष्ट हो गयी है, उसे शुद्ध करके फिर ले लें। उस समय के रूढ़िग्रस्त धर्म के समान समाज भी रूढ़िग्रस्त हो चुका था। नारियाँ भी शौर्य–प्रदर्शन में पुरूषों से कम न थी। जौहर उनके आत्म–बलिदान और शौर्य का प्रतीक था। राजाओं का जीवन विलास भरा था। उनका अधिकांश समय उपपत्नियों के साथ रंग रलियों मे व्यतीत होता था। राजकुमारों को बचपन से ही राजनीति, तर्कशास्त्र, काव्यशास्त्र, नाटक, गणितशास्त्र एवं कामशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। नारियों के सम्बन्ध में तत्कालीन समाज की धारणा अच्छी नहीं थी। उसे केवल भोग और विलास की सामग्री मात्र समझा गया। हिन्दी के कवियों को जनता की इस स्थिति के अनुसार काव्य–रचना की सामग्री जुटानी पड़ी।

जिस युग में धर्म और राजनीति की दुर्दशा हो उसमें उच्च सामाजिकता की आशा नहीं की जा सकती है। जनता शासन तथा धर्म दोनों ओर से निराश्रित होती जा रही थी। जनता भय तथा निरक्षरता के कारण ईश्वर की ओर दौड़ती थी, परन्तु सर्वत्र भ्रम और असहाय की ही स्थिति मिलती थी। जाँति–पाति के बन्धन मजबूत हो चले थे। एक जाति की अनेक उपजातियाँ होने लगी। छुआछूत के नियम भी सख्त हो गए थे। उच्च वर्ग के लोग भोग करने के लिए तथा निम्न वर्ग के लोग जैसे काम करने के लिए ही पैदा हुए थे। नारी तो केवल भोग की वस्तु मात्र रह गई थी। उसे खरीदा और बेचा भी जाने लगा था। सामान्यजन के लिए सुरक्षा व शिक्षा की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। सती प्रथा भी उस समय के समाज का एक भयंकर अभिशाप थी। अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों ने इस समाज को जकड़ लिया था। उस समय सर्वत्र वीरता और वंश–कुलीनता का बोलबाला था। वीरता और आत्मबलिदान राजपूत की विशेषता थी। स्वयंवर प्रथा उस युग की एक खास पहचान थी। राजपूत दृढ़–प्रतिज्ञ, स्वामिभक्त, ईमानदार तथा कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी थे, परन्तु उनमें भोग–विलास के प्रति भी खूब आसक्ति थी। राजाओं का जीवन भी विलासप्रिय था। नृपति वर्ग का अधिकांश समय अन्तपुर में महिषियों, उपपत्तियों तथा रक्षिताओं के साथ रंग–रलियों में बीतता था। राजा बहुपत्नी थे।

प्रसिद्ध धर्म–शास्त्रीय ग्रन्थ 'मिताक्षरा' से तत्कालीन पारिवारिक व्यवस्था का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। परिवार सम्मिलित, पितृसत्तात्मक और पितृस्थानीय था और उसमें

सदस्यों की संख्या पर्याप्त रहती थी। उनके धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक कर्त्तव्य निर्धारित कर दिये जाते थे। स्मृत्तियों मे वर्णित ब्रह्म, देव, आर्ष, प्रजापत्य, गान्धर्व, आसुर, पिशाच और राक्षक ये आठ प्रकार के विवाह सैद्धान्तिक दृष्टि से मान्य थे। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से ब्रह्म विवाह का ही अधिक प्रचार था। क्षत्रियों में राक्षक और गान्धर्व विवाह अवश्य प्रचलित थे। निम्न वर्णों में आसुर विवाह की प्रथा थी। स्वयंवर की प्रथा राजपूतों तक ही सीमित रह गयी थी। मुसलमानी आक्रमणों के पश्चात् बाल–विवाह भी प्रचलित हो गया था। विलासिता की प्रवृत्ति बढ़ने और यवन, शक, हूणादि के जिनमें स्त्री का बहुत ऊँचा स्थान नहीं था, सम्पर्क में आने के कारण बाल–विवाह की प्रथा को बल मिला। विधवा–विवाह करना निषेध था। समाज के विभिन्न वर्गों के विविध प्रकार के उत्सवों और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। आखेट, मल्ल–युद्ध, घुड़सवारी, ध्रुत–क्रीड़ा, संगीत, नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे और कवियों का विशेष आदर था। क्षत्रियों में मदिरा–पान, भाँग और अफीम खाने का प्रचलन था। इस काल का जीवन–क्रम उस समय की वस्तु और मूर्ति–कलाओं में भली–भाँति प्रतिबिम्बित होता है। जैन मत के गिरिनार तथा आबू, वैष्णव एवं शाक्तों के खजुराहों, भुवनेश्वर और पुरी के मन्दिरों की अद्भुत कला के माध्यम से तत्कालीन जीवन की विविधतापूर्वक प्रेरणा स्पष्ट हो जाती है।

1.15 साहित्यिक परिस्थितियाँ –

हिन्दी साहित्य पर यदि समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास अत्यंत विस्तृत व प्राचीन है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ हरदेव बाहरी के शब्दों में, हिन्दी साहित्य का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से आरम्भ होता है। यह कहना ही ठीक होगा कि वैदिक भाषा ही हिन्दी है। इस भाषा का दुर्भाग्य रहा है कि युग–युग में इसका नाम परिवर्तित होता रहा है। कभी वैदिक, कभी संस्कृत, कभी प्राकृ त, कभी अपभ्रंश और अब – हिन्दी। आलोचक कह सकते हैं कि वैदिक संस्कृत और हिन्दी में तो जमीन–आसमान का अन्तर है। पर ध्यान देने योग्य है कि रूसी, चीनी, जर्मन और तमिल आदि जिन भाषाओं को बहुत पुरानी बताया जाता है, उनके भी प्राचीन और वर्तमान रूपों में जमीन–आसमान का ही अन्तर है। पर लोगों ने उन भाषाओं के नाम नहीं बदले और उनके परिवर्तित स्वरूपों को प्राचीन, मध्यकालीन, आधुनिक आदि कहा गया जबकि हिन्दी के सन्दर्भ में प्रत्येक युग की भाषा का नया नाम रखा जाता रहा।

किन्तु हिन्दी भाषा के उद्‌भव और विकास के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं पर विचार करते समय हमारे सामने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न दसवीं शताब्दी के आसपास की प्राकृताभास भाषा तथा अपभ्रंश भाषाओं की ओर जाता हैं। अपभ्रंश शब्द की

व्युत्पत्ति और जैन रचनाकारों की अपभ्रंश कृतियों का हिन्दी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो तर्क और प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रस्तुत किये गए हैं उन पर विचार करना भी आवश्यक है। सामान्यतः प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं–आठवीं शताब्दी से ही पद्य रचना प्रारम्भ हो गई थी।

साहित्य की दृष्टि से पद्यबद्ध जो रचनाएँ मिलती हैं वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय, धर्म, नीति, उपदेश आदि प्रमुख हैं। राजाश्रित कवि और चारण नीति, शृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य–रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना–परम्परा आगे चलकर शौरसेनी, अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में कई वर्षों तक चलती रही। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा को विद्यापति ने देसी भाषा कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि हिन्दी शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में हिन्दी शब्द का प्रयोग विदेशी मुसलमानों ने किया था। इस शब्द से उनका तात्पर्य भारतीय भाषा का था।

1.15.1 आदिकाल (1050 से 1375 ई.) –

ग्यारहवीं सदी के लगभग देशभाषा हिन्दी का रूप अधिक स्फुट होने लगा। उस समय पश्चिमी हिन्दी प्रदेश में अनेक छोटे छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गए थे। ये परस्पर अथवा विदेशी आक्रमणकारियों से प्रायः युद्धरत रहा करते थे। इन्हीं राजाओं के संरक्षण में रहने वाले चारणों और भाटों का राजप्रशस्तिमूलक काव्य वीरगाथा के नाम से अभिहित किया गया। इन वीरगाथाओं को रासो कहा जाता है। इनमें आश्रयदाता राजाओं के शौर्य और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन करने के साथ ही उनके प्रेम प्रसंगों का भी उल्लेख है। रासो ग्रन्थों में संघर्ष का कारण प्रायः प्रेम दिखाया गया है। इन रचनाओं में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। रासो वीरगीत (बीसलदेवरासो और आल्हा आदि) और प्रबंधकाव्य (पृथ्वीराजरासो, खुमानरासो आदि)– इन दो रूपों में लिखे गए। इन रासो ग्रन्थों में से अनेक की उपलब्ध प्रतियाँ चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध हों पर इन वीरगाथाओं की मौखिक परम्परा असंदिग्ध है। इनमें शौर्य और प्रेम की ओजस्वी और सरस अभिव्यक्ति हुई है।[2]

इसी कालावधि में मैथिल कोकिल विद्यापति हुए जिनकी पदावली में मानवीय सौंदर्य ओर प्रेम की अनुपम व्यंजना मिलती है। 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' इनके दो अन्य

प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अमीर खुसरो का भी यही समय है। इन्होंने ठेठ खड़ी बोली में अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो सखुने रचे हैं। इनके गीतों, दोहों की भाषा ब्रजभाषा है।

1.15.2 भक्तिकाल (1375 से 1700 ई.) –

तेरहवीं सदी से धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अन्धविष्वास फैल रहे थे। शास्त्र ज्ञान सम्पन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्ति आन्दोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आन्दोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्ष विधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।[3]

भक्ति आन्दोलन का आरम्भ दक्षिण के आलवार सन्तों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव सम्प्रदाय खड़े हुए। इन चारों सम्प्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्य परम्परा में आने वाले रामानन्द ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानन्द के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानन्द ने ऊँच नीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को मानने वाले दो भक्तों – कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णु स्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराण सम्मत कृष्णचरित् के आधार पर कई सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शंकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतरू सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त को पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस सम्प्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीला पुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई हैं।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिन्दी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्ति काव्य की दो शाखाएँ साथ साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए – ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी

दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ – रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्न श्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

प्रेमाश्रयी धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और "आखिरी कलाम" आदि हैं, जिनमें सूफी से सम्बन्धित बातें हैं। इस धारा के अन्य कवि हैं कुतुबन, मँझन, उसमान, शेख, नबी और नूर मुहम्मद आदि।

आज की दृष्टि से इस सम्पूर्ण भक्ति काव्य का महत्त्व उसकी धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिन्दी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

1.15.3 रीतिकाल (1700 से 1900 ई.) –

1700 ई. के आस पास हिन्दी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषतः तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृतसाहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपय अंशों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिन्दी में 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्य शास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षण ग्रन्थों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को रीतिकाव्य कहा गया। इस काव्य की श्रृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परम्परा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिन्दी के आदिकाव्य तथा कृष्ण काव्य की श्रृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।[3]

रीतिकाव्य रचना का आरम्भ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचन्द्रिका हैं। केशव के कई दशक बाद चिन्तामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिन्दी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमें नर–नारी–जीवन के रमणीय पक्षों और तत्संबंधी सरस संवेदनाओं की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई।

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनन्द का मुख्य साधन वहाँ उक्ति वैचित्र्य समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर श्रृंगार मूलक और कला वैचित्र्य से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर–नारी–प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करने वाला काव्य साहित्य महत्वपूर्ण है।

रीतिकाव्य मुख्यतः रूप से माँसल श्रृंगार का काव्य है। इसमें नर–नारी जीवन के स्मरणीय पक्षों का सुंदर उद्‌घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबन्धकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में श्रृंगार काव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिन्दी काव्य का भाव क्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

1.15.4 आधुनिक काल (1900 से अब तक) –

यह आधुनिक युग का आरम्भ काल है जब भारतीयों का यूरोपीय संस्कृति से सम्पर्क हुआ। भारत में अपनी जड़ें जमाने के काम में अंग्रेजी शासन ने भारतीय जीवन को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित और आन्दोलित किया। नई परिस्थितियों के धक्के से स्थितिशील जीवन विधि का ढाँचा टूटने लगा। एक नए युग की चेतना का आरम्भ हुआ। संघर्ष और सामंजस्य के नए आयाम सामने आए। नए युग के साहित्य सृजन की सर्वोच्च संभावनाएँ खड़ी बोली गद्य में निहित थीं, इसलिए इसे गद्य–युग भी कहा गया है। हिन्दी का प्राचीन गद्य राजस्थानी, मैथिली और ब्रजभाषा में मिलता है पर वह साहित्य का व्यापक माध्यम बनने में अशक्त था। खड़ी बोली की परम्परा प्राचीन है। अमीर खुसरो से लेकर मध्यकालीन भूषण तक के काव्य में इसके उदाहरण बिखरे पड़े हैं। खड़ी बोली गद्य के भी पुराने नमूने मिले हैं। इस तरह का बहुत सा गद्य फारसी और गुरुमुखी लिपि में लिखा गया है। दक्षिण की मुसलमान रियासतों में 'दक्खिनी' के नाम से इसका विकास हुआ। अठारहवीं सदी में लिखा गया रामप्रसाद निरंजनी और दौलतराम का गद्य उपलब्ध है। पर नई युग चेतना के संवाहक रूप में हिन्दी के खड़ी बोली गद्य का व्यापक प्रसार उन्नीसवीं सदी से ही हुआ। कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज में, नवागत अंग्रेज अफसरों के उपयोग के लिए, लल्लू लाल तथा सदल मिश्र ने गद्य की पुस्तकें लिखकर हिन्दी के खड़ी बोली गद्य की पूर्व परम्परा के विकास में कुछ सहायता दी। सदासुखलाल और इंशाअल्ला खाँ की गद्य रचनाएँ इसी समय लिखी गई। आगे चलकर प्रेस, पत्र–पत्रिकाओं, ईसाई धर्म प्रचारकों तथा नवीन शिक्षा संस्थाओं से हिन्दी गद्य के विकास में सहायता मिली। बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि

विभिन्न प्रान्तों के निवासियों ने भी इसकी उन्नति और प्रसार में योग दिया। हिन्दी का पहला समाचार पत्र उदन्त मार्तण्ड 1826 ई. में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी गद्य के निर्माण और प्रसार में अपने अपने ढंग से सहायक हुए। आर्य समाज और अन्य सांस्कृतिक आन्दोलनों ने भी आधुनिक गद्य को आगे बढ़ाया।

1.16 निष्कर्ष –

निष्कर्षत : कहना यह है कि साहित्य अपने युग की देन माना जाता है; क्योंकि कोई भी साहित्यकार अपने युग की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और प्राकृतिक परिस्थितियों से साक्षात्कृत होकर, अपनी अनुभूतियों को रचनात्मक आकार प्रदान करता है। इसी अर्थ में हिन्दी के साहित्य को समाज का पारदर्शी दर्पण भी कहा जाता है। इस संसार के प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवेश से बराबर साक्षात्कृत होने का अवसर मिलता है, किन्तु भाषा ज्ञान के अभाव में, उसके साक्षात्कृत अनुभव या तो अतीत में खो जाते हैं या फिर लोक अनुभवों के रूप में मन में संचित रहते हैं। किन्तु साहित्यकार सामान्य व्यक्ति से भिन्न प्रवृत्ति का होता है और उसकी सामान्य मनुष्य की प्रवृत्ति से भिन्नता, कुछ और नहीं बल्कि उसकी अतिशय संवेदनशीलता ही है। यही संवेदनशीलता घनीभूत होकर, उसे साहित्य रचना के लिए प्रेरित करती है। इनके अतिरिक्त उसकी साहित्य अतिशय संवेदनशीलता वस्तुओं को, और उनके भीतर विद्यमान सत्य को जाँच–परखकर साहित्य की रचना का आकार प्रदान करती है।

सन्दर्भ सूची –

1. 'शब्दकोश', अशोक मानक हिन्दी शब्दकोष
2. 'हिन्दी – उद्‌भव विकास और स्वरूप, अष्टम संस्करण', 1984, पृ. 15
3. –– वही ––, पृ. 18
4. –– वही ––, पृ. 22
5. –– वही ––, पृ. 25

अध्याय द्वितीय

रामकुमार ओझा का कथा साहित्य एवं युग प्रभाव

अध्याय द्वितीय
रामकुमार ओझा का कथा साहित्य एवं युग प्रभाव

कथा कहने की प्रवृत्ति उतनी ही पुरानी है, जितनी कि मानवता। कथा–कहानी का कथ्य एवं शिल्प भी जीवन में आने वाले परिवर्तनों के साथ बदलता गया। इस सन्दर्भ में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है– ''जीवन में क्रमशः जितने विकास, जितने परिवर्तन आते हैं, उतने ही परिवर्तन और विकास कथा–कहानी की शिल्प विधि में देखे जा सकते हैं।''[1]

रामकुमार ओझा ने आधुनिक कथाकारों में अपना अलग स्थान बनाया है। पाठकों के बीच उनकी लोकप्रियता आज भी अपनी पराकाष्ठा को छूती है। उनकी कहानियों के प्रसिद्ध संग्रह हैं– 'करवट', 'सूरज अभी मरा नहीं', (अप्रकाशित) 'आदमी वहशी हो जाएगा', 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', 'कौन जात कबीरा', 'तन धूलि धूसर मन गौरी शंकर',(अप्रकाशित) 'निशीथ' (काव्य संग्रह), 'अश्वत्थामा', 'रावराजा' उपन्यास आदि प्रमुख है।

रामकुमार ओझा के कथा साहित्य विशेषकर कहानी विधा में व्याप्त विभिन्न समाजों की सामाजिक और सांस्कृतिक झलक ने ही उनके साहित्य को एक विशेष पहचान दिलायी थी। उनके उपन्यासों में विभिन्न समाजों का जीवन्त वर्णन, उनके धार्मिक विचार, रीति–रिवाज, परम्परा, भाषा, बदलाव पर्वों आदि का वर्णन पाठकों को निकटता से विविध समाजों से परिचित कराता हैं।

इनकी कहानियों में समकालीन भारतीय समाज के विभिन्न समुदायों का सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि विविध सन्दर्भों का यथातथ्य रेखांकन हुआ। समकालीन परिस्थितियों में परिवर्तनशील कथ्य व शिल्प दोनों की दृष्टियों से रामकुमार ओझा की कहानियाँ अलग पहचान रखती है।

साहित्यकारों ने अपनी शैली, अपने दृष्टिकोणों द्वारा, साहित्य का सृजन किया । जिनमें बदलती हुई ये विधायें कहानीं, उपन्यास, निबंध, नाटक, रिपोर्ताज आदि .... जो विभिन्न संवेदनात्मक पहलुओं प्रेम, आशा, निराशा, करूणा, वेदना, उदासी, एकाकीपन आदि के द्वारा सामने आई हैं। जिनसे अनेक रचनाकार प्रभावित हुये व उत्कृष्ट और प्रभावशाली साहित्य सामने आया। आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य का विकास भारतेन्दु युग से माना जाता।

2.1 कहानी' साहित्य : व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन काल से, आधुनिक युग तक जिन विधाओं का उद्भव एवं विकास हुआ, उनमें कहानी का प्रमुख स्थान है। यह सभी विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है, 'कहानी' शब्द के लिए प्राचीन काल में 'आख्यान्', 'आख्यायिका', 'कथा', 'गल्प' आदि शब्द प्रचलित थे। मनुष्य अपनी प्रारम्भिक काल से ही किसी–न–किसी रूप में 'कहानी' बुनता और सुनता आया है। कहानी के प्रारम्भ के विषय में राजेन्द्र यादव लिखते हैं– ''मैं कहानी को आदि विधा मानता हूँ, वह गद्य में लिखी गई हो या पद्य में या इससे भी पहले संकेतों में पद्य या गीतों के माध्यम से स्वयं उनका रस ग्रहण करते हुए भी इन सबके पीछे नेपथ्य में चलने वाली कहानी ही प्रमुख रही है।''[2]

भारत वर्ष में बच्चों को दादा–दादी, नाना–नानी द्वारा कहानी सुनाने एवं माँ द्वारा लोरी सुनाने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य का साहित्यिक विधा के रूप में प्रथम साक्षात्कार 'कहानी' से ही होता है। बच्चा तो स्वभावतः कहानी सुनना पसन्द करता ही है। अच्छा–भला मनुष्य भी कहानी के रूप में कही जाने वाली बातों को ध्यानपूर्वक श्रवण करता है। रोचकता तथा कौतूहल के कारण कहानी बालमन पर गहरा प्रभाव डालती है। इसी कौतूहल की प्रवृत्ति ने ही कहानी को जन्म दिया। अतः कहानी का यह मूल तत्व 'कौतूहल' मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है।

कहानी शब्द की व्युत्पत्ति 'कहना' से हुई है। डॉ० जयंती प्रसाद नौटियाल लिखते हैं– ''कहानी'' शब्द का अर्थ सामान्यतः 'कहना' से होता है, अर्थात् कहानी कहने, सुनने, सुनाने की अतिप्राचीन प्रथा है परन्तु साहित्य में कहानी का आशय विशिष्ट शिल्प विधान से युक्त ऐसी गद्य रचना से है, जिसमें कहानी के लक्षण एवं तत्व विद्यमान हो। डॉ० विष्णुराज शर्मा कहानी शब्द की व्युत्पत्ति पर एक रोचक विचार प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि– ''हमारे निजी विचार के अनुसार कहानी शब्द की व्युत्पत्ति 'कह नानी' शब्द से हुई है। अनादि काल से बच्चे रात को सोने से पहले अपने बड़े–बूढों से कहानी सुनते चले आ रहे हैं, नानी का अपने नाती–दोहतों के प्रति स्नेहाधिक्य एवं विशेष आग्रह का भाव भी चिरंतन है। बच्चे भी नानी को कहानी कहने की बात विशेष आग्रह से कहते चले आ रहे हैं, अतः भाषा विज्ञान की अक्षरों एवं वर्णों के लोप होने की विकासगत मान्यता के अनुसार 'कह नानी' में से पहले 'न' का लोप हो गया और बाकी रह गई कहानी।''[3]

यूँ तो भारतीय साहित्य में कहानी की प्रवृत्तियां ऋग्वेदकाल से ही दिखाई देती है, पुराणों, उपनिषदों, हितोपदेश, पंचतंत्र, वृहत्कथा तथा बैताल पच्चीसी आदि जैसे ग्रंथों में भी लोक–प्रचलित कथाएं संकलित हैं। प्राचीन साहित्य में कहानियों के लिए 'कथा', 'आख्यान्'

आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। आरम्भ में कहानियों में परिस्थिति के अनुसार प्राकृतिक तत्वों– पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों आदि का समावेश हुआ जो कालान्तर में मानव तत्वों एवं मनोरंजक तत्वों के समावेश के साथ विकसित होती गईं। आधुनिक कहानी के विकास पर प्रकाष डालते हुए बाबू गुलाबराय कहते है– ''आजकल की हिंदी कहानियाँ जिनको गल्प, आख्यायिका, लघुकथा भी कहते हैं– तो भारत की पुरानी कहानी की ही सन्नति, किन्तु विदेशी संस्कार लेकर आई है। खद्दर के सूट की भाँति इनकी सामग्री प्रायः देशी रहती है किन्तु काट–छाँट अधिकांश में विलायती ढंग का होता।''[4]

प्राचीन कथा, आख्यायिका आदि से आधुनिक कहानी बिल्कुल भिन्न है। आधुनिक कहानी की कला, विधान, भाषा तथा शैली आदि सब कुछ नया। डॉ० सविता मोहन तो यहाँ तक कहती हैं कि– ''प्राचीन साहित्य से इसका कोई संबंध नहीं है। यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियां संस्कृत की कथा और आख्यायिकाओं की सीधी संतान है।''[5] प्रख्यात साहित्यकार हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक कहानी और प्राचीन आख्यायिकाओं में भेद को सही ठहराते हैं– ''पुराने साहित्य में कथा, आख्यायिका आदि के रूप में इस जाति का साहित्य मिलता है, पर उनमें और आधुनिक कथाओं, उपन्यास और कहानियों में मौलिक भेद है।

अंग्रेजी में कहानी के लिए आज 'Short Story' शब्द का प्रयोग होता है। अंग्रेजी साहित्य में इससे पूर्व में 'Tales, Sketches, Vignettes, Essay' जैसे शब्दों का प्रयोग कहानी के लिए किया जाता था। 'डिकेन्स' ने अपनी पुस्तक के लिए 'Tales of twocities' नाम प्रयुक्त किया है। 'Short Story' शब्द का प्रयोग कहानी के लिए 19 वीं शताब्दी में शुरू हुआ। 'डिक्शनरी' ऑफ वर्ड लिटरेचर' के सम्पादक टी० शिपले लिखते हैं कि– ''यह 19वीं शताब्दी थी जब व्याख्यात्मक या वर्णनात्मक रूप जिसे वर्तमान में लघु कथा के नाम से जाना जाता है, का उदय हुआ 19वीं शताब्दी की अधिकतर लघु कथाएं शिथिलता से लिखी गई थीं। कथा शब्द कभी–कभी ही इस्तेमाल होता था। यह लघु वर्णनात्मक रूप सामान्य रूप से 'टेल्स', 'स्कैच', 'विग्नेटस' (व्यक्ति, स्थान या घटना का वर्णन) कहानियाँ, संक्षिप्त वर्णन या निबंध कहलाती थी।'' यही बात हिंदी की कहानियों पर भी लागू होती है। 19वीं शताब्दी के अन्त तक हमारे साहित्य में कथा, आख्यायिका और आख्या नही लिखे गए, 20वीं शताब्दी में प्रारम्भ से हिंदी में जिस तरह की कहानियाँ लिखी जाने लगीं, वे प्राचीन आख्यायिका साहित्य से भिन्न थीं।

डॉ. प्रताप नारायण टण्डन कहानी और आख्यायिका के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि– ''आख्यायिका' की रचना 'ख्या' धातु से हुई है, जिसका अर्थ वर्णन करना है

आख्यायिका प्रायः ऐसी कथात्मक रचना को कहते हैं, जिसमें उपदेशात्मकता के तत्व समाविष्ट रहते हैं।''[6]

वर्तमान में कहानी शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में हो रहा है वह उसका आधुनिक स्वरूप है। आधुनिक कहानी पाश्चात्य कहानी से प्रभावित है। इस सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव लिखते हैं कि– ''कहानी के रूप में आज हम जिस साहित्यिक–रूप से परिचित हैं, वह आधुनिक युग की देन है और उसका विकास विदेशों में हुआ है।''[7]

कहानी के अर्थ को समझ लेने के बाद प्रश्न उठता है कि कहानी को पहचाना कैसे जाए? डॉ. सविता मोहन इस प्रश्न के जवाब में कुछ विद्वानों को उद्‌धृत करते हुए लिखतीं हैं कि– ''कहानी का दुर्भाग्य है कि वह साधारण तथा मनोरंजन के लिए पढ़ी जाती हैं और षिल्प के रूप में आलोचित होती है, मनोरंजन उसकी सफलता है तो शिल्प सार्थकता, कहानी की जिसने भी पहचान बताई है उसने शिल्प को ही प्रमुख माना हैं। कोई उसे घुड़दौड़ मानता हैं, तो कोई बंदूक का दागना। उसे आरोह–अवरोह के माध्यम से घटना की तीव्र गति के आशातीत विकास माना जाए या घटनात्मक इकहरा चित्रण।

उपर्युक्त विचारों में सर्वनिष्ठ पहचान की, संक्षिप्तता ही नजर आती है चाहे वह घुड़दौड़ के रूप में हो या बंदूक के रूप में या फिर आशातीत विकास और इकहरे चित्रण में।

'एडगर एलन पो' जिन्हें आधुनिक कहानी का जनक माना जाता है, उन्होंने भी संक्षिप्तता को कहानी का आवश्यक गुण माना है। वे लिखते हैं– ''कहानी, कथा का एक टुकड़ा है, जिसमें कोई एक भौतिक या आध्यात्मिक घटना होती है। इसमें प्रभाव की अन्विति होनी चाहिए।''[8] इस सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए जयशंकर प्रसाद लिखते हैंः ''मान लीजिए आप किसी तेज सवारी से चले जा रहे हैं, रास्ते में एक गोल–मटोल शिशु खेल रहा है। उसकी सुंदरता की झलक ही इतनी होती है कि उसकी स्थायी रेखा आपके अंतरमन पर अंकित हो जाए, यही काम कहानी करती है।''[9]

अतः स्पष्ट है कि कहानी में कहानीकार औत्सुक्य उद्‌देश्य और रोचक तत्व समाहित कर प्रभाव की अन्विति करता है तथा यथार्थ अनुभूति एवं कल्पना शक्ति के सुन्दर संयोग के माध्यम से, मानव जीवन, उसके समाज तथा अन्य प्रतिपाद्य का प्रस्तुतीकरण करता है। कहानी में गतिशीलता होना परम आवश्यक है। उसका कलेवर भले ही पुराना हो, किन्तु वह कभी रुग्ण नहीं होता, सफल कहानी नूतन स्वरूप के साथ स्फूर्त होती जाती है। कहानी के लिए महत्वपूर्ण है उसका कथ्य, इस सन्दर्भ में हिमांशु जोशी का यह कथन

समीचीन प्रतीत होता है– ''कहानी का कहानी होना यानी कहानी का 'कहानीपन' उसकी सबसे पहली शर्त है।''[10]

यह सत्य है कि जिस प्रकार कविता लयमुक्त नहीं हो सकती उसी प्रकार कहानी 'कहानीपन' से मुक्त नहीं हो सकती, कहानीपन के बगैर कहानी मात्र एक गद्य रचना बनकर रह जाएगी।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने कहानी को परिभाषित अपने–अपने ढंग से किया है। विभिन्न विद्वानों ने परिभाषाओं में मुख्यतः कहानी के तत्वों पर बल देकर ही कहानी के स्वरूप का विवेचन किया है। किसी ने एक तत्व को प्रमुखता दी है, तो किसी ने दूसरे तत्व को अपना मूल स्वर बनाया है।

पाश्चात्य विद्वान एडगर एलन पो के अनुसार– ''कहानी एक छोटी विवरणात्मक रचना हैं, जो इतनी छोटी होती हैं कि एक बैठक में पढ़ी जा सके। उसे पाठक पर प्रभाव की अन्विति के लिए लिखा जाता है। इसमें से उन तत्वों को निकाल दिया जाता है, जो प्रभाव को अग्रसर करने में सहयोग न दे, वह अपने आप में पूर्ण एवं अंतिम होती है।''[11]

अनेक भारतीय विद्वानों ने कहानी को अग्रांकित रूप में परिभाषित किया है– प्रेमचन्द ने कहानी के स्वरूप एवं तत्वों के सम्बन्ध में विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं–

(क) "अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है।''[12]

(ख) सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जो किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहानी को कुछ निम्न शब्दों में समझाया है– ''आख्यायिका साहित्य का वह रूप है, जिसके कथा प्रवाह और कथोकथन में अर्थ अपने प्राकृत रूप में अधिक विद्यमान रहता है और उसे दबाने वाले भाव विधान या उक्ति वैचित्र्य के लिए और थोड़ा स्थान बचता है।''[13]

बटरोही जी के शब्दों में– ''कहानी एक विकासमान धारा है जो युग या समय की मानसिकता के साथ स्वयं को परिवर्तित करती चलती है।''[14]

नामवर सिंह जी ने कहानी को पारिभाषित करते हुए कहा है– ''कहानी शायद समय की कला है, समय के साथ कहानी अनेक प्रकार की कलाएं दिखाती हैं, कभी वर्षा को समेटकर एक क्षण में बाँध लेती हैं, कभी क्षण को खोलकर वर्षों में फैला देती है, कभी समय के दायरे को तोड़ती है तो कभी टुकड़ों को जोड़कर एक दायरा बनाती हैं।''[15]

कहानी की उपर्युक्त परिभाषाओं से निष्कर्ष निकलता है कि कहानी के स्वरूप को किसी एक परिभाषा में बाँधना संभव नहीं है। प्रेमचन्द ने अनुभूतियों तथा मनोवैज्ञानिकता एवं पूर्ण आनन्द को कहानी का आवश्यक अंग माना है। वहीं रामचन्द्र शुक्ल कथा की

प्राकृतिकता को कहानी का प्रमुख तत्व मानते हैं। इलाचंद्र जोशी भी कहानी को जीवन चक्र की गति के रूप में पारिभाषित करते हैं, वहीं बटरोही कहानी को समय के साथ परिवर्तनशील कहते हैं।

वस्तुतः कहानी का प्रतिपाद्य, कोई घटना, कोई वातावरण, कोई चरित्र, कोई भी भाव–विचार हो सकता है। कहानी में सरसता और सहजता के साथ औतसुक्यता भी होनी चाहिए। कथानक संक्षिप्त होना चाहिए, ताकि प्रभाव की अन्विति हो सके। साथ ही कहानी के लिए 'सक्रियता' नितान्त आवश्यक होती है।

इस प्रकार से ओझा जी ने अपनी कहानियों में सत्यता पर ध्यान केन्द्रित करवाते हुए ग्रामीण अंचल को स्पष्ट किया है। जो इस प्रकार से है – ''गाँधी और साक्षी बाबा दोनों ऐसे चरित्र हैं, जिन्हें ओझा जी ने तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। गाँधी चाहे शहरी परिवेश के हों किन्तु उन्होंने गाँवों की जनता को इस कद्र प्रभावित किया कि गाँधी के विषय में लोग शहरी और ग्रामीण का अन्तर करना भूल गए। उनकी दृष्टि में गाँव हो या शहर जनता जनार्दन ही होती है। आजादी की लड़ाई में गाँव और शहर का भेद मिट गया वहाँ तो केवल आजादी की लड़ाई थी। एक ऐसी लड़ाई, जिसमें गाँव और शहर का भेद न किसी न जाना और न ही जानने की इच्छा की। "जन जनार्दन होता है और जब जन उद्वेलित होता है तो साक्षात् रूद्र बनकर ताण्डव करने लगता है। आजादी की आखिरी लड़ाई का ताण्डव शुरू हो चुका था। नारे देने वाले भीतर कर दिए गए थे। अब जन अपना नेता आप था। भारत भारतीयों 'करो या मरो।' करने के मसले पर सब सहमत थे, पर मरने के सवाल पर मतभेद था। मस्त फकीरा था तो गाँधी बाबा राजनीति विशारद था। जनता का यह मत था– "अंग्रेजों की कमर दूसरे महायुद्ध में टूट चुकी है अब तो एक धक्के भर की जरूरत है वह उछल कर सात समुद्र पार जा गिरेगा।" नेताओं की गिरफ्तारी के बाद नारों का अर्थ बतलाने वाला अगुआ कोई न था। कर्मठ नौजवानों के अधिकांश ने यही अर्थ निकाला था। "अब जेल जाना व्यर्थ है चक्की चलाना आत्मताड़ना है अब तो लड़ कर कुछ करना है।" व्याख्या में मतभेद था पर लड़ सब रहे थे। जेल जाने वाले जेल गये। शेष सैलाब की तरह फैल गये।''

कहानीकार अपने गाँव के परिवेश को कभी नहीं भूला पाता। उन्होंने स्पष्ट कहा है "मेरा गाँव, बस इतने भर को, कि मैंने कभी वहाँ जन्म लिया था। होश सम्भालते ही उससे कट गया था और फिर उस मरूस्थलीय गाँव से मेरा सम्बन्ध उतना ही रह गया था, जितना कि कटी नाल से किसी शिशु का रह जाता है। किन्तु जब सुना कि वह गाँव भीषण सूखे की चपेट में है तो मेरे मन में एक मरियल सी ममता उस उजाड़ खेड़े के प्रति

जागी" इससे ओझा जी ने यह स्पष्ट किया है कि जन्म भूमि से किसी का भी रिश्ता कभी भी नहीं छूटता। चाहे व्यक्ति कहीं भी जाकर रहे अपने ग्रामीण परिवेश को, अपने गाँव की संस्कृति को कभी भी नहीं भूला पाता। यही कारण है कि जब अपनी जन्म भूमि पर कोई संकट आता है तो अपनी अंतरात्मा में एक कचोट सी पैदा होती है और व्यक्ति के कदम अचानक ही अपने गाँव की ओर बढ़ जाता है।"[16]

रामकुमार ओझा ने अपनी कहानियों में ग्रामीण और शहरी परिवेशगत कथाओं को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। 'जिंदाबाद अमर रहे' एक ऐसी कहानी है, जिसमें प्रारम्भ से ही ग्रामीण और शहरी परिवेश की तुलना पात्र के द्वारा स्वयं ही हो जाती है। सुखराम शहर में जिंदाबाद के नारे सुनता है तो उसके मन में एक ही बात आती है कि कहां यह शहर के लोग जो मिलकर चलना चाहते हैं और कहां गाँव के लोग जिनमें आपसी बोलचाल भी बंद हो जाती है। लेखक अपनी कहानी में इस प्रकार का चित्र प्रस्तुत करता है "एक उसका गाँव है, जहाँ अब कोई किसी को जिन्दा या आबाद नहीं देखना चाहता। यहाँ इतने लोग एक साथ मिलकर चल रहे हैं। गाँव में तो लोग पग–डण्डियां काटकर चलने लगे हैं। चौपाल, हथाइयां बंट गई है। चबूतरों पर चार आदमी मिल बैठकर तम्बाकू नहीं पीते। खेत, खलियान सदामत से न्यारे–न्यारे थे, अब पनघट की राह–बाट भी न्यारी हो गई। मर्द लड़ते हैं तो औरतों की आपसी बात बतलावन बंद हो जाती है।" "और एक यह शहर है कि सबके रास्ते एक। सड़कें आपस में गले गुंथीं। रास्ते एक। बात एक। ये इनती–गिनती के लोग नहीं, सारा शहर है।" सुखराम का ठिठका। "नहीं– शहर तो बहुत बड़ा है। यहाँ इतने ही लोग तो क्या बसते होंगे? कुछ ज्यादा तो जरूर होंगे। पर जितने भी हैं, पर पूरा सैलाब है।" उसे लगा जैसे वह आठवें दर्जे तक बहुत पढ़ चुका था। पढ़ी विद्या वक्त पर काम आती है। इतने लोगों की गिनती कर पाना कितना मुश्किल काम था, पर पोथी–पढ़े एक अक्षर 'सैलाब' में सब समा गया शहर। शहर के सब लोग।"[17]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कहानी जीवन या जगत से जुड़ी घटनाओं की लघुकलेवर युक्त वह गद्यात्मक विधा है, जिसमें लेखक अनुभूति एवं कल्पना का सहारा लेकर आकर्षण एवं रोचकता का समुचित प्रयोग कर कथा को निरंतर गतिशील तथा सक्रिय बनाता है। फलस्वरूप पाठक पर प्रभाव की अन्विति होती है एवं उसे आनन्द प्राप्त होता है।

2.2 हिंदी कथा साहित्य का विकास –

(क) कहानी साहित्य –

आधुनिक युग में कथा–साहित्य ने अन्य विधाओं की अपेक्षा सबसे अधिक विकास किया है, यों तो साहित्य की सभी विधाओं में कथा–तत्व प्रधान है, इसके बिना ललित

साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती, तथापि कथा–साहित्य के सबसे निकट इस तत्व को पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने वाले रूपों में उपन्यास और कहानी ही मुख्य हैं। यही कारण है कि कथा–साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास–कहानी का ही उल्लेख किया जाता है। यह शब्द अंग्रेजी के 'फिक्शन' का पर्याय है।

हिंदी में कथा–साहित्य का आरम्भ 19वीं शदी के अंतिम वर्ष में हुआ है। आधुनिक कथा–साहित्य के प्रणयन के पीछे यथार्थ का आग्रह भी है। जीवन की स्थितियों को अधिक–से–अधिक पूर्णता के साथ यथारूप चित्रित करने की दृष्टि से कथा–साहित्य का जन्म हुआ था। विचार–दर्शन की दृष्टि से आरंभिक कथा–साहित्य आदर्शात्मक है, लेकिन बाद में उसकी प्रवृत्ति यथार्थ की ओर उन्मुख होती गई है।

गद्य युग की उन सभी विशेषताओं से कथा–साहित्य युक्त है, जिनके आधार पर प्राचीन साहित्य रूपों के स्थान पर नवीन शिल्प रूप सामने आया था। कथा–साहित्य की इन दोनों विधाओं कहानी और उपन्यास में से यहाँ सर्वप्रथमतः कहानी–साहित्य के विकास पर संक्षेप में विचार किया जाना समीचीन प्रतीत होता है।

2.2.1. प्रेमचन्द पूर्व युग –

यह हिंदी कहानी का आरंभिक काल था। इसमें कहानी अपने शैशवावस्था में थी। कहानी का सूत्रपात सन् 1800 से 1808 के मध्य सैयद इंशा अल्ला खाँ द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। इस दिशा में युगीन पत्रिकाओं ने विशेष प्रयत्न किये। इन पत्रिकाओं में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (1873), 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका' (1874), 'हिंदी प्रदीप' (1877), 'ब्राह्मण' (1880), 'भारत मित्र' (1877), 'सरस्वती' (1900), और 'इंदु' (1909), 'हिंदी गल्पमाला' (1918) आदि प्रमुख हैं। भारतेंदु युग में कहानी का कोई रूप निर्धारित न हो सका। इस दिशा में 1900 ई0 में प्रयाग से प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल 'सरस्वती' के योगदान को इन शब्दों में याद करते हैं– ''हिंदी कहानी कला की उत्पत्ति, प्रयोग और आरम्भ इन तीनों क्रमों अथवा चरणों के प्रकाश में 'सरस्वती' का नाम कहानी शिल्प विधि के आरम्भ और विकास के इतिहास में सदा अमर रहेगा।''[18]

प्रेमचन्द–पूर्व युग में उपन्यासों की अपेक्षा कहानियाँ काफी कम मात्रा में लिखी गईं। उपन्यासों की भाँति इस समय की कहानियों की कोई निश्चित परम्परा स्थापित नहीं हो पाई, छिटपुट मात्रा में समाज की स्थूल–बाह्य समस्याओं को लेकर इस युग में थोड़ी बहुत कहानियाँ लिखी गईं। हिन्दी की मौलिक कहानियों में सर्वप्रथम सन् 1900 ई0 में कहानी किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इंदुमती' मानी जाती है। कुछ लोग इसे शेक्सपियर के नाटक

'टेम्पेस्ट' का भावानुवाद भी मानते हैं। 'इन्दुमती' प्रेम कहानी का प्रकाशन सर्वप्रथम 1900 ई0 में 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ था। तत्पश्चात् 1902 ई0 में 'गुल–बहार' (किशोरीलाल गोस्वामी) तथा 'प्लेग की चुड़ैल' (भगवानदास) तथा 1903 ई0 में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' प्रकाशित हुई। बंग महिला द्वारा लिखित 'दुलाईवाली' में प्रकाशित हुई। 1803 से 1907 के मध्य गिरिजादत्त वाजपेयी की कहानी 'पंडित और पंडितानी' (1903ई0) उल्लेखनीय है। 1911 ई. में छायावाद के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद की कहानी 'ग्राम', 'इंदु' मासिक में प्रकाशित हुई। 1913 ई0 में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानी 'रक्षा–बंधन', 'सरस्वती' मासिक में छपी। राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की प्रसिद्ध कहानी 'कानों में कँगना' भी इसी युग (1913 ई0) में 'इंदु' में छपी। अन्य कहानीकारों में ज्वालादत्त शर्मा, जी. पी. श्रीवास्तव, केशवप्रसाद सिंह आदि का नाम लिया जा सकता है।

प्रेमचन्द पूर्व युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कहानी चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' कृत 'उसने कहा था' (1915 ई0) में प्रकाशित हुई। 'उसने कहा था' हिंदी की युग प्रवर्तक कहानी है।

डॉ० सविता मोहन कहती हैं कि– ''अपने प्रकाशन के समय यह कहानी पन्द्रह वर्ष आगे की चीज थी।''[19]

''प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी यह कहानी आदर्श प्रेम, तथा यथार्थ के विस्तृत धरातल को व्यक्त करती है। इस कहानी ने 'कहानी' को वास्तविकता के स्वतंत्र वर्णन की ओर मोड़ा।'' 'गुलेरी' जी की मात्र तीन कहानियाँ–बुद्धू का काँटा', 'सुखमय जीवन' और 'उसने कहा था' के माध्यम से ही हिंदी कहानी के क्षेत्र में एक विशिष्ट परम्परा का निर्माण कर स्वयं को एक कहानीकार के रूप में स्थापित कर पाएं।

इस प्रकार विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से 1915 ई0 तक 'कहानी' में निखार आता रहा तथा इस युग में कहानी ने वस्तु, भाषा, शिल्प उद्देश्य आदि में विविधता ग्रहण कर ली। फिर भी इस युग की कहानियों को शैशवी महत्व ही प्राप्त है। हाँ, इन कहानियों ने आने वाले कहानीकारों एवं कहानियों के लिए विस्तृत धरातल तैयार कर लिया था। इन पत्रिकाओं ने भी कहानी कला के निरंतर विकास हेतु कहानी कला को अपूर्व बल दिया। गुलेरी जी की 'उसने कहा था' के पश्चात् कहानीकारों ने 'कहानी' को विस्तृत आयाम देना प्रारम्भ कर दिया तथा कहानी आन्दोलन के रूप में लिखी जाने लगी।

2.2.2 प्रेमचन्द एवं प्रसाद युग (1916 से 1936 तक) –

सन् 1916 से 1936 ई0 तक का काल हिंदी कहानी में प्रेमचन्द युग कहा जाता है। यह हिंदी कहानी के विकास का वह उत्कृष्ट काल था। इस युग में कहानी में प्रौढ़ता,

परिपक्वता आने लगी थी। सन् 1916 से प्रेमचन्द भी हिंदी कहानियाँ लिखने लगे। उर्दू में तो वे बहुत पहले से लिख रहे थे।

(1916 से 1936 तक) ही प्रेमचन्द युग के नाम से जाना जाता है। हिंदी कथा–साहित्य में पहली बार प्रेमचन्द ने विविध सामाजिक बुराईयों तथा समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया, समस्याओं को उन्होंने पर्याप्त व्यापक रूप में विश्लेषित करके उनके उचित समाधान भी प्रस्तुत किए। प्रेमचन्द आरम्भ में आदर्शों के चितेरे थे, लेकिन उनके रचनात्मक विकास के साथ–साथ यह संकेत मिलता है कि उनकी आदर्शात्मक भावनाएँ धीरे–धीरे आहत होती चली गईं और वे यथार्थ की ओर उन्मुख हुए। 1916 ई0 से 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रय', 'कायाकल्प' आदि उपन्यासों के बाद 'गबन' फिर 'पंच परमेश्वर', (1916ई0) 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। 'आत्माराम', 'नमक का दरोगा' आदि कहानियों के बाद 'सज्जनता का दण्ड' आदि कहानियों में उनकी आदर्शात्मक आस्था टूटती हुई दिखाई देती हैं। 'पूस की रात' तथा 'कफन' कहानियों में यह आस्था एकदम टूटी हुई दिखाई देती हैं।

प्रेमचन्द मध्यवर्गीय जनजीवन के चितेरे थे। उनके पात्र मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्र के ग्रामीण कृषक, जमींदार रहे हैं। हिंदी कथा–साहित्य में प्रेमचन्द का स्थान युग प्रवर्तक कथाकार के रूप में प्रसिद्ध है। वे अपने युग के सर्वश्रेष्ठ चितेरे कहे जा सकते हैं। प्रेमचन्द की संपूर्ण कहानियाँ 'मानसरोवर' (8 भाग) में संकलित हैं। उनकी मुख्य कहानियों में 'आत्माराम', 'नमक का दरोगा', 'बड़े भाई साहब', 'ईदगाह', 'शांति', 'शतरंज के खिलाड़ी' 'बड़े घर की बेटी', 'रानी सारंघा', 'अग्निसमाधि', 'पूस की रात', 'कफन' आदि हिंदी–साहित्य की धरोहर मानी जा सकती है।

इस युग में प्रसाद एवं प्रेमचन्द के रूप में कहानी लेखन की दो परम्पराएँ चल पड़ीं। जहाँ जयशंकर प्रसाद की भाव जगत की आदर्शोन्मुख परम्परा के साथ काव्यात्मक कल्पना का सहारा लेकर प्रस्फुटित हुई वहीं दूसरी परम्परा प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुख यथार्थ और सामाजिक लोकमंगल की भावना को आगे बढ़ाती रही। प्रेमचन्द ने इस बीच लगभग 300 कहानीयाँ लिखीं। प्रेमचन्द की प्रारंभिक प्रवृत्ति यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की ओर थी। इस बात की स्वीकारोक्ति उन्होंने स्वयं प्रेम प्रसून की भूमिका में की है– ''हमने इन कहानियों में आदर्श को यथार्थ से मिलाने की चेष्टा की है।''[20] परन्तु बाद की कहानियों में ये प्रवृत्ति आदर्शप्रधान हो गई। प्रेमचन्द के आदर्शवाद में गाँधीवादी आदर्शवाद के निदर्शन होते है। इसमें सर्वत्र दलित, शोषित, मानवता के प्रति सहानुभूति दिखाई देती है। डॉ0 रामदरश मिश्र के शब्दों में ''प्रेमचन्द की यात्रा आदर्श की है और समापन यथार्थ में है।''[21]

प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्श मनोवैज्ञानिक आधार को लेकर उपस्थित किया है वे स्वयं लिखते हैं– ''घटना और पात्र तो मिल जाते हैं, लेकिन मनोवैज्ञानिक आधार कठिनता से मिलता है। यह समस्या हल हो जाने के बाद कहानी लिखने में देर नहीं लगती।''[19] प्रेमचन्द युग के महत्वपूर्ण कथाकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, भगवती प्रसाद, वाजपेयी, राजा राधिकारमण प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' एवं पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', चतुरसेन शास्त्री, गोविंद बल्लभ पंत, चंडी प्रसाद 'हृदयेश', श्रीनाथ सिंह आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द एवं प्रसाद की परम्परा को विकसित करने में तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं का भी योगदान रहा। प्रसाद मूलतः कवि थे। उनके व्यक्तित्व पर बौद्ध दर्शन और भारतीय संस्कृति का प्रभाव बहुत अधिक था। इन दोनों आग्रहों से इनका जो जीवन–दर्शन बना उसमें करूणा, प्रेम आनन्द और आदर्श की भावना अत्यंत तीव्र थी। ''प्रसाद की कहानियाँ आदर्शोन्मुखी और काल्पनिक हैं। जिनके लक्ष्य बिन्दु पर आनन्द और सौंदर्य की अमिट आभा है।''[22] इस युग की भावना प्रधान परम्परा के कहानी लेखकों के प्रणेता जयशंकर प्रसाद थे। उनकी पहली कहानी 'ग्राम' वर्ष 1911 ई0 में 'इंदु' में प्रकाशित हुई। प्रसाद ने कहानी कला को नए आयाम दिए। उनकी कहानियाँ कल्पना एवं भावना प्रधान होती थीं, जिनमें आरम्भ चरमोत्कर्ष एवं अंत विलक्षण ढंग से होता है। यह न तो दुखःमय होता है और न सुखमय। इन्हें प्रसादान्त कहा गया है। 'प्रतिध्वनि (1926), 'आकाशद्वीप' (1929), 'आँधी' (1931), 'इंद्रजाल' (1936) अदि इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'स्वर्ग के खंडहर', 'आँधी', 'मधुआ', 'पुरस्कार', 'आकाशदीप', 'ममता', 'गुण्डा' इनकी चर्चित कहानियाँ हैं।

2.2.3 प्रेमचन्दोत्तर युग (1937 ई. से 1950 ई.) –

कहानी साहित्य के इतिहास में 1937 ई० से 1950 ई० तक का तृतीय विकास काल 'प्रेमचन्दोत्तर युग' के नाम से अभिहित किया जाता है। इस युग में कहानी साहित्य के क्षेत्र में सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, मनोविश्लेषणात्मक आदि प्रवृत्तियों के साथ बौद्धिक, प्रवृत्तियों का भी विकास हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुए। अकाल जैसी अभिशप्त परिस्थितियों के कारण मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रश्रय मिला। भारतीयों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किए गए प्रयासों के कारण इस युग की कहानियों में क्रांति तथा राजनीतिक स्वतंत्रता के स्वर दिखाई देते हैं।

प्रेमचन्द युग के कुछ साहित्यकार जो जीवित थे, वे इस युग में भी कहानी लेखन करते रहे, इस युग में कुछ नए कहानीकारों का कहानी साहित्य में पदार्पण हुआ। इस युग

में कई नई प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। प्रेमचन्द युग के वर्गपात्रों का स्थान व्यक्ति पात्र लेने लगे और पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया जाने लगा। इस युग में कहानी साहित्य में भी दो प्रमुख प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं– ''मनोवैज्ञानिक एवं समाजवादी। इसमें से पहली प्रवृत्ति के प्रणेता जैनेन्द्र कुमार हैं। प्रेमचन्द के बाद जैनेन्द्र ने कहानी को नई एवं सशक्त दिशा दी। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत जैनेन्द्र जी की दार्शनिकता, समन्वित मनोविश्लेषणवादी कहानियाँ, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय की 'काम एवं स्वप्न' सिद्धांतों से अनुप्राणित कहानियाँ आती है।''[23] जैनेन्द्र कुमार ने यूँ तो प्रेमचन्द युग में भी कहानी लिखना प्रारम्भ कर दिया था, पर उनकी कहानी कला का पूर्ण विकास इस में आकर ही हुआ। प्रेमचन्द की प्लाटवादी कहानी की अपेक्षा जैनेन्द्र की कहानियाँ अत्यंत सहज ओर उन्मुक्त है। उनकी कहानियाँ व्यक्तिवादी हैं। जैनेन्द्र की कहानियों में एक ओर आदर्श के पुट से भारतीय जीवन दर्शन का आग्रह है और दूसरी ओर उनकी कहानियों की मुख्य प्रेरणा चरित्र विश्लेषण और मानसिक उहापोह में है।''[24]

जैनेन्द्र कुमार की कहानी कला का मूलाधार जीवन–दर्शन, मनोवैज्ञानिक है। सन् 1934 'एक रात' से लेकर 'जयसन्धि' 1948 ई० तक उन्होंने इन दोनों आधारों को कहीं नहीं छोड़ा। उन्होंने सामाजिक स्तर पर समाधान खोजने की अपेक्षा, व्यक्ति के मन में यथार्थ को खोजने का प्रयास किया, इस सम्बन्ध में स्वयं कहते हैं : ''यह तो एक भूख है, जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती रहती है, हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकाएँ होती हैं चिंताएँ होती हैं और हम ही उनका उत्तर, उनका समाधान खोजने का, पाने का सतत् प्रयत्न करते हैं। कहानी इस खोज के प्रयत्न का एक उदाहरण है।''[25]

जैनेन्द्र के प्रमुख कहानी संग्रह सन् (1929) में प्रकाशित 'फांसी' सन् 1936 में प्रकाशित 'वातायन' सन् (1933) में प्रकाशित 'नीलम देश की राजकन्या' सन् (1934) में प्रकाशित 'एक रात' सन् (1935) में प्रकाशित 'जयसंधि' आदि हैं। बाद में उनकी समस्त कहानियाँ 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' शीर्षक से सात पृथक्–पृथक भागों में प्रकाशित हुई हैं। जैनेन्द्र के अतिरिक्त इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय, भगवती चरण वर्मा और सियाराम शरण गुप्त इस युग के मुख्य कहानीकार हैं। इलाचंद्र जोशी की कहानियाँ फ्रायड के मनोविश्लेषण से प्रभावित होने के कारण व्यक्तिवादी, कुंठित 'काम' के सिद्धांतों पर आधारित, मनोविश्लेषणात्मक हैं। इनके कहानी संग्रहों में (1938) में प्रकाशित 'धूपरेखा' (सन् 1942) में प्रकाशित 'दीवाली और होली' (सन् 1943) में प्रकाशित 'रोमांटिक छाया', (सन् 1945) में प्रकाशित 'आहुति' (सन् 1948) में प्रकाशित 'खंडहर की आत्माएँ' आदि प्रमुख हैं।

इलाचंद्र जोशी ने अपनी कहानियों में मुख्य रूप से मध्यमवर्गीय समाज की ह्रासोन्मुखी वृत्तियों का चित्रण, मनुष्य के अहं, कुंठाओं और मानसिक विकृतियों से संबंधित सैद्धांतिक तत्वों की व्यावहारिक विवृत्ति भी उनकी कहानियों में है। निम्न मध्यवर्ग की पारिवारिक व्यवस्था में संबंधित यथार्थ परक चित्रण भी उनकी अनेक कहानियों में पात्रों के मानसिक अंतर्द्वन्द्व के साथ मिलता है।

सन् 1911 में जन्मे सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' भी प्रेमचन्दोत्तर युग के मनोविश्लेषणवादी कहानीकार हैं। उन्होंने अपने पात्रों को अंतर्मुखी संवेदना से निकालकर बहिर्मुखी अभिव्यक्ति दी, उनकी प्रतिनिधि कहानियाँ (सन् 1937) में प्रकाशित 'विपथगा', (सन् 1944) में प्रकाशित 'परम्परा' (सन् 1945) में प्रकाशित 'कोठरी की बात', (सन् 1948) में प्रकाशित 'शरणार्थी तथा (सन् 1951) में प्रकाशित 'जयदोल' आदि संग्रहों में संगृहीत है। मानसिक अनर्तद्वंद्व एवं कुंठाएं स्वप्न, मनोविज्ञान, शोषण आदि विषय उनकी कहानियों में मिलते हैं। 'प्रेमचन्दोत्तर युग में कहानी लेखन की समाजवादी प्रवृत्ति के प्रवर्तकों में 'यशपाल' का नाम आता है। उन्होंने अपनी कहानियों में मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर सामाजिक रूढ़ियों पर कुठाराघात करने का सफल प्रयास किया है।''[26] इनकी कहानियों में परम्परागत सामाजिक रूढ़ियों के प्रति युक्तियुक्त विद्रोह देखा जा सकता है। यशपाल की कहानियों का अंत आदर्श न होकर व्यंग्य होता है।

'उपेन्द्रनाथ 'अश्क', नागार्जुन, रांगेय राघव, अमृत लाल नागर आदि ने भी इसी परम्परा से प्रभावित होकर सशक्त कहानियाँ लिखीं। वृंदावन लाल वर्मा इस युग में ऐतिहासिक परम्परा की कहानी लिखने वाले एकमात्र कहानीकार हैं। इस युग में कुछ आँचलिक कहानियाँ भी लिखी गईं। हास्य रस प्रधान कहानियों का भी इस युग में समुचित विकास हुआ हास्य प्रधान कहानीकारों में जी०पी० श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्णदेव आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इस युग के अन्य प्रमुख कहानीकार हैं– भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, गजानन्द माधव 'मुक्तिबोध', भुवनेश्वर प्रसाद, उषा मित्र तथा चंद्रगुप्त विद्यालंकार आदि।

चंद्रगुप्त विद्यालंकर की कहानियाँ कथ्य : एवं शिल्प की दृष्टि से नवीन प्रतीत होती हैं। 'अमृतलाल' नागर की कहानियों में समाज में व्याप्त वर्ग वैषम्य, आर्थिक वैषम्य और शोषण जैसे सामाजिक यथार्थ के प्रति कटुता युक्त व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण दिखाई देता हैं तो वहीं विष्णु प्रभाकर की रोचक कहानियाँ भी उल्लेखनीय हैं। इस युग में महिला कहानीकारों में 'सुभद्राकुमारी चौहान', कमला देवी चौधरी, हेमवती देवी का नाम भी उल्लेखनीय है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द युग की कहानियों की स्थूल सामाजिकता के स्थान पर व्यक्तिमन के सूक्ष्म चित्रण को महत्व दिया प्रेमचन्दोत्तर कथाकारों ने। प्रेमचन्दोत्तर युग के पात्र 'व्यक्ति' पात्र हैं। उनमें मनोवैज्ञानिक विशिष्टताएँ अधिक गूढ़ रूप में मिलती हैं। प्रेमचन्दोत्तर–युग में हिंदी साहित्य में पश्चिमी साहित्य के साथ मनोवैज्ञानिक सिग्मण्ड फ्रॉयड के मनोदर्शन का प्रभाव तथा बांग्ला साहित्य का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। रवीन्द्रनाथ टैगोर और शरतचंद्र का साहित्य प्रकाशित हो चुका था तथा उसका भारतीय बौद्धिक वर्ग पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा था। उर्दू में उसी समय 'अंगारा ग्रुप' नाम से एक आन्दोलन चल पड़ा था, जो काम भावनाओं को पर्याप्त नग्न रूप में चित्रित करने का पक्षपाती था। प्रेमचन्दोत्तर कथाकारों ने कहीं प्रत्यक्ष रूप में और कहीं सांकेतिक रूप में इन समस्त प्रभावों को ग्रहण किया।

जैनेन्द्र कुमार, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', इलाचंद्र जोशी, यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, कमल जोशी, उषा देवी आदि इस युग के प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। मानव मन का सूक्ष्म चित्रण, काम–कुण्ठा और मनोविज्ञान का बड़ा गूढ़ विवेचन इस युग की कथाओं की विशेषता रही हैं। इस युग की कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ इस प्रकार हैं– 'कः पन्थाः', 'नीलम देश की राजकन्या', 'फाँसी', 'एक रात' (जैनेन्द्र कुमार), 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात' (अज्ञेय) तथा इलाचन्द्र जोशी द्वारा रचित 'धूपरेखा', 'दीवाली और होली', 'आहुति, 'खण्डहर' आदि।

2.2.4 स्वातंत्र्योत्तर युग (1950 ई. से अधावधि) –

हिंदी कहानी के इतिहास में सन् 1950 के बाद के युग को स्वातंत्र्योत्तर युग या 'नई कहानी का युग' कहा जाता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् का यह समय भीषण राजनीतिक उथल–पुथल का युग था। जहाँ एक ओर गृह युद्ध था तो दूसरी और महंगाई, मुद्रास्फीति, चोरबाजारी के बीच जनता पीस रही थी। एक ओर क्रांति एवं अकाल पृष्ठभूमि में था, तो दूसरी ओर सदी की सबसे बड़ी दुर्घटना देश का विभाजन हो रहा था। लाखों लोग घर से बेघर थे। हत्या, लूटपाट, आग–जनी, बलात्कार जैसी द्रावक घटनाओं के कारण अस्थिरता का माहौल था। इन सब कारणों से परिस्थितियाँ तेजी से बदलती गईं इन बदली परिस्थितियों में नई पीढ़ी ने स्वयं को ऐसा संकट में पाया, जिसमें एक तरफ तो जीवन के प्रति उसकी प्रतिक्रियाएँ बहुत तीव्र और संवेदनाएँ बहुत गहरी थीं, पर दूसरी तरह अभिव्यक्ति के सारे परम्परागत संस्कार उसे बहुत खोखले ओर कृत्रिम जान पड़ते थे। ऐसी स्थिति में साहित्य की किसी भी विधा का स्थित रहना संभव नहीं था। भावना विचार और यथार्थ के आपसी संघर्ष में कहानी का

स्वरूप भी टूट गया। वैयक्तिक्ता के दबाव के कारण फ्रायड एवं मार्क्स के आगे बढ़कर अस्तित्ववादी जीवन दर्शन के प्रभाव से यथार्थ के धरातल पर नवीन प्रयोग होने लगें।

पाठकों की चाहत भी इस युग में बदलने लगी थी। उन्हें कल्पना की उड़ान, ड्राइंगरूम का चिंतन तथा नकली गढ़ी गई स्थितियों से ऊब हो चुकी थी। उन्हें अपने आस–पास जीवन से जुड़ी यथार्थता चाहिए थी। लेखक जिनके पास अनुभूत सत्य था उन्होंने अस्तित्ववाद एवं मार्क्सवाद को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

स्वातंत्र्योत्तर कथा–साहित्य कई दृष्टियों से अपने पूर्ववर्ती युगों से महत्वपूर्ण है। हिंदी कथा–साहित्य का यह युग उन आस्थाओं का युग है, जिन्हें आजादी के पूर्व भारतीय जनजीवन ने कल्पित किया था। आजाद भारत में चूँकि उन विश्वासों को रूप नहीं मिल पाया, यही कारण है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत का कथा–साहित्य टूटन, बिखराव और अवसाद का साहित्य है। मोहन राकेश द्वारा रचित 'जानवर और जानवर', 'इंसान के खण्डहर', 'नए बादल', मेरी प्रिय कहानियाँ' हैं। 'उषा प्रियंवदा' स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी की अत्यंत प्रखर संवेदना से युक्त लेखिका हैं। 'जिंदगी और गुलाब के फूल' कहानी संग्रह के नाम से आपकी विशिष्ट पहचान है।

इसके अतिरिक्त 'निर्मल वर्मा', राजेन्द्र यादव, अमरकान्त, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, शेखर जोशी, रामकुमार, भीष्म साहनी, नरेश मेहता, फणीश्वरनाथ 'रेणु', लक्ष्मीनारायण लाल, मार्कण्डेय आदि के अतिरिक्त व्यंग्यात्मक कथाकारों में राजनीतिक व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई तथा सामाजिक व्यंग्यकार के रूप में शरद जोशी प्रसिद्ध हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग में ही रामकुमार ओझा की अपनी विशिष्ट लेखन पद्धति के कारण अन्य लेखकों के समकक्ष गणना की जाती हैं। स्वातंत्र्योत्तर युग की कहानियों की विशेषताएँ शहरी बोध से संबंधित कथा–साहित्य, कस्बाई जीवन से संबंधित कथा–साहित्य, आँचलिक कथा–साहित्य, व्यंग्यात्मक कथा–साहित्य के साथ–साथ स्त्री–पुरुष के पारस्परिक प्रेम–संबंधों के बीच आ जाने वाली मानसिकता तथा अपनी विशिष्ट भाषा–शैली रही हैं।

सन् 60 के बाद का साहित्य स्वातंत्र्योत्तर कहानी की अपेक्षा अधिक प्रखर और अनुभूति की गहनता लिए हुए हैं। भाषा, शिल्प तथा विषयवस्तु के स्तर पर इन कहानीकारों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– एक वर्ग वह है, जो सामाजिक संबंधों तथा मूल्यों को उसी निर्ममता से चित्रित करना चाहता है, जिस रूप में वे विद्यमान है। दूसरा वर्ग है, जो शिल्प की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती कथाकारों से भिन्न नहीं है, लेकिन लेखन में पर्याप्त प्रखरता लिए हुए है गिरिराज किशोर, दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, काशीनाथ सिंह, पानू खोलिया, सुधा अरोड़ा, विनोद कुमार शुक्ल, अवधनारायण सिंह,

बटरोही, ममता कालिया, अमर गोस्वामी आदि लेखक इस वर्ग के अत्यंत ख्याति प्राप्त कहानीकार हैं।

सन् 1950–55 के आसपास हिंदी कहानी के क्षेत्र में कुछ लेखकों–समीक्षकों ने 'नई कहानी' के आन्दोलन का सूत्रपात किया। जिसके संबंध में तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में काफी चर्चा रही। उसी बीच 1950 ई० के आसपास नए लेखकों का एक ऐसा वर्ग पैदा हो गया था, जो नए प्रकार से सोचने–समझने की क्षमता रखता था। 1950 ई0 ही में मुम्बई से डॉ. हेमचंद्र जोशी तथा इलाचंद्र जोशी के संपादन में 'धर्मयुग' साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इलाहाबाद से 'कहानी पत्रिका' जो बाद में दिल्ली तथा पुनः इलाहाबाद से प्रकाशित हुई, ने इन सभी लेखकों को अपने विचार प्रकट करने का विशेष आलम्बन दिया। वास्तव में स्वातंत्र्योत्तर भारत में कुछ नए कहानीकारों जिन्होंने अपना रचनात्मकता का आरम्भ आजाद भारत में ही किया था, हिंदी कहानी को नवीन रूप प्रदान किया है। यही नवीन रूप 'नई कहानी' कहलाया। इस आन्दोलन के फलस्वरूप कई महत्वपूर्ण लेखक प्रकाश में आए, इनमें मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद, मन्नू भण्डारी, शिवप्रसाद सिंह, रामकुमार ओझा, फणीश्वरनाथ 'रेणु', अमरकान्त आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।

'नई कहानी' के साथ–साथ आँचलिक कहानी का आन्दोलन भी चला था। आँचलिक शब्द का शाब्दिक अर्थ हैं : अँचल या क्षेत्र विशेष से संबंधित। 'रेणु', 'शिवानी' तथा शैलेष भटियानी के उपन्यासों तथा कहानियों में आँचलिक कथा– साहित्य का आरम्भ माना जाता है। इन लेखकों के अन्तर्गत केवल वे लेखक लिए जाते हैं, जो अपने–अपने क्षेत्रों के जनजीवन को उन्हीं के भाषा–रूपों की स्वाभाविकता के साथ प्रस्तुत करते हैं, हिंदी का आँचलिक साहित्य पिछले कुछ वर्षों मे समृद्ध हुआ है। आँचलिक कहानीकारों में फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने पूर्णिया (बिहार) के ग्रामीण परिवेश को अपनी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम', 'ठुमरी' आदि कहानीयों में तो शैलेष भटियानी ने कुमाऊँ के ग्रामीण जनजीवन को 'प्रेतमुक्ति', 'ब्राह्मण, 'प्यास', 'रहमतुल्ला', 'माता' आदि कहानियों के माध्यम से बड़ी जीवन्तता के साथ चित्रित किया।

अतः कहा जा सकता है कि जहाँ स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी कहानियों में रूढ़ियों और परम्पराओं में बंधी, कल्पना की उड़ानों में उड़ती मनोरंजन परक कहानियाँ लिखी गईं, वहीं स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान तथा स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी कहानी, स्थूल सुधारवादी रूमानी आदर्श एवं मनोवैज्ञानिकता को लेकर आगे बढ़ती हुई, यथार्थ की भावभूमि पर जीवन के सत्यों को खोजने लगी।

स्वातंत्र्योत्तर युग में निरंतर होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप कहानी में समय–समय पर विविध आन्दोलन चल पड़े। जिनमें सबसे पहले आन्दोलन को नई कहानी नाम मिला। इसमें नवीन भाषा–शैली की विशिष्टता परिलक्षित होती है। इसके पश्चात् 1960–62 के आस–पास 'समकालीन कहानी', तत्पश्चात् 'अकहानी 'सचेतन कहानी', 'सक्रिय कहानी', 'समानांतर कहानी' आदि लघु कालिक कहानी आन्दोलन वर्णनीय हैं इन आन्दोलनों के कारण कहानीकार खेमों में बँट गए।

इन प्रमुख आन्दोलनों का सामान्य परिचय अग्रलिखित है–

2.2.5 नई कहानी –

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही जहाँ देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ, वहीं जनमानस के मानसिक एवं वैचारिक स्वरूप में भी जबरदस्त परिवर्तन आया। औद्योगिक और ग्रामीण क्षेत्रों हेतु बनने वाली विकास योजनाओं से नागरिकों के मन में एक नई चेतना का उदय हुआ, वहीं देश विभाजन जैसी भयावह दुर्घटना ने नागरिकों के मन–मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया। हिंदी कहानी भी ऐसे समय में इन परिर्वतनों से अछूती न रह सकी। (1950) ई० के आस–पास की कहानियों का नया स्वरूप दिखाई देने लगा। डॉ० सविता मोहन के शब्दों में– ''सन् 1950 के आस–पास से ही वैचारिक और स्वरूप के स्तर पर एक नितान्त नई तरह की कहानियाँ हिंदी में आने लगी थीं। भले ही उसका नामकरण दो–चार वर्षों बाद हुआ हो। तब से हम कहानी को नई कहानी के रूप में जानते हैं और वह सन् 1960–62 तक चलती हैं।''[27]

स्वतंत्रता पूर्व की कहानी के गुणों को नई कहानी तो अपने आप में समेटे हुई थी नई कहानी जीवन की इन सूक्ष्म विशिष्टताओं का उल्लेख करता हुआ डॉ. संतबख्श सिंह का यह कथन कि– ''अब कहानीकार का आग्रह बाह्य कलागत रूढ़ियों की ओर न होकर अर्न्तवस्तु की और गया है जिससे हिंदी कहानी को एक अद्‌भुत निखार तथा व्यक्तित्व प्राप्त हुआ है।''[28]

नई कहानी के नाम की सार्थकता का जहाँ तक प्रश्न है उस संबंध में मतभेद है, कुछ लोगों का मानना है कि 'नई कहानी' आन्दोलन के जरिए नई पीढ़ी के रचनाकारों ने हिंदी कहानी में प्रवेश किया। कुछ समीक्षक मानते हैं कि तत्कालीन कुछ साहित्यिक चर्चाओं को बनाए रखने के लिए इस नाम का प्रयोग किया गया। किसी साहित्यिक विधा को 'नई' तभी कहा जा सकता है, जब उसका रूप या कथ्य : एवं शिल्प नया होगा लेकिन यह भी सत्य है कि 'नया' अथवा 'नई' शब्द सापेक्ष है, कोई वस्तु आज नई हो सकती है, पर कल नयी वस्तु पुरानी कहलाएगी। अतः किसी विधा के साथ 'नई कहानी' आदि जैसे शब्दों को

जोड़कर उसे किसी प्रवृत्ति विशेष के साथ जोड़ना, इस नाम के अर्थ को संकुचित करना है। यह शब्द स्वयं में स्वरूप, प्रवृत्ति एवं संवेदना के सन्दर्भ में व्यापकता लिए हुए है। नई कहानी की नवीनता पर टिप्पणी करते हुए डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं– ''होता यह है कि स्वरूप और शिल्प की नवीनता सामान्यतः लोगों का ध्यान सबसे पहले आकृष्ट करती है और कहानी में कविता की तरह रूप, शिल्प की नवीनता बहुत कम आई है। कारण स्पष्ट है, साहित्य रूप की दृष्टि से कहानी स्वयं बहुत आधुनिक है, यह नवीनता के साथ उत्पन्न ही हुई है, इसीलिए सौ–पचास वर्षों के इस छोटे से इतिहास में कहानी के रूप में किसी मौलिक परिवर्तन की न तो संभावना है और न आवश्यकता है।''[29]

स्वतंत्रता के पष्चात् हुए अच्छे–बुरे परिवर्तनों ने कहानीकारों की मानसिकता में बदलाव ला दिया। अब लेखक अकेलापन, परिस्थितिगत सत्य एवं जीवन मूल्यों की ओर झुकने लगा। नई कहानी की अभिव्यक्ति के संकेत प्रेमचन्द युगीन कहानियों से ही देखे जा सकते हैं। प्रेमचन्द की 'कफन' और 'पूस की रात' कहानियों में इन बीजों को स्पष्ट देखा जा सकता है। इसके पश्चात् जैनेन्द्र की 'पत्नी', 'जह्र्नवी', अज्ञेय की 'रोज ने इसे ठोस आधार दिया', रघुवीर सहाय की 'सेब', 'गिरिराज', किशोर की 'चूहे', दूधनाथ सिंह की 'रीछ' एवं मोहन राकेश की 'ग्लास टैंक' तथा श्रीकांत की 'झाड़ी' आदि कहानियों ने 'नई कहानी' को अभिव्यक्ति के नए आयामों तक पहुँचाया– ''पहली बार 'नई कहानी' ने आदमी को आदमी के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। शाश्वत् मूल्यों की दुहाई देकर नहीं, बल्कि उस आदमी को उसी के परिवेश में सही आदमी या मात्र आदमी के रूप में अभिव्यक्ति देकर।''[29]

नई कहानी में अभिव्यक्त संवेदनाओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थितियों का यथार्थ तो था ही साथ ही परिस्थिति जन्य, महानगरीय जीवन की जटिलता, संबंधों में बिखराव, सूक्ष्म अंतर्मन की अभिव्यक्ति, नारी की स्थिति शरणार्थियों की स्थिति, भुखमरी, अकेलापन, यौन विकृतियाँ, गरीबी, ग्राम्य जीवन का संघर्ष आदि भी अभिव्यक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त प्रतीकात्मकता, सांकेतिकता, नवीन बिम्ब विधान तथा आँचलिकता आदि जैसे शिल्प के नवीन प्रयोगों ने 'नई कहानी' को अभिव्यक्ति के नए आयाम देने में बड़ा योगदान दिया।

नई कहानी आन्दोलन के अन्तर्गत कस्बाई एवं महानगरीय जीवन के यथार्थ को प्रकट करने वाली कहानियाँ भी भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', 'पटरियाँ', मोहन राकेश की 'काला रोजगार' आदि हैं। यौन संबंधों एवं विकृतियों आदि पर लिखने वाले कहानीकारों में मोहन राकेश कृत 'मिस पाल का काला रोजगार', 'सेफ्टीपिन', निर्मल वर्मा कृत 'परिंदें', 'लंदन की एक रात', मन्नू भण्डारी की 'तीसरा आदमी', कृष्णा सोबती कृत 'यारों के यार',

भीष्म साहनी की 'इंद्रजाल', धर्मवीर भारती कृत 'कुलटा', रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी' तथा रघुवीर सहाय की 'मेरे और नंगी औरत के बीच' आदि मुख्य हैं। 'नई कहानी' में आँचलिकता का स्वर भी प्रमुख रहा है इसमें मुख्यतः फणीश्वर नाथ 'रेणु,' शेखर जोशी, राजेन्द्र अवस्थी, शैलेष भटियानी, रामकुमार ओझा, शिवप्रसाद आदि कहानीकारों के नाम आते हैं।

मानसिक अंतर्द्वन्द्वों, बेरोजगारी, अकेलापन, कुण्ठा, निराशा एवं युवा मन की बोझिलताओं को भी नई कहानी के रचनाकारों ने चित्रित किया। राजेन्द्र यादव की 'तलवार', 'पंचहजारी', अमरकान्त की 'डिप्टी कलेक्टरी', 'खलनायक', मधुकर सिंह की 'कल', शेखर जोशी की 'बदबू', निर्मल वर्मा की 'कुत्ते की मौत' आदि में ऐसे ही चित्र अंकित हैं। 'नारी' की परम्परागत छवि में आए बदलाव एवं उसके यथार्थ पर भी कहानीकारों ने अपनी लेखनी चलाई। मोहन राकेश कृत 'मिस पाल', 'एक और जिंदगी', निर्मल वर्मा की 'परिंदे', 'डायरी का खेल', उषा प्रियंवदा की 'मछलियाँ', राजेन्द्र यादव की 'वापसी', कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे', 'शानी', 'एक संधि', मन्नू भण्डारी की 'यही सच है', आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। नई कहानी में कहानीकारों ने समाज, राजनीति, अन्तर्मन के द्वंद्व आदि विषयों पर व्यंग्य भी किए हैं।

2.2.6 समकालीन कहानी –

स्वतंत्रता के पश्चात् भी देश में जनमानस की आकांक्षाओं के अनुकूल परिवर्तन नहीं होने तथा सन् 1962 ई० में चीन के हाथों हुई पराजय ने देश में निराशा, हीनता, अपमान जैसी भावनाओं के साथ रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, महँगाई, गरीबी, बेरोजगारी तथा बाह्य आक्रमणों जैसी राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के आक्रोश ने नई कहानी के लेखकों को आक्रोशशील बना दिया। ऐसे में कहानी लेखकों का अतीत से मोह भंग हुआ। अब कहानी का तेवर व्यवस्थाओं के प्रति आक्रोशात्मक हो गया। जीवन मूल्यों के प्रति भी कहानीकार की दृष्टि बदल गई।

संबंधों में बिखराव, पीढ़ियों का अन्तर (जेनरेशन गैप) अकेलापन आदि जैसी जीवन स्थितियों को कहानी में स्वर दिए जाने लगे। आलोचकों ने इस चरण को 'समकालीन कहानी भी कहा है। समीक्षकों ने कहानी में सन् 1962 के बाद की कहानी के लिए 'समकालीन' नाम दिया। तो कुछ विद्वानों ने सन् 1965 से सन् 1975 तक की कहानियों के लिए इस नाम को सीमाबद्ध करते हैं।

वस्तुतः समकालीनता एक बहुआयामी प्रवृत्ति हैं। जिसमें सातवें दशक से प्रारम्भ हुई सम्पूर्ण कहानी शामिल की जाती है। इस प्रवृत्ति को फिलहाल किसी कालखंड के लिए

सीमित नहीं किया जाना चाहिए और न ही यह 'तत्कालीन' का समानार्थी है। 'समकालीन' कहानी के उद्देश्यों पर नजर डाली जाए तो पता चलता है कि समकालीन कहानी का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजन नहीं रहा है और न ही अतीत का गौरवशाली प्रस्तुतीकरण ही इसका उद्देश्य रहा है। समकालीन कहानी समकालीन आदमी की कहानी है। इस कहानी ने समाज के संघर्षों को स्वर दिया है तथा पूरी तटस्थता से समाज का यथार्थ चित्रण कहानीकारों ने अपनी कहानियों में किया है। इस प्रवृत्ति की कहानियाँ अनुभवों अर्थात् भोगी हुई मनःस्थितियों पर आधारित थी।

समकालीन कहानी लेखन में सामाजिक संबंधों में आए बदलाव, मूल्य, संक्रमण, जिसमें यौन, धर्म, परिवार एवं समाज विषयक मूल्यों को विशेष स्थान प्राप्त है। विभिन्न संत्रास, संकटबोध, अकेलापन, असमंजसता, राजनैतिक स्थिति, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता आदि के अतिरिक्त आँचलिकता आदि वास्तविकताओं का यथातथ्य उद्घाटन हुआ है। समकालीन कहानी के प्रमुख आलोचकों में से मुख्य गंगा प्रसाद विमल के अनुसार– ''समकालीन कहानी मनुष्य मस्तिष्क के भीषण संकट बोध की यथार्थ प्रतीति की कहानी है, जो मानव पीढ़ी को इसलिए व्यक्त नहीं करती कि वह कोई प्रशंसनीय प्रंसग है, अपितु सिर्फ यथार्थभोग है।''[31]

अध्ययन की सुविधा के इस युग के कहानीकारों को दो श्रेणियों में बाँटना अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होता है। पहली श्रेणी में उन कहानीकारों को शामिल किया जा सकता है, जो नई कहानी के युग से लिखते आ रहे थे, तथा यहाँ समकालीन कहानी की प्रवृत्ति से अछूते न रहे, इनमें निर्मल वर्मा द्वारा रचित 'दहलीज', विदा यात्रा का आखिरी सूरज', 'डेढ़ इंच ऊपर' आदि कहानियाँ, भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', 'इन्द्रजाल', 'पटरियाँ', अमरकान्त की 'जिंदगी और जोंक', 'डिप्टी कलेक्टर', 'छिपकली', कमलेश्वर की 'मुखों की दुनिया', 'आत्मा की आवाज', 'चायघर', 'खोई दिशाएं', 'युद्ध', 'दुःखों के रास्ते' आदि। इसके अतिरिक्त मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, भीमसेन त्यागी, शिवप्रसाद सिंह, मन्नू भण्डारी आदि भी इसी युग में आते हैं।

दूसरी श्रेणी में उन कहानीकारों को सम्मिलित किया जा सकता है, जो 'समकालीनता' के प्रभाव से ही उभरे तथा उनकी कहानियाँ ठेठ समकालीन प्रवृति की हैं। इन कहानीकारों की सूची काफी लम्बी है। समकालीन कहानी का मूल्याँकन इन्हीं कहानीकारों की रचनाओं पर केंद्रित रहा है। समकालीन कहानीकारों की कहानियाँ जहाँ एक ओर जीवन संघर्षों से जूझने की प्रेरणा एवं क्षमता उत्पन्न करती हैं, वहीं, वह पाठकों के समक्ष, चरमोत्कर्ष के पश्चात् निष्कर्ष हेतु चुनौती भी पेश करती नजर आती है। इन

कहानियों से परिस्थितियों में आए परिवर्तनों के फलस्वरूप संबंधों में आए बदलाव को चित्रित किया गया है। निर्मल वर्मा की 'माया दर्पण', 'दहलीज', 'कुत्ते की मौत', कमलेश्वर की 'तलाश', 'नाममणि', 'बेकार', 'आदमी', मन्नू भण्डारी की 'तीसरा आदमी', 'त्रिशंकु', 'क्षय', रवीन्द्र कालिया की 'इतवार का एक दिन', धर्मवीर भारती की 'यह हमारे लिए नहीं', दूधनाथ सिंह की 'आइस बर्ग', सुधा अरोड़ा की 'एक विवाहित पृष्ठ', हिमांशु जोशी की 'अकेला का एक दिन', 'हंसा' तथा उषा प्रियंवदा की 'खुले हुए दरवाजे' आदि कहानियाँ संबंधों में अपरिचय, अकेलापन तथा पीढ़ियों का संघर्ष व्यक्त करने वाली कहानियाँ हैं।

समकालीन कहानियों में कहानीकारों ने पुराने मूल्यों से नई पीढ़ी के मोह भंग को भी चित्रित किया है। यहाँ प्रेम तथा सेक्स से धर्म, समाज, परिवार तथा यौन विषयक रूढ़ियों से मूल्यों का विघटन दिखाई देता है। समकालीन कहानी का एक अति महत्वपूर्ण आयाम आँचलिकता भी है। ग्रामीण, कस्बाई क्षेत्र विशेष के परिवेश की आँचलिकता को प्रदर्शित करती कहानियाँ भी समकालीन कहानी के इस दौर में खूब लिखी जाती रही हैं।

समकालीन कहानी का क्षेत्र एवं इन क्षेत्रों के कहानीकारों की सूची अत्यंत व्यापक हैं। समकालीन कहानी, भाषा व शिल्प की दृष्टि से भी नए आयामों का स्पर्श करती हैं इस युग की भाषा सहज, सरल एवं जीवन के निकट हैं परन्तु कहीं–कहीं सांकेतिकता, प्रतीक तथा बिंबों के प्रयोगों में अस्पष्टता आ गई हैं। यह शिल्प की नवीनता का द्योतक भी बनी है। इस संबंध में धनंजय लिखते हैं– ''आज की कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि भाषिक है। जिस भाषा की खोज इसने की है, वह अनुभव के अंग तो हैं ही, समकालीन यथार्थ की रचना में भी सक्षम है............आज की कहानी के बदलाव को नई सर्जनात्मक भाषा का बदलाव कहा जाए, तो गलत न होगा।''[32]

2.2.7 सचेतन कहानी –

सचेतन कहानी नई कहानी के युग में जब पाश्चात्य सभ्यता ने दस्तक दी। तब समाज के जीवन मूल्य भर–भराकर गिरने लगे। ऐसे में नई कहानी के कुछ लेखकों में वितृष्णा का भाव उत्पन्न हो गया, जिसने 'सचेतन कहानी' को जन्म दिया। 'सचेतन कहानी' अथवा 'जीवन्त कहानी' व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से समष्टि की ओर उन्मुख हुई। डॉ. महीप सिंह' को सचेतन कहानी का जनक माना जाता है। सन् 1964 ई. में महीप सिह के सम्पादन में 'आधार' पत्रिका का 'सचेतन कहानी विशेषांक' निकला, जिसमें 'सचेतना' को कहानी का प्रतिष्ठित आन्दोलन स्थापित करने के ठोस तर्क दिए गए। डॉ. महीप सिंह के शब्दों में– ''सचेतन दृष्टि आधुनिकता की एक गतिशील स्थिति है और हमारे सक्रिय जीवन–बोध पर निर्भर है। सचेतन आन्दोलन सामूहिक चेतना का फल है।''[33]

कहानीकार सुदर्शन चोपड़ा के शब्दों में– ''यह युग जिसमें आज हम जी रहे हैं, बेहद सक्रिय युग है। इसमें सोचने करने और दिशा लेने–देने को इतना कुछ है, जितना कि आज तक पिछले किसी युग में नहीं रहा। युग के बोध को पकड़ने की कोशिश किए बिना यह मान बैठना घातक है कि यह युग निष्क्रिय है इसलिए कुछ आलोचकों का मत हैं कि निष्क्रियता को महत्व देने वाली कहानियाँ अब और न लिखी जाए, तो अच्छा हो, ऐसे में कहानीकार का जो दायित्व बढ़ा है उसे सक्रिय और सचेत होकर ही पूरा किया जा सकता है। हिन्दी कहानी का भविष्य व्यापक सम्भावनाओं का युग है, इसलिए इस भ्रांति की कोई गुंजाइश नहीं कि कहानी 'मृत बिन्दु' पर आ गई हैं। जो कहानी मृत–बिंदु पर आ गई थी, वह मृत हो भी चुकी है। अब जो कहानी है, वह जीवन्त है, सचेतन है, और सक्रिय है।''[34] चुना गया जीवन दर्शन है। सचेतन कहानी की संभावनाओं एवं प्रवृति की ओर संकेत करते हुए आचार्य विनय मोहन शर्मा ने साप्ताहिक हिंदुस्तान के 25 अक्टूबर, 1964 के अंक में 'नव लेखन नया नहीं हैं' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है कि–''नई कहानी की सेचतना की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत नहीं हो पाई है, पर उसके समर्थकों का कथन है कि वह नई कहानी व्यक्तिवाद का विरोध कर विस्तृत सामाजिक परिवेश को ग्रहण करती है और यथार्थता से अनुप्राणित होती है, वह कहानी को कहानी मानती हैं।''[35] सचेतन कहानी के कहानीकारों ने बदलते जीवन मूल्यों के प्रति सक्रियता से दृष्टि डाली है। उन्होंने जीवन के आन्तरिक पक्षों को उद्घाटित कर आदमी की पहचान एवं अस्तित्व को परखने की कोशिश की है। राजीव सक्सेना के शब्दों में– ''सचेतन शब्द से यथार्थ के प्रति परिवेश के प्रति ओर जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टि का बोध होता है। मनुष्य की चेतना का सक्रियता का, दूसरे शब्दों में सचेतन कहानीकार मनुष्य को सर्वांग और सम्पूर्ण रूप से देखना चाहता हैं।''[36]

2.2.8 सहज कहानी –

सहज कहानी नई कहानी की परिपाटी को जटिल, उबाऊ और जीवन से दूर बता कर इसी दौरान कुछ लेखकों ने 'सहज कहानी आन्दोलन' चलाया। 'सहज कहानी' का प्रणेता अमृतराय को माना जाता है। यह कोई नया आन्दोलन न होकर जीवन का 'सहज' अकृत्रिम रूप से कहानी का कथ्य बनाने की सहज दृष्टि थी। इस संबंध में डॉ० पुष्पलाल सिंह लिखते हैं – ''सर्वत्र ही यह आग्रह रहा कि कहानी जीवन–यथार्थ को कल्पित न करे, जीवन–यथार्थ की भयावहता से साक्षात्कार करे।''[37]

'सहज कहानी' कथा–रस की प्राप्ति के लिए कहानी में सहजता, सरलता जैसे मूल तत्व आवश्यक मानती हैं। वह सरल एवं सहज जीवन मूल्यों को उजागर करना अपना ध्येय समझती हैं। इंद्रलाल मदान के शब्दों में– ''सहज कहानी कोई आन्दोलन नहीं है, सहज

कहानी से हमारा अभिप्राय उस मूल कथा–रस से है, जो कहानी की अपनी खास चीज है और जो बहुत सी नई कही जाने वाली कहानियों में एक सिरे से नहीं मिलती।''[38]

सहज कहानी सच्चाई एवं ईमानदारी से कथा तत्व का गठन करती हैं। इसमें कृत्रिमता एवं काल्पनिकता नहीं होती है। वे स्वयं सहजता से अपनी पहचान करती चलती है इस विषय में डॉ. पुष्पपाल सिंह कहते हैं– ''मोटे रूप में इतना ही कह सकते हैं कि सहज वह है, जिसमें 'आडम्बर' नहीं है, बनावट नहीं है, ओढ़ा हुआ मैनेरिजम या मुद्रा दोष नहीं है, आईने के सामने खड़े होकर आत्मरति के भाव से अपने ही अंग–प्रत्यंग को अलग–अलग कोषों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है, किसी का अंधानुकरण नहीं है।''[39]

2.2.9 अकहानी –

समकालीन कहानी के दौर में अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर एक और कहानी आन्दोलन 'अकहानी' नाम से जाना जाता है। कई आलोचक इस आन्दोलन को अस्तित्ववाद से प्रभावित तथा फ्राँस में जन्मी 'एंटी स्टोरी' पर आधारित मानते हैं। 'अकहानी' में परम्परागत प्रवृत्तियों के विरुद्ध छटपटाहट है। इसमें विद्रोह एवं निषेध की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। गंगा प्रसाद 'विमल' का विचार हैं कि– ''वस्तुतः अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का निषेध तथा इसी तरह के मूल्य स्थापना का अस्वीकार है। इस आधार पर वे कहानियाँ जो स्वीकृत मनोधारणाओं और आरोपित प्रपत्तियों के स्वीकार से अलग हैं, हमारे विवेचन के अन्तर्गत आ सकती हैं या फिर उनके विश्लेषण की यही संगति हमें उपयुक्त जान पड़ती है।''[40]

'अकहानी' को अलग कहानी आन्दोलन कहना उचित प्रतीत नहीं होता, यह तो समकालीन कहानी का ही एक पंथ नजर आता है। जिसके लेखकों ने स्वयं को पूर्ववर्तियों से अलग स्थापित करने का प्रयास इस आन्दोलन के माध्यम से किया।

'अकहानी' के शाब्दिक अर्थ पर गौर किया जाए, तो यह शब्द 'कहानी' में 'अ' उपसर्ग जोड़ कर निर्मित हुआ है। जिसका आशय है 'जो कहानी नहीं है'। परन्तु कहानी का 'कहानीपन' तो मुख्य आधार है, यदि वह कहानीपन नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी की किसी कहानी में न हुआ तो वह असफल कहानी कही जाएगी। इस सन्दर्भ में डॉ. संतबख्श सिंह का यह कथन समीचीन प्रतीत होता हैं– ''कहानी, अकहानी कभी हो ही नहीं सकती और कुछ हो सकती है। अकहानी आन्दोलन मृत घोषित हो चुका है। इसकी समाप्ति के पीछे यही विद्यागत भ्रम विद्यमान था।''[41]

अकहानी धारा की कहानी में संकट, अपरिचय, नैराश्य, तनाव आदि प्रकट हुआ है। यौन संबंध, सेक्स का नंगा चित्रण, जीवन मूल्यों की विसंगति, संत्रास आदि का खुला चित्रण मिलता है। 'अकहानी' की विशेषता है कि इनमें परिवेश के प्रति कहानीकारों ने मोह नहीं पाला है। इस सन्दर्भ में रामदरश मिश्र का कथन दृष्टव्य हैं– "अकहानी कथा का विरोधी है, वह कोई कथा नहीं गढ़ती बल्कि रोजमर्रा की जिंदगी के कुछ सहज घटित सन्दर्भों और संवेदनों को पकड़कर प्रस्तुत करती है। 'अकहानी' अंग्रेजी की उस 'एंटी स्टोरी' का हिन्दी रूप है, जो कथा न कहकर विश्रृंखलित कथाओं की एक श्रृंखला प्रस्तुत करती है, जो बिल्कुल जीवन की तरह होती है।"[42]

ओझा एक प्रतिष्ठित विद्वान, विचारक, उत्कृष्ट भाषा–शैली ज्ञात आलोचक उपन्यासकार एवं सामाजिक चिन्तक के रूप में प्रसिद्ध हैं। एक विशिष्ट निष्ठावान, समर्पित, साहित्य सेवी के रूप में ओझा जी ने अपने साहित्य में व्यक्ति, परिवार, संस्कृति, समाज, धर्म, राजनीति आदि के परिप्रेक्ष्य में अपने विचार दर्शन का प्रस्तुतीकरण किया है। उनका साहित्यिक क्षेत्र में दिया गया योगदान अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है। इस शोध–प्रबन्ध में किये गये विवेचन और विश्लेषण के आधार पर सार रूप में कहा जा सकता है कि उनमें मानवता कूट–कूट कर भरी थी। उन्होंने जीवन में आये झंझावातों को हँसते–हँसते झेला है, और जीवन के वैषम्य एवं विभीषिका को अपने अदम्य उत्साह से पराभूत कर सत्पथ का वरण किया है। ओझा जी 'सादा जीवन उच्च विचार' की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। वर्तमान स्थिति में सांस्कृतिक समन्वय की अपरिहार्य आवश्यकता है। इस दृष्टि से इनके उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना एवं समन्वय भावना का जो स्वरूप परिलक्षित होता है वह लेखक के मौलिक चिन्तन की ओर संकेत करता है। इन्होंने विभिन्न क्षेत्रीय रूढ़ियों से मुक्ति का आह्वान करते हुए जहाँ एक ओर उनके निर्मूलन का सन्देश दिया है वहीं दूसरी ओर मानवतावादी धर्म के आदर्श अनुपालन को भी अनुमोदित किया है। उनका यह निश्चित मन्तव्य है कि आज की रणनीति का खोखला नेतृत्व देश के पतन के लिए उत्तरदायी है। जनवादी एवं प्रजातांत्रिक राजनीतिक चेतना का उदय एक अपरिहार्यता है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। नैतिक मूल्यों के ह्रास के परिप्रेक्ष्य में उनका पुनः निर्माण भी प्रबुद्ध व्यक्ति का दायित्व है।

ओझा का साहित्य मात्र मनोरंजन का साधन नहीं अपितु हृदय को प्रभावित करने वाला है। जैसा कि कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। ओझा ने अपने साहित्य–दर्पण में समाज की युगीन छवि को प्रदर्शित कर समाज में व्याप्त अच्छाई–बुराई से मानव जाति को अवगत कराके सुधारात्मक तथ्यों को स्पष्ट किया है। उन्होंने समाज के

विभिन्न क्षेत्रों जैसे राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक आदि को अपने साहित्य द्वारा प्रभावित किया है। वर्तमान में साहित्य मात्र मनोरंजन नहीं रह गया है अपितु विविध समस्याओं और विचारों का वाहक बनता जा रहा है। इसी हेतु ओझा के कृतित्त्व में नवीनता, वैविध्यता तथा विशिष्टता दृष्टिगोचर होती है। लेखक का जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है। इसी दृष्टिकोण से वह जीवन की व्याख्या करता है और उसी के अनुकूल उसके विचार होते हैं। कला के लिए कला' का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो। जब हम देखते हैं, कि भाँति–भाँति के सामाजिक और राजनीतिक बंधनों से हम जकड़े हुए हैं जिधर निगाह उठती है उधर दुःख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई देता है तो कैसे सम्भव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय दहल न उठे। आज का साहित्य पाठक समस्या के साथ ही उसका समाधान भी चाहता है। समस्या का हल प्रायः उपन्यासकार पाठकों पर छोड़ देता है। लेखक स्वयं समाधान से अपरिचित रहता है। तब तो सहानुभूति पाठक के मन पर छा जाती है। वही प्रस्तुत समस्या के निराकरण का शुभ अनुष्ठान है। आज के युग में साहित्य सशक्त और सफल अभिव्यक्ति का माध्यम है। इसलिए एक दृष्टिकोण एक उद्देश्य को लेकर साहित्य रचना होती है।

किसी भी राज्य को चलाने के लिए नियम कानून का लागू होना अति आवश्यक हैं। राजा और प्रजा दोनों अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तो राज्य नित्य ही उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होगा। ओझा ने राजनीतिक क्षेत्र से जुड़े विभिन्न तथ्यों को अपने साहित्य में स्थान देते हुए आधुनिक राजनीति से त्रस्त भारतीय जनता का चित्र प्रस्तुत किया है। आज के नवयुवकों की राजनीति के प्रति बदलती सोच को भी ओझा ने अपने समाजवादी लेखन में भली–भाँति उद्घाटित किया है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। समाज में विभिन्न जाति–धर्म के लोग रहते हैं जिनकी अपनी मान्यतायें, परम्परायें एवं रीति–रिवाज होते हैं। परिवार समाज की इकाई है। आधुनिकता से प्रभावित परिवारों में टूटन एवं बिखराव आ रहा है। संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकल परिवारों की गणना बढ़ती जा रही है। ओझा जी कहते थे गाँव के बचपन के समकालीनों में अधिकतर चले गए । गाँव का नक्शा भी बदल गया है। मनुष्य की पहचान खत्म हो गयी है। नये–नये बालकों की अधिकता है। माँ, चाची, भाभी, बहन का भारी अभाव है? ये रिश्ते शून्य पर हैं। पौत्रों की पत्नियाँ पर्दा करती हैं। न भी करें तो उनसे क्या बात हो? पौत्रों में बूढ़े के प्रति आदर अच्छा है। किन्तु सहज सम्बन्ध का अभाव है। शहर व गाँव दोनों में अकेलापन है। गाँव की

अपेक्षा शहर का अकेलापन अच्छा है। यहाँ एक दो रुचि के लोग मिल जाते हैं। धर्म के साथी तो यही हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि ओझा ने टूटन व बिखराव को अन्दर तक महसूस किया है, साथ ही बदलते परिवेश में भी आशावादी स्वर को मुखरित किया हैं।

कोई भी रचनाकार अपने परिवेश से अछूता नहीं रहता। ओझा जी एक ऐसे कहानीकार हैं, जिन्हें रेगिस्तान का प्रेमचन्द कहा जा सकता है। उनकी कहानियों में गाँव और शहर का अन्तर स्पष्ट बताया गया है, वहीं संस्कृति की दृष्टि से उन्होंने बहुत गहरा अध्ययन प्रस्तुत किया है। वे स्वंय ग्रामीण परिवेश से सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु शहरी संस्कृति को भी उन्होंने बहुत करीब से देखा है। उनकी कहानियाँ वास्तविकता से भरपूर है, जिनमें बनावटीपन कहीं दिखाई नहीं देता। इस शोध प्रबन्ध में उनकी कहानियों का कथ्य विश्लेषण किया जाए तो उसमें अलग–अलग बिन्दुओं का अलग–अलग महत्त्व अपने आप दिखाई देता है। शोधकर्त्ता ने उनकी कहानियों को अलग–अलग परिवेश में आंका है।

ओझा ने अपने उपन्यासों में एक व्यक्ति की नहीं, समाज, जाति, राष्ट्र तथा युग के सम्पूर्ण जीवन की कथा को प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में ऐतिहासिक कथाओं को आधार बनाकर वर्तमान के सन्दर्भ में पुनराख्यान या पुनर्मूल्यांकन के साथ ग्रहण किया गया है। लेखक ने नारी के संघर्ष व उसकी वेदना को अन्दर से अनुभव किया है और उसे अपने उपन्यासों के माध्यम से कागज पर उतारा है। ओझा जी के उपन्यास चरित्र प्रधान है। इन चरित्रों के माध्यम से लेखक ने समाज के समक्ष आदर्श पात्रों का चित्रण कर समाज का मार्गदर्शन किया है। ओझा जी ने एक पुरुष होने के पश्चात् भी स्त्री के साथ पूर्णतया न्याय किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में पुरुषों की संकुचित, मानसिक कुदृष्टि एवं कुचक्र भावना की ओर संकेत किया है।

'सरदी और साँप' कहानी में विभिन्न पात्रों में पारिवारिक मनोविज्ञान खुलकर सामने आता है। जीतू और सलौनी के बीच में जो बातचीत होती है वह पारिवारिक मर्यादाओं को भी बताती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखा जा सकता हैं– "दिन भर का थका–हारा काकू उनकी बातें सुनता–सुनाता ही औंधिया गया। जब वह पूरी तरह खर्राटे भर चला तो जीतू बुदबुदाया– 'सलौनी'

"हाँ जीतू।"

"जलन हो रही है।"

"सहला दूँ?"

"यहाँ नहीं, उधर चल कर।"

"ऊँ हूँ?" और सलौनी ने सोते हुए काकू को टेढ़ी नजर से देखा।

"दिन भर का थका है जल्दी न जागेगा।"

"पर मुझे डर लगता है।"

"और मैं जो साथ हूँ।" जीतू ने उसे कोहनी से ठेला तो सलौनी पलटी, अरे,तुझी से तो डरती हूँ।"

"मुझसे, हुस्स पगली।" जीतू ने उसे धकिया कर ठेला।

"ए, नहीं।" और वह बिल्कुल गुड़ी–मुड़ी बन गयी, जीतू ने उसे प्रायः गोद में उठाकर चला।" देख, बोले मत, तेरे काकू की नींद कच्ची तो नहीं, फिर भी बुढ़ापे की नींद पर भरोसा करना ठीक नहीं और देख, सँभल, तेरी ओढ़नी भी घिसटे जा रही है।"

सलौनी झटककर सीधी खड़ी हो गई और लपक कर दीवार के पास जा भूल से वहीं पड़ी रह गयी तेल की शीशी को उठाकर पल्लू में छिपाती हुई पलट पड़ी।

'ए सलौनी, देख जलन हो रही है, जरा सहला दे।'[43]

लेखक ने ऐसी कहानियों की भी रचना की हैं जिनमें पति और पत्नी के बीच सांस्कृतिक अन्तराल स्पष्ट दिखाई देता है। 'दरख्त पर टंगी रोटी' कहानी में मुख्य पात्र के द्वारा यह कहना इसी बात को दर्शाता है।

"डैडी खुद के प्रति आश्वस्त थे। सत्तासीनों के बदलाव से न नाराज थे न चिन्तित थे। वे तो ऐसे मंजे हुए नौकरशाह पुर्जे थे जो नई मशीन में आसानी से फिट हो सकते थे। पर मेरी माँ के स्वभाव के प्रति वे आशंकित थे।"[44]

ओझा जी ने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, पौराणिक, दार्शनिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों का तात्विक आधार ग्रहण करके वस्तु तत्त्व का सूत्र चयन किया है। उनके उपन्यासों ने जहाँ एक ओर घटनाओं का प्रतीकात्मक रूप प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर उसमें विभिन्न विशेषताओं का समावेश करते हुए उसके माध्यम से मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का मूल्याँकन भी किया है।

भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। ओझा जी ने अपनी बात को पाठक तक सम्प्रेषित करने में आम मनुष्य की भाषा को प्रयुक्त किया है। अतः उनके सम्पूर्ण साहित्य में साहित्यिक भाषा को बहुत ही सरल एवं स्पष्ट किया गया है। शब्दों के चयन में उन्होंने अपनी भाषा में मुहावरें, लोकोक्तियाँ आदि का प्रयोग कर उपन्यासों को रोचक व प्रभावपूर्ण बना दिया।

उन्होंने अपने साहित्य में हिन्दू धर्म को विशेष महत्त्व देते हुए हिन्दू धर्म के स्वरूप एवं विभिन्न पक्षों का कथा सूत्रों के माध्यम से प्रस्तुत कर ओझा जी ने हिन्दू धर्म के रीति–रिवाजों से वर्तमान युवा पीढ़ी को अपने धर्म व उसके वास्तविक स्वरूप से परिचित

कराया है। धर्म मानव को व्यवस्थित जीवन जीने की प्रेरणा देता है। पश्चिमी खान–पान में युवा पीढ़ी हिन्दू भोजन, संस्कार तक को भूल बैठी है, जिसके कारण धर्म में अव्यवस्था फैली है। ओझा हिन्दू धर्म के पतन के वास्तविक दर्द को व्यक्त करते हैं। अतः धर्म के प्रति चेतना जागृत करने एवं ओझा का साहित्य धर्म के प्रति मानव को आस्थावान बनने का सफलतम प्रयास, ओझा जी के कथा साहित्य मिलता है।

मानव जीवन को परिष्कृत करना, स्वच्छता, पवित्रता एवं संस्कार प्रदान करना संस्कृति का कार्य है। संस्कृति ही मानव को पशुओं से भिन्नता प्रदान करती है। यह संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी विभिन्न आयामों के माध्यम से हस्तान्तरित होती रहती है। वास्तुकला, नृत्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला के अलावा परम्परायें–मान्यतायें, खान–पान, वेष–भूषा, आभूषण और साहित्य, युगीन परिवेश में ढ़लकर अगली पीढ़ी को धरोहर के रूप में प्राप्त होते हैं। ओझा ने अपने उपन्यास में ऐतिहासिक कथाओं को आधार बनाकर भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने व युवा पीढ़ी को उससे अवगत कराने का प्रयास किया है। जिस प्रकार शरीर में आत्मा शरीर को गतिमान बनाती है उसी प्रकार संस्कृति रूपी आत्मा समाज रूपी शरीर को गति प्रदान करती है। भारतीय संस्कृति का आधार पौराणिक व धार्मिक कथाएँ हैं। यह ऐतिहासिक कथाएँ संस्कृति को सजीवता प्रदान करती है। यही वे तत्त्व हैं जो मानव को पथभ्रष्ट होने से बचाते हुए समाज को सही मार्ग पर अग्रसरित करने में सहायक होते हैं।

'जान है तो जहान है' और इस जहान में रहने के लिए मानव को शारीरिक क्षमता के साथ ही बौद्धिक क्षमता को विकसित करना होगा। जीवन में घटित होने वाली विभिन्न घटनायें एवं परिस्थितियाँ मानव को विचलित कर देती है। ऐसे में उसका मनोविज्ञान ही उसे सबलता प्रदान करता है। ओझा के साहित्य के पात्र भिन्न–भिन्न परिस्थितियों से अभिभूत हो विभिन्न मानवीय भावनाओं से ग्रसित दिखाई देते हैं। ओझा ने सीता, पार्वती, माण्डवी, अपोला, द्रौपदी आदि को मानवीय धरातल पर रखकर उनकी अन्तर्वेदना को समझने का प्रयास किया है। साथ ही इन स्त्री पात्रों के माध्यम से आधुनिक स्त्री को मार्गदर्शन करने का भी प्रयास किया है। हम बिना अपना इतिहास जाने अपने भविष्य को सुरक्षित नहीं रख सकते हैं। इस दृष्टि से इनके साहित्य में सांस्कृतिक चेतना एवं समन्वय भावना का जो स्वरूप परिलक्षित होता है। वह लेखक के मौलिक चिन्तन की ओर संकेत करता हैं।

ओझा लेखक, उपन्यासकार एवं आलोचक होने के साथ–साथ सामाजिक चिन्तक के आचार्य भी हैं। इन्होंने अपनी पुस्तकों के माध्यम से समाजवादी दल की स्थापना कब,

क्यूं और किस मानसिकता में हुई है इस पर विचार किया है। ओझा ने सामाजिक मुद्दों धर्म, पिछड़े वर्ग, क्रान्ति आदि पर भी अपनी लेखनी को चलाया है। विवाह समाज की महत्त्वपूर्ण संस्था है परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से विवाह के स्वरूप एवं उसकी मान्यता में परिवर्तन आ रहा है।

ओझा के लिये लेखन उनका धर्म है, उनकी पूजा है। उनकी कहानियों व उपन्यासों को पढ़ते वक्त कुछ पात्र, कुछ घटनाऐं, वार्तालाप के हिस्से, बरसाती, वातावरण, छत, एकांतप्रियता, सूनापन आदि जाने पहचाने से लगते है, जो हमारे आस–पास ही दिखाई पड़ते हैं। यहाँ उनका साहित्य के प्रति कसाव साफ तौर पर दिखाई देता है।

ओझा ने साहित्य में विकसित हो रही शिल्पगत नवीनता पर भी प्रकाश डाला है। साहित्य का निर्माण, समाज का ही कोई जाग्रत व्यक्ति, समाज में ही घटित किसी घटना के आधार पर करता है। उस घटना को यथार्थ रूप देने के लिए भाषा–शैली पर भी ध्यान देना पड़ता है। ओझा जी की भाषा शैली यथार्थ के या मानव जीवन के काफी करीब है। इन्होंने अपने उपन्यासों में प्रतीक, रस आदि को नये सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। ओझा संस्कृतनिष्ठ भाषा को संस्कारित कर नये रूप में ढालते हैं। जिससे ये भाषा–शैली को नवीनता, सजीवता एवं सरसता प्रदान करते हैं।

2.2 निष्कर्ष –

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि ओझा जी केवल एक साहित्यकार ही नहीं अपितु युग द्रष्टा, युग स्रष्टा एवं युग चेतना भी हैं। किसी भी कलाकार की अहम् भूमिका समाज को अपनी कला के माध्यम से उचित अनुचित का बोध कराना तथा समाज में व्याप्त बुराइयों से अवगत कराके सद्गुणों का प्रसार एवं प्रचार करना होता है। ओझा ऐसे ही साहित्यकार हैं जिन्होंने अपनी चिन्तन शक्ति, बौद्धिक क्षमता एवं विचारों की भावुकता से समाज को जाग्रत किया ओर साथ ही मानव जाति का आधार तत्त्व अर्थात् हमारी संस्कृति के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। इन्हीं विशिष्टताओं ने उनके साहित्य को अमर बना दिया है। ओझा की रचनाओं का स्वर आशावादी और आस्थावादी है। उनमें कोरा शब्दजाल नहीं है बल्कि कोई–न–कोई दिशा, कोई–न–कोई मार्ग–दर्शन या कोई–न–कोई सन्देश अवश्य निहित है। ओझा जी ने स्वयं अपनी पुस्तक 'कौन जात कबीरा' की भूमिका में बताया है कि–"भाषा और साहित्य का वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा वहाँ और पालवाली नाव के बीच होता है। कबीर की उलटबाँसी ही सीधी कथनी है। कहानी की भाषा को ही व्यवस्थित भाषा कहा जा सकता है। मनोविज्ञान और कहानी का चोली–दामन का सम्बन्ध है, जो अपने पात्र के मन में चलते द्वंद्व, ऊहापोह और संघर्ष को नहीं समझ सकता, वह कभी

सफल कहानीकार नहीं बन सकता। विचारों की स्वच्छन्दता कहानीकार की श्रेष्ठता की निशानी है। मनोभावों के उद्वेलन के अलावा श्लीलता, अश्लीलता कुछ नहीं है। बात–बात में चरित्र, मर्यादा की दुहाई देने वाले ही अक्सर दुराचारी होते हैं, किन्तु मनुष्य और पशु समाज के बीच अन्तराल बनाये रखने के लिए कुछ मानवीय मर्यादाओं की उलंघना भी नहीं की जा सकती हर कहानीकार का संवेदनशील ओर कवि होना भी जरूरी है, जिस कहानी में कुछ कविता नहीं होती वह कहानी नहीं सड़ विधा होती है। शास्त्रीयता और कहानी का कोई सम्बन्ध नहीं है। अपनी कहानियों के बारे में मैं स्वयं क्या और कौन कहने वाला हूँ? 'निज भनित काहू न लागहिं नीका।' कृति का गुण–दोष निरूपणकर्त्ता तो विज्ञ पाठक–समुदाय और आलोचक वर्ग ही होता है। अतः आप लोगों की राय ही मेरी निधि है।" ओझा जी ने अपने सम्पूर्ण कहानी संग्रहों में लेखक को व पाठक को एक अलग ही अन्दाज में प्रस्तुत किया है, जो कहा है कि उसके अन्दर एक और कवि का वास होता है व अपनी कहानियों को पाठकों तक पहुँचाकर अपना सन्देश साहित्यकार के रूप में व्यक्त किया है।

सन्दर्भ सूची –

1. 'हिंदी कहानियों की शिल्प–विधि का विकास', डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 1
2. 'कहानी : स्वरूप एवं संवेदना', राजेन्द्र यादव, पृ. 8
3. 'हिंदी की प्रतिनिधि कहानियाँ, तात्विक विवेचन', डॉ० जयंती प्रसाद, पृ. 28
4. 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (द्वितीय खंड)', डॉ० विष्णुराज शर्मा, पृ. 148
5. 'समकालीन कहानी : कथ्य एवं शिल्प', डॉ० सविता मोहन, पृ. 13
6. 'काव्य के रूप', गुलाबराय, पृ. 202
7. 'समकालीन कहानी : कथ्य एवं शिल्प', डॉ० सविता मोहन, पृ.16
8. 'साहित्य सहचर', हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 76
9. 'डिक्शनरी ऑफ वर्ड लिटरेचर', टी० शिप्ले, पृ. 522
10. 'हिंदी कहानी कला', डॉ० प्रताप नारायण टण्डन, पृ.
11. 'कहानी, स्वरूप एवं संवेदना', राजेन्द्र यादव, पृ. 6
12. 'समकालीन कहानी : कथ्य एवं शिल्प', डॉ० सविता मोहन, पृ. 18

13. 'हिंदी वाङमय, बीसवीं शती', डॉ० नगेन्द्र, पृ. 23
14. 'काव्यकला तथा अन्य निबंध', जयशंकर प्रसाद
15. 'मेरे साक्षात्कार', सं. हिमांशु जोशी, पृ. 10
16. 'An Introduction to the study of Litreuture'; Hudson P.N. 454
17. 'कुछ विचार', मुंशी प्रेमचन्द्र, पृ. 53
18. वही, पृ. 53
19. 'हिंदी साहित्य का इतिहास', रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 602
20. 'कहानी : रचना प्रक्रिया और स्वरूप', बटरोही, पृ. 25
21. 'कहानी और फैंटेसी', नामवर सिंह, पृ. 22
22. 'हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास', डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 49
23. 'समकालीन कहानी : कथ्य एवं शिल्प', डॉ० सविता मोहन, पृ. 32
24. 'समकालीन कथाकार', हिमांशु जोशी, 'कथ्य एवं शिल्प', कुंदन सिंह रावत, पृ. 12
25. 'समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि', धनंजय, पृ. 19
26. 'कथाक्रम', सं. देवेश ठाकुर, भूमिका, पृ. 16
27. 'नई कहानी की पोस्टमार्टम रिर्पोट', सुदर्शन चोपड़ा (सरिता, जून 1954 ई0)
28. 'नवलेखन नया नहीं हैं' (साप्ताहिक हिंदुस्तान 25 अक्टूबर, 1964) आचार्य विनय मोहन शर्मा, पृ. 21
29. 'समकालीन कथाकार', हिमांशु जोशी, 'कथ्य और शिल्प' (शोध–प्रबंध), कुंदन सिंह रावत, पृ. 37
30. 'समकालीन कहानी : सोच और परख', डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ. 21
31. 'हिंदी कहानी : पहचान और परख', सं. इन्द्रनाथ मदान, पृ. 76
32. 'हिंदी कहानी : युग बोध का सन्दर्भ', डॉ. पुष्पपाल सिंह, पृ. 57
33. 'हिंदी कहानी, पहचान और परख', सं. इन्द्रनाथ मदान, पृ. 13
34. 'नई कहानी, नए प्रश्न', डॉ0 संतबख्श सिंह, पृ. 159
35. 'हिंदी कहानी : एक अंतरंग पहचान', रामदरश मिश्र, पृ. 100
36. –– वही ––
37. 'समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि', डॉ. धनंजय, पृ. 36
38. 'समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि', डॉ. धनंजय, पृ. 48
39. 'समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि', डॉ. धनंजय, पृ. 49
40. 'हिन्दी कहानी : फिलहाल' डॉ. चन्द्रभान रावत, पृ. 35

41. 'कथालेखिका मन्नू भण्डारी' डॉ. ब्रजमोहन शर्मा, पृ. 30
42. 'अकविता और फला का सन्दर्भ', श्याम परमार, पृ. 13
43. 'सरदी और साँप', 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 27
44. 'बंधवा', 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', रामकुमार ओझा, पृ. 90

अध्याय तृतीय

रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्य विश्लेषण

अध्याय तृतीय
रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्य विश्लेषण

कोई भी रचनाकार अपने परिवेश से अछूता नहीं रहता। ओझा जी एक ऐसे कहानीकार हैं, जिन्हें रेगिस्तान का प्रेमचन्द कहा जा सकता है। उनकी कहानियों में गाँव और शहर का अन्तर स्पष्ट बताया गया है, वहीं संस्कृति की दृष्टि से उन्होंने बहुत गहरा अध्ययन प्रस्तुत किया है। वे स्वयं ग्रामीण परिवेश से सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु शहरी संस्कृति को भी उन्होंने बहुत करीब से देखा है। ओझा जी ने स्वयं कहा है कि "हिन्दी कथा–साहित्य में प्रेमचन्द की धारा से जुड़ाव, मुख्य–धारा से जुड़ना माना जाने लगा है, किन्तु मैंने सप्रयास ऐसा कुछ नहीं किया है कि प्रेमचन्द की परम्परा के अनुगामियों के दावेदारों की पंक्ति में खड़ा नजर आऊँ। इसका आकलन तो स्वयं पाठक ही करेंगें।"[1]

उनका कहना है कि मेरी कहानियों में पात्र तथा परिवेश दोनों की ही प्रधानता रहती है। प्रकृति और आदमी को मैं कभी अलगाता नहीं। प्रकृति पुरुष की पूरक है। आदमी प्रकृति से ज्यूं–ज्यूं कटा, संवेदना और शाश्वत मानवीय मूल्यों से त्यूं–त्यूं कटता गया ओर छूछा ठीकरा भर बनकर रह गया।"[2] इसी प्रकार ओझा जी ने 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह की भूमिका में भी बताया है कि– "मेरी कहानियों को राजस्थान की माटी की गंध सने मुहावरें और शब्द जहाँ–तहाँ टंककर आँचलिक बना देते हैं। मूर्धन्य कहानीकार और सम्पादक श्री राजेन्द्र यादव ने भी मेरी 'त्रिकाल' कहानी की घनघोर आँचलिकता के प्रति आशंका की अँगुली उठाई है तो उसे सराहा भी है। भाई राजेन्द्र जी का संकेत मेरे श्रेय के लिए ही है। किन्तु यह आँचलिकता ही मेरी कहानियों का पोषक तत्त्व है। फिर प्रश्न भी है कि, बिहार के 'रेणू' जी को घनघोर आँचलिकता की अबाध छूट है तो राजस्थान के कथाकारों को क्यों नहीं।"[3] उनकी कहानियाँ वास्तविकता से भरपूर है, जिनमें बनावटीपन कहीं दिखाई नहीं देता। इस शोध–प्रबन्ध में उनकी कहानियों का कथ्य विश्लेषण किया जाए तो उसमें अलग–अलग बिन्दुओं का अलग–अलग महत्त्व अपने आप दिखाई देता है। शोधकर्त्ता ने उनकी कहानियों को अलग–अलग परिवेश में आंका है।

3.1 परिवेशगत कथा (ग्रामीण और शहरी) –

ओझा जी की कहानियों में ग्रामीण और शहरी परिवेश अपनी–अपनी विशेषताओं को समेटे हुए हैं। उनके शब्दों में "कहानीकार कहानी में सत्य को काल्पनिक कथानक के माध्यम से प्रेषित करता है, पर उसके अन्तराल में वास्तविक जीवित पात्र वास करते हैं। हर कहानी में एक और कहानी होती है। हर पात्र के अन्दर दूसरा पात्र वास करता है।"[4]

इसी तथ्य को ओझा जी की कहानी 'सत्यमेव जयते' में देखा जा सकता है। गाँधी और साक्षी बाबा दोनों ऐसे चरित्र हैं, जिन्हें ओझा जी ने तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। गाँधी चाहे शहरी परिवेश के हों किन्तु उन्होंने गाँवों की जनता को इस कद्र प्रभावित किया कि गाँधी के विषय में लोग शहरी और ग्रामीण का अन्तर करना भूल गए। उनकी दृष्टि में गाँव हो या शहर जनता जनार्दन ही होती है। आजादी की लड़ाई में गाँव और शहर का भेद मिट गया वहाँ तो केवल आजादी की लड़ाई थी। एक ऐसी लड़ाई, जिसमें गाँव और शहर का भेद न किसी न जाना और न ही जानने की इच्छा की। "जन जनार्दन होता है और जब जन उद्वेलित होता है तो साक्षात् रूद्र बनकर ताण्डव करने लगता है। आजादी की आखिरी लड़ाई का ताण्डव शुरू हो चुका था।"[5]

अकाल की विभीषिका जन–जन को प्रभावित करती है। वह न तो हिन्दू–मुस्लिम का भेद देखती है और न ही गरीब–अमीर में अन्तर करती है। 'सूखे की एक रपट' कहानी में ओझा जी ने जहाँ गाँव के रेगिस्तान को हू–ब–हू पाठक के सामने प्रस्तुत किया है वहीं उनके प्रतीक आज भी प्रासंगिक है। गाँव में अपनी नंगी आँखों से रेगिस्तान को निहारते लेखक का यह कथन बहुत प्रभावी बन पड़ा है– "नंगी आँखों देखे जाने का आदि है रेगिस्तान। रंगीन चश्मा चढ़ाकर देखने वालों की आँखों में खारीश पैदा करता है रेगिस्तान। खुली आँखों देखे जाने पर रेगिस्तान का पूरा लेंडस्केप पुतलियों पर उतर आया। आश्विन बीतने को था, फिर भी सूरज में जेठ की तपिश भरी हुई थी। धरती भटियारिन के भाड़ सी जल रही थी, गर्म धूल में भूनते चनों के समान रेत के वर्तुल उठ–उठ कर भूतों के समान घूम रहे थे।"[6] इस प्रकार से ओझा जी का कहना है कि कहानीकार अपने गाँव के परिवेश को कभी नहीं भूला पाता। उन्होंने स्पष्ट कहा है "मेरा गाँव, बस इतने भर को, कि मैंने कभी वहाँ जन्म लिया था। होश सम्भालते ही उससे कट गया था और फिर उस मरूस्थलीय गाँव से मेरा सम्बन्ध उतना ही रह गया था, जितना कि कटी नाल से किसी शिशु का रह जाता है। किन्तु जब सुना कि वह गाँव भीषण सूखे की चपेट में है तो मेरे मन में एक मरियल सी ममता उस उजाड़ खेड़े के प्रति जागी"[7] इससे ओझा जी ने यह स्पष्ट किया है कि जन्म भूमि से किसी का भी रिश्ता कभी भी नहीं छूटता। चाहे व्यक्ति कहीं भी जाकर रहे अपने ग्रामीण परिवेश को, अपने गाँव की संस्कृति को कभी भी नहीं भूला पाता। यही कारण है कि जब अपनी जन्म भूमि पर कोई संकट आता है तो अपनी अंतरात्मा में एक कचोट सी पैदा होती है और व्यक्ति के कदम अचानक ही अपने गाँव की ओर बढ़ जाते हैं।

इस तरह ओझा जी ने 'सूखे की एक रपट' कहानी में अकाल के समय जहाँ कुत्तों का चित्रण किया है वहीं प्रतीक रूप में इंसानियत को नोचने वाले व्यक्तियों पर भी करारा व्यंग्य किया है। लेखक ने एक जगह जो शब्द चित्र प्रस्तुत किया है वह दर्शनीय है। "सूखे में कुत्ते पुष्ट हो जाते हैं। कुत्ते कई किस्म के होते हैं। कुत्ते जो होते हैं वे तो होते ही हैं पर आदमियों में कुत्ते वे होते हैं जो सूखा–पीड़ितों के लिए जुटाई गई राहत सामग्री को बीच में ही खा जाते हैं। वहाँ एक कुत्ता, जो असल कुत्ता था, एक शिशु को अपने जबड़े में दबाये पूरे वेग से दौड़े जा रहा था। कई एक पुष्ट कुत्ते उसका पीछा किए जा रहे थे। शिशु भी हो सकता था, नवजात मेमना भी। हम फोटो उतारने में तल्लीन थे। नस्ल की पहचान करना हमारा काम भी न था।"[8]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने आज के मानव का पर्याय कुत्ते से भी बदतर बताया है जो अपने से अन्य मानव के प्रति दया का भाव नहीं रखता है और उसे इस प्रकार से बताते हैं कि गरीबों को जुटाने वाली राहत सामग्री को बीच में ही निगल जाते है ंऔर उनको भूख के मारे मरते देखकर ही खुश होते हैं व उनकी इस दृश्य की फोटो उतारने में मस्त रहते हैं।

स्पष्ट है कि ऐसा चित्रण अकाल में गाँव की स्थिति का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करता हैं।

ग्रामीण और शहरी परिवेश का एक बहुत बड़ा अन्तर सहृदयता तथा हृदयहीनता का है। 'कौन जात कबीरा' कहानी संग्रह में ओझा जी ने 'सूखे की एक रपट' कहानी में गाँव के एक बुजुर्ग को लेखक के द्वारा बिस्किट दिए जाने का उदाहरण प्रस्तुत किया है। लेखक कहता है "हमने उसे भी कुछ बिस्किट दिए किन्तु उसने तुरन्त निगल जाने के बदले उन्हें अपनी धोती के पल्लू से बाँध लिया। निश्चय ही वह बाल–बच्चेदार था।"[9] इन पंक्तियों में लेखक ने ग्रामीण परिवेश की इस सहृदयता को दिखाया है कि चाहे कितनी ही भूख हो किन्तु बच्चों की भूख के सामने बड़ों की भूख कोई मायना नहीं रखती। अपने बच्चों के लिए बिस्किट को सहेजना इसी वृत्ति का परिचया कहा जा सकता है। ग्रामीण अँचल के लोग कितने भोले–भाले होते हैं इसका एक उदाहरण इसी कहानी में लेखक ने दिया है जहाँ शहर के पढ़े–लिखे लोगों को बैंक अधिकारी अथवा रेवन्यू का अधिकारी मानकर उसके सामने गिड़गिड़ाना आम बात कही जा सकती है। ग्रामीण को इसके अलावा और किसी विभाग की जानकारी से कोई मतलब नहीं है। वह तो यह जानता है कि उसकी गुजर–बसर के लिए कर्ज आवश्यक है और यह कर्ज इसी विभाग के द्वारा मिलता है। तभी तो एक बुजुर्ग का शहर के पढ़े–लिखे लोगों के आगे अपनी ही स्थानीय बोली में

गिड़गिड़ाने की पीड़ा कहानी में स्पष्ट दिखाई देती है। "म्हैं अबार हालौ (लगान) नहीं देयण सकां सा! सोसायटी रो करजो नहीं चुकायाण सकां सां! म्हारी हालत देखो साब!"[10]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने ग्रामीण अँचल के लोगों व शहरी आदमी के बीच में काफी अन्तर बताया हैं। ग्रामीण अँचल में सूखे की वजह से शहर से बैंक या सोसायटी का ऋण भी सही समय पर नहीं चुका पाता है क्योंकि किसी अन्य कार्य का न होना और सूखे में बरसात का न हो पाना ही उनका सबसे बड़ा कर्जा चुका नहीं पाने का कारण था और इसी प्रकार ग्रामीण परिवेश के लोग अपनी दयनीय दशा को लेकर शहर के बैंक अधिकारियों के आगे हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते रहते हैं।

आज शहर के डॉक्टर किस प्रकार से मरीजों की उपेक्षा करते हैं इस सम्बन्ध में अखबारों में खूब पढ़ा जा सकता है, किन्तु ग्रामीण परिवेश में एक दाई डॉक्टर से कितनी होशियार होती है तथा अपने काम में परिपूर्ण होती है इसका उदाहरण भी लेखक ने एक कहानी में प्रस्तुत किया है। चाहे किसी भी जाति, वर्ग, समुदाय से वह सम्बन्ध रखती हो किन्तु दाई जब धाई के रूप में अपना काम निभाती है तो उसके लिए मानव जाति के अतिरिक्त और कोई जाति नहीं होती। इस तरह लेखक ने कहा है कि शहरी परिवेश में चाहे कितनी ही आत्मीयता हो किन्तु एक–दूसरे के खून की पहचान के सम्बन्ध में लेखक ने 'खून लामज़हब है' कहानी को प्रस्तुत किया है। इस कहानी में एक कॉलोनी दो हिस्सों में आबाद होती है। एक हिस्सा मुसलमानों का तथा दूसरा हिस्सा हिन्दूओं का हैं। जब साम्प्रदायिकता की आग भड़कती है तो खून खराबा होना आश्चर्य की बात नहीं होती, किन्तु छोटी–मोटी बात पर शक करना और एक–दूसरे के खून का प्यासा हो जाना कोई नई बात नहीं होती। शहर में साम्प्रदायिकता की स्थिति को लेखक ने इन शब्दों में बताया है– "फसाद के पूरे आसार बन गए, नौजवान कुर्तों की आस्तीनें चढ़ाने लगे, शाम का किया बहद सुबह के साथ टूट चुका था। बुजुर्ग अब आग में घी डाल रहे थे। अब वे इन्सां न थे, धर्मात्मा या दीनदार थे। मुर्दा मिट्टी को मिट्टी में बिसमार करने अपने–अपने कौमी रिवाजों के तरफदार थे। दोनों ओर के दो–दो छोकरे छुरा, तलवार, त्रिशुल लाने दौड़ चले।"[11]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने हिन्दू–मुसलमानों की साम्प्रदायिक कट्टरता का वर्णन किया है। 'खून लामजहब' कहानी में बताया है कि एक–दूसरे धर्म के प्रति जब साम्प्रदायिक दंगा, फसाद फैल जाता है तो व्यक्ति अपने से अन्य धर्म के व्यक्ति को काट–बाढ़ने को तैयार हो जाता है, लेकिन कहानी में एक–दूसरे की जान बचाई जाती है।

चाहे वो किसी भी प्रकार से क्यों न बचाई जाये और एक कौम (जाति) वाले दूसरी जाति के लोगों को अपने यहाँ शरण देते हैं।

ऐसी स्थिति में भाग–दौड़ में यह भी पता नहीं चलता कि कौन किधर जा रहा है। "अब न हिन्दू को अन्दाज था कि वह पनाह पाने के लिए मुसलमानों की बस्ती की ओर भागे जा रहा है। न मुसलमान को अनुमान था कि वह जान बचाने के लिए हिन्दू आबादी की ओर भागे जा रहा है। जिसका जहाँ सींग समाया उसने उसी दड़बे में पनाह ली।"[12] इतना कुछ होते हुए भी अखबारों में शहरी परिवेश के अन्तर्गत जो रिर्पोटिंग की जाती है उसे भी लेखक ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है– "इसी इलाके की दूसरी पॉकेट न्यूज थी– दंगे के दौरान हिन्दू–मुसलमान दोनों ने एक दूसरी कौम वालों को पनाह दी। अपनी जान पर खेल कर उनकी जान बचाई, जिससे साबित होता है कि अभी खून से खून की पहचान जुदा नहीं हुई है।"[13] इस प्रकार के कथ्य से लेखक ने भारतीय संस्कृति की पहचान कराने का भी प्रयास किया है, जिसे हिन्दू और मुस्लिम में भेद करना गंवारा नहीं है।

शहर की भागम–भाग तथा घरों की घुटन का वर्णन लेखक ने 'शेष सब सुविधा' कहानी में किया है। गाँव में दादी माँ को चूल्हे में जलती हुई लकड़ियों का सिकाव प्यारा लगता था वहीं अब शहर में चूल्हों का प्रचलन न होना कहीं न कहीं उसे अखरता है। शहर में जो स्थिति है उसका चित्रण लेखक ने मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है– "भूख से ना मरे पर जाड़ा जरूर मार देता होगा। सुबह की सर्दी, दोपहर की सीलन, रात का जाड़ा। पर सुना है शहर में भागम–भाग की दौड़ है। पर जिस किसी के दिल की धड़कन पर थर्मामीटर धरा कि पाया ठण्डा ठीर। इन घरों की घुटन में तो जब आँख मिची रात, जब आँख खुली दिन, पक्षी चहचहाते तो होंगे, पर भौं–भौं का शोर सुन भयभीत हो मर जाते होंगे।"[14]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने ग्रामीण परिवेश में रहने वाली बुजुर्ग महिला दादी अम्मा को अपने ग्रामीण अँचल की जो सुख–सुविधाएँ मिलती हैं वो ही सब अच्छी लगती है जबकि शहरी परिवेश की समस्त प्रकार की सुख–सुविधाओं से दादी अम्मा खुश नहीं होती है और ना ही किसी से कह पाती है।

इसी प्रकार से ओझा जी ने इसी कहानी के एक अन्य उदाहरण में बताया है कि उसी दादी अम्मा को जब चूल्हे की कमी खटकती है तो वह बहू से एक प्रश्न करती है क्या घर में चूल्हा नहीं है? बहू ने भी सटीक उत्तर दिया "अम्मा जी! यहाँ मिट्टी का चूल्हा कहाँ? यहाँ तो गैस से जलने वाला यह लोहे का जन्तर है, बस यहाँ एक यही दुविधा है, शेष सब सुविधा है। और बहू ने बैड रूम में ला सुलाया तो दादी को जैसे बरफ में धकेल

दिया गया। रबड़ के गदैले में धंसी तो उस धसोन को अन्त नहीं आ रहा। रेशमी दुलाई, जयपुरी रजाई। मेरे मनुआ, यही एक दुविधा है, शेष सब सुविधा। पर ऐसी सुविधा को ओढ़ूं कि बिछांऊँ, बूझें किससे ? यहाँ मैं बेटे–बहू के रूतबे को दाग लगाने तो आई नहीं कि घर की नौकरानी, माई–बाई से बोलूँ–बतलाऊँ। इस शहर में छोटों को मुँह लगाना, हैसियत को दाग लगाने बरोबर जो है। यह कोई गंवई, गाँव तो है नहीं कि हर कोई से बोलो, बतलाओ। दुःख–सुख बांटो।"[15]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने बताया है कि जब दादी अम्मा को डन्लप का गद्दा दिया जाता है तो उससे भी खुश नहीं होती है और अपने गाँव के गूदड़े को ही पसन्द करती है। परन्तु इन सुविधाओं को मिलने के बाद खुश ना होकर भी अपने बेटे–बहू के रूतबे पर दाग नहीं लगने देती है। उसी सुविधाओं से जो अपने बेटे–बहू के द्वारा दी जाती है। उसी से गुजारा कर लेती है।

3.2 पारिवारिक कथा (ग्रामीण और शहरी) –

रामकुमार ओझा परिवार के अन्तर्गत छोटी से छोटी समस्या को भी अपनी कहानी में उजागर करने में माहिर हैं। परिवार एक महान काव्य है तो उसकी कहानी एक छोटी कविता। खुद ओझा जी ने कबीर की कथनी के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया है कि हर कहानीकार का संवेदनशील और कवि होना भी जरूरी है, जिस कहानी में कुछ कविता नहीं होती वह कहानी नहीं सड़विद्या होती है। वे शास्त्रीयता और कहानी में कोई सम्बन्ध नहीं देखते। 'सूखे की एक रपट' कहानी में दाई एक ऐसा पात्र है जो उच्च और निम्न वर्ग के लोगों की आत्मीयता का पुल कही जा सकती है। वह चमारिन है लेकिन उच्च वर्ग के परिवारों में उसकी अच्छी पैठ है। वह अपनी स्थिति की अपेक्षा अपने कर्त्तव्य को अधिक महत्त्व देती है और यही कर्त्तव्य दूसरे परिवारों से उसके जुड़ाव को और मजबूत करती है। वहाँ ब्राह्मण और चमार का नहीं बल्कि दो परिवारों के बीच में एक सामन्जस्य स्थापित करने वाली पात्र के रूप में उसे देखा जा सकता है।

इस तरह 'सरदी और साँप' कहानी में विभिन्न पात्रों में पारिवारिक मनोविज्ञान खुलकर सामने आता है। जीतू और सलौनी के बीच में जो बातचीत होती है वह पारिवारिक मर्यादाओं को भी बताती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों को देखा जा सकता हैं– "मेरा सहलाए ठेंगा, 'आह वह सूं–सूं करती औसारे की ओर बढ़ गयी। जीतू ने उचककर पीछे से ओढ़नी थाम ली तो इस दफा वह बल खा गई। 'छोड़ मेरी ओढ़नी। देख छोड़ता है कि नहीं– का....आ....आ....!

'ए नहीं, काकू को नहीं पुकारना।'

'तो जा, चुपचाप सो रह। सलौनी के दाँत भूरे बादल में बिजली के समान चमके। बिजली तो औसारे में जाकर छिप गई पर जीतू वहीं खड़ा उल्लू बना घूरता रहा। बड़ी देर तक वैसे ही खड़ा रहा और जब रिमझिम बूँदों से बिल्कुल सराबोर हो गया तो बुदबुदाया–'समझ में नहीं आता औरत जात ऐन वक्त पर पलट क्यों जाती है?"[16]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने अभिव्यक्त करते हुए बताया है कि जीतू और सलौनी एक–दूसरे से प्रेम करते हैं। परन्तु कह नहीं पाते और जब सलौनी किसी बात को लेकर अपने काकू को पुकारती है और जीतू मना करता है, लेकिन फिर भी वह पुकारती है, तब जीतू कहता है कि ये औरत जात ऐन वक्त पर पलट क्यूँ जाती है।

ओझा जी ने ऐसी कहानियों की भी रचना की है जिनमें पति और पत्नी के बीच सांस्कृतिक अन्तराल स्पष्ट दिखाई देता है। 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' संग्रह में संकलित 'दरख्त पर टंगी रोटी' कहानी में मुख्य पात्र के द्वारा यह कहना इसी बात को दर्शाता है।

सत्तासीनों के बदलाव से न नाराज थे न चिन्तित थे। वे तो ऐसे मंजे हुए नौकरशाह पुर्जे थे जो नई मशीन में आसानी से फिट हो सकते थे।[17]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने बताया है कि एक बच्चा अपने डैडी को बताता है कि वो अपने रूप में खुद के प्रति आश्वस्त रहते हैं और सत्तासीन चाहे कैसे भी क्यों ना हो नाराज नहीं होते हैं। यहाँ संस्कृति के अन्तर को पात्र के द्वारा इन शब्दों में भी अभिव्यक्त किया गया है "गनीमत थी कि गधे पालने का युग न था अन्यथा मेरा जन्म किसी गधे के थान में हुआ होता। माँ को जब–तब आज के तौर पर जेल जाना पड़ता और मुझे अनाथालय भिजवा दिया जाता।"[18] ऐसी कहानियों में परिवार में एक–दूसरे के विचारों में होने वाला अन्तर लेखक ने बताया है वहीं आधुनिकता का व्यंग्य भी प्रस्तुत किया है। किस प्रकार से औरत और मर्द अलग–अलग रास्तों पर चलकर भी अपने परिवार का पालन करते हैं किन्तु उनके अलग–अलग रास्ते उनकी संतान के लिए कितने कांटे बो देते हैं इसका उन्हें ध्यान ही नहीं होता।

रामकुमार ओझा ने 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' संग्रह में संकलित 'बंधवा' कहानी एक ऐसी कहानी है, जिसमें ओझा जी ने गरीब परिवारों की गिरी हुई स्थिति को प्रस्तुत किया है। परिवार के लोगों को यह पता ही नहीं होता कि उन्होंने कितना कर्ज लिया है और वह कब तक उसे चुका पायेंगे। इसके लिए उन्हें उम्र भर ठेकेदारों के बंधुआ मजदूरों की तरह जीवन गुजारना होता है। वे अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कर सकते। गरीब लोगों की सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में ओझा जी ने इस कहानी में यह लिखा है– "सारी

लेबर उत्कंठित और आतंकित। साहब जी सौगात देते हैं तो नत्थ भी उतार धरते हैं। कानाफूसी, सरगोशी, किस्सागोई का बाजार गर्म। मर्दों से ज्यादा लुगाई–लेबर में चर्चे। रामप्यारी चटखारों में खारी बात भी मीठी बनाती है। बड़ी स्यानी–सुलझानी लुगाई है रामप्यारी। जमाना देखे है, उम्र पाई है। कितने कैम्प साहबों की सोहबत में जवानी गलाई मगर अभी बुढ़ाई नहीं है। दुःख यही है कि साहब बाबुओं के टैन्टों में अब उसकी सीधी नियुक्ति नहीं होती। पर उसकी सप्लाई ही तो अभी कैम्प साहबों के टेन्टों की रंगीली रात है। कैम्प में सप्लाई शब्द का बड़ा चलन है, जैसे बाजार में दलाल का चलन है।"[19]

रामकुमार ओझा जी के 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' संग्रह में संकलित 'बंधवा' कहानी में रत्नी और तेजू की पारिवारिक स्थिति को संवेदनशील बनाते हुए इन शब्दों में प्रस्तुत किया है– "रतनी तेजू की जवांमर्दी से नहीं डरी पर नामर्दी से डरने लगी है। आदमी धौल–धप्पड़ करता है तो लुगाई को अपनी समझता है। जब सबद–साखी सुनने लगता है तो बेगाना हो जाता है। शुरूआती के दिनों में रतनी के साथ मेट ने कुचरणी करनी चाही तो तेजसिंह ने लाठी भाँज ली। तब वह सचमुच तेजसिंह था। फिर जब बड़े बाबू की नीयत बिगड़ने लगी थी तो उसका हाथ मूँछों पर जा कर अटक गया था, क्योंकि तब वह तेजू बन चुका था, किन्तु अब जो बड़े कैम्प साब आने को हैं तो उसकी आँख बोलती है, चाल सोचती है कि रतनी साब की पसन्द की छंटाई आ जाये। बदले में बस, पुलाव की टप्परी की जगह टीन की टाटी में रहवास मिल जाए। उसकी चाहत ने अब उसे तेजुड़ी बना दिया हैं।"[20]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी उन मजदूर महिलाओं को बताया है जो अपनी घर की आर्थिक परिस्थिति को लेकर काफी परेशान है और साहब लोगों की पसन्द बनकर रह गई है। तेजसिंह जब उसकी पत्नी रतनी के साथ मेट के द्वारा छेड़ा जाता है तो वह उसकी लाज बचाने के लिए लाठी उठा लेता है परन्तु जब साहब की नीयत उसकी पत्नी के प्रति खराब होती है तो अब वह कुछ नहीं करता और सोचता है कि साहब को पसन्द आ जाये उनकी छंटाई में तो सही है। इस प्रकार से तेजसिंह भी अब तेजू बन जाता है। साहब लोगों के आगे अपनी दयनीय दशा और आर्थिक परिस्थिति को लेकर।

ओझा जी ने परिवार में स्त्री की मानसिक स्थिति को बखूबी प्रस्तुत किया है। उनकी कहानी की पात्रा रतनी घर छोड़कर आते हुए नहीं डरी, वह तन तोड़कर मेहनत से भी नहीं थकी किन्तु अपने पति के रहस्यमय टेढ़े बोलों से वह डर गई। यदि उसके शरीर पर मिट्टी की परत जमी तो उससे उसे ऐसा लगा कि वह मिट्टी उसके रूप के लिए सुरक्षा का काम कर रही है। लेकिन जब औरतों को ठेकेदार की तरफ से साबुन की

टिकिया दी जाने लगी और यह आदेश दिया गया कि वह नहाये–धोये तो वास्तव में रतनी के मन का भय उसके चेहरे पर आ गया। वह जानती थी कि इसका अर्थ क्या होता है? परिवार में देहरी की पूजा वह सदैव करती थी और देहरी की पूजा करते समय वह क्या माँगती थी? इसे ओझा जी ने 'उक्त' कहानी में इस प्रकार प्रस्तुत किया हैं– "रतनी ने घर छोड़ आते समय द्वार–पूजा की थी। देहरी माता पर अपनी चुंदरी धरी थी। 'ऐ देहरी माता! तू जैसे मुझे इस घर में बाबुल की द्वारी से बहू बनाकर लाई, वैसे ही बंधवागिरी से छुड़वा कर लौटा लाओ। मैं तेरे ऊपर नारियल बधारूं।"[21]

एक ऐसी भी स्थिति आती है जब औरत के लिए उसका परिवार उसी का अभिशाप बन जाता है और फिर उसके लिए दुनिया में कहीं कोई आकर्षण नहीं रह जाता। प्रत्येक स्थिति में लेखक ने परिवार के उतार–चढ़ाव में परिस्थितियों को उत्तरदायी माना है और यह स्पष्ट किया है कि चाहे कोई कितना ही ताकतवर हो वह भी अपनी परिस्थितियों के सामने नतमस्तक हो जाता है। प्रस्तुत विवरण इस सम्बन्ध में उदाहरण के रूप में दर्शनीय है।

"पर तेजू तो गारे की गार में धंसे जा रहा था और चाँद ढलने तक पूरा धंस गया। रतनी की आब उतर गई थी। नारी की सहेजी पूँजी चुक गई थी। अब सम्भाल कर रखने को कुछ नहीं था। दास–धर्म में पूरी तरह दीक्षित होने पर कौन सी निजी सम्पत्ति। कौन मरजादा। जितना उसका धणी कृष्ण से उसका सखीपन का नाता तो था नहीं कि दुःशासन को रोक पाता। उसे तो कैम्प साहब आसानी से पुरानी साड़ी, लुगड़ी उतार कर नया जोड़ा पहना चुका था। अब उस चुनरिया पर जितने दाग लगें, लग जाएं। रूखसारों पर घाव बनें बन जाएं। छाती पर दागी हो कि कोख को दाग लगे– सब बरोबर।"[22]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने बताया है कि मजदूरी करने वाली महिलाओं के साथ साहब लोग उनको अच्छी सी पोशाक पहनाकर पुरानी फटी साड़ी–लुगड़ा उतरावकर धर देते थे और अपनी इच्छा पूर्ति करते थे। मजदूरी करने वाली महिलाओं के साथ और अब ये महिलाएँ भी ऐसी ही बन गई थी कि उनके चुनरी पर दाग लगे या शरीर पर कोई घाव हो इनको कोई फर्क नहीं पड़ता था। इनके लिए सारे दाग एक जैसे ही हो गए थे।

परिवार अर्थव्यवस्था पर निर्भर होते हैं। लेखक के अनुसार सरकार के आँकड़ों में अर्थव्यवस्था सुधरती भी दिखाई जाती है, विकास की दर भी बढ़ते हुए बताई जाती है लेकिन जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में यह आँकड़े कभी काम नहीं आते। परिवार की स्थिति उसके बजट पर निर्भर करती है और यदि एक बार यह बजट गड़बड़ा जाए तो फिर सम्भलना बहुत मुश्किल होता है। परिवार का मुखिया कोट खरीदना चाहता

है किन्तु उसकी कीमत वह नहीं दे सकता। लेखक यह स्पष्ट करता है कि मँहगाई कोड में खाज की तरह बढ़ती जाती है, लेकिन कोट जीवन की अनिवार्यता है और यदि कोट खरीदना है तो घरेलू बजट में कटौती करनी ही होगी। यहाँ परिवार की स्थिति के सन्दर्भ में लेखक ने 'कौन जात कबीरा' कहानी संग्रह में संकलित 'कोट' कहानी में यह स्पष्ट कहा है– "पर गरीब की आय लम्बोतर की दुलाई के समान ओछी और ओछी व और ओछी पड़े जा रही थी। बाबू दम्पत्ती ने जैसे–जैसे बजट में कटौती की। हिन्दुस्तानी रेल के प्रतीक्षारत मुसाफिर के समान वे पहली तारीख का इंतजार करते रहे पर पहलौती बड़ी देर से आई।"[23]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने कहा कि गरीब व्यक्ति की आय सुकड़ती दुलाई की तरह है जो सुकड़ती–सुकड़ती और घटती जा रही है और इसी को लेकर गरीब अपनी पहली तारीख का इन्तजार करता रहता है।

अपने परिवार को पालने के लिए कोट की चाहत को छोड़कर लटकते हुए स्वेटर में दफ्तर जाना आम बात हो जाती है। लेखक के अनुसार भोले दम्पत्ती यह नहीं जानते कि हमारी अर्थव्यवस्था जिन्दाबाद–मुर्दाबाद का नारा है। अर्थव्यवस्था सरकारी आँकड़ों में सुधरती जाती है लेकिन गरीब का आटा गीला होता जाता है। कबीर की कम्बल तो भीगते रहती है और भारी होती जाती है। गृहस्थी में मसूर की दाल की जगह लौकी की भाजी बनने लग जाती है। प्याज यदि गायब हो गया तो नमक और रोटी से ही गुजारा करना पड़ता है। सरसों का तेल भी मिलावट युक्त हो गया, लेकिन राष्ट्रीय विकास की रेल पहले ही लाईन क्रॉस कर गई। अब घरेलू बजट में कटौती की कोई गुंजाईश नहीं रही। इंक्रीमेंट ऊँट के मुँह में जीरे के समान होता है इसलिए परिवार में आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं और यह इंक्रीमेंट भी उसकी आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकते। कहानी का प्रमुख पात्र यह सोचने को विवश हो जाता है कि परिवार को चलाने वाले ये लोग इतना पैसा कहाँ से लाते हैं। दुकानदार की समझदारी और व्यवहार कुशलता के सामने एक सामान्य गृहस्थ किस कदर बेबस हो जाता है उसका चित्रण लेखक ने इस प्रकार किया है– "बाबू गोपीनाथ में अब और त्याग करने लायक पुरुषार्थ नहीं बचा था। उनके पाँवों तले धरती खिसक गयी। सर चकराने लगा। वे बगल में खड़ी एक फैशनेबल षोड्शी के कन्धे पर झूल गये। उस भद्र महिला को जैसे बर्र ने काट खाया। जीटी.वी. की एंगलोइण्डियन हिन्दी की न्यूज वाली भाषा में 'जानबुलवाली शैली' में गालियों की झड़ी लगा दी। तेवर इस कदर बदले कि यदि बाबू साहब होश में हो तो जरूर बेहोश हो जाते।"[24]

इसी प्रकार से ओझा जी ने 'शेष सब सुविधा' कहानी में परिवार में पीढ़ियों की अन्तर्दशा का चित्रण लेखक ने बखूबी किया है। दादी अम्मा जब शहर में आती है तो अपने बेटे के बन्द घर में उसे गाँव की न तो वह खुली धूप दिखाई देती है और न ही मूंज की चारपाई का आनन्द उसे मिलता है। वह तो प्रत्येक दिन यही सोचती है कि किसी तरह आज की रात कट जाए, भोर होते ही बेटे से कहूँगी की तेरी यह जयपुरी रजाई तुम लोग ही ओढ़ों, मुझे तो गाँव का गुदड़ा ही ठीक है। यहाँ लेखक ने यह चित्रण किया है कि जयपुरी रजाई का रेश्मी मखमल आधुनिकता में तो प्रगति का परिचायक हो सकता है किन्तु भरी सर्दी में वह कंपकंपी को नहीं रोक सकती। गाँव में भारी रजाई जितने अच्छे ढंग से सर्दी को रोकती है वैसा आनन्द इस रजाई में नहीं आता।

लेखक के अनुसार "हर रात की यही सांसत, अपने आप से बात, बतलावन। आधी रात के बाद दर्द गहराने लगता और भोर तक पोर–पोर में पैठ जाता। दादी तोसक का ढासना दे बैठ जाती। अपने मनुआ से बतियाती थक जाती तो हरि नाम की टेर लगाती पर जाड़े के ज्वार में हरि नाम की लहर डूब जाती तो दादी अम्मा अतीत में पहुँच जाती।

गाँव का घर। कसा कसाया मूंज का पलंग। पलंग पर लोगड़, चीथड़ों भरा गदैला। सोती तो जाड़ा और घर ढूंढता।"[25]

दादा–दादी की कहानियाँ आज परिवारों से लुप्त होती जा रही है। पहले दादा–दादी, नाना–नानी की कहानियाँ कई दिनों तक चलती थी। उन कहानियों से बच्चे बहुत प्रभावित होते थे। बच्चों को सीख भी मिलती थी और जीने की प्रेरणा भी मिलती थी। 'शेष सब सुविधा' कहानी में भी दादी और पौते के प्यार को बताते हुए लेखक का यह चित्रण प्रभावी है।

"दादी अम्मा कहानी सुनाओ।" पोता–पोती दादी को दुलारते, निहोरे निकालते। दादी कुल जमा चार कहानियाँ जानती। उन्हीं में से एक सुनाने लगती। बच्चे हुंकार भरते रहते और दादी अम्मा खुर्राटों की खुमार में खो जाती। बच्चे सोचते दादी कहानी के देव की नकल उतार रही है, पर दादी थी कि सचमुच सो जाती। यूं पूरे जाड़े भर के लिए चार कहानियाँ काफी होती।"[26]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने बुजुर्ग महिला दादी अम्मा का वर्णन करते हुए बताया है कि ग्रामीण अँचल में जिस प्रकार से बच्चे कहानी सुनने को उत्सुक होते हैं और दादी अम्मा से कहानियाँ सुनते हैं व पोता–पोती हुँकार भरते हैं और दादी अम्मा खर्राटे भर कर सो जाती है। इस प्रकार से चार कहानियाँ काफी होती है और पूरा जाड़ा निकल जाता है।

वास्तव में लेखक ने पीढ़ियों में आने वाले अन्तर को अपनी कहानियों में स्पष्ट किया है, जब गाँव के लोग शहर की तरफ जाते हैं तो वे अपनी संस्कृति से इस कदर कट जाते हैं कि वापस मुड़कर देखना ही नहीं चाहते, किन्तु पुरानी पीढ़ी अपने गाँव के लगाव को भूल नहीं पाती। उन्हें तो शहर के शोर शराबे में कभी भी मानसिक शांति नहीं मिलती। कहानी के पात्र ने लेखक की इसी भावना को उसकी कहानी में शहर की घुटन भरी कोटड़ियों तथा कुत्तों की भौं–भौं के सामने पक्षियों की उड़ान का पतन स्पष्ट देखा जा सकता है। वास्तव में शहर का बैडरूम गाँव के बिस्तर की तुलना में उन बुजुर्गों कों आराम दायक नहीं लगता, जिस किसी बात की आवश्यकता की जाती है तो बदले में एक ही उत्तर सुनाई देता है बस! यही कमी है बाकी तो सब कुछ है। इस वातावरण से निकलने के लिए बुजुर्ग कसमसाता है किन्तु वह तो अपनी इच्छा से कमरे की खिड़की भी नहीं खोल पाते। लेखक के शब्दों में "सांझ को सुधीर ने खिड़की खुली पाई तो बोला–अम्मा, यहाँ खिड़की खोलने का रिवाज नहीं। पड़ौसी समझेंगे हम उनके घर में ताक–झांक करते हैं। उधर, उस पार्क में कुछ निट्ठले बैठते हैं, कहने भर को कामगार हैं, पर पेशे से सब चोर–उच्चके हैं। इक्कला दुक्कला देख माल भी ले जाते हैं और गला भी रेंत जाते हैं। दादी डरी। मन से पूछा, क्यूं रे मनवा, सुधीरवा साची कह रहा है, या डरा कर मुझे भगाने की तरकीब कर रहा है।"[27]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने दादी अम्मा अपने बेटे–बहू के पास शहर में जाती है तो बेटे सुधीरवा व बहू शोभा के द्वारा विभिन्न प्रकार की बातों के माध्यम से अवगत कराया जाता है और यहाँ तक कि पार्क में बैठने वाले चोर–उच्चके जो लूटपाट करके गला तक रेंत देते हैं। इसी प्रकार से शहर की सुख–सुविधाओं से अवगत करवाया जाता है।

लेखक ने पारिवारिकता में कटु अनुभवों की सीख को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। कहीं–कहीं तो ऐसा लगता है कि अवगुण भी ग्रहण करने के लिए व्यक्ति विवश हो जाता है। एक दिन गुस्ताखियों का कहानी में लेखक ने इसी भावना को प्रस्तुत किया है–"बस करो रहमान। अब जरूरत नहीं। मैं सीख चुका। पर्याप्त सीख चुका। अब मैं पहले ईसु को सलीब पर चढ़ाकर, फिर अपने गुनाहों के लिए उससे क्षमा माँगकर, उसे दफन कर फिर से उसके जी उठने के लिए प्रार्थना करना सीख गया। मैं जिस दुनिया में रहता हूँ, उसका यही दस्तूर है। पहले सलीब पर चढ़ाओं फिर साइस्ता उतारो, जिसे कत्ल करो उसके लिए दुआएं माँगो। अब मैं अपने को वहाँ 'एडजस्ट' कर सकूंगा रहमान। जरूर कर सकूंगा। तुम सचमुच मेरे उस्ताद हुए। अच्छा सलाम। मैं चला। अब मेरे–तेरे रास्ते जुदा। तू जीनसाज और मैं शहजादा बना रहूं। इसी विभाजन पर वह व्यवस्था चलानी है जिसका मैं

अब अविभाज्य अंग हूँ। मेरे जेहन में अब कभी अपने आपको मारने का जुज पैदा न होगा। तुम तसल्ली रखो।"[28]

इसी प्रकार ओझा जी ने बताया है कि पारिवारिक ग्रामीण परिवेश से निकलकर जब शहरी परिवेश में व्यक्ति अभयस्थ होता है तो न तो शरीर साथ दे पाता है और न ही उसकी मानसिकता उसे आगे बढ़ने को प्रेरित करती है। वह तो मन ही मन में ईश्वर को भी उलाहना देने लगता है। परिवार उसके लिए गौण हो जाता है। अपने आप में एक ईकाई के रूप में वह अपने ही सामने स्वयं को प्रस्तुत करता है। इसका दिग्दर्शन लेखक की इन पंक्तियों में किया जा सकता है– "लंगड़ को नींद न आती। शहर के 'अंदेशे' में खामशाह काजी दुबलाये जा रहा था। पहरुआ बन बैठा था। रात के अटाटोप सन्नाटे में नींद उचाट कर देने वाले अन्दाज में पुकारता", बाखबर, बाहोशियार। दुबक कर सो रहा है। रोजे–कयामत आने वाला है। खड़े हुए तो खुदा हिसाब लेगा। गुनाहों का हिसाब गड़बड़ा जायेगा। कुत्तों से सबक लो। अब वे खुदा को छकाना सीख गये हैं। पहरुवे पर भौंकते हैं। चोर को रास्ता देने लगे हैं।"[29]

निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट है कि रामकुमार ओझा किसी पारिवारिक परिवेश को अपने आप में समेटे हुए पूर्ण कहानी भले ही प्रस्तुत न करते हों, किन्तु अपनी प्रत्येक कहानी में कहीं न कहीं पारिवारिकता की झलक वे सशक्त शब्दों में प्रस्तुत कर देते हैं। यही स्थिति उनके ग्रामीण और शहरी परिवेश के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है क्योंकि लगभग सभी कहानियाँ इन्हीं तथ्यों की पूरक नजर आती है।

3.3 मध्य एवं निम्न वर्ग की कथा –

जिस प्रकार ग्रामीण और शहरी, पारिवारिक और सामाजिक तथ्यों को लेखक ने अपनी कहानियों में उजागर किया है उसी प्रकार से उनकी कहानियों में विभिन्न वर्गों की कथाएँ भी दृष्टिगत होती हैं। रामकुमार ओझा की 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' संग्रह में संकलित 'सिराजी' एक ऐसी कहानी है, जिसमें ग्रामीण सौन्दर्य दिखाई देता है तो शहरी आवरण के प्रति उसका अवनत भाव भी दिखाई देता है। लेखक के शब्दों में "पहाड़ पर कोई तिलिस्म नहीं होता। पहाड़ गलता है। पहाड़ गरजता है। गलने में सौन्दर्य की तरलता, गरजने में संगीत की मृदुता। मासूम मेमनों से बादल टहलते हैं, भाग–दौड़ करते हैं, आँख–मिचौनी का खेल खेलते हैं। अज्ञात यौवना प्रकृति परिधान बदलती है और बगल में जरूर कोई लड़की होती है। यही है पहाड़ का संवेदित आकर्षण, पर्वत का तिलिस्म।"[30]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन कर बतलाया है कि प्रकृति अपना रूप भिन्न–भिन्न प्रकार से परिस्थितिवश बदलती रहती है और अपने

यौवनरूपी रूप को युवा लड़की के समान सौन्दर्य को रखते हुए बदलती रहती है और आँख–मिचौली जैसा खेल करती है।

इसी प्रकार ओझा जी ने इसी कहानी में बताया है कि लोगों ने निम्न वर्ग को दूसरों के डण्डे के नीचे काम करने के लिए ईश्वर की बनाई हुई कृति समझा है। वह तो सुबह के सायरन के बजते ही भागने वाला और अपनी मजदूरी के लिए दौड़–धूप करने वाला एक कमजोर प्राणी होता हैं। यदि वह रास्ते में भी चलेगा तो उसकी जिंदगी बचाने के लिए वह स्वयं भी बचता चलेगा। लेखक के शब्दों में "रास्तों पर चलता है तो कितने किस्म के वाहनों का शोर। भागम–भाग। जिन्दगी की दौड़ में जिन्दगी को बचाये सावधानी से चलता है। शोर–शराबे के बीच कुचलकर मर जाये तो शिनाख्त भी नहीं हो पाती। अगल–बगल की खोलियों में वर्षों में रहने वाले एक–दूसरे को नहीं पहचानते। शोर–शराबे में वह अपनी ही पहचान खो चुका है।"[31]

इसी तरह से काम के समय में भी निम्न वर्ग के व्यक्ति को तो कुछ न कुछ सुनना ही पड़ता है। चाहे अस्थि पंजर में जान न हो किन्तु पेट भरने के लिए तो भागदौड़ करनी ही होती है। "तभी एक लारी धड़धड़ धड़धड़ाती आयी। उसके बोदे अस्थि–पंजर खड़खड़ा रहे थे। ऐसी सड़ियल गाड़ी में तो परमेश्वर क्या आया होगा!' क्रिच...च्। क्री.....च.....र।' ड्राइवर ब्रेक भी लगाये जा रहा था और क्लीनर को धमका भी रहा था......'ओये..... हरामी दे पुत्तर।"[32]

इस तरह ओझा जी ने गाड़ी की दयनीय दशा व परमेश्वर का आना बताते हुए कहा है कि एक ऐसी गाड़ी जो अपने अस्थि–पंजर को लेकर पहले से ही धड़–धड़ा रही है। ऐसी गाड़ी में क्या परमेश्वर आये होंगे। गाड़ी और कमजोर तबके के लोगों की यही दशा होती है। ड्राइवर गाड़ी को चलाये भी जा रहा है और अपने सहायक को धमका भी रहा है।

रामकुमार ओझा की 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह में संकलित 'मुकामो' कहानी में औरत की हाड़–तोड़ मेहनत और सारे परिवार के उत्तरदायित्व को सम्भालना निम्न वर्ग में प्रचलन सा ही हो गया है। लेखक के अनुसार "यह अकेली लुगाई गृहस्थी बसाये है। और जो अकेली लुगाई घर बसाती है, सुना है वह नागफणी होती है, मर्द के तई ऐसी लुगाई से काण मानने में ही त्राण, नहीं तो कांटो में उलझ जाने का अंदेशा।"[33]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने 'मुकामो' नामक युवती जो कि महिला होते हुए भी मर्द की भाँति अकेली ही देखभाल करती है और घर बसाये रखती है। इसलिए कहानी में बताया है कि पति का प्रेम उसके साथ हो तो वो कुछ भी मर्द के समकक्ष बड़े से बड़े

कार्य को सम्भाल सकती है। मेहनत करना और उसी कमाई से पूरे परिवार को पालना निम्न वर्ग की औरत की नियति होती है। लेखक ने इसे अपनी कहानियों में स्वीकार किया है। एक तरफ चुड़ियों की झनकार और दूसरी तरफ गंडासे से घास की पुली को काटना एक अजीब रस का मिश्रण पैदा करता है। मुकामो में रौद्र और शृंगार दोनों का समन्वय लेखक ने देखा है। "वह सोती है तो गंडासा सिरहाने धर–कर सोती है। मक्खी की भनकार के साथ उठ खड़ी होती है और गंडासा बज उठता है, खट्ट, खटाक। तब भी उस जानलेवा मौसम में पूलों की छानी काटे जा रही थी। गंडासे की दरक खट्ट, खटाखट। चूड़ियों की छमक छमाछम छम। रौद्र के साथ शृंगार का अनोखा संयोग। काँच की चूड़ियाँ सुहागिन का सिंगार, खेड़ी का गंडासा सुरक्षा का आधार। दोनों घरों के बीच में कच्ची दीवार, किन्तु दुर्लन्घ्य। करमू उस पार कभी झांककर भी नहीं देख सकता। मुकामो की ऐसी दहशत।"[34]

इसी प्रकार ओझा जी ने 'उक्त' कहानी में बताया है कि अपनी मान–मर्यादा को बनाये रखती है। साहस–निडरता के साथ रहते हुए भी वह अपने शरीर की रक्षा करती है और उसका देवर करमू जो ताँका–झाँकी करता है परन्तु मुकामो एक मक्खी की आवाज को सुनकर ही जाग जाती है ओर अपने सिरहाने गंडासा रखती है और बड़े ही साहस के साथ उठकर घास काटने लग जाती है। इस प्रकार कहानी में मुकामों घर–परिवार व अपने स्वयं की इज्जत तथा मान–मर्यादा को बनाये रखती है।

सूखा हो या बरसात निम्न वर्ग की औरत को तो अपने पिया के बिना जो परदेस कमाने के लिए गया है, गुजारा करना पड़ता है। बादल बरसते हैं, छत चूने लगती है और ऐसी स्थिति में कहानीकार ने मुकामों के द्वारा लोकगीत को प्रस्तुत कर यह जताया कि निम्न वर्ग में श्रम करती महिलाएँ लोक साहित्य को किस प्रकार जिंदा रखती हैं। वह तो केवल यह गा सकती है–

"छप्पर छेका छिद रह्या बड़क्या बांदा बाँस।
बेग पधारो सांवरा, म्हाने थांरी आश।।"[35]

गृहस्थी में कई प्रकार की कुरीतियाँ, बड़ों की बुरी नीयत, पड़ोसियों की बदनीयति और फिर पति का दूर होना इन सब समस्याओं में अपने आपको कीचड़ में कमल की तरह बनाये रखना बहुत बड़ी चुनौती कही जा सकती है। मुकामो के सन्दर्भ में भी यही कहा जा सकता है। आग और पानी उसके आँसू ओर आँखों के अंगारों में देखे जा सकते थे। एक दिन ऐसा भी आया जब पति की मृत्यु होने के बाद ससुर के प्रति उसके व्यवहार को लेखक ने यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है–

"मुकामों के सर से मर्द का साया उठा तो एक दिन उसकी जूती ससुर के सर पर सवार हो गयी। बूढ़ा अभी संभले कि पिंडारी और जब्बरा भौंकते आ झपटे। फाड़ ही खाते। किन्तु मुकामो ने रोक दिया। उसने अपने पीहर की संदूकची और एक गंडासा बगल में दबाया और सीधी नोहरे (पशु बांधने का मकान) में आयी। पिंडारी और जब्बरा भी पूँछ उठाये उसके पीछे लगे आये। उसने अपने पीहर से मिली सींग मारनी भैंस और कटखनी गाय को छोड़, शेष पशुओं की रस्सी खोल दी और नोहरे पर काबिज हो गयी।"[36]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने अभिव्यक्त किया है कि मुकामों का ससुर भी अपनी नीयत को सही नहीं रखता है। इसलिए ही मुकामो उसके सिर पर जूती निकाल कर मारती है और करमू जब मुकामो नोहरे में पशुओं को बाँधने जाती है तो उसके पीछे लगा चला जाता है लेकिन मुकामो अपने पीहर से मिला गंडासा साथ ही रखती है। इससे मर्द जात डर के मारे उसका पीछा छोड़ देती है और बड़ी ही निडरता से अपना कार्य करती हैं।

इसी कहानी में पारो के रूप में एक ऐसा चरित्र लेखक ने 'उक्त' कहानी में प्रस्तुत किया है कि मेहनतकश होते हुए भी कच्चे मकान के ढह जाने से वह अपने आपको नहीं बचा पाती। जब भयंकर बरसात होती है तो गरीब के कोठे के छत कब नीचे आ जाए और जिंदगी की कब आखरी साँस हो जाए यह कहा नहीं जा सकता। लेखक ने इस वर्ग की व्यथा को इस प्रकार प्रस्तुत किया हैं–

"पारो न बच पायी तो उसकी किस्मत। मुकामो ने तो अपने तई कोई कोताही न की थी। उस रात भी ऐसा ही अंधा मेंह पड़ा था। करमू खेत पर था। पारो अकेली अपने कोठे में सो रही थी। अचानक कोठे की छत दरकी। धमक सुन मुकामो सर पर मेंह झेलती दीवार फांद आयी। जुल्मढाऊ तूफान में कस्सी फावड़ा ले, मानो मिट्टी उकेर डाली। झकझोरते मेंह और हवा। अकेली लुगाई। पर आखिर पारो की देही खोज ही निकली। सूरज–उगाली के साथ करमू घर आया तो पायी मिट्टी में मिट्टी बनी पारो की लाश।"[37]

इसी प्रकार ओझा जी ने उक्त कहानी में बताया है कि यह वर्ग अदालत की अपेक्षा पंचायत पर अधिक भरोसा करता है। इस वर्ग में अपनी बात की सच्चाई भी दिखाई देती है। लेखक ने एक स्थान पर पात्र के द्वारा यह कहलाया है कि जो मर्यादाएँ आदमी का दम घोंट दे उन मर्यादाओं की रक्षा क्यों की जाए। मुकामो ने भी पंचायत के अनुभवों को इन शब्दों में व्यक्त किया है। "जो हाथ पकड़ लाया वही नाजोगता निकला। नामर्द ने भरी पंचायत निंवा (झुका) दिया। सत्त की साख भी न भर सका तो तू अब क्या बचायेगा रे।

मुकामो तो अपनी निवान (ढलान) में ही बैठ जिन्दगी गुजार देगी। पर हिम्मतहार न होगी।"[38]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रस्तुत कर बताया है कि नारी जो बिना पति के पूर्ण प्रेम प्राप्त नहीं करती है तो अपने आप को अधूरा मानती है। अगर उसकी शारीरिक इच्छा पूर्ण न हो पाती है तो ऐसा ही मुकामों के साथ होता है उसका पति नामर्द जैसा है व मुकामो मन ही मन अपने देवर से प्रेम करती है और शादी करना चाहती है पर अपने देवर करमू को कह नहीं पाती है लेकिन फिर भी हिम्मत नहीं हारती है।

जहाँ तक मध्यम वर्ग का प्रश्न है उसमें परिवार की कलह, आपसी खींचातानी तथा बहू के प्रति अविश्वास आदि तथ्यों को लेखक ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। बाबा बोलने लगे कहानी में लेखक द्वारा प्रस्तुत यह पंक्तियाँ पारिवारिक वातावरण को बखूबी उजागर करती है।

"भइया की चलन न चलने देना, भाभी। अन्यथा यह चाभियों का गुच्छा तू नहीं बहू लटकायेगी। मर्द वैसे भी उदार हो गये हैं, सत्यानाशी जमाना जो आ गया है। अब तो घर की मर्यादा और अपने अधिकारों की रक्षा दोनों ही खुद स्त्री को करनी पड़ती है। भला इसी में है कि पीढ़ियों की लीक फिर कायम कर दो। पर्दा और जुबानबन्दी बहू की शालीनता और सास का कौशल होता है।"[39]

इस वर्ग में घर में रहता हुआ बुजुर्ग वानप्रस्थ की ओर मुड़ जाता है। मोह का कोई अन्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीयता को भी वह नहीं भूला पाता और अपने परिवार के प्रति चिंता से भी मुक्त नहीं हो सकता। निम्नलिखित पंक्तियाँ इसी तथ्य की परिचायक है।

"देखो! मैं हिन्दुस्तानी हूँ, वानप्रस्थ की अवस्था आ पहुँची है। मोह का अन्त नहीं। ममता अछोर है। राह न रोको। मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं। बस, अपनी माँ का ख्याल रखना। वह खराब नहीं। भोली और स्वाभिमानी है। उसका दर्प कभी न तोड़ना। वरणा वह टूट जायेगी। मेरा क्या? अब लिख न पाऊंगा। अँगुलियां थरथराने लगी हैं। पढ़ न पाऊंगा। आँखे जवाब दे चुकी है। फिर जी कैसे पाऊंगा? मुझे उस घाट जाने दो जहाँ कोई पढ़कर सुनाने वाला हो। रामायण अपनी जगह है। किन्तु मेरी आस्था का केन्द्र महाभारत है। राम आदर्शावतार है और कृष्ण पुरातन भंजक। इसलिए गीता मेरी आस्था का केन्द्र है। आग से मुझे लगाव है। आग तापने की आदत है।"[40]

मध्यम वर्ग में भी जो व्यक्ति ईमानदारी से अपने बच्चों का जीवन निर्वाह करता है उन बच्चों के मन में भी अपने माँ–बाप के प्रति श्रद्धा का भाव सदैव बना रहता है। जब

बाबा बोलने लगे कहानी में घर का बुजुर्ग अपने बच्चों से यह कहता है कि मुझे बाबा के पास जाने दो तो बेटा यह स्पष्ट कहता है– "मगर हमारे बाबा आप हैं। आपके संस्कार के हम साकार रूप हैं। हमें एक मौका चाहिए। और बाबा को मौका न मिला। परिपूर्ण बाबू फिर एक बार घर में थे।"[41]

इस प्रकार से ओझा जी ने बताया है कि मध्यम वर्ग के बच्चे संस्कारवान व सभ्य होते हैं। इसी प्रकार कहानी में व्यक्ति को बाबा मानकर उसके ही तोर–तरीकों को ग्रहण करते हैं और ये हर समय उन्हीं की शरण में जाने का मौका पाने का अवसर देखते रहते हैं और अपनी सभ्यता का परिचय देते हैं।

इस कहानी में लेखक ने मध्यम वर्गीय परिवार में बुजुर्ग के मन की ऊहापोह को अच्छे ढंग से चित्रित किया है। वास्तव में परिपूर्ण बाबू तन से नाजुक, मन से भावुक और कर्म से कवि थे। उनका मन बार–बार घर से ऊबकर एक ऐसे वातावरण में जाने का प्रयास करता था, जहाँ उन्हें मानसिक शांति मिले। किन्तु वहाँ भी जो मिलता है वह एक ही प्रश्न करता है कि आप यहाँ कैसे? ऐसी ही एक बानगी इन पंक्तियों में दिखाई देती है–

"तभी कोई अँधेरे को चीरते हुए आया। चौकीदार था। दोनों ने एक–दूसरे को पहचाना। 'बाबूजी आप, इतनी रात गये, इस सरदी में यहाँ?' बाबूजी न बोले तो खुद उत्तर तलाश लिया। शायद लेखकों के ऐसे जानमारू वातावरण से ही कोई प्रेरणा मिलती हो। मैं अनपढ़ क्या समझूं और चौकीदार खिसक गया। इस ख्याल से कि बाबूजी की एकाग्रता भंग न हो।"[42]

इसी प्रकार ओझा जी की 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' संग्रह में संकलित 'खून' कहानी में साहूकार के कर्ज के नीचे निम्न वर्ग और मध्यम वर्ग दोनों के ही कराहने की आवाज सुनाई देती है। लेखक ने साहूकार के रूप में एक ऐसा व्यक्ति पेश किया है जो सबका आदर्श होता है और सभी उसका साथ देते हैं। "जैसा कि हर गाँव में होता है, उसके गाँव में भी एक साहूकार था। साहूकार वह इसलिए था कि कई पुरवों में उसके साहूकारे की साख थी। साख इसलिए थी कि उस मण्डल के नेता, परगने के दरोगा और इलाके के गुण्डे, बदमाश उसके साथ थे।"[43]

इस तरह से ओझा जी ने अभिव्यक्त किया है कि एक गाँव में साहूकार व्यक्ति है जो कि उसकी तरह हर एक गाँव में एक साहूकार होता है और वो मध्यम व निम्न वर्ग में रहने वाले व्यक्तियों को कर्ज के रूप में उधारी देता है लेकिन साहूकार बस नाम का ही है, क्योंकि इसके साथ मिलने वाले नेता, दरोगा, गुण्डे, बदमाश सभी की राम–राम है। इसलिए

सभी मध्यम–निम्न वर्ग के लोग जो कर्ज लेते हैं वो इनसे डरते हैं। बस इसी प्रकार से ये नाम के ही साहूकार हैं।

इसी प्रकार ओझा जी ने 'उक्त' कहानी में बताया है कि बात यह नहीं है कि साहूकार अपने आपको सब–कुछ समझता है। वह भी भगवान का उपासक होता है। यह बात अलग कि भगवान की पूजा चाहे वह स्वयं न करे किन्तु दूसरों से करवाता है और एक तरह से वह दूसरों के मुँह से अपनी ही प्रशंसा सुनना चाहता है। लेखक के शब्दों में "उसने जयपुर के शिल्प बाजार से एक भगवान खरीद कर मंगवाया था और एक पुजारी को उसकी खातिरदारी और रखवाली के लिए तैनात कर दिया था। पुजारी भगवान की आरती उतारता, पर स्तुति साहूकार की उच्चारता। उस धर्मावतार की यंशावली गाते गंवईयों की सुरता जगाता। साहूकार की बही में साक्षात् गणेश जी का बासा। उसमें जो लिखा सो सब साचां उस पर जो कोई जकीन न लाये उसका लेखा चित्रगुप्त की कचहरी में। साख भरे या बचा दे, निश्चय उसको नरक मिले।"[44]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने बताया है कि साहूकार है पर भगवान जी की स्तुति भी करता है। चाहे वो आप ना करें लेकिन अपने पूजा–अर्चना करने वाले एक व्यक्ति को रख लेता है। पुजारी के रूप में जो साहूकार की खातिरदारी व भगवान जी की पूजा करता है। पर ज्यादा नाम तो साहूकार का ही लेता है ओर साहूकार की बही में साक्षात् गणेश जी का वास कर देता है मानो।

इसी प्रकार ओझा जी ने 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह में संकलित 'रब्बो' कहानी में बताया है कि निम्न वर्ग में किसी न किसी बात पर झगड़े होते रहते है और छोटी से छोटी बात पर खून–खराबा हो जाता है। इस सन्दर्भ में 'रब्बो', के साथ 'हाड़फरोश' जैसी कहानियों को लिया जा सकता है। जब रब्बो को देखकर दाऊजी ने कोई मिसरा कसा और जरा सी बात पर रब्बो की ललकार को कहानीकार ने जिस ढंग से प्रस्तुत किया है वह दर्शनीय है, क्योंकि रब्बो उच्च कुल की नारी नहीं है, जो शर्म से अपने ही भीतर दुबक जाए। उसने अच्छों–अच्छों को शालीनता का पाठ पढ़ा दिया था। लेखक ने निम्नलिखित पंक्तियों में रब्बो के रूप में निम्न वर्गीय महिला की हिम्मत का वर्णन किया है–

"दाऊद की ठुड्डी टखने पर जा अटकी। पाजयामे के पांयचों में उलझते रपटते जाते बांके को रब्बो ने ललकारा– 'जरा रूक तो साहबजादे। देखूं तेरी पेशानी में कितना दम–खम है।' पर दाऊद की गैरत ऐसी दौड़ी कि पायजामा चिद्दी–चिद्दी होकर रह गया।

रब्बो ने भर नजर अपने गिर्द देखा पर दाऊद के शागीर्द अब नजर न आये।

अगली शाम सारा मुहल्ला मुहर–ब लब (मौन साधे) था। रब्बो को आते देख नुकड़ के पनवाड़ी ने रेडियो की कील मरोड़कर उसे गजल गाने से रोक दिया। नीम तारीकी (अंधेरे) के बावजूद गली के आवारा कुत्ते उस पर भौंके नहीं। उंगलियां उसकी ओर उठीं नहीं। खिड़कियों की सेंध से खातूनों ने झाँका नहीं।"[45] इस तरह ओझा जी ने 'हाड़फरोश' कहानी में पांचू, रहमत खां और कालू तीनों पात्रों के बीच आपसी झगड़े को लेखक ने इस प्रकार पस्तुत किया है मानो वे कोई साधारण खेल खेल रहे हों। लेखक ने कहानी के अन्त में आपसी झगड़ों की इसी सच्चाई को प्रस्तुत किया है–

"शीघ्र ही आफत आ गयी। रहमत खाँ ने आते ही गालियां उगलनी शुरू कर दी। 'स्याला सारी उम्र हराम की खाता रहा और मरते दम तक नमकहरामी से बाज न आया। खुद मरने से पहले शेरू को पीट–पीटकर मार गया। पर इसकी हड्डियों से शेरू की कीमत वसूल न की तो मैं भी असल का तुख्म नहीं।'

बड़बड़ाहट में उसकी नजर कालू पर पड़ी, कालू उस पर झपटने ही वाला था कि लाठी के वार से चुटिला हो गया। बेचारा जानवर रहमत से लड़ न पाया, दो–बार लाठियां खाकर जमीन पर पूँछ घसीटने ढोरों के मसान की ओर चल दिया। शायद सोचते जा रहा था कि हरामी मेवात को काट खाता तो कैसा रहता, जैसे आक का जहर वर्षों बाद आदमी के जेहन पर चढ़ मारता, वैसे ही हम कुत्तों का काटा भी किसी दिन पगलाकर मर जाता हैं।"[46] इस प्रकार से ओझा जी ने कहा है कि पशु पालन निम्न वर्ग के गुजारे का बहुत बड़ा साधन है, किन्तु मध्यम वर्ग पर लेखक ने अपेक्षाकृत लिखने में संयम बरता है। मध्यम वर्ग में धार्मिक किताबों के पठन का वर्णन मिलता है। ब्राह्मण वर्ग जाति से भले ही ऊँचा हो किन्तु यदि कर्म से वह गिर जाए तो उस स्थिति का चित्रण भी लेखक ने अपनी कहानी 'त्रिकाल' में किया है। मध्यम वर्ग बिना काम किए ही कुछ लेने की सोच सकता है किन्तु निम्न वर्ग तो अपनी मेहनत की खाने के अलावा कल्पना भी नहीं कर सकता। 'त्रिकाल' कहानी में निम्नलिखित पंक्तियाँ इसी की परिचायक है–

"बामन होकर मशान की हड्डी मुँह पर लगाता है!

'अरे यह कुकर्मी जोई करे वही थोड़ा।'

इसी बीच नेहरा की धोली गाय हड़कानी होकर मर गयी। बकरी खो गयी। उसकी खोज में कसूम्बो ढोरों के मशान में गयी तो धन्ना ने घेर लिया।

तू भले ही मेरा बुरा चिंते, मैं तो तेरा भला ही चाऊ हूँ। सिविर में काम करने आ जाया कर। काम भले ही न करना पगार मिल जायेगी।"[47]

इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रामीण परिवेश में निम्न वर्ग की औरत को किस प्रकार की कठिनाई से निकलना पड़ता है। लेखक ने 'सड़क' कहानी में प्रमुख पात्रा के रूप में एक ऐसी औरत का चित्रण किया है जो ग्रामीण परिवेश में निम्न वर्गीय नारी की व्यथा को बखूबी चित्रित करती है। लेखक ने संवाद की शैली में इसे रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित संवाद को देखा जा सकता है–

'कौन हो तुम?'

'एक लुगाई हूँ मैं!'

'सो तो हो। पर इस जेठी धूप में यहाँ क्यों आई हो?'

'आना पड़ा इससे आ गयी।'[48]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने अभिव्यक्त किया है कि एक औरत जो अपने पति के द्वारा मारने व बार–बार प्रताड़ित करने के बाद भी हिम्मत नहीं हारती है और कठिन परिस्थितियों को झेलते हुए भी अपना जीवन–यापन करती है।

इसी प्रकार ओझा जी ने उक्त कहानी में बताया है कि नारी चरित्रवान होते हुए भी मर्द के स्वार्थ से इस कदर टूट जाती है–

'फिर यहाँ आई क्यों?'

चकचाहट में मैंने मूल प्रश्न को ही दोहरा दिया। पर उसने अलग तथ्य उजागर किया।

'मर्द ने घर से निकाल दिया तो आना पड़ा। अपनी रजामन्दी से तो आयी नहीं।'

'पर मर्द ने घर से क्यों निकाल दिया?' मैंने कदम बढ़ाते प्रश्न किया पर उसके उत्तर में भी ठहराव न था।

'मैं हरजाई (बदचलन) जो थी? इसीलिए निकाल दिया।'[49]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने बताया है कि एक औरत जो अपने प्रश्न को व्यक्ति के द्वारा दोहराये जाने पर भी एक ही उत्तर देती है कि मेरे पति ने घर से निकाल दिया है तब आयी हूँ। रजामन्दी से तो आई नहीं हूँ। मैं बदचलन जो थी अपने पति के लिए इसलिए मुझे घर से निकाल दिया है और मैं चली आई हूँ।

इसी प्रकार 'उक्त' कहानी में ओझा जी ने बताया है कि जहाँ बदचलन होने के कारण घर से निकालने को समाज बुरी नजर से नहीं देखता किन्तु इस बदचलन होने के मूल कारणों पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है।

'तुम ऐसी हुई क्यों?'

'मजबूरी की मारी हो गयी। न होती तो मर्द मारता।'

अजीब अफसाना सुनाती है यह औरत। हरजाई न होते मर्द ने मारा?'

'रोज मारता।'

'तब क्या शिकायत थी?'

'बस यही कि मैं हरजाई हो न पा रही थी।'

जब तक हरजाई न हो पायी तो हो जाने के तकाजे पर मार खाती रही जब हो गयी तो मारकर घर से निकाल दिया।"[50]

इस प्रकार से महिला ने बताया कि मैं घर से इसलिए निकाली गई कि मैं हरजाई हो गई और मेरा पति मुझे मारता था कि मैं हरजाई न हो रही थी और हो गई तो मार–मारकर घर से निकाल दी गई हूँ।

इसी प्रकार यदि मध्यम वर्ग पर विचार करें तो उसमें फैशन के प्रति प्रेम, हिन्दी की जगह अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग और फिर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी भी दूसरे को नीचा दिखाना जैसे विवरण लेखक ने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किए हैं। मध्यम वर्ग दिखावा खूब करता है। दूसरों को गलत समझकर खुद को सही समझाने का प्रयास भी करता है। ओझा जी ने 'कौन जात कबीरा' कहानी संग्रह में संकलित 'शेष सब सुविधा' कहानी में इन्हीं भावों का चित्रण किया हैं।

"साँझ को सुधीर ने खिड़की खुली पाई तो बोला– 'अम्मा, यहाँ खिड़की खोलने का रिवाज नहीं। पड़ौसी समझेंगे हम उनके घर में ताक–झाँक करते हैं। उधर, उस पार्क में कुछ निट्ठले बैठते हैं। कहने भर को कामगार हैं, पर पेशे से सब चोर–उच्चके हैं। इक्कला दुक्कला देख माल भी ले जाते है और गला भी रेंत जाते हैं।"[51] इसी तरह से ओझा जी ने बताया है कि आर्थिक पक्ष में भी मध्यम वर्ग को अपने बजट में काट–छांट करनी पड़ती है किन्तु महँगाई के कारण सबसे अधिक पीड़ित यही वर्ग रहता है। लेखक ने प्रतीक के रूप में अर्थव्यवस्था और मध्यम वर्ग की स्थिति पर अच्छा व्यंग्य प्रस्तुत किया है।

"अर्थव्यवस्था जो सुधरने लगी है, विकास की दर जो बढ़ने लगी है वह तो कोढ़ में खुजलाहट के समान बढ़े ही जायेगी, किन्तु कोट की खरीद तो जीवन की आवश्यकता में अनिवार्यता थी और क्रय राशि जुटाने का एक मात्र उपाय था घरेलू बजट में कटौती। पर गरीब की आय लम्बोत्तर की दुलाई के समान ओछी और ओछी व और ओछी पड़े जा रही थी। बाबू दम्पत्ती ने जैसे–जैसे बजट में कटौती की। हिन्दुस्तानी रेल के प्रतिक्षारत मुसाफिर के समान वे पहली तारीख का इन्तजार करते रहे पर पहलौती बड़ी देर से आई।"[52]

इसी प्रकार ओझा जी ने 'जिन्दाबाद अमर रहे' कहानी में ही बताया है कि शहर में आकर निम्न वर्गीय व्यक्ति जब मध्यम वर्गीय चाल–चलन को देखता है तो उसे शिक्षा के

प्रति एक लगाव आता है और उसे लगता है कि उसके डरने का मूल कारण क्या है? 'जिन्दाबाद अमर रहे' कहानी में इस भावना को बखूबी देखा जा सकता हैं।

"मगर सुखराम को अगले ही क्षण लगा, जाने वह आधा–अधूरा पढ़ा होने के कारण शब्दों को सही ढंग से पकड़ नहीं पा रहा है। आखिर शहर जो ठहरा। कबीर की किसी उलटबाँसी से कम जटिल तो क्या होगा? सही जगह, सही अर्थों में यहाँ बर्थ बोध कर पाना बड़ा मुश्किल है। यही कारण है कि पोथी–पढ़ा 'तनाव' शब्द ही उसे इन शहरातियों के चेहरे पढ़ने की चेष्टा में सूझा। वह अपने पर शरमा जाता कि तीखी ख्याल में खलल पड़ गया। लोग अपनी माँगे पूरी किये जाने के हक में बोलने लगे थे, "बड़े जोर से माँग रहे हैं, हक–अधिकार। जैसे नीलामी पर चढ़े हैं और ऊँची बोली लगाने वाला पा जाएगा। पर इतने लोग एक साख पाएंगे तो बोली कैंसिल न हो जाएगी या छीना–झपटी में चिदी–चिदी न हो जाएंगे। पर एक बात निश्चित है, जरूर इनके अधिकारों का अपहरण हुआ है। इनकी मुट्ठियाँ बन्द हैं, परेशानियां सिकुड़ी–सिकुड़ी हैं। तो यह नीलामी नहीं अपहृत अधिकारों को फिर से पाने की मुहिम है। ये लोग निडर हैं और निर्भयता माँग का जुज पैदा करती हैं।"[53]

निष्कर्षतः ओझा जी की कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि उन्होंने निम्नवर्गीय व्यवस्था पर अधिक ध्यान दिया है। सम्भवतः उनकी संवेदना निम्न वर्ग के प्रति अधिक परिपुष्ट हुई है। उन्होंने अपने आस–पास के वातावरण से ही इन पात्रों को देखा है तथा उन पर पूरा प्रकाश डाला है। उनकी कहानियों में वर्ग भेद वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत हुआ है। यदि निम्न वर्ग और मध्यम वर्ग में किसी बात पर कहा सुनी भी हुई है तो उसे भी उन्होंने छुपाने का प्रयास नहीं किया है। हाँ एक बात अवश्य है कि कहीं भी नारीगत समस्या से उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा है।

3.4 सांस्कृतिक सन्दर्भ –

रामकुमार ओझा की कहानियों के सन्दर्भ में उन्हीं के शब्दों में यह कहा जा सकता है "कहानी एक ऐसी विधा है जिसमें प्रेषक (लेखक) और ग्राहक (पाठक) का सीधा सम्पर्क स्थापित होता है। कहानीकार कहानी में सत्य को काल्पनिक कथानक के माध्यम से प्रेषित करता है, वह उसके अन्तराल में वास्तविक जीवित पात्र वास करते हैं। हर कहानी में एक और कहानी होती है। हर पात्र के अन्दर दूसरा पात्र वास करता है।"[54] जब सांस्कृतिक परिवेश की बात करें तो लेखक ने कबीर की उलटबाँसी से भी बहुत कुछ ग्रहण किया है और प्रत्येक पात्र के मन में उठने वाले सांस्कृतिक ऊहापोह को भी देखा है। संस्कृति के

प्रति मन में उठने वाले संघर्ष को लेखक ने बहुत बारीकी से देखा है तथा उसे अपनी कहानियों में स्थान दिया है।

संस्कृति विचारों में स्वच्छंदता देती है, सोचने की शक्ति देती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए रामकुमार ओझा ने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि "विचारों की स्वच्छन्दता कहानीकार की श्रेष्ठता की निशानी है। मनोभावों के उद्वलेन के अलावा श्लीलता, अश्लीलता कुछ नहीं है। बात–बात में चरित्र, मर्यादा की दुहाई देने वाले ही अक्सर दुराचारी होते हैं, किन्तु मनुष्य और पशु समाज के बीच अन्तराल बनाये रखने के लिए कुछ मानवीय मर्यादाओं की उल्लंघना भी नहीं की जा सकती।"[55] इन्हीं मर्यादाओं की पालना उन्होंने अपनी कहानियों में की हैं।

भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र सत्यमेव जयते हैं। गाँधी जी ने इसी मंत्र के बल पर सारी दुनिया को अपने व्यक्तित्व से परिचित कराया। सत्य जब साथ में होता है तो वह जन–जन को प्रभावित करता है। वह स्वयं की पहचान कराता है और इसी पहचान से व्यक्ति अपनापन भूलकर दूसरे को भी अपने में ही देखने लगता है।

लेखक के अनुसार "एक ओर गाँधी बाबा का नारा। 'भारत छोड़ो!' और दूसरी ओर सत् साक्षी बाबा का जाप 'सच्चे तेरी आस! साक्षी बाबा की तनतन्त्री अन्तर्मुखी होकर बोल रही थी तो गाँधी बाबा की आवाज जन–जन की वाणी से मुखर हो रही थी।"[56]

भारतीयों में 'करो या मरो' की प्रेरणा संस्कृति के मूल मंत्र सत्यमेव जयते के आधार पर ही आयी थी। लेखक के शब्दों में भारतवासी ''करो या मरो।'' करने के मसले पर सब सहमत थे, पर मरने के सवाल पर मतभेद था। मस्त फकीरा था तो गाँधी बाबा राजनीति विशारद था। जनता का यह मत था–अंग्रेजों की कमर दूसरे महायुद्ध में टूट चुकी है अब तो एक धक्के भर की जरूरत है वह उछल कर सात समुद्र पार जा गिरेगा। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद नारों का अर्थ बतलाने वाला अगुआ कोई न था। कर्मठ नौजवानों के अधिकांश ने यही अर्थ निकाला था। "अब जेल जाना व्यर्थ है चक्की चलाना आत्मताड़ना है अब तो लड़ कर कुछ करना है।" व्याख्या में मतभेद था पर लड़ सब रहे थे। जेल जाने वाले जेल गये। शैष सैलाब की तरह फैल गए।"[57]

बदलते सांस्कृतिक मूल्यों को भी ओझा जी ने अपने लेखन में स्थान दिया है। 'एक दिन गुस्ताखियों का' एक ऐसी कहानी है, जिसमें वर्णित निम्नलिखित पंक्तियाँ इस बात का प्रतीक कही जा सकती हैं।

"बस करो रहमान। अब जरूरत नहीं। मैं सीख चुका। पर्याप्त सीख चुका। अब मैं पहले ईसु को सलीब पर चढ़ाकर, फिर अपने गुनाहों के लिए उससे क्षमा माँगकर, उसे

दफन कर फिर से उसके जी उठने के लिए प्रार्थना करना सीख गया। मैं जिस दुनिया में रहता हूँ उसका यही दस्तूर है। पहले सलीब पर चढ़ाई हो फिर साइस्ता उतारो। जिसे कत्ल करो उसके लिए दुआएँ माँगो। अब मैं अपने को वहाँ 'एडजस्ट' कर सकूंगा रहमान। जरूर कर सकूंगा। तुम सचमुच मेरे उस्ताद हुए। अच्छा सलाम। मैं चला। अब मेरे–तेरे रास्ते जुदा। तू जीनसाज और मैं शहजादा बना रहूँ। इसी विभाजन पर यह व्यवस्था चलानी है, जिसका मैं अब अविभाज्य अंग हूँ। मेरे जेहन में कभी अपने आपको मारने का जुज पैदा न होगा। तुम तसल्ली रखो।"[58]

इसी तरह से ओझा जी ने एक ऐसे व्यक्ति का वर्णन किया है, जिसको किसी प्रकार की जरूरत नहीं है पर फिर भी सीखने को आतुर रहता है ओर समयानुसार अपने आपको कहीं भी एडजस्ट (स्थापित) कर लेता है और अपने जेहन या जो मर्यादा है। उसको जीवित रखता है व अपने आप पर तस्सली रखते हुए सभी कार्य सम्पूर्ण कर देता है।

भारत की जातीय पृथकता एवं अस्पृश्यता से रामकुमार ओझा बहुत उद्वेलित रहते थे। 'जाति–पांति का आधुनिक भेदभाव भारत की प्रगति में बाधक है, वह संकीर्ण बनाता है, विलग करता है और यह विचारों की प्रगति से ढह जाएगा।" उसकी यह धारणा आज भी उतनी ही सटीक है।

पंथ–वैमनस्य का जहर हमारे ग्रामीण जीवन में बढ़ता जा रहा है, जिसे ओझा जी ने भी अनुभव किया था। उनकी कहानियों में यह स्पष्ट है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले सभी लोग भारत माता की सन्तान है। हमारी प्राचीन हिन्दू संस्कृति समन्वयवादी ही रही है। इसी समन्वयवादी प्रकृति के कारण इसके शैव, शाक्त, वैष्णव, विशिष्टता द्वैत, अद्वैत आदि सभी को सम्मान दिया गया। इसी प्रकार ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि सभी को ग्रहण किया है। इसी सनातन् सांस्कृतिक परम्परा का गुण है कि सभी सुधारकों के गुणों से स्वयं को परिष्कृत किया। यह ही हमारा पंथ हो व मानवता का कल्याण हो तथा देश ही हमारी प्रथम पहचान हो।

रामकुमार ओझा के अनुसार समाज और संस्कृति परिवर्तनशील है। सम्पत्ति के सम्बन्धों में परिवर्तन, संस्कृति के विवर्तन को अनिवार्य रूप से प्रभावित करते हैं। उत्पादन की नयी पद्धति पुरानी का स्थानान्तरण करती है, स्वभावतः सामाजिक सम्बन्धों का भी पुनर्विन्यास होता है। सम्पत्ति की व्यवस्थाएँ तथा राष्ट्र नेतृत्व हस्तांरित होते हैं तथा नए सरमाएदारों के नेतृत्व में नयी व्यवस्था की स्थापना होती है। नए सरमाएदारों की प्रमुख शक्ति उनके अस्त्रबल तो होते ही हैं, लेकिन नयी संस्कृति उन्हें स्थायित्व देती है। इस

तथाकथित नई संस्कृति के प्रभाव से जनता के हृदय में प्राथमिक विरूपता मंद पड़ती जाती है एवं अंततः नयी व्यवस्था ही श्रेष्ठ, चिरंतन आदर्श समाज व्यवस्था के रूप में स्थापित होती है। इस संस्कृति के निर्माता बुद्धिजीवी होते हैं। अनजाने ही वे इस नयी व्यवस्था और शासक–श्रेणी का समर्थन करते जाते हैं। इसीलिए उस युग की संस्कृति उसी युग के सरमाएदारों की स्वार्थपूर्ति में सहायक होती है।

ओझा जी की कहानियों में वर्तमान संस्कृति और बुर्जुआ संस्कृति दोनों ही रूप दिखाई देते हैं। उनके अनुसार पूँजीवादी संस्कृति ही बुर्जुआ संस्कृति कहलाती है। यह संस्कृति पूँजीवादी विषम व्यवस्था का उत्पाद है तथा उसके लिए रक्षा–कवच भी। इस संस्कृति के प्रभाव से पूँजीवाद द्वारा परिचालित नीति उत्कृष्ट सामाजिक नीति प्रतीत होती है, अति जघन्य और नृशंस अत्याचार भी सदाचार–सा लगता है, मूर्ति मान शैतान देवदूत सी शांति देता है, अच्छे–बुरे का बोध लुप्तप्राय होता जाता है। कई आधुनिक विधि विधान तो मनुस्मृति के विधानों से अधिक हिंसक हैं। बुर्जुआ समाज के कार्यकलाप आदिम युग के आदमखोर बर्बर लोगों को भी शर्मसार करते हैं। किन्तु इस संस्कृति के प्रभाव के नशे में हम अत्यन्त स्वाभाविक रूप से सब कुछ स्वीकार करते हैं। बमवर्षण द्वारा लाखों शिशुओं, वृद्धों ओर स्त्रियों की हत्याएँ क्या हमें गुरुतर अपराध का अहसास भी देती हैं, जबकि बुर्जुआ व्याख्या में इसे धर्मयुद्ध कहा जाता है। जातीय स्वार्थ में युद्ध करना अपराध हो कर भी अपराध नहीं माना जाता। मध्ययुग में जो युद्ध धर्म के लिए होते थे, वे अब राष्ट्रीय स्वार्थ में होते हैं। इन युद्धों को हम स्वीकार कर अति उत्साह से समर्थन भी करते हैं।

ओझा जी की रचनाओं में सांस्कृतिक पक्ष के अन्तर्गत गंगा की मान्यता की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बहुत सुन्दर रूप में प्रस्तुत हुई है। 'श्रीगंगानगर से गंगासागर तक' की रचना में उन्होंने इसका सजीव चित्रण किया है, जिसमें गंगा ओर उससे जुड़े सांस्कृतिक पक्ष का स्वाभाविक अनुभव होता है।

"गंगा ने अपने जल–पीयूष में स्नान–मज्जन करने का फिर अवसर दिया। शशि को ऋषिकेश पहुंचा आने के बहाने मुझे एक बार फिर बुलाया गंगा ने। दिल्ली तक का रेल–आरक्षण भी हो चुका था। तभी सिलिगुड़ी से ज्येष्ठ भ्राता के आकस्मिक निधन की दुःखद सूचना टेलिग्राम द्वारा मिली। यथाशीघ्र सिलिगुड़ी पहुंचना आवश्यक था, किन्तु शशि के ससुराल वाले अपने सुलझे विचारों के कारण शोक–यात्रा के मार्ग में उसे साथ लिवा लाने पर भी आशंकित न होंगे, हमने अपने निवास स्थान (नोहर) से प्रस्थान किया। ऋषिकेश वालों ने सहज भाव से हमारा स्वागत किया।

मैंने उन्हें दुराशंका से किंचित भी ग्रस्त न पाया तो उस परिवार के प्रति मेरा अनुराग और भी बढ़ गया। अंधविश्वास भंजन के कुछ अवसर जीवन में आते हैं, उस समय यदि हम संस्कार जनित अन्तः भीरुता पर विजय प्राप्त कर साहस का परिचय दें तभी मौलिक प्रगतिशीलता की प्रामाणिकता परिलक्षित होती है। दुर्बल सांस्कृतिक काल के संस्कारों ने हम भारतीयों को द्वैमना बना दिया है। जिन रूढ़ियों का हम मंचों से खण्डन करते हैं, किन्तु अवसर पड़ने पर सामाजिक रिवाज के रूप में उनका ही पालन करते हैं। प्रगतिशीलता के प्रति भी भारतीय मानस में अनेक भ्रान्तियाँ है। आम भारतीय के मतानुसार प्रगतिशील वह है जो अपने देश और संस्कारों से कटकर छूछा हो जाता है, अपने मूल से कटकर आधारहीन हो जाता है। अंधविश्वास के झाड़–झंकाड़ों के बीच कुछ आवश्यक संस्कारों की अपनी अनिवार्यता व मार्यादा है, यह समझने की आवश्यकता है।

मेरी पुत्री के ससुर आचार्य बालकराम जी आहिताग्नि थे। अपने समय के सर्वश्रेष्ठ यज्ञविधि विधायक, किन्तु यज्ञ को उन्होनें सदैव कर्ममूलक विधा के रूप में परिभाषित किया। उनके ज्येष्ठ पुत्र सुवीर अंग्रेजी के प्राध्यापक होने के बावजूद चतुर्वेदी (चारों वेदों के व्याख्याता) और मेरे जामाता उपेन्द्र इंजीनियर होते हुए भी द्विवेदी (दो वेदों के व्याख्याता) हैं। आर्य समाजी नहीं। कट्टर सनातनी, किन्तु अंधविश्वासों से अछूते। उनके परामर्श पर प्रथम ऋषिकेश के त्रिवेणी घाट और तत्पश्चात् हरिद्वार में हर की पौड़ी पर भ्राता श्री के प्रति जलाञ्जली आदि अर्पित किये जाने की शास्त्रीय विधि सम्पन्न की। प्रत्येक तीर्थ के पण्डों की अपनी–अपनी पद्धतियाँ हैं। हरिद्वार के पण्डे यजमानों की पीढ़ीयों से चली आती नाम, ग्राम की वंशावलियां रखते हैं। न जाने उन्हें कैसी देवदृष्टि मिली है कि वे नाक–नक्श से ही अपने यजमान के वंशज को पहचान जाते हैं। ये वंशानुक्रमणिक पोथे उनकी रोजी–रोटी के साधन हैं। कई पण्डे बड़े धनवान हो गये हैं और अब वे अपने यजमानों को दूसरे पण्डों के नाम ठेके पर चढ़ाने लगे हैं। तर्पण, अस्थि–तारण का काम कोई और करता है और वे एक तिहाई आय वसूल लेते हैं।"[59]

श्री रामकुमार ओझा बदलते परिवेश में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में जो सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं उन पर भी अपनी कहानियों में पूर्ण प्रकाश डालते हैं। अपनी कहानी 'चौपाटी का चेतक और हुसैन का घोड़ा' में उन्होंने इस चित्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया है

कस्बे न भारत होते हैं, न इंग्लिस्तान बन पाते हैं। यहाँ से उल्टे बाँस बरेली जाने लगते हैं। पहले पचास–साठ हजार की आबादी वाली बस्तियाँ शहर कहलाने लगती थीं, उससे पहले चार–पाँच हजार की जनसंख्या वाले प्लेटों और अफलातून की कल्पना के

नगर–राज्य तक होते थे। अब तो बस, बीस लाख वाली आबादी वाले शहर तो मान लिये जाते हैं पर वहाँ कॉरपोरेशन नहीं बनती।

खैर, कनखजूरा शहर न बना हो पर वहाँ से गाँवों वाली शांति सहकारिता पलायन कर चुकी थी। शनैः शनैः वाटर सप्लाई, सड़कों का कोलतारीकरण होने लगा, हो गया। फोन, टी.वी. ऑडियों, वीडियो, श्रृंगार प्रसाधन सामग्री से नया बना बाजार पट गया तो इश्की का बाजार भी काफी गर्म हो गया। कुडियाँ, मुण्डे सारे सड़क पर गाने लगे–

"पपियाँ जफियाँ पालें हम।
अंखियों से आँख मिला लें हम।"
"राम जाने, राम जाने, राम जाने
कहते हैं लोग मुझे राम जाने
कहते हैं क्यों राम जाने?"
पर राम तो जियारत करने निकल गए थे।

हजारों स्वतंत्र कृषक भूमिहीन काश्तकार बन गये। कुछ गाँवों में गये पर अधिकांश शहरों की ओर दौड़े। वन वे मार्ग पर एक ओर से कस्बे वाले शहरों की ओर जा रहे थे दूसरी ओर से शहर वाले कस्बे के रूख आ रहे थे।

जब सारे संसार में सांस्कृतिक, औद्योगिक आदान–प्रदान हो रहा था तो कस्बा कनखजूरा ही उससे वंचित कैसे रह पाता। शहर वाले जो भी आते कोई स्कीम लेकर आते, वे कस्बे का कच्चा माल शहर और शहर का तैयारी माल कस्बे तक पहुँचा। दरमियाने उद्योग चल निकले जिससे छोटे गृह–उद्योग पिटने लगे। टीले को नाजायज ढंग से कब्जाने के जुर्म में वहाँ से दूरदर्शी को खदेड़ दिया गया और वहाँ एक यांत्रिक बूचड़खाना खुल गया। मोमिन और पुजारी ने मिल कर ऐसा पासा फैंका कि ना खून गिरा, ना सर कटा और बाड़ा कबीर चौरा को दोनों मजहब के मुखियाओं ने आधा–आधा बांट लिया।"[60]

3.5 निष्कर्ष –

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रामकुमार ओझा की कहानियाँ ग्रामीण और शहरी परिवेश की अपनी–अपनी विशेषताओं को समेटे हुए हैं। इनकी कहानियों से स्पष्ट होता है कि कहानीकार अपने गाँव के परिवेश को कभी नहीं भूला। राम कुमार ओझा जी ने अपनी कहानियों में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बदलते परिवेश को भली भाँति पूर्ण चित्रण किया है और शहरी व ग्रामीण पृष्ठभूमि को तार–तार कर खोलकर वर्णन किया है कि जिस प्रकार से शहर व गाँव के लोग किस प्रकार से अपनी पैतृक भूमि पर दिल से लग्नपूर्वक रहते हैं व उनके आपसी–प्रेम को भी अपनी वैचारिक दृष्टि में पूर्णतया वर्णन किया है। इसके

साथ–साथ जातीय पृथकता एवं अस्पृश्यता से भी ओझा जी बहुत उद्वेलित रहते थे। जाति–पांति का आधुनिक भेदभाव भारत की प्रगति में बाधक है, वह संकीर्ण बनाता है, विलग करता है और विचारों की प्रगति से ढह जाएगा उनकी यह धारणा बड़ी ही स्टीक थी। इसके साथ–साथ ओझा जी ने बदलते सांस्कृतिक मूल्यों को भी अपने लेखन में स्थान दिया है। संस्कृति के विचार स्वच्छंदता देते हैं, शक्ति देते हैं। इसी तथ्य को ओझा जी ने स्पष्ट स्वीकार भी किया है।

ओझा की ग्रामीण व शहरी परिवेश की लगभग सभी कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने देश की निम्न–वर्गीय व्यवस्था पर दिल से ध्यान दिया है। सम्भवतः उनकी संवेदना निम्न वर्ग के प्रति अधिक परिपुष्ट हुई। उन्होंने अपने क्षेत्रीय वातावरण से ही इन पात्रों को देखा है तथा उन पर पूर्णतया प्रकाश डाला है और अपनी उच्च सोच को रखते हुए मानवतावादी संदेश दिया हैं।

सन्दर्भ सूची –

1. भूमिका, 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा, बोधि प्रकाशन, जयपुर।
2. वही
3. वही
4. भूमिका, 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ.सं. 4
5. 'सत्यमेव जयते', पृ. सं. 5
6. 'सूखे की एक रपट', पृ. सं. 18
7. वही, पृ. सं. 18
8. वही, पृ. सं. 19
9. वही, पृ. सं. 20
10. वही, पृ. सं. 21
11. 'खून लामजहब है', पृ. सं. 32
12. वही, पृ. सं. 33
13. वही, पृ. सं. 33
14. 'शेष सब सुविधा', पृ. सं. 51
15. वही, पृ. सं. 51
16. 'सरदी और साँप', पृ. सं. 28
17. 'दरख्त पर टंगी रोटी', पृ. सं. 87

18. वही, पृ.सं. 86
19. 'बंधवा', पृ.सं. 89
20. वही, पृ. सं. 91
21. वही, पृ. सं. 92
22. वही, पृ. सं. 94
23. 'कोट', पृ. सं. 70
24. वही, पृ. सं. 72
25. 'शेष सब सुविधा', पृ.सं. 49
26. वही, पृ.सं. 49–50
27. वही, पृ.सं. 52
28. 'एक दिन गुस्ताखियों का', पृ.सं. 79
29. 'बूढ़े बरगद और चिल्लर लंगड़ की कहानी', पृ. सं. 52
30. 'सिराजी', पृ. सं. 9
31. 'आदमी वहशी हो जाएगा', पृ. सं. 14
32. वही, पृ. सं. 10
33. 'मुकामो', पृ. सं. 15
34. वही, पृ.सं. 15–16
35. 'आदमी वहशी हो जाएगा', पृ. सं. 16
36. 'मुकामो', पृ. सं. 17–18
37. 'आदमी वहशी हो जाएगा', पृ. सं. 20
38. 'मुकामो', पृ.सं. 21
39. 'बाबा बोलने लगे', पृ. सं. 140
40. 'बाबा बोलने लगे', पृ. सं. 141
41. वही, पृ. सं. 141
42. वही, पृ. सं. 139
43. 'खून', पृ. सं. 102
44. वही
45. 'रब्बो', पृ. सं. 75
46. 'हाड़फरोश', पृ. सं. 87
47. 'त्रिकाल', पृ. सं. 41

48. 'सड़क', पृ.सं. 45

49. वही, पृ.सं. 45–46

50. वही, पृ.सं. 46

51. 'शेष सब सुविधा', पृ.सं. 52

52. 'कोट', पृ.सं. 70

53. 'जिन्दाबाद अमर रहे', पृ.सं. 64–65

54. 'कबीर की कथनी', रामकुमार ओझा, पृ.सं. 4

55. वही

56. 'सत्यमेव जयते', पृ.सं. 5

57. वही

58. 'एक दिन गुस्ताखियों का', पृ.सं. 79

59. 'श्रीगंगानगर से गंगासागर तक', पृ.सं. 49–50

60. 'कौन जात कबीरा', पृ.सं. 86–87

अध्याय चतुर्थ

रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य में कथ्य विश्लेषण

अध्याय चतुर्थ
रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य में कथ्य विश्लेषण

4.1 प्रस्तावना –

भारतेन्दु युग से उपन्यास हिन्दी गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा है। आधुनिक हिन्दी उपन्यास का उदय भारतेन्दु युग से माना जाता है। 'उपन्यास' शब्द दो शब्दों के योग से बना है 'उप और न्यास'। उप का अर्थ है गौण और न्यास का अर्थ है स्थापना करना। उपन्यासकार इस साहित्यिक विधा द्वारा अपने विचारों की गौण सृष्टि करता है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास का आविर्भाव उन्नीसवीं शती के अन्तिम दौर में हुआ। आधुनिक काल की विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्नीसवीं शती तक उपन्यास साहित्य पूरे यूरोप में समृद्ध हो चुका था। जो भारतीय भाषाएँ सीधे तौर पर अंग्रेजी के सम्पर्क में थी वहाँ इसका आरम्भ हिन्दी से पहले हो गया था। बांग्ला और मराठी ये दोनों ही भाषाएँ अंग्रेजी के सम्पर्क में थी। बांग्ला में शरत्चन्द्र, बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि ने हिन्दी से पूर्व ही उपन्यास लेखन आरम्भ किया। यूरोप, इटली, इंग्लैण्ड में महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की रचना हुई। अंग्रेजी और बांग्ला उपन्यासों की लोकप्रियता से हिन्दी साहित्य में इस विधा का श्री गणेश हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती में प्रकाशित एक निबन्ध 'उपन्यास रहस्य' में इस बात को स्वीकार किया है कि उपन्यास के प्रचलन, विकास एवं सृजन का श्रेय पश्चिमी देशों के लेखकों को ही हैं, जिससे प्रेरणा लेकर हिन्दी में भी उपन्यास रचना की जाने लगी है।

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास को लेकर प्रायः विद्वानों में मतभेद रहा हैं। इस सम्बन्ध में जिन दो उपन्यासों को लेकर विद्वानों में मतभेद है वे है श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' सन् 1877 तथा लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' 1882। प्रथम उपन्यास में 'भाग्यवती' के चरित्र में सद्व्यवहार और सेवा के महत्त्व पर बल देते हुए लेखक की सुधारवादी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। 'भाग्यवती' अपनी शिक्षा के बल पर सामाजिक अंधविश्वासों, पाखण्डों, कुरीतियों से अपने साथ–साथ समाज की रक्षा करती है। 'परीक्षा गुरु' के द्वारा समकालीन मध्य वर्गीय समाज और उसकी समस्याओं को चित्रित किया गया है। इसमें भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ प्रमाणित करते हुए उपदेश वृत्ति का आधार ग्रहण किया गया है। 'परीक्षा गुरु' को अधिकांश विद्वान हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। दूसरे स्थान पर वे श्रद्धाराम फुल्लौरी के

उपन्यास 'भाग्यवती' को स्वीकार करते हैं। हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास को हम संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

1. प्रेमचन्द पूर्व युग का उपन्यास साहित्य
2. प्रेमचन्द युग का उपन्यास साहित्य
3. प्रेमचन्दोत्तर युग का उपन्यास साहित्य
4. समकालीन उपन्यास साहित्य

4.2 'उपन्यास' शब्द का अर्थ –

उपन्यास विधा हिन्दी साहित्य के लिए सर्वथा एक नई देन है। हिन्दी की सबसे बड़ी लोकप्रिय गद्य–विधा उपन्यास है। 'उपन्यास' शब्द संस्कृत के अस् धातु से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ 'रखना' होता है। इसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग तथा 'धञ्' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। इस शब्द का अर्थ 'सम्यक् रूप से उपस्थापन' ऐसा होता है। संस्कृत, अंग्रेजी शब्दकोश में 'उपन्यास' के कई अर्थ हैं, जैसे– उल्लेख, अभिकथन, सम्मति, उद्धरण, सन्दर्भ। इसके अतिरिक्त संस्कृत नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में 'उपन्यास' शब्द का अर्थ भरतमुनि के अनुसार 'उपन्यास प्रसादनम्' किया गया है। दूसरी व्याख्या इस प्रकार है– 'उपपतिकृतोध्यर्थ उपन्यास संकीर्तितः।' अर्थात 'उपन्यास' का अर्थ 'युक्तियुक्त रूप में उपस्थित करना' होता है। इन दोनों व्याख्याओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि उपन्यास में प्रसन्नता देने की शक्ति तथा युक्ति–युक्त रूप में अर्थ को प्रस्तुत करने की प्रवृति होती है। व्युत्पति की दृष्टि से 'उपन्यास' का शब्दार्थ 'उपत्रनिकट', 'न्यासत्ररखना' अर्थात् सामने। निकट रखना। अर्थात लेखक पाठकों के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, नवीन मत रखना चाहता है और उसका साधन (माध्यम) 'उपन्यास' कहा जाता है।

भारतीय प्रांतीय भाषाओं में 'उपन्यास' शब्द के भिन्न–भिन्न शब्द प्रयुक्त हैं। दक्षिणी भाषा तेलुगू आदि में– व्याख्यान्, वकतृत्व आदि अर्थ में उपन्यास शब्द प्रचलित हैं। अंग्रेजी में Novel शब्द के लिए उपन्यास शब्द प्रयुक्त है। वस्तुतः उपन्यास Novel अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है। डॉ. सुकुमार सेन का कहना है कि 'उपन्यास' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 19वीं शती में बांग्ला के साहित्यकार श्री भूदेव मुखर्जी ने किया था। यह शब्द हिन्दी में बांग्ला से आया है। मराठी भाषा में उपन्यास को 'कादम्बरी' और गुजराती में 'नवलकथा' और बांग्ला में 'उपन्यास' शब्द उपन्यास के पर्याय हैं। सामान्यतः हिन्दी में भी बांग्ला का अनुकरण होने लगा है।

4.3 उपन्यास की परिभाषा –

हिन्दी साहित्य जगत में उपन्यास साहित्य नवीनतम विधाओं में से एक हैं।

जिसका प्रारम्भ 11वीं शताब्दी से माना जाता है। इससे पहले उपन्यास विधा का सर्वथा अभाव देखने को मिलता था। जब से हिन्दी में गद्य साहित्य की शुरूआत हुई तब से ही उपन्यास की भी शुरूआत हुई।

हिन्दी के भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों, साहित्यकारों ने उपन्यास की विविध परिभाषाएँ दी हैं, जिनमें कतिपय प्रसिद्ध भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं –

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के अनुसार–

''उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है। इसमें मानव जीवन और मानव चरित्र का चित्रण उपस्थित किया जाता है। वह मनुष्य के जीवन और चरित्र की व्याख्या करता हैं।''[1]

- **मुंशी प्रेमचन्द ने कहा है कि –**

''मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव–जीवन पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना उपन्यास का मूल तत्त्व है।''[2]

- **डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार –**

"युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्य–काव्य उपन्यास कहलाता है।"[3]

- **डॉ. श्याम सुन्दर दास के अनुसार–**

"उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"[4]

- **बाबू गुलाबराय के मतानुसार :–**

''उपन्यास कार्य–कारण की शृंखला में बँधा गद्य कथानक है। वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित काल्पनिक घटना के द्वारा मानव–जीवन के सत्य का रसात्मक उद्घाटन उपन्यास है।''[5]

- **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है :–**

''कथा कहानी की पुस्तक जिसे प्रकाशक–लेखक उपन्यास कहना पसन्द करे।''[6]

4.4 उपन्यास के तत्त्व –

जीवन और जगत के वैविध्य का ही व्यापक दृष्टियों से चित्रण होने के कारण इसमें जीवन और जगत के विभिन्न और विविध प्रकार के कार्यकलापों, घटनाओं, पात्रों और उनके चरित्रों, पारम्परिक सम्बन्धों आदि का अंकन होता है। उसमें देशकाल के वास्तविक सन्दर्भ भी रहा करते हैं। उनकी अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही सम्भावित होती है। जीवन के सत्यों को सजा–सँवार कर प्रस्तुत करने के लिए उपन्यासकार कल्पना का आश्रय भी लिया करता

है। उसके सामने जीवन का कोई उदात्त स्वरूप, उदात्त लक्ष्य, जीवन के लिए संप्रेषण योग्य सन्देश आदि भी होते हैं। भारतीय काव्यशास्त्रियों के उपन्यास के स्वरूप के अन्तर्गत चर्चा में उपन्यास रचना प्रक्रिया के लिए तीन तत्त्व आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण माने हैं।

(1) वस्तु (2) नेता (3) रस।

इन्ही तीन तत्त्वों के सन्दर्भ में पाश्चात्य विद्वानों ने उपन्यास के मुख्यतः छः तत्त्व स्वीकार किए हैं।

(1) कथावस्तु (2) पात्र और चरित्र–चित्रण, (3) संवाद या कथोपकथन, (4) देशकाल या वातावरण, (5) भाषा–शैली, (6) उद्देश्य

इनके अलावा द्वन्द्व, संघर्ष तथा कौतूहल या द्विधा (सस्पेन्स) भी उपन्यास में आवश्यक कारक माने जाते हैं। किन्तु वास्तव में ये तत्त्व रचना–कौशल के ही अंग हैं। इनका अन्तर्भाव अन्य तत्त्वों में ही समाविष्ट हो जाता है।

4.5 उपन्यास के भेद –

उपन्यासों के विभिन्न प्रकारों को निश्चित करने के लिए विद्वानों ने कई आधारों को स्वीकार किया है। अतः उपन्यास के प्रकारों को लेकर विद्वानों में मतभेद विद्यमान है। उपन्यास के तत्त्वों के आधार पर उपन्यास के केवल तीन प्रकार हैं– घटना प्रधान, चरित्र–प्रधान और नाटकीय। तो कुछ विद्वान कार्य अथवा वर्ण्य विषय के आधार पर (1) धार्मिक व सांस्कृतिक (2) सामाजिक (3) ऐतिहासिक (4) आँचलिक (5) यौन–सम्बन्धी (6) मनोवैज्ञानिक उपन्यास आदि भेद करते हैं।

4.5.1 धार्मिक व सांस्कृतिक उपन्यास –

सन् 1960 के पश्चात् हिन्दी उपन्यास में अनेक नई प्रवृतियों का उन्मीलन हुआ यद्यपि इससे पूर्व भी धार्मिक एवं सांस्कृतिक कथा–वस्तु को लेकर कुछ उपन्यासकारों ने उपन्यास लिखे हैं– परन्तु आधुनिक काल में सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित अनेक उपन्यास लिखे गये। इस प्रकार के उपन्यासों के उपन्यासकार किसी धार्मिक चेतना या सांस्कृतिक चेतना को केन्द्र में रखते हुए उपन्यास का ताना–बाना तैयार करता है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखा है। इस वर्ग के उपन्यासकारों में मुख्यतः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नरेन्द्र कोहली, वीरेन्द्र कुमार जैन के नाम उल्लेखनीय हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'अनाम दास का पोथा' में उपनिष्दों में प्राप्त संकेतों के आधार पर ऋषि, रैक्व एवं राजकुमार जाबाला के प्रणय का चित्रण उदात्त शैली में करते हुए उस युग की संस्कृति एवं जीवन–पद्धति का अंकन प्रभावशाली रूप से

किया है। उन्होंने अपने अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास में भी प्राचीन भारतीय संस्कृति को सजीव रूप में प्रस्तुत किया है।

नरेन्द्र कोहली के परम्परागत रामकथा को आधुनिक युग के अनुरूप नूतन शैली में प्रस्तुत किया है। उन्होंने समस्त रामकथा को चार उपन्यासों में विभक्त किया है– 1. दीक्षा 2. अवसर 3. संघर्ष की ओर तथा 4. युद्ध। इन रचनाओं के माध्यम से कोहली के रामकथा का आधुनिकीकरण करते हुए राम के माध्यम से अपने युग को नया सन्देश देने का प्रयास किया है, जिसमें उन्हें सफलता मिली है।

वीरेन्द्र कुमार जैन के 'अनुतर योगी' में जैन धर्म के तीर्थंकर महावीर के चरित्र को आधुनिक भाव–बोध के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें महावीर के चरित्र को अत्यन्त क्रँातिकारी कल्याण एवं उदार रूप चित्रित करते हुए लेखक ने विषय–वस्तु, शैली एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से भी नये प्रतिमान स्थापित किये हैं।

यद्यपि इस वर्ग में आने वाले उपन्यासों की संख्या अधिक नहीं हैं। किन्तु इससे इसका महत्त्व कम नहीं हो जाता। वस्तुतः विषय वस्तु की व्यापकता, विचारों की नवीनता एवं शैली के औदात्य की दृष्टि से ये रचनाएँ इस युग की गौरवपूर्ण उपलब्धियों के रूप में स्वीकार की जा सकती है। साथ ही इनका महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि इन उपन्यासकारों ने पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के बाह्य आकर्षण, भौतिकवादी जीवन–दर्शन एवं तथाकथित आधुनिक बोध की उद्घोषणाओं के प्रभाव से मुक्त रहकर अपने युग और समाज को एक स्वस्थ, संतुलित एवं उदात्त सन्देश देने का प्रयास किया है।"[7]

4.5.2 सामाजिक उपन्यास –

कुछ विद्वानों ने अपने उपन्यासों के पाँचवें वर्ग में सामाजिक उपन्यासों को रखा है, ऐसे उपन्यासों में सामयिक युग के विचार आदर्श और समस्याएँ चित्रित होती हैं। सामाजिक समस्याओं का चित्रण ही इनका मूल उद्देश्य होता है। साथ में ऐसे उपन्यासों में राजनीतिक धारणाओं और मतों का विशेष प्रभाव रहता है। इन उपन्यासों में लेखक अपने समय के आदर्शों के रूप में पात्रों का चित्रण करता है। आज के प्रगतिवादी लेखकों के अधिकांश उपन्यास तथा प्रेमचन्द के कुछ उपन्यास इसी वर्ग में आते हैं। परन्तु सामाजिक उपन्यास जैसा कोई वर्ग निश्चित करना अवैज्ञानिक है, क्योंकि लगभग सभी उपन्यासों में समाज के किसी न किसी पक्ष या रूप का चित्रण आवश्यक रहता है। सामाजिक संगठन प्रायः उस व्यक्ति समूह का होता है जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से समान स्तर का होता है। वे व्यक्ति परस्पर पूर्ण समान नहीं होते, तभी उनमें आदान–प्रदान की प्रक्रिया

अनवरत रूप से चलती रहती है। उनकी सामान्य भाषा, सामान्य विश्वास, मत और सामान्य रीतियाँ उस सामाजिक गठन में विशेष सहायक होती है। वे किसी सामान्य उद्देश्य की दृष्टि में रखकर गतिशील होते हैं और उनमें परस्पर संसर्ग बना रहता है। समाज धारा परम्परा के रूप में अक्षुण बनी रहती है। व्यक्ति उसमें आकर मिलते, उससे विलग होते रहते हैं। किन्तु परम्परा, समाज के गठन को सुरक्षित रखती है। वे व्यक्ति को सामाजिक जीवन के परिवेश में रखकर चलते हैं। ऐसे उपन्यासों में मध्यम वर्ग को कथावस्तु के रूप में चुना जाता है। मध्यम वर्ग एक अजीब वर्ग है। वह अपनी झूठी शान काल्पनिक गरिमा, आर्थिक खोखलापन के बीच में अजीब हुआ–सा, कुण्ठित–सा दिखाई पड़ता है। द्वंद्व का सबसे बड़ा शिकार होता है। यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', अमृतराय, धर्मवीर भारती, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी आदि ऐसे सामाजिक उपन्यासकार हैं, जिन्होंने नये परिवेश में आगे बढ़कर प्रगतिशील सामाजिक उपन्यास लिखे हैं।

4.5.3 ऐतिहासिक उपन्यास –

इस प्रकार के उपन्यासों में भी पात्रों और घटनाओं का समन्वित रूप मिलता है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता इन उपन्यासों में देशकाल का चित्रण है। इन उपन्यासों का यह प्राण है। यदि ऐसे उपन्यासों में देशकाल का पूर्ण और संगत चित्रण नहीं होता तो ऐसे उपन्यासों का कोई मूल्य नहीं है। इनकी ऐतिहासिकता का रक्षक यही देशकाल का चित्रण है। देशकाल के चित्रण से अभिप्राय है कि जिस देश अथवा स्थान का और इतिहास के जिस काल–खण्ड का वर्णन हो, वह उचित यथार्थ और इतिहासपरक होना चाहिए। कोरिया को हिमालय पर्वत पर बताना और सिकन्दर के समय इस्लामी वेश–भूषा और रीति–रिवाजों का वर्णन करना देश और काल का विरोध है, क्योंकि कोरिया हिमालय पर न होकर चीन के उत्तरी–पूर्वी समुद्र तट पर स्थित है और सिकन्दर के समय तक इस्लामी संस्कृति के प्रवर्तक मुहम्मद साहब का जन्म भी नहीं हुआ था।

इसलिए ऐतिहासिक उपन्यासकार को वर्णित युग और देश की संस्कृति, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि परिस्थितियाँ, रहन–सहन, रीति–रिवाजों, इतिहास आदि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। साथ ही सम्बन्धित युग का कथानक गढ़ने के लिए एक अपूर्व कल्पना–शक्ति की भी पूर्ण आवश्यकता है, जिससे तत्कालीन जीवन का सर्वांगीण, आन्तरिक और प्रभावोत्पादक चित्रण हो सके। इसलिए ऐसे उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का सम्पूर्ण योग रहता है। इनमें से एक का अभाव होने से सफल ऐतिहासिक उपन्यास की रचना नहीं हो सकती। ऐतिहासिक उपन्यास इतिहासकारों पुरातत्त्ववेत्ताओं आदि द्वारा संगृहीत नीरस तथ्यों को कल्पना द्वारा जीवन्त और सुन्दर बना देता है। दूसरे

शब्दों में वह इतिहास की कंकालवत नीरस अस्थियों पर कल्पना का रक्त–माँस चढ़ाकर उन्हें माँसल और आकर्षक बना देता है। प्रेमचन्द पूर्व युगीन हिन्दी उपन्यास लेखन प्रवृति में इस प्रकार के उपन्यास देखने को मिलते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'हृदयहारिणी' या 'आदर्शरमणी', 'तारा', 'राजकुमारी', 'कनक–कुसुम', 'रजिया–बेगम' आदि। गंगा प्रसाद गुप्त के उपन्यास ऐसे ही उपन्यास है।

मध्यकाल में हम मानो अपना सब कुछ खो चुके थे, जीवन के बाह्य विधानों में ही उलझ गए थे। हमारा वर्तमान दयनीय था, हम विदेशी सत्ता से पराभूत तो थे ही, अपनी सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासों में भी जकड़े रह गए थे। विदेशी सत्ता ने हमें पराभूत तो किया, किन्तु जीवन को यथार्थवादी दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित भी किया और तब अपना मार्ग खोए हुए कुछ लोग विदेशी संस्कृति और सभ्यता की ऊपरी चकाचौंध में ही जा उलझे। ऐसे अवसर पर अपने इतिहास के गौरव की याद आना और उसे पुनर्जीवित करने का प्रयास करना स्वाभाविक था। ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर लेखकों ने मानों अपनी सांस्कृतिक विरासत को पुनः जागृत करना चाहा है।

4.5.4 आँचलिक उपन्यास –

आँचलिक उपन्यास उपन्यासों का एक नया प्रकार है जो किसी अँचल के जीवन से सम्बद्ध होता है। उपन्यासों की इस नवीन और विशिष्ट धारा का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की एक नवीन उपलब्धि समझी जाती है।

हिन्दी में उपन्यास को आँचलिक उपन्यास की संज्ञा देने वाले सर्वप्रथम फणीश्वरनाथ 'रेणु' हैं। उन्होंने अपने पहले उपन्यास 'मैला आँचल' की भूमिका में लिखा है– ''यह है मैला आँचल'' एक आँचलिक उपन्यास। कथानक पूर्णिया.........मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक बनाकर इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।''

1954 में लेखक की इस घोषणा से हिन्दी साहित्य में 'आँचलिक उपन्यास' शब्द प्रचलित एवं प्रसिद्ध हुआ। आँचलिक के लिए अंग्रेजी में 'Local colour', 'Regional touch' आदि शब्द हैं, जिनका अर्थ है स्थानीय रंग। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार टॉमस हार्डी ने कई ऐसे उपन्यास लिखे जो 'wessek novels'k के नाम से प्रसिद्ध है। 'आँचलिक उपन्यास' को हिन्दी कथा साहित्य की एक मौलिक और नवीन उपलब्धि माना जा सकता, क्योंकि ऐसे उपन्यासों में क्षेत्र विशेष ही स्थानीय रंग के साथ है।

"मैला–आँचल" में 'रेणु' ने जमींदार और किसानों के संघर्ष को दिखाया है। लेखक ने इस उपन्यास में कृषक वर्ग की आँचलिकता को ही विशेष पर्याय माना है। 'परती परिकथा' में इन्होंने स्वतंत्र भारत से जुड़ी विभिन्न समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान

आकर्षित किया है। जैसे जमींदारी प्रथा के अंत, नेताओं की स्वार्थ परायणता, भूमिदान आदि जैसे 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चौराहे' इनके अन्य उपन्यास हैं।

राही मासूम रजा के 'आधा गाँव', 'हिम्मत जौनपुरी', 'ओस की बूँद' 'दिल एक सादा कागज' आदि उपन्यास है। रामदरश मिश्र 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' में ऐसे गाँव से जुड़ी समस्याओं को कथा के लिए चुनना जो सीधे पानी से जुड़ी है। जहाँ बाढ़ अपना ताण्डव दिखाती है। 'सूखता हुआ तालाब' में इन्होंने ग्रामीण जीवन की विकृतियों को उजागर किया है। उदयशंकर भट्ट ने 'सागर लहरें और मनुष्य' में समुद्र तट पर रहने वाले मछुआरों के जीवन और उससे जुड़े विभिन्न पहलुओं पर अलग–अलग तरीके से प्रकाश डाला है और रेणु जी ने अपनी अँचल विशेष की सारी विशेषताओं को आँचलिक उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। ऐसे उपन्यासों में रहन–सहन, आचार–विचार आदि सभी का वर्णन अँचल विशेष के अनुसार ही किया गया है।

'मैला आँचल' के पात्र जहाँ है, वहीं है लेखक ने उनकी तथा उनकी चेतना धारा का सामूहिक प्रवाह उपन्यास में प्रत्यक्ष किया है। वे पात्र अँचल में रहकर बाहरी प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करते हुए, उस पर अपनी प्रतिक्रिया रह–रहकर व्यक्त करते हैं। उनमें जीवन की भावी परिस्थितियों में घूमते हैं। किन्तु इस हलचल के बाद भी उनकी धुरी, वहीं की वहीं अविचल रहती है। सामने अनेक नई दिशाएँ खुलने पर भी वे आगे बढ़ नहीं पाते, घूम–फिरकर, यथास्थान, पर आ जाते हैं। इसलिए उपन्यास असफलता और अवसाद के वातावरण में समाप्त होता है। उपन्यास के प्रकरण–प्रवाह में केवल डॉक्टर प्रशान्त कुमार तथा कमला के प्रेम की कथा पुष्ट रूप पा चुकी है। वे साम्यवादी है और अपने मत का प्रचार उपन्यास में करने से नहीं चूकते। फिर भी वे अँचल की सांस्कृतिक परम्परा को लक्ष्य कर उसमें निहित सम्भावनाओं को उभारने में द्रष्टा कलाकार की सुलभ प्रतिभा का परिचय देते हैं।"[8]

4.5.5 यौन–सम्बन्धी उपन्यास –

यौन उपन्यास को भारतीय समाज का एक गम्भीर मुद्दा माना जाता है, व इसमें नारी–विमर्श की बड़ी चर्चा होती है। इस चर्चा में पुरुष और नारी दोनों शामिल हैं। कुछ पत्रिकाओं के सम्पादकों ने तो जैसे युग–युग से बन्दी नारी की मुक्ति का ही आन्दोलन शुरू कर दिया है तथा 'हंस' जैसी पत्रिकाएँ तो नारी के बलात्कार और नारी की यौन मुक्ति की कहानियों को ही पुरस्कृत तथा प्रकाशित करने का निर्णय कर चुकी है। हिन्दी के ऐसे लेखकों तथा सम्पादकों का ऐसा ही नारी विमर्श है जो नारी को उसके शरीर का स्वामी मानते हुए, उसे अपने शरीर को किसी भी प्रकार से भोगने की स्वतंत्रता देता है।

उसके पास हथियार के रूप में सिर्फ इसकी देह है। देह उसकी है इसलिए वह उसका इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र थी– वह फिल्मों में, राजनीति में, उद्योग में, सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में देह की कीमत वसूल रही है। वह पुरुषों के खेल में अपनी मर्जी से शामिल हो गई है और उन नियमों के हिसाब से खेल रही है और वह उसे पुरुषों के लिए नारी को मुक्ति द्वार मानती है।

हमारे जनवादी चेतना के सम्पादक उसी नारी–विमर्श को यौन उपन्यास और समाज में ला रहे हैं। ये लेखक पुरुष सत्तात्मक समाज और सामन्ती व्यवस्था में शोषण और दासता के इतिहास के वर्णन में जिस नारी–निष्ठा का प्रदर्शन करते हैं तथा नारी–मुक्ति का ढोल पीटते हैं, ऐसे लेखक नारी को आनन्द और भोग की वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझते।

प्रेमचन्द ने कहा है कि नारी की यौन शुचिता के विवेचन के लिए मुझे इस प्रसंग को तथा नारी–विमर्श से इस पश्चिमी उन्माद को पृष्ठभूमि के रूप में देना उचित सा प्रतीत हुआ। नारी–विमर्श में नारी के अधिकारों, उसकी मुक्ति एवं स्वतंत्रता के प्रश्न में उसकी यौन शुचिता का सवाल बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अतः प्रेमचन्द के इस सम्बन्ध में विचारों को जानने से पहले यह आवश्यक था कि यह स्पष्ट हो कि आज नारी–विमर्श के मसीहा किस प्रकार उसकी यौन शुचिता को नष्ट करने तथा शरीर के मुक्त उपभोग में भी नारी–मुक्ति का दिवा–स्वप्न देख रहे हैं। भूमण्डलीकरण के इस दौर में नारी एक वस्तु बन गई है और उसका शरीर केन्द्र में आ गया है। वह स्वयं नग्न प्रदर्शन यौन व्यापारों का स्वेच्छा से अंग बन रही है। असल में भारतीय नारी के लिए यौन उपन्यासों में बतलाया गया है कि जब तक पुरुष के प्रति निष्ठावान है, तथा घर–परिवार की रचना में मग्न है, तब तक यौन मुक्ति सम्भव नहीं है। इसी कारण पश्चिमी देशों में तो विवाह संस्था नष्ट हो रही है और घर–परिवार का स्वरूप भी एकदम बदल रहा है। परन्तु भारत के सम्पूर्ण नारी समाज को इन अर्थों में आधुनिक बनाना असम्भव ही होगा। भारतीय नारी में यौन शुचिता की जड़ें इतनी गहरी हैं, कि वह तितली बनकर भी मधुमक्खी बनी रहती है। मधुमक्खी परिवार, सेवा, त्याग का प्रतीक है। यही भारतीय नारी का जीवन–दर्शन है। भारत का अर्द्धनारीश्वर का दर्शन, स्त्री–पुरुष की परस्पूरकता एवं एकनिष्ठता विवाह तथा परिवार की पवित्रता एवं परस्पर का अटूट विश्वास किसी भी पश्चिमी यौन आँधी से भारतीय नारी को उसके अधिकार तथा स्वतंत्रता के साथ उसकी यौन–शुचिता को भी बनाये रखेगी।

4.5.6 मनोवैज्ञानिक उपन्यास –

जीवन का गद्यात्मक आख्यान 'उपन्यास' अपने रूप और शिल्प दोनों में ही निरन्तर

गतिशील रहा है। उपन्यासों के शुरूआती दौर में ये किसी ने भी नहीं सोचा होगा कि साहित्य में इतने बाद में आयी ये विधा एक दिन कविता, नाटक आदि अन्य साहित्यिक विधाओं को पीछे छोड़ती हुई उनसे बहुत आगे निकल जायेगी। खास–तौर पर कथा–साहित्य में तो प्रेमचन्दोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक कथा रचना की बड़ी भारी परम्परा देखने को मिली इस सम्बन्ध में डॉ. देवराज की ये टिप्पणी उल्लेखनीय है– "इस शताब्दी के मानव मनोविज्ञान सम्बन्धी अनुसंधानों ने व्यक्ति के विविध रूपों का अध्ययन दरअसल इसकी भी एक वजह है, मानव की भीतरी परतों को जिस तरह विस्तार के साथ कथा–कहानी में उधेड़ा जा सकता है। काव्य में वो विस्तार कलेवर की संक्षिप्तता के कारण सम्भव नहीं हो पाता। अतः मनोविज्ञान का सर्वाधिक प्रभाव हिन्दी कथा–धारा में दिखलाई पड़ता है। कोई अचरज की बात नहीं मनोविज्ञान के प्रभाव से हिन्दी, उपन्यासों का चेतना–प्रवाह के उपन्यास तक कहा जाने लगा।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक कथाधारा की शुरूआत सन् 1930 के आस–पास से मानी जाती है। जैनेन्द्र का 'परख' और इलाचन्द्र जोशी का 'घृणामयी' (लज्जा) इस कथा–धारा के प्राथमिक उपन्यास माने जाते हैं। इसके बाद तो हिन्दी में इस तरह के उपन्यासों की बाढ़ सी आ गई। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय हिन्दी की मनोवैज्ञानिक कथा–धारा के अग्रणी कथाकार माने जाते हैं।

मिसाल के तौर पर जैनेन्द्र मनोविज्ञान की 'गेस्टॉल्ट' शाखा से ज्यादा प्रभावित थे, साथ ही उन्होंने मनोविज्ञान को अपने जैन संस्कारों और गाँधीवादी आदर्शों के साथ मिलाकर पेश किया फिर भी हमारे आलोचकगण उन्हें पूरी तरह फ्रॉयडवादी घोषित करने में लगे रहते हैं, इसे सिवाय विवेकहीनता के और क्या कहा जाए? जहाँ तक बात मनोविश्लेषण की है, तो इसका सर्वाधिक प्रयोग इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में दिखता है, लेकिन जोशी को भी फ्रॉयडवादी कहना गलत होगा। लेकिन उनका मनोविश्लेषण ओर अस्तित्ववाद का मिला–जुला रूप है और 'अपने–अपने अजनबी' पूरी तरह अस्तित्ववाद से प्रेरित हैं। अब सवाल उठता है कि जब जैनेन्द्र, जोशी और अज्ञेय तीनों ने ही अपने उपन्यासों में मनोविज्ञान को एक निष्ठता से नहीं अपनाया तो फिर उन्हें मनोवैज्ञानिक कथाकार क्यों कहा जाता है ? बात सरल है, बेशक ये कथाकार मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के पिछल्लगु न हो, पर इन तीनों की शैली मनोवैज्ञानिक है। इनके सभी उपन्यास शुरू से अन्त तक मनोवैज्ञानिक शैली में लिखे गए हैं।

4.6 उपन्यास साहित्य का कालक्रमानुसार विकास विवेचन –

यद्यपि आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य के रूप विधान का विकास सबसे पहले यूरोप से माना जाता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्राचीन भारत में उपन्यास जैसी विधा का प्रचार ही नहीं रहा। संस्कृत साहित्य में 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'वृहत्तकथा', 'कादम्बरी और दशकुमार चरित' आदि रचनाओं में क्रमशः औपन्यासिकता का विकास मिलता है। परन्तु आधुनिक हिन्दी में उपन्यास का आर्विभाव 19वीं शती के अंतिम चरण में हुआ माना जाता है कि आधुनिक युग भारतीय साहित्य में उपन्यासों का विकास अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से हुआ यही कारण था, कि बांग्ला में उपन्यासों की रचना हिन्दी से पूर्व प्रारम्भ हो गई थी। बांग्ला के अनेक उपन्यासकारों जैसे–बंकिमचन्द्र, शरत् चन्द्र, रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर देखा जाता है। हिन्दी उपन्यास का क्रमिक विकास, डॉ. रामदरश मिश्र ने 'हिन्दी उपन्यास एक अर्न्तयात्रा' नामक अपनी पुस्तक में निम्नलिखित रूप में उल्लेखित किया है।

4.6.1 प्रेमचन्द पूर्व युग उपन्यास साहित्य –

उपन्यास आज के साहित्य की सबसे अधिक प्रिय और सशक्त विधा है। प्रेमचन्द उपन्यासों की सबसे प्रमुख और सामान्य विशेषता है, उनका घटनाप्रधान होना। यानी ये उपन्यास घटना चमत्कार का प्रदर्शन कर या तो मात्र मनोरंजन करना चाहते हैं, या कोई उपदेश देना चाहते हैं। हम देखें तो पायेंगे कि प्रेमचन्द के पूर्व जासूसी, तिलस्मी, ऐय्यारी, ऐतिहासिक, सामाजिक सभी तरह के उपन्यास लिखे गए किन्तु ये सभी घटना–चमत्कार पर आधारित है। किन्तु जहाँ तक शिल्प का प्रश्न है। इस काल के सभी उपन्यासों में घटना वैचित्र्य का बोलबाला है, किन्तु असहज विकास से ग्रस्त पात्रों और कथाओं का चमत्कारपूर्ण आयोजन है। इस तरह प्रेमचन्द–पूर्व युग में तीन प्रकार के उपन्यास दिखाई पड़ते हैं।

(क) शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास –

तिलस्मी ऐय्यारी (लेखक–देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, देवीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, हरेकृष्ण जौहर आदि) जासूसी (लेखक– गोपालराम गहमरी, शिवनारायण द्विवेदी, शेरसिंह, रूद्रदत शर्मा, जयराम दास गुप्त आदि)

(ख) उपदेश प्रधान सामाजिक उपन्यास –

लेखक श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णन्, राधाचरण गोस्वामी, देवीप्रसाद शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम मेहता आदि।

(ग) ऐतिहासिक उपन्यास –

लेखक किशोरीलाल गोस्वामी, बलदेव प्रसाद मिश्र, कृष्णप्रकाश सिंह, अखौरी, वज्रनन्दन सहाय, मिश्र–बन्धु आदि।

शुद्ध मनोरंजनप्रधान उपन्यासों में विस्मयकारी घटनाओं का जाल सा बिछा हुआ है। तिलस्म और ऐय्यारी के बड़े विचित्र–विचित्र करिश्में दिखाई पड़ते हैं। कार्य–कारण सम्बन्धों की परवाह किए बगैर लेखक जहाँ जैसे चाहता है घटनाओं की सृष्टि करता है और पाठक इन विचित्र घटनाओं के मायाजाल से चमत्कृत होता हुआ, कथा–प्रवाह के साथ तेजी से बहता चलता है। देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकान्ता' (1891) और 'चन्द्रकान्ता संतति' प्रेमचन्द्र पूर्व उपन्यासों में अपनी लोकप्रियता के कारण सबसे अधिक महत्त्वूपर्ण कृतियाँ हैं।

उपदेश प्रधान सामाजिक उपन्यास–यह युग सांस्कृतिक पुर्नजागरण का था। राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति की चेतना धीरे–धीरे विकसित होने लगी थी। उस काल के चिन्तकों और कलाकारों का सामाजिक–धार्मिक रूढ़ियाँ और पाश्चात्य सभ्यता की अन्धी अनुकृतियाँ दोनों बुरी तरह सताने लगी थी और भारतेन्दु बाबू भी उपन्यास लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। किन्तु बहुत बाद में 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' इनका सामाजिक उपन्यास है।

ऐतिहासिक उपन्यास– इस काल में ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन् भी पर्याप्त मात्रा में हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'हृदयहारिणी' व 'आदर्श रमणी' (1890) है। लेखक ने समकालीन यथार्थ को तत्कालीन परिवेश में चित्रित किया है। इस परिवेश में कुछ विदेशी व्यापारी, स्वदेशी व्यापारी, भिन्न–भिन्न पेशों के लोग तथा इन सबके आपसी सम्बन्ध और रंग–ढंग, कचहरी, हवालात, रईस दरबार, इनसे सम्बन्धित घटनाएँ और प्रसंग आए हैं। यह समूचे परिवेश–चित्रण में लेखक की दृष्टि आलोचनात्मक रही है। वह यथार्थ के सद्–असद् रूप की पहचान भी उभारता चला है।

4.6.2 प्रेमचन्द पूर्व युग का उपन्यास साहित्य –

प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी उपन्यास में नया युग प्रारम्भ होता है, बल्कि यों कहा जाए कि वास्तविक अर्थों में उपन्यास–युग आरम्भ होता है। उपन्यास– साहित्य की सृष्टि जिस उद्‌देश्य को लेकर हुई थी उस उद्‌देश्य की पूर्ति प्रेमचन्द के पूर्व उपन्यासों द्वारा नहीं हुई। प्रेमचन्द ने पहली बार उपन्यास के मौलिक क्षेत्र, स्वरूप और उद्‌देश्य को पहचाना। पहचाना ही नहीं उसे भव्य समृद्धि प्रदान की और काफी ऊँचाई तक ले गए। प्रेमचन्द के समय में भारत का यह राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक चित्र प्रस्तुत करने का उद्‌देश्य उस काल के समूचे यथार्थ की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करना था। कहा गया है, कि प्रेमचन्द यथार्थवादी कलाकार थे। यथार्थ को उन्होंने बड़े व्यापक सामाजिक परिवेश में

स्वीकार किया था। अतः हम देखते है कि प्रेमचन्द के कथा साहित्य में तत्कालीन भारत की यथार्थ चेतना के प्रायः समस्त आयाम उद्घाटित हुए हैं। प्रेमचन्द के प्रायः सभी उपन्यासों में (गोदान को छोड़कर) अन्त में दुष्ट क्रूर पात्रों को सहृदय बनाया गया है और सबके सहयोग से एक ऐसे वातावरण की सृष्टि की गई है जहाँ सभी लोग हिल–मिलकर प्रेम से सहानुभूति से रह सकें। इतिहास ने यह सिद्ध किया है कि प्रेमचन्द का समाधान बहुत यथार्थ नहीं था, क्योंकि उन्होंने भविष्य की कल्पना की थी, उसे देखा नहीं था। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र जी' को प्रकृतिवादी माना गया है। उन्होंने अपनी कृतियों में कुछ ऐसे दृश्य दिए हैं, जो अश्लील या फूहड़ कहे जा सकते हैं। किन्तु कुछ ऐसे दृश्यों से उन्हें प्रकृतिवादी नहीं कहा जा सकता। देखना यह होगा कि उग्र की समग्र दृष्टि क्या है। उग्रजी के उपन्यासों में सामाजिक चेतना की दृष्टि से तीन उपन्यासों को विशेष महत्त्व मिला– 'वे है चन्द हसीनों के खतूत (1927)', 'बुधुआ की बेटी (1928)', 'शराबी (1930)' इनमें लेखक ने रूढ़ियों और नई चेतना की टकराहट दिखाकर समाज को नई चेतना की ओर उन्मुख करना चाहा है। प्रेम की संवेदना का बहुत जीवन्त चित्रण हुआ है। 'बुधुआ की बेटी' में लेखक ने समकालीन राष्ट्रीय और सामाजिक परिवेश में अछूतोद्धार और नारी जागरण की समस्या उठाई है।

उग्र की अपनी फक्कड़ शैली है। वे बेलौस भाव से सच्चाई को कहते हैं और इसी प्रक्रिया में यौन व्यापारों को भी खोलकर रख देते हैं– जैसे घंटा एक तरह से फैंटेसी है। 'चन्द हसीनों के खतूत' में पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। इस समय में विकसित हो रही प्रकृतिवादी शैली का भी प्रयोग किया है। कुल मिलाकर उग्र के कथाकार का अपना व्यक्तित्व है।[9]

4.6.3 प्रेमचन्दोत्तर युग का उपन्यास साहित्य –

प्रेमचन्द ने उपन्यास को यथार्थवाद की ओर मोड़ा। इन्होंने एक ओर सामाजिक जीवन के यथार्थ सम्बन्धों, समस्याओं और अन्यान्य विषमताओं को उद्घाटित किया, दूसरी ओर परिस्थिति–सापेक्ष अपने मन के सत्यों को अभिव्यक्ति दी। इस सन्दर्भ में दो बातें ध्यान देने की है–एक तो यह कि प्रेमचन्द ने यथार्थ के स्वरूप का उद्घाटन करते हुए भी उसे आदर्शोन्मुख कर दिया है। भौतिकता की तीव्र चेतना को कहीं–कहीं आध्यात्मिक मूल्यों की झालर से आवृत कर दिया है, दूसरे यह कि यथार्थवाद के कई स्वरूप है, कई दृष्टियाँ है।

प्रेमचन्द के यथार्थ के जिन दो आयामों का उद्घाटन हुआ वे प्रेमचन्द के बाद अलग–अलग धाराओं में बैठकर तथा अपनी–अपनी धाराओं की अन्य अनेक सूक्ष्म बातों से संश्लिष्ट होकर बहुत तीव्र और विशिष्ट रूप में विकसित होते गए और आँचलिक उपन्यासों

की भी जन–चेतना इन्हें प्रेमचन्द से जोड़ती है, किन्तु अपने स्वरूप और दृष्टि में ये बहुत भिन्न है। इन्हें उपन्यास के एक नये रूप में ही स्वीकारना चाहिए। ये स्वतन्त्रता के पश्चात् के हिन्दी उपन्यास, साहित्य की विशेष उपलब्धि है। हाँ आँचलिक उपन्यास को स्वाधीनता के बाद भी एक नई देन कह सकते हैं। वह अपनी संरचना में तो नया है ही स्वाधीनता के बाद गाँव की ओर उन्मुखता का भी परिणाम है। उसकी प्रकृति के साथ स्वाधीनता परवर्ती समय–चेतना स्वतः जुड़ी हुई है। इसलिए स्वाधीनता परवर्ती शीर्षक न देने के बावजूद आँचलिक उपन्यास शीर्षक पर्याय बन गया है।

स्वाधीनता परवर्ती काल के उन लघु–उपन्यासों को भी रेखांकित किया जा सकता है जिनको मूलतः यौन–सन्दर्भों की खुली कथा कहते हैं। आधुनिकतावाद का मोह भी इसके लिए उत्तरदायी है। कुछ शहरी प्रवृत्ति के लोग आधुनिकता को सामाजिक व्यवहार में खोजने के स्थान पर व्यक्तिवादी स्तर की अवधारणाओं में खोजते हैं। इसलिए वे सत्रांस, विसंगतिबोध, अजनबीपन, अकेलेपन, टूटन आदि में ही आधुनिकता की पहचान करते हैं।

स्वाधीनता–परवर्ती उपन्यासों में वे उपन्यास भी हैं, जिनके लेखक पहले से लिखते आ रहे थे और वे उपन्यास भी है, जिनके लेखक स्वाधीनता के बाद भी उभरे हैं। इन दोनों ही प्रकार के उपन्यासों में स्वाधीनता–परवर्ती भारतीय जीवन के सामाजिक यथार्थ का संश्लिष्ट चित्रण हुआ है। स्वाधीनता परवर्ती भारतीय जीवन के सामाजिक यथार्थ की साहित्य में अनुभव की प्रामाणिकता अधिक मिलती है तथा संरचना में कथात्मक या वर्णनात्मक स्फीति और कटुता के स्थान पर शिल्प की संश्लिष्टता और वक्रता दिखाई पड़ती है। यथार्थ के प्रति एक तटस्थ दृष्टि का निरन्तर निखार होता, गया है, भाषा में भी एक अलगाव दिखाई पड़ता है। मूल्यों की टूटन की आहट निरन्तर गहरी होती गई है। सेक्स के प्रति एक व्यवहार दिखाई पड़ता है। फिर भी स्वाधीनता परवर्ती नाम देने में एक व्यावहारिक दिक्कत दिखाई देती है। वह यह कि एक ही धारा को एक समय बिन्दु के आगे और पीछे दो बार लाना ठीक नहीं लगता। इसी प्रकार एक ही लेखक का स्वाधीनता–पूर्व और स्वाधीनता परवर्ती दो भागों में बाँटना भी संगत नहीं लगता। इसी प्रकार एक लेखक को दो जगह बाँट देने से, उसकी चर्चा में संश्लिष्टता नहीं आ सकती। इससे बातों के दुहराव की आशंका बढ़ जाती है। स्वाधीनता पूर्व से लिखने वाले जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा आदि ने स्वाधीनता के बाद बहुत लिखा है, और उनकी अनेकाधिक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ इसी काल में आयी है। इन कृतियों में स्वाधीनता के बाद उभरने वाले लेखकों के उपन्यासों का सा नयापन नहीं है, फिर भी ये उपन्यास बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन उपन्यासों को स्वाधीनता परवर्ती उपन्यासों से अलग भी

नहीं कर सकते और उनकी प्रवृत्ति के साथ एकदम जोड़ भी नहीं सकते हैं। इसलिए प्रेमचन्दोत्तर नाम ही संगत लगता है।[10]

4.6.4 समकालीन उपन्यास –

उपन्यास साहित्य की गद्य विधा के लिए ऐसा माना जाता है कि लगभग सन् 1980 के बाद के जो भी उपन्यासकारों ने उपन्यास की रचना या लेखन कार्य किया है। वह मुख्य रूप से समकालीन उपन्यास के अन्तर्गत ही माना जाता है और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपन्यास के क्षेत्र में ठीक उसी प्रकार से उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में बदलाव लाना शुरू कर दिया और धीरे–धीरे समस्त प्रकार के उपन्यास साहित्यकार समकालीनता से सम्बन्धित उपन्यासों का लेखन कार्य करने लगे। यानि कि जैसे उपन्यास में बदलाव आया वैसे ही स्वातंत्रयोत्तर भारत की परिस्थितियों में भी बदलाव आ गया। हिन्दी के उपन्यासों की नयी धारा को प्रयोगवादी उपन्यास आधुनिकता बोध के उपन्यास भी कहा जा सकता है। औद्योगिकरण, भ्रष्ट शासन–व्यवस्था, बदलता परिवेश, यांत्रिक सभ्यता के दुष्परिणाम महानगर का जीवन, व्यक्ति का अकेला रहना, निराशा, तनाव, अवसाद, आदि समस्त प्रकार के विषय और भावों से जुड़कर उपन्यास की विषय–वस्तु और उपन्यास की प्रक्रिया भी नवीनतम रूप धारण करती गई। स्वतंत्रता के बाद भारत के सम्मुख कुछ और तरह की नई–नई चुनौतियाँ भी सामने आने लग गई थी। निर्मल वर्मा के उपन्यास 'वे दिन' में यूरोप के एक नगर का चित्रण किया गया है। इसमें महायुद्ध के बाद में फैले अकेलेपन को बड़ी संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। समकालीन दौर में चल रहा है उपभोक्तावाद, साम्प्रदायिकता, निम्न मध्य वर्गीय जीवन, पितृ–सत्तात्मक, नारी–मुक्ति, जीवन का तनाव, आदिवासी समाज में नारी का दायरा, दिग्भ्रमित युवा पीढ़ी, पलायन, विघटन, संकटग्रस्त जीवन, पारिवारिक आदि जैसे अनेक विषय हैं, जिनसे मिलजुलकर समकालीन उपन्यास–साहित्य और भी तेज गति से बढ़ता जा रहा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' बनारस के बुनकर समाज व जाति सम्प्रदाय को लेकर लिखा गया है, यह साड़ी बुनने वाले जुलाहों के कठिन से कठिन संघर्षशील जीवन को दर्शाता है। चित्रा मुद्गल 'आँवा' में श्रमिक वर्ग की गर्दन काटने की प्रवृत्ति या प्रतिस्पर्धाओं, स्वार्थ सिद्धि हेतु पूँजी के प्रलोभनों की गहरी संवेदना के साथ भी व्यक्त किया गया है। रवीन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यास 'जवाहरनगर' में 1975–77 के आपातकाल और मध्यमवर्गीय पतनशीलता का चित्रण भी बखूबी रूप से किया है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास अपने प्रारम्भ काल से लेकर आज तक निरन्तर समृद्ध होता आ रहा है। विविध विषयों को लेकर आज अनेक उपन्यासकार उपन्यास लिख रहे हैं।

4.7 रामकुमार ओझा के उपन्यास –

4.7.1 (अ) अश्वत्थामा –

4.7.1.1 परिचय –

हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा एक आधुनिक एवं प्रमुख विधाओं में से एक मानी जाती है। उपन्यास साहित्य में रामकुमार ओझा द्वारा लिखित उपन्यास भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है, जिनमें उनका 'अश्वत्थामा' उपन्यास महत्वपूर्ण है, जो कि महाभारत कालीन युद्ध महाभारत की कथा को आधार बना कर लिखा गया है, जिसका प्रकाशन मानक पब्लिकेशन्स प्रा. लि., 3ए, वीर सावरकर, ब्लॉक मधुबन रोड, शकरपुर, दिल्ली द्वारा किया गया।

4.7.1.2 अश्वत्थामा का कथासार –

श्री रामकुमार ओझा जी ने अपने 'अश्वत्थामा' उपन्यास में द्रोण के व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए लिखा है– ''सच स्वीकार करने का एकान्त में भी साहस नहीं द्रोण तुम यहाँ लौट जाने के लिए नहीं आये। ब्राह्मणोचित गुणों से सम्पन्न होने के बावजूद तुम रजोगुणी भी हो।'' नगर जीवन तुम्हें पसन्द है। तुम प्रतापी शिष्यों का एक मण्डल बनाने की एषणा पाले हो और इसी अभीष्ट सिद्धि के लिए तुम यहाँ आये हो। द्रोण अपने ही सामने झूठा तर्क प्रस्तुत न कर पाये। उन्होंने मन ही मन आत्मस्वीकृति के रूप में कहा तो यही हो और आत्मस्वीकृति के बाद वे सारी रात सुख से सोते हैं। प्रातः काल नित्य, क्रिया से निवृत होने के बाद उन्हें काफी समय ब्राह्मण परिवार के साथ अग्निहोत्र करते बिताना पड़ा, फिर भोजन–पान कर चलने लगे तो दम्पत्ति के तनिक विश्राम का आग्रह किया, पर वे उसे टाल कर उनसे आज्ञा लेकर उन्हीं द्वारा निर्दिष्ट दिशा में द्रुपद की राजसभा का मार्ग अनुसंधान करने चल पड़े। उन्हें ब्राह्मण की दिव्यता से भूषित और क्षत्रियों के समान शस्त्र–धारण किये देख कर मुख्य द्वार–प्रहरी सविनय बोला। विप्रवर! आप तनिक रूकें तो हम राजाज्ञा प्राप्त कर लौट आ कर आपको सादर सभा में लिवा ले जाएँ।"

बन्धन में पड़े पराभूत मित्र–शत्रु को इस निरीह स्थिति में देखकर द्रोण को दर्द तो हुआ किन्तु प्रथम प्रतिक्रिया ही व्यक्त की कि वे सौद्देश्य हंस और बंदी मित्र को सम्बोधित कर बोले 'यज्ञसेन हमने अपने भुजबल से तुम्हारे राज्य को हस्तगत किया है। तुम्हारी काम्पिल्य नगरी और सारे पुर–मण्डल आज हमारे अधीन है। तुम्हारे कुप्रबन्ध से पीड़ित जनता भी हमारी अनुगामिनी है। फिर भी हम तुम्हें सशर्त अभयदान देते हैं। तुम प्राणभय से मुक्त हो कर हमारी बात सुनो। प्रसाद–विश मित्र की अवमानना करने वाला सदा प्रतिशोध की ज्वाला में जलता है। प्रजा रंजन की नीति का परित्याग कर जन–दमन करने वाला

राजा सदा मारा जाता है। नीति कुशल मंत्री को खो देने वाला राजा हारता है। आज तुम अपने अविवेक के कारण हारे हो। अब हम ही तुम्हारे रक्षक हैं। तुमने मैत्री का आधार समान धन और समान बल बतलाया था। तुमने कहा कि राजा ही राजा का मित्र हो सकता है। हमने नये सिरे से मंत्री स्थापना का यह आधार तैयार किया है। तुम्हारा राज्य हमने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जीता है। तुम बचपन में हमारे मित्र रह चुके हों।

तुम्हारे प्रति आज भी हमारा स्नेह है। अतः यदि तुम प्रजा रंजन का संकल्प लो तो हम तुम्हारा आधा राज्य लौटाते हैं। काम्पिल्य पूर्ववत् तुम्हारी राजधानी होगी। हम ब्राह्मण है। किन्तु मैत्री का यही आधार है तो ऐसा ही हो और द्रोण ने द्रुपद को बन्धन मुक्त कर दिया। अश्वत्थामा पांव पियादे ही कर्ण के प्रासाद की ओर चल पड़े। अपना अधिकांश अंग और मुख का भी कुछ हिस्सा उतरीय में छिपा लिया। इसी प्रकार चलते हुए हस्तिनापुर को आबोहवा का वे आकलन कर पायेंगे। रथ पर चढ़ कर चले तो पुरवासी फिर घटने लगेंगे। हस्तिनापुर की जनता को अच्छे–बुरे की पहचान है। उनमें भी कोई अच्छाई नजर आती होगी तभी तो जन–सामान्य का इतना प्यार उन्हें मिल रहा है। आचार्य पुत्र के नाते तो वे केवल दिखावटी सम्मान और सहमीं नजरे ही पातें। बहता प्यार नहीं।[11]

तांबूल की दुकानों पर, मदिरालयों के आगे, चौराहों पर सर्वत्र लोग खड़े थे। विषय वही एक था। हस्तिनापुर की राजनीति पाण्डवों की पक्षधरता, जिस राज्य की प्रजा इतनी जागरूक हो, राजनीति को समझती हो, क्या वहाँ कोई अघटित घट सकता है। अच्छे लक्षण है। प्रजा यदि अधिकारों के प्रति असावधान हो तो शासन स्वेच्छाचारी बन जाता है। लगता तो नहीं कि हस्तिनापुर में यह सम्भावना है। "किन्तु वे निर्धारित न कर पा रहे थे कि यहाँ पहुँच कर वे क्या करेंगे। क्या बोलेंगे? एक ही बात निश्चित थी कि यदि शकुनि उनके सामने आया तो गदा–प्रहार से उसके सिर को खण्ड–खण्ड कर धरेंगे। उस समय यदि उन्हें कोई जरा भी उकसा देता तो वे एक साथ ही उस षड्यन्त्र में सहायक दुर्योधन की पूरी चौकड़ी के साथ भिड़ पड़ते। दुर्योधन की भर्त्सना करते। दुःशासन तो गेंद के समान वक्र हो गए दौड़ते रथ की गति से वे संतुष्ट न थे और सारथी उन्हें क्रोधाभिभूत देखकर जनाकीर्ण राजमार्ग भी अश्वों को बेतहाशा दौड़ाये जा रहा था, जिस किसी ने भी अश्वत्थामा को इस कराल रूप में पहचाना, वहीं सोचने लगा कि आज जिस किसी की गर्दन पर इनका हाथ पड़ेगा वह कटकर टूट जायेगी।

किन्तु खैर यही हुई कि मार्ग में अश्वत्थामा को विदुर का प्रासाद दिखाई पड़ गया तो जरा शान्त होकर सोचा। विदुरी नीति कुसरल है। कुरू राज्य में महा अभाव्य है। वे इस राज्य में घटित होने वाली प्रत्येक घटना, उसके कारण और परिणाम से अवगत रहते हैं।

सबको सद्परामर्श भी देते हैं क्यों न पहले इन्हीं से वस्तु स्थिति को जाना जाये। उनके आदेश पर रथ रूक गया। विदुर ने आचार्य पुत्र का सहज भाव से स्वागत किया। उनके व्यवहार से ऐसा कुछ भी लक्षित न हुआ कि हस्तिनापुर में कुछ अघटित हो चुका है। अश्वत्थामा को आशंका हुई कि उन्होंने जो सुना है वह असत्य है या फिर ये राजनीति सपाट–काष्ठ पाठी होते हैं, जिन पर कोई भी अक्षर नहीं उभरता।

विदुर वाह्लीकों के दमन पर उन्हें बधाई देते हुए उस युद्ध के बारे में विस्तार पूर्वक पूछने लगे किन्तु तात्कालिक मनोदशा में अश्वत्थामा प्रसंग के विस्तार को टालते हुए सीधा पाण्डवों के प्रसंग पर आने को आतुर थे। अतः सविनय बोले। विज्ञवर आपके कुशल चर आपको क्षण–क्षण की खबर देते रहे होंगे। मैंने सुना है कि मेरे निवेदन पर आपने भी वाह्लीकों को कुरुक्षेत्र से निर्वासित करना चाहा था, किन्तु बीच में दुर्योधन द्वारा अड़ंगा खड़ा कर दिए जाने के कारण, आप कार्यवाही न कर पाये।

तुम्हें ठीक सूचना मिली है। अन्यों के साथ दुर्योधन वाह्लीकों को भी अपनी अभीष्ट सिद्धि में सहायक समझते है। अब उसका और कौन–सा अभीष्ट शेष रह गया। पाण्डवों को तो उसने वारणावत में जला ही मारा। मेरी तात्कालिक उद्विग्नता का कारण यही है कि आपके समान नीतिवान समय रहते षड्यन्त्र को शोध पर पाण्डवों की सुरक्षा का प्रबन्ध न कर पाये।"[12]

एक ओर दुर्योधन का हठ और दूसरी ओर प्रजा का कुरुवृद्धों का दबाव होकर धृतराष्ट्र को कुरू समाज के बंटवारे पर सहमत होना पड़ा। दुर्योधन बिफरा किन्तु शकुनि ने उसे समय सापेक्ष नीति के द्वारा मौन रहने पर सहमत कर लिया। कुरूवृद्धों ने निश्चय किया। हस्तिनापुर का युवराज दुर्योधन बनेगा तथा खाण्डवप्रस्थ, इन्द्रप्रस्थ का राजा युधिष्ठिर होगा। प्रस्ताव सुनकर युधिष्ठिर ने तेज तुरंग सवारों के माध्यम से श्रीकृष्ण के पास सन्देश भेजा और बलराम पण्डित सहित कृष्ण हस्तिनापुर आ पहुँचे और राज्य विभाजन के पक्ष में अपनी सहमति प्रकट की। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ और वे कृष्ण सहित खाण्डवप्रस्थ को प्रस्थान कर गये। बलराम को दुर्योधन ने खुशामत सलामत कर गदा युद्ध सिखाने के बहाने हस्तिनापुर में ही अटका लिया। शकुनि सोचता था कि बलराम जैसा सरल स्वभाव व्यक्ति उनके द्वारा यथेष्ट सम्मान पाकर कृष्ण नीति का विरोध करने लगेगा ओर इस प्रकार यादवों में भी फूट का बीजारोपण कर दिया जायेगा। खाण्डवप्रस्थ का अधिकांश भाग पथरीला पठारी था। अर्बुद पर्वत का कुछ तलहटी प्रदेश और शेष रेतीला अथवा काँटेदार झाड़–झखाड़ व नागफनी से भरा उष्ण प्रदेश उस प्रदेश के आदिम–निवासी सत्ता, घिगवरा, निच्छवि नट, आहिणिक और भील। कृषि कर्म से अनभिज्ञ अरण्यवासी अहेर

वृति जीवां। गफन और विषबुझे तीरों का प्रयोग करने में दक्ष अन्य प्रदेशों से आने वाले लोगों के साथ संदेहयुक्त व्यवहार करने लगा। नाममात्र का कुरुराज के अधीनस्थ किन्तु अपने सामाजिक और शासकीय जीवन में स्वतंत्र। बस युद्ध–विग्रह के समय कुरुराज्य की मदद कर दें और शेष अवधि में स्वतंत्र जीवन यापन करें। इस परामर्श के बाद दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण, कृष्ण और अश्वत्थामा को भी इस युद्ध प्रयाण के लिए सहमत किया। निश्चित योजनानुसार सुशर्मा विराट की साठ हजार गौओं को घेर कर भागा। ग्वाल के मुखिया के राजा विराट को सूचना दी तो वह युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर चला। उसके लड़ने के लिए वल्लभ, गोपाल और दाग्रन्थि को भी अपने साथ लिया, क्योंकि उन सबका शारीरिक गठन वीरोचित था।"[13]

वे चारों भृत्य युद्ध भूमि में त्रिगर्तों के लिए काल स्वरूप बन गए। वे गोधन को छोड़ अपनी प्राण रक्षा के लिए भागे किन्तु राजा विराट भी उन्हें खदेड़ते हुए पीछे लगा। अगले दिन अष्टमी के रोज को नगर को असुरक्षित समझकर दुर्योधन ने आक्रमण किया। योजनानुसार कर्ण महल के द्वार पर चुनौती देकर मुख्य सैन्य दल से आ मिला। कौरवों ने भी आज सहस्त्र गौओं का अपहरण किया।

विराट नगर की रक्षा का दायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्र भूमिजन्य के सुपुर्द कर गये थे किन्तु उसने जब सुना कि आक्रमणकर्ता कौरव हैं तो वह भय से दुबक गया। राजा का छोटा बेटा उत्तर स्त्रियों की सभा में डींग मारते हुए बोला। मेरा कुशल सारथि एक युद्ध में मारा गया। यदि मेरे रथ में जुते तेज तुरंगों को सम्भाल पाने वाला कोई उपयुक्त सारथि मुझे मिल जाये तो मैं अकेला ही कौरव सेना को मार भगाँऊ। उसने बार–बार ऐसा कहा तो सेरन्ध्रि बोली। आपकी भगिनी उतरा को नृत्य–विधा सिखलाने वाला विहन्नड़ा अर्जुन का सारधि रह चुका हैं, वह स्वयं ही महाबली हैं यदि वह आपका सारथि कर्म करना स्वीकार कर ले तो आप अवश्य ही युद्ध में विजयी हो कर लौटेंगे।

विहन्नड़ा ने काफी हील–हुज्जत की किन्तु अन्त में सारथि कर्म करना स्वीकार कर लिया। वह पवन वेग से अश्वों को उड़ाता वहाँ जा पहुँचा जहाँ कौरव दल के ध्वज लहरा रहे थे। उन ध्वजों को ही देख कर उत्तर डर गया और युद्ध से विमुख होकर लौट जाना चाहिए। विहन्नड़ा ने उसे काफी प्रबोधा, ढाँढस दी किन्तु उत्तर रथ से उतर कर चल भागा। उसे इस प्रकार भागते देखकर विहन्नड़ा ने लपक कर उसे केशों से पकड़ लिया। उस भागम–भाग में विहन्नड़ा की चोटी खुल गई, उसे इस रूप में देखकर प्रथम तो कुछ कौरव, हंसे किन्तु फिर तुरन्त ही अर्जुन के समान डील–डौल का अनुमान कर तर्क–वितर्क के बाद इस नतीजे पर पहुँचे कि यही अर्जुन है। उस की बात सुनकर डपट कर बोला।

कुछ न होगा। क्षत्रिय होकर इस प्रकार प्रलाप करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती। यह लाश तो न जाने कब की गलित हो चुकी है। एक वर्ष पूर्व हमने अपने अस्त्रों को ऐसे छिपा कर रखा था। जहाँ वर्षा में भी वे न भीग पायें। उनके पास यह लाश टांग दी थी ताकि कोई भी मनुष्य भय और दुर्गन्ध के कारण इधर न आये। देखो वह स्वर्ण–मण्डित गान्डीव और रत्न जड़ित तूमीर उतारो। उधर कौरव दल में खलबली और उत्सुकता थी। तभी द्रोणाचार्य बोले। सुनो यह रथ की घरघराहट सुनो। धनुष की टंकार सुनो। गान्डीव धनुष के सिवाय किसी अन्य धनुष से ऐसी टंकार प्रकट नहीं हो सकती। यह शंख भी सुनो। ऐसा घोष सिवाय अर्जुन देवदत्त शंख के अन्य किसी शंख का नहीं हो सकता। इसे सुनकर हमारे शस्त्र निस्तेज हो गये हैं। घोड़े प्रसन्न होकर अब हिन–हिनाते नहीं। अशुभ पशु पक्षी अशुभसूचक वीभत्स शोर करने लगे हैं। प्रतीत होता है कि अब हमारा सामना अर्जुन से ही है। अति कष्ट सहते–सहते वह इतना कठोर हो चुका होगा कि हम सबका उसके हाथों मरण अवश्यम्भावी है। अश्वत्थामा जब होश में आये तो अर्जुन के कृत्य पर वे अत्यन्त क्रोधित होकर सर्प के समान फूंकार करने लगे। तो अर्जुन भी कर्ण के ही समान अभद्र सा हो गया है। प्रथम तीर के माध्यम से प्रणाम किया और फिर निर्वस्त्र कर लौट गया। समय–चक्र के धूरों पर घूमती पाण्डवों की वनवास व अज्ञातवास की अवधि व्यतीत हो गई थी। प्रतिज्ञा मुक्त अकेले अर्जुन के ही हाथों हारकर कौरव दल के महारथी ध्वज झुकाये विराट नगर से लौट गए थे।"[14]

4.7.1.3 पात्र –

रामकुमार ओझा के अश्वत्थामा उपन्यास में प्रमुखतया निम्नलिखित पात्र है, जिनमें महिला व पुरुष दोनों पात्र हैं। जैसे– कश्यप, भारद्वाज, परशुराम, द्रोण, कौरव, उत्तर, पाण्डव, यादव, सावित्री, भीष्म, कर्ण, अर्जुन, कृष्ण, राजकुमार, दुर्योधन, विभीषण, प्यारी, उतरा और गीता है। उक्त पात्रों में शिक्षित और अशिक्षित पात्रों को निम्न प्रकार से बताया गया है–

(अ) शिक्षित महिला पात्र– सावित्री, गीता, विदुषी, कुन्ती, रानी, संजीवनी, रूक्मणी

अशिक्षित महिला पात्र– प्यारी, भोमी, यशस्वी, इषिका, कुमकुम इत्यादि।

(ब) शिक्षित पुरुष पात्र– परशुराम, द्रोण, कौरव, पाण्डव, यादव, कृष्ण, भीष्म, कर्ण, अर्जुन, राजकुमार, दुर्योधन, विभीषण, तपस्वी ऋषि, सत्यभामा, नन्दन, तारुण्य, ब्राह्मण, अगस्त्य मुनि, सोमश्री कृपाचार्य, महात्मा, युवराज, अक्षय, राजा, तेजेमय कुमार, पांचाल, उत्तम, भृगु, हनुमान, विवेक, कौशल, कोलाइल, मंत्री, ब्राह्मण, रानी, हर्षित, संजीवनी, युवराज, शरद्वान, एकलव्य, अक्षय, श्यामा, रूक्मणी, महात्मा, इषिका आदि हैं।

अशिक्षित पुरुष पात्र– कश्यप, भारद्वाज, तरूण, राजहंस, यज्ञसेन, इत्यादि है।

उपन्यास के पात्रों का परिचय एवं उपन्यास में भूमिका

1. धृतराष्ट्र –

धृतराष्ट्र का स्थान 'अश्वत्थामा' उपन्यास के मुख्य पात्रों में से एक है। इसका वर्णन उपन्यास में अन्धे राजा के रूप में है, व जो आँख का तो अन्धा था ही और सच्चाई और धर्म के प्रति भी अन्धा था, जिसके कारण वह महाभारत युद्ध होने का कहीं ना कहीं कारण बना क्योंकि वह सदैव अपने पुत्र दुर्योधन का पक्षधर था। इसी का वर्णन धृतराष्ट्र के रूप में रामकुमार ओझा जी ने "अश्वत्थामा" उपन्यास में किया है, "जिस युग में राजा धृतराष्ट्र जैसे नेत्र अन्ध हो, जिसके पुत्र सर्वार्थन्ध हो" जिनके प्रतिद्वंदी रूढ़ धर्मान्ध हो और जिस अन्ध–युग ने हाथ बढ़ाकर गान्धारी की आँखों पर पट्टी बाँध दी थी। उस अन्ध युग के अन्धेरे के भीतर झाँककर कृष्ण की आँखों ने देखा और उसके (युग के) मरण में ही कल्याण समझा तो उन्होंने महाभारत होने दिया था।

धृतराष्ट्र इस प्रकार दुश्चिन्ता में फंसे ही थे कि तभी महर्षियों से घिरे देव–ऋषि नारद सभा में पधारे ओर बिना कोई औपचारिक स्वागत स्वीकार किये गुरु गम्भीर शब्दों में घोषणा की। 'हे अन्ध, मतिमन्द धृतराष्ट्र तूने अपने अविवेक से भावी महाभारत की भूमिका तैयार कर दी। आज से चौदह वर्ष बाद द्रौपदी के अनुताप और अर्जुन के बाण तथा भीम के भुजबल द्वारा तेरे वंश का समूल नाश हो जाएगा और कह कर महर्षि द्रुतवेग से प्रस्थान कर गए।"[15] इस प्रकार धृतराष्ट्र को अहम् भाव रखने वाले चतुर पात्र के रूप में चित्रित किया गया है।

2. दुर्योधन–

'अश्वत्थामा' उपन्यास में दुर्योधन की भी एक अहम् भूमिका हैं। उपन्यास में दुर्योधन को एक क्रोधी स्वभाव का बताया गया है। साथ ही स्वार्थी, जिसके कारण वह अपने गुरुजन, मित्र और भाई–बन्धुओं के साथ युद्ध करने को तैयार हो गया था। दुर्योधन अपने आपके स्वभाव को लेकर बहुत हठी था, और हर एक बात पर अड़चन पैदा करता था। ओझा जी ने उदाहरण स्वरूप बतलाया हैं कि– "कर्ण के निधन के बाद दुर्योधन विजय प्राप्ति को तो असम्भव समझने ही लगा, किन्तु युद्ध से निवृत न हुआ। हठ उसका श्रेष्ठ गुण था ओर उसे वह किसी भी शर्त पर न छोड़ना चाहता था। वह कभी पूर्ण हताश नहीं होता था ओर प्रत्येक हार के बाद जीत के नये स्रोतों की तलाश किया करता था। इसी तलाश में वह अश्वत्थामा के पास जाकर बोला गुरु–पुत्र आप अयोजित माता–पिता की संतान है। आचार्य के बाद आप ही हमारे प्रधान हैं। हम आपकी शरण में हैं। आप हमारे

स्वामी और आश्रय है। मैं आपकी सलाह से ऐसा सेनापति नियुक्त करना चाहता हूँ, जो आशा की क्षीण ज्योति को विजय के प्रकाश में बदल सके।" इनका वृतान्त सुनकर दुर्योधन बोला तुम महाराज से कहना कि उनके सारे पुत्र मर चुके हैं। सैन्य दल ध्वंस हो चुका है ओर दुर्योधन घायल होकर तालाब में जा गिरा। दुर्योधन के वृद्ध मंत्री उन तीनों के पास आ गये। अश्वत्थामा ने उन्हें संजय के साथ कुरूवंश की स्त्रियों को हस्तिनापुर लिवा ले जाने का आदेश दिया। सेवक शिविर का कुछ बचा–खुचा सामान उठाकर उनके साथ चले।"[16] इस प्रकार से दुर्योधन को स्वार्थी व जिद्दी प्रवत्ति के रूप में चित्रित हुआ है।

3. अश्वत्थामा –

अश्वत्थामा को इस उपन्यास का मुख्य पात्र माना गया है। सम्पूर्ण उपन्यास ही इस पात्र के इर्द–गिर्द घूमता है और ये आचार्य द्रोण के पुत्र थे, उनके बारे में बतलाया गया है कि–

"नैष शक्यो मया वीर, संख्यातु रथसतम्ः।

निर्दहेपि लोकस्त्री निच्छन्नैष महायशीः।।"

मैं इस (अश्वत्थामा) रथी श्रेष्ठ महापुरुष के गुणों को गिनाने में असमर्थ हूँ। ये महायशस्वी इच्छा करने पर तीनों लोकों का नाश कर सकते हैं–

क्रोधस्तेश्च तपसा ....।

आश्रम में रह कर उन्होंने तप से क्रोध और तेज प्राप्त किया है, उदार–बुद्धि द्रोण से अस्त्र–शस्त्र प्राप्त किये हैं और ओझा जी ने अपने उपन्यास के माध्यम से बताया है कि 'अश्वत्थामा' के महल में जो वैभव भरा था वह दुर्योधन को भी दुर्लभ था। जुए के बाद डरे हुए दुर्योधन ने जिनके पिता के चरणों में सारा कुरू राज्य अर्पित कर दिया था। वे अश्वत्थामा द्रोण–मरण के बाद शीर्षस्थ हो बैठे दुर्योधन उनके आदेश पर सेना नियुक्त करता था। हर घड़ी उन्हें प्रश्न रखने की चेष्टा किया करता था और अश्वत्थामा भी उसके हर संकट के त्राता बन गए थे और इनको विश्राम और अवकाश में अरूचि थी। वे अश्व के समान खड़े–खड़े सोते थे और सोते–सोते सरपट दौड़ते थे। इस समय शकुनि के प्रति उनके क्रोध का पारावार नहीं था। अतः शीघ्र ही कृष्ण द्वारा भेंट में दिये गये रथ पर सवार होकर दुर्योधन के प्रसाद से हुलसित हो कर उनका मार्ग रोक कर सत्कार करने लगे। लोग एक–दूसरे को सूचना दे रहे थे। 'अश्वत्थामा' हस्तिनापुर आ गये।'[17]

4. अर्जुन –

रामकुमार ओझा ने 'अश्वत्थामा' उपन्यास में अर्जुन का वर्णन एक महान धनुर्धर योद्धा व एक सरल स्वभाव के बालक के रूप में किया है। ओझा जी ने अपने उपन्यास में

अर्जुन के बालपन को रेखांकित करते हुए व कहा है कि "सारे बालक दौड़ चले, किन्तु एक अत्यन्त सुडौल बालक सब से पहले इषीकाएं लेकर लौटा तो द्रोण ने स्नेह से उसका माथा सूँघते हुए पूछा? वत्स तुम किस यशस्वी महानुभाव के पुत्र हो? 'द्विजश्रेष्ठ! मैं पाण्डु–पुत्र अर्जुन हूँ। परम विदुषी कुन्ती मेरी माता हैं।"[18] तत्पश्चात् गुरू द्रोण ने कहा

'स्वसति वत्स। तुम्हारा कल्याण हो। तुम श्रेष्ठ धनुर्धर बनो। तब द्रोण ने उसी द्वारा लाई इषीकाओं में से एक को अपने धनुष पर संधान कर कुएं में डाला तो वह गेंद को बेंधती हुई, उसमें धँस गई। तब उन्होंने एक के बाद एक इषीकाओं को कुएं में डाला। इषीकाएं एक दूसरे को बींधकर आपस में जुड़ती गई और अन्तिम इषीका को ऊपर खींचकर उन्होंने परस्पर जुड़ी इषीकाओं के सहारे गेंद को कुएँ से निकाल लिया और उसे अर्जुन की ओर उछाल कर बोले। अर्जुन शीघ्र गति के लिए अपना प्रथम पुरस्कार थामों।"

ओझा जी ने उपन्यास में बताया है कि अर्जुन को अपने बान्धवों से मोह बहुत था इसलिए युद्ध क्षेत्र में आमने–समाने युद्ध के लिए खड़े भाई बन्धुओं को देखकर मोह हो जाता है और वह युद्ध न करने की बात करता हुआ कहता है – अपने इन बान्धवों को मारकर मैं त्रैलोक्य का राज्य भी न लूंगा, मैं अंधकों और कृष्णियों के प्रदेश में जाकर भिक्षावृत्ति कर लूंगा, पर अपने ही परिजनों के रक्त से सना अन्न न खाऊंगा। आपके द्वारा वर्णन किये गये। आत्मा के गुणों पर मुझे विश्वास नहीं होता। यदि बुद्धि का आश्रय ही बड़ा है तो आप मुझे कर्म के पचड़े में क्यों डालते हैं। अर्जुन क्षात्र–धर्म से विमुख हो गया है। ऐसा सोचकर कृष्ण ने अपना विराट स्वरूप प्रकट किया और अर्जुन को दिव्य–दृष्टि प्रदान की।[19] इस प्रकार अश्वत्थामा में ओझा जी ने अर्जुन को महाभारत की कथा के अनुरूप एक वीर योद्धा शील संपन्न माननीय गुणों से युक्त पात्र चित्रित किया है।

5. द्रोण–

'अश्वत्थामा' उपन्यास में द्रोण की एक मुख्य पात्र के रूप में भूमिका है। उनके विषय में उपन्यासकार ने लिखा है– ''उमस भरे उस अपराह्न में भी झाड़–झंखाड़ों से उलझते, कुश–काँटों से जूझते राह बनाते जा रहे थे, वे एक महान् यशस्वी तपस्वी ऋषि भारद्वाज के पुत्र थे। द्रोण शास्त्र और शस्त्र के उभय ज्ञानी थे। फिर भी उन्हें आराम करने के लिए अवकाश नहीं था। उन्होंने भार्गव परशुराम से शस्त्र और ताकत दोनों प्राप्त किए थे।'' उनका वर्ण श्याम और भुजदण्ड पुष्ट थे। उन्होंने उपन्यास में द्रोण के व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए लिखा है – "जब द्रोण यज्ञसेन ध्रुपद से मिलने जा रहे थे, तो रास्ते में एक तालाब में बक्, विडाल और राजहंस को साथ–साथ बैठे देखकर हँसने लगे कि मानव समाज का भी स्वभाव इसी तरह का है। विसंगति, आवश्यकता और पूर्ति के तकाजे पर ही

लोग आपस में लड़ते–भिड़ते हैं और जब अनावश्यक संग्रहवृत्ति, पारस्परिक कलह, विस्तार और सत्तालोलुपता का गठजोड़ होता है, तो मानव समाज बड़े–बड़े संहारक युद्धों में उलझ जाता है।" एक स्थान पर द्रोण स्वयं सोचते हैं – "द्रोण ने अनुभव किया है कि नगर में स्त्री–पुरुष के अधिकार समान है, तो दूसरी ओर स्वेच्छाचार और यौनाचार भी काफी है।" वे अपने पुत्र के प्रति भी सचेत थे। जब अश्वत्थामा रंग शाला से लौटे तो बहुत क्रोधित थे क्योंकि उन्हें अपना कौशल दिखाना वर्जित था तो द्रोण ने उसके मन में उठ रहे सभी प्रश्नों के उत्तर बहुत ही सरल स्वभाव तथा विवेकपूर्ण तरीके से दिये। अश्वत्थामा के क्रोध को भविष्य में घातक सोचकर उसका सार्थक समाधान निकाला और अश्वत्थामा को ब्रह्मशिर शास्त्र प्रदान किया वे अपने पुत्र अश्वत्थामा के हितैषी तथा संरक्षक थे। अश्वत्थामा के कल्याण के लिए पिता की जागरूक चेतना भर दी। द्रोणाचार्य हस्तिनापुर के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में भी दर्शाये गये हैं, जो कि राज्य के अस्तित्व की चिंता करते हैं। द्रोण अश्वत्थामा से कहते हैं कि हस्तिनापुर का भार विदुर के कन्धों पर है, जो कि अल्पभाषी है। हस्तिनापुर किधर जा रहा है? कोई नहीं जानता और शकुनि भी दुर्योधन को सदा गलत शिक्षा दे कर राज्य का अहित ही करता है तो दुर्योधन सदैव कर्ण को अर्जुन के विरुद्ध भड़काता है। ऐसे में कुरुवंश में एकता बनाए रखना जरूरी है, जिसका प्रयास करने का मौका मैं तुम्हें देता हूँ।[20] इस प्रकार अश्वत्थामा उपन्यास में आचार्य द्रोण एक शास्त्र शिक्षक के साथ–साथ राजनीतिक भूमिका में दिखाई पड़ते है।

6. श्रीकृष्ण –

'अश्वत्थामा' उपन्यास में इनका वर्णन आरम्भ से लेकर अन्त तक हुआ है। ये इस उपन्यास के सबसे सफल एवं प्रमुख पात्र हैं। महाभारत कालीन राजनीति कृष्ण के इर्द–गिर्द घूमती दिखाई देती है। रामकुमार ओझा ने कहा है कि–गीता के अनुसार सब उनके ही द्वारा मारे हुए थे। कौन कैसे मरे, कौन किसके मरण का निमित बना यह उन्हीं का रचा विधान था, फिर भी औरों को दोष न लगा तो अकेले अश्वत्थामा ही उस विनाशक युद्ध के समापन के लिए किए गए अंतिम संहार के लिए उन्हीं केशव द्वारा शापित क्यों हुए। उस युग के अभिशापों का आज भी अन्त नहीं हुआ है, जिस युग में आप, हम सब जीते हैं, उस युग के अपने द्वन्द्व है। विचारणाएँ है, समस्या है और समाधान है। उस युग की समस्याओं के समाधान के लिए कृष्ण ने कारणों और परिणामों का शोध किया था और अपने युग के लिए हम सब मिल कर करें। समता विरोधी, विभेदक और ज्ञान–विज्ञान के मार्ग के अवरोधक पत्थरों को हमें हटाना है, हटाएँ। उनमें से कुछ उस युग की पाषाण–मान्यताएँ भी हैं और इनके कारक भूत कारणों और समाधानों को किन्चित चिह्नित

किया है। इसके लिए मुझे वर्षों तक महाभारत, उसके सन्दर्भ ग्रन्थों और व्याख्यानों का अनुशीलन करना पड़ता है, और अपने निर्णय का निर्धारण करना पड़ा है।

निष्कर्ष यही निकलता है कि इतिहास की आवृत्ति होती रहती है और एक बार फिर महाभारत का खतरा मँडराने लगा है। श्री कृष्ण दूरदर्शी थे और रामकुमार ओझा ने भी दूरदर्शी पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। आपने भविष्य को ठीक पहचाना है, द्विज श्रेष्ठ मैं आपका सम्मान करता हूँ। मैं चाहता तो इस महाविनाशक महाभारत युद्ध को रोक सकता था, किन्तु मेरे प्रयासों के बावजूद यह अपरिहार्य होता गया, तो मैंने इसे होने दिया। मैंने दूरगामी परिणामों और उन कारणों का विश्लेषण किया तो कारणों को विनाशक और परिणामों को प्रत्यक्ष में विनाशक, किन्तु परोक्ष में कल्याणकारी पाया। एक गलित संस्कृति के संस्कारों को ढोते रहना दिन–प्रतिदिन असहाय होता जा रहा था। समाज के नियामक अर्थ दास हो चुके थे। नारी जुँए के दाँव पर लगा देने वाली चीज बन गई थी। मानवों का वर्ग विभाजन उनके कर्म कौशल के आधार पर नहीं जातीय आधार पर होने लगा था। जाति कर्म से नहीं जन्म से निर्धारित होने लगी थी। ओझा जी के अनुसार श्रीकृष्ण अपने कार्यों को जल्द ही पूरा करना चाहते थे। उपन्यासकार ने लिखा है कि "श्रीकृष्ण अधिक प्रतिक्षा न कर बोले। तुम सब वाहन, हाथियों से उतरकर भूमि पर नत–मस्तक खड़े हो जाओ। अस्त्र भूमि पर रख दो। तब यह दिव्य अस्त्र तुम्हारा वध न करेगा, किन्तु ज्यों–ज्यों मुकाबला होता रहेगा, इस अस्त्र की घातक और मारक शक्ति भी बढ़ती जायेगी। सबने कृष्ण के कथनानुसार किया, किन्तु भीम अश्वत्थामा से युद्ध करने के लिए आगे बढ़ने लगा। कृष्ण ने पुकार कर कहा। लौटो भीम, लौट आओ। यदि तुम्हारे मन में भी युद्ध का संकल्प रहा तो यह अस्त्र और बढ़कर सबको मार डालेगा। पर भीम न माना तो अर्जुन और कृष्ण ने उसे बलपूर्वक पकड़कर रथ से भूमि पर उतार दिया।[21] इस प्रकार से कृष्ण को वाक्चातुर्य एवं बुद्धिमान पात्र के रूप में चित्रित किया गया है।

7. कर्ण –

रामकुमार ओझा के उपन्यास अश्वत्थामा में कर्ण भी एक अहम् पात्र है, जिसका वर्णन उन्होंने अपने उपन्यास में बहुत सुन्दर तरीके से किया हैं। कर्ण पाण्डु की पत्नी कुन्ती की अवैध सन्तान थी। इसलिए कर्ण को सूत पुत्र कहा जाता था। सूतपुत्र कर्ण का भी लालन–पालन कुरुवंश में हुआ। कर्ण भी अन्य कुरुवंशी राजकुमार के साथ ही अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा लेते थे। वे आचार्य द्रोण के नियमित शिष्य बने। रामकुमार ओझा ने इस उपन्यास के द्वारा यह बताया है कि वैध संतान के मुकाबले अवैध संतान को बहुत कुछ सहना पड़ता है जैसे कि रंगशाला में सभी राजकुमारों को अपने कौशल दिखाने का मौका दिया गया

जबकि कर्ण को यह मौका नहीं मिला क्योंकि वह कुरूवंशी पाण्डु की पत्नी की अवैध संतान थी।[22] उपन्यास में कर्ण को एक सहनशीलन सरल स्वभाव वाले वीर योद्धा पात्र के रूप में रेखांकित किया गया है।

8. द्रुपद –

रामकुमार ओझा के उपन्यास 'अश्वत्थामा' में अनेक प्रमुख पात्रों में से एक द्रुपद है। इनका वर्णन उपन्यास में एक ऐसे राजा के रूप में किया गया है– जो यश प्राप्ति के पश्चात् अपने मित्र की भी अवमानना करता है और इस अवमानना के कारण ही द्रोण उन्हें सबक सिखाना चाहता है। द्रुपद पांचाल नरेश द्रुपद का पुत्र है। इनका पूरा नाम यज्ञसेन द्रुपद है। जब द्रोण इनसे मिलने सीधे राजसभा में ही पहुँच गए। द्रुपद मित्र द्रोण को देखकर पहले तो खुश हुए, लेकिन फिर दम्भ स्वर में बोले द्रोण तुम जस के तस हो। तुम्हें सभा में आने से पहले परिषदीय भाषा भी सीख कर आनी थी, फिर द्रुपद कहता है कि विपन्न की सम्पन्न से मैत्री नहीं हो सकती। समान धनवान और समान कुलवालों के बीच ही मैत्री–भाव सम्भव है। इस प्रकार द्रुपद की अहंकारी बातों का बदला लेने कुछ समय बाद जब द्रोण अपने सभी कुरूवंशी शिष्यों को द्रुपद पर हमला करवा देता है तो द्रुपद दंग रह जाता है और शिष्यों द्वारा द्रुपद को द्रोण के पेरों में गिरा दिया जाता हैं। द्रोण एक ब्राह्मण और शान्त आत्मा के कारण द्रुपद को क्षमा कर देते हैं, किन्तु द्रुपद अपने साथ हुए इस अपमान का बदला लेने के लिए आग में जलने लगा और उसने याज ऋषि से तप करवा कर एक पुत्र प्राप्ति की। यही पुत्र द्रोण आचार्य की मृत्यु का कारण बना और द्रुपद के इस यज्ञ अग्नि से एक सुन्दर कन्या भी उत्पन्न हुई। इस सुन्दर कन्या का नाम याज ऋषि ने द्रोपदी रखा।"[23] इस प्रकार से उपन्यास में द्रुपद को एक अंहकारी पात्र के रूप में चित्रित किया गया है।

4.7.1.4 चरित्र–चित्रण –

रामकुमार ओझा ने अपने युद्ध पर आधारित 'अश्वत्थामा' उपन्यास में सभी पात्र व चरित्र–चित्रण का विशेष रूप से वर्णन किया है और कहा है कि इस उपन्यास के सभी पात्र जो शिक्षित पुरुष व शिक्षित नारी और अशिक्षित पुरुष व नारी हैं इनका चरित्र उज्ज्वल एवं गतिमान तथा अपनी–अपनी भूमिका के निर्वहन में सफल है। सभी उपन्यास कला की दृष्टि श्रेष्ठ है इस उपन्यास में कथावस्तु और पात्र दोनों का समान सन्तुलन है। पात्रों की विचारधारा और उनके कार्य भावी घटनाओं की गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। घटनाएं व पात्र और चरित्र चित्रण एक दूसरे के परस्पर सम्बन्धित रहते हुए भी स्वतंत्र हैं। इस प्रकार इस उपन्यास में प्रारम्भ से अन्त तक पात्रों और घटनाओं का पूर्ण सामंजस्य है।

दोनों एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें कल्पित जीवन के स्थान पर वास्तविक जीवन का चित्रण है। यद्यपि कथा और पात्रों का चरित्र–चित्रण महाभारत कालीन होते हुए भी कल्पना का यथोचित समावेश है।

4.7.1.5 देशकाल वातावरण –

'अश्वत्थामा' उपन्यास देशकाल वातावरण की दृष्टि से सफल उपन्यास है। लेखन ने कथा सूत्र को विस्तार देते समय देशकाल वातावरण का समुचित ध्यान रखा है। काल एवं स्थान तथा घटना के अनुरूप ही वातावरण की सृष्टि की है। इस उपन्या समें ओझा जी ने घटनाओं एवं पात्रों को देशकाल व वातावरण के अनुकूल परिवेश के माध्यम से चित्रित करते हुए उन्हें जीवन लोभी, पशुबली और अभिशप्त मानव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके व्यक्तित्व और बल को गलत ढंग से आँका गया है। माना कि उस काल के मुख्य व्यक्तियों में जो गुण–दोष थे आवश्यकता में भी थे किन्तु जीवन लोभी खतरों से बचना है किन्तु वे तो सारे पांचालों को कहते हैं कि वे सारे एक साथ उन पर प्रहार करें, उन्होंने अपने बल का विवेकपूर्ण ही प्रयोग किया है। धृष्टधुमन ने महात्मा द्रोण को जिस प्रकार पशुवत मारा, उसी प्रकार उसे भी शस्त्रों से न मारकर उन्होंने वीरगति पाने से वंचित किया तो कौन सा अविवेक कार्य कर बैठे। महाभारत युद्ध से पहले दिन ही धर्म–युद्ध के सारे नियमों की अवहेलना हो चुकी थी। असावधान शत्रु मारे जाने लगे थे किन्तु उन्होंने तो पाण्डव–शिविर में ललकारा था और यथाधिकारी को पशुवत या शस्त्र से मारा था। द्रोण मरण के तुरन्त बाद कौरवों की भागी सेना को उन्होंने सारा दुःख और क्रोध बिसरा कर लड़ते रहने के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने प्रतिशोध में नारायण शस्त्र का प्रक्षेपण कर, पाण्डवों को घुटनों के बल बैठकर शस्त्र त्याग के लिए मजबूर किया था, किन्तु आर्त शत्रुओं को मारा नहीं गया था वहाँ भीम स्थूल बुद्धि और उतावला था। द्रोण मरण के समय वह अरण्यक के समान नाचने लगा। मरणासन्न राजा दुर्योधन के सर पर उसने लात रखी थी। ऐसा भीम कुश हाथ में ले बैठे अश्वत्थामा पर तीर संस्थान कर चुका था। पाण्डव उसे घेर कर खड़े थे। ऐसी विपरीत स्थिति में उन्होंने आत्म–रक्षा के लिए ब्रह्मशिरा अस्त्र का प्रक्षेपण कर दिया तो वे प्राण–भीख और उतावले कैसे कहे जा सकते हैं। आयुध को लौटाना न जानते थे अतः स्पष्ट कह दिया कि वे लौटा नहीं सकते।"[24]

अब धरती को और दुर्योधन नहीं चाहिए। दूसरा सत्याग्रही युधिष्ठिर नहीं चाहिए। यदि युधिष्ठिर होगा तो अवसर देगा। अवसर मिलेगा तो हथियारों का जखीरा बढ़ेगा। अब कृष्ण आये किन्तु धर्म के उद्धार के लिए महाभारत नहीं, शक्ति का अन्य विकल्प ले कर आये।"[25]

द्रोण को विश्वास न हुआ कि द्रुपद उनके प्रति अमैत्रीपूर्ण भी हो सकता है। कल वे उसी पूर्णवत् भाव से मिलेंगे और उसे उसी प्रकार सम्बोधित करेंगे। यदि उसने भी पूर्णवत् व्यवहार न किया तो कुछ खरी–खोटी सुना कर लौट जायेंगे और इस विचार के साथ ही वे शैया पर आकर लेट गये पर नींद तक भी न आयी थी। साथ ही उसका सम्पूर्ण जनजीवन अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ सजीव और साकार हो उठता है। इस प्रकार उपन्यास में अनेकत्र देशकाल वातावरण की सुन्दर व्यंजना हुई है।

4.7.1.6 संवाद –

रामकुमार ओझा ने अपने 'अश्वत्थामा' उपन्यास में संवाद–योजना का विशेष रूप से वर्णन किया है। उन्होंने पात्रों को आपसी वार्तालाप के माध्यम से बतलाया है कि द्वारपाल की विनय पर ध्यान न देते हुए द्रोण बोले। द्वारपाल। तुम हमें भारद्वाज पुत्र द्रोण जानो। तुम्हारा महाराज द्रुपद हमारा बाल सखा है। उसके दरबार में जाने के लिए हमें अनुमति की आवश्यकता नहीं। और वे सीधे राजसभा में प्रवेश कर राजसिंहासन के ठीक सन्मुख खड़े होकर बोले।

हे यज्ञसेन! मैं तुम्हारा मित्र द्रोण! तुम अभी हमें मित्र समझो।

बाल–सखा को आया देख प्रथम तो द्रुपद प्रसन्न हुआ किन्तु द्रोण के असंसदीय सम्बोधन से रूष्ट होकर तत्काल ही रूक्ष स्वर में बोला। द्रोण तुम जस के तस रहें। तुम न क्षत्रिय ही बन पाये, न ब्राह्मण रहे और तुम्हारा बचपना भी न गया। किसी राजा की सभा में आने से पहले परिषदीय भाषा को सीख कर आना चाहिए था।

द्रुपद का दम्भ–स्वर सुनकर द्रोण हुँकार कर उठा और अविवेकी यज्ञसेन तूने हमें परिषद् समझा? एक बार पुनः याद करो हम वही द्रोण है, तुम्हारे गुरु–पुत्र और सखा।

उसी बचपने की मैत्री को आधार बना कर तुमने अब भी हमें मित्र कहकर सम्बोधित किया है। किन्तु यह तुम्हारा अविवेक है। विप्र, तुम नहीं जानते कि विपन्न की सम्पन्न से मैत्री नहीं हो सकती। मूर्ख कभी पण्डित से मित्रता नहीं करता। समान धनवान ओर समान कुलवालों के बीच ही मैत्री–भाव सम्भव हुआ करता है। राजा का मित्र राजा ही होता है।

आश्रम में हम दोनों की समस्थिति ही हमारी प्रीति का आधार था। अब वह आधार नहीं रह गया। अतः तुम हमारी मैत्री पाने के लिए समान स्थिति का नया आधार तैयार करो, अन्यथा गुरु–पुत्र होने के नाते हमसे पर्याप्त धन प्राप्त कर लौट जाओ।

द्रोण के भुजदण्ड फड़कने लगे। नेत्रों से अग्निस्फूलिंग झड़ने लगे। वे हुंकार कर बोले अरे यज्ञसेन तुम प्रारम्भ से ही वाचाल् और क्षणिक–बुद्धि थे। वाचालता वश तुमने राजा बन जाने के बाद हमें यथेष्ट सम्मान प्रदान करने का वायदा लिया और अब

क्षणिक–बुद्धि के कारण हमें याचक समझने की भूल करते हो। किन्तु तुम भी समझो कि भविष्य में तुम याचक और हम दाता होंगे और यह पांचाल का राज्य हमारे बाण की नोक के अधीन होगा। ऐसा कह कर द्रोण क्रोधोमत्त हाथी के समान अपने भारी कदमों से राज सभा को हिलाते हुए उत्तरीय झाड़ कर सभा के बाहर हो गये। उन्होंने आनन–फानन में काम्पिल्य का परकोटा पार किया और उसी पूर्वोक्त सरोवर पहुँचे जहाँ उन्होंने नगर प्रवेश के समय स्नान किया।

किन्तु यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि रात्रि वाले वृद्ध ब्राह्मण सरोवर–घाट पर पहले से ही मौजूद थे। ब्राह्मण उत्तेजित द्रोण को कन्धों से थपथपाते हुए बोला। भारद्वाज पुत्र अब शान्त चित्त होकर यह जानों कि हम सोमश्री आहिताग्नि है। हमारा परामर्श है कि अब तुम सीधे हस्तिनापुर चले जाओ। वहाँ तुम्हें गुणवान शिष्य मिलेंगे जो भविष्य में द्रुपद के पतन का कारण बनेंगे। द्रुपद का अपना कोई योग्य पुत्र नहीं है और तुम्हारे अमित बलशाली पुत्र की जन्म कथा जानकर वह जलने लगा है। उसी पुत्र को तुम सब भांति योग्य बनाओ। अब तुम जाओ। तुम्हारा पथ प्रशस्त हो।

ब्राह्मण के शब्द इतने प्रभावपूर्ण थे कि द्रोण परिचय जानने के लिए अति उत्सुक होने पर भी कुछ न पूछ पाये और उनके दिखलाये मार्ग पर चल पड़े। चलते–चलते वे सोच रहे थे कि क्या वह वृद्ध ब्राह्मण विगत और आगत को जान पाने की देवी शक्ति से सम्पन्न है तभी तो यह अश्वत्थामा के अद्‌भुत जन्म के बारे में भी जानता है।"[26]

अश्वत्थामा ने जन्म के साथ ही उच्चैःश्रवा अश्व के समान उच्च स्वर में निनाद किया था, जिससे दिशाएं गुंजायमान हो गई थी। तभी किसी अज्ञात वाणी ने कहा था। इस सहजात बालक का स्थान नाना दिशाओं में पहुँचा है। अतः यह बालक अश्वत्थामा के नाम से ही विख्यात हो। हस्तिनापुर की ओर बढ़ते हुए उसके मन में अतिरिक्त उत्साह था। वे सुन चुके थे कि कुरुवंशी कुमारों की अस्त–शिक्षा के लिए भीष्म योग्य गुरु की तलाश में है और उसी नगरी में उनका पुत्र अश्वत्थामा और भार्याकृपि भी अपने भाई कृपाचार के आवास में है और तीन मंजिलें तय कर वे हस्तिनापुर के बाह्य–कानन प्रदेश में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने बहुत सारे बालकों को एक कुएँ के गिर्द कोलाहल करते देखा और उत्सुकतावश उनके पास पहुँच गये तो देखा कि बालकों की गेंद कुएँ में गिर चुकी है और वे उसे निकाल पाने की कोई युक्ति कर पाने में असमर्थ हैं। इन सभी का आपसी संवाद या वार्तालाप का वर्णन ही विशेष रूप से बतलाया गया है।

4.7.1.7 उद्देश्य एवं मूल संवेदना –

ओझा जी के द्वारा अश्वत्थामा के बारे में बताया गया है कि अश्वत्थामा ही क्यों– महाभारत जैसे दीर्घाकार मुख्य ग्रन्थ में से एक उपन्यास के लिए महत्त्वूपर्ण स्थानों घटनाओं को उठाना और एक महत्त नायक का चुनाव करना एक कठिन कार्य है। वस्तुतः इसके कथानक में ऐसे अनेक पात्र समाहित हैं, जो एक नायक के लिए निर्धारित सम्पूर्ण विशेषताओं के समुच्चय है और उनमें से एक को भी हटा दिया जाए तो कथा–प्रवाह ही रूक जाये। महाभारत की पठनीय रोचकता उसके पात्रों पर निर्भर करती है। उनका चारित्रिक उत्थान देवोपम है। किन्तु उनकी अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ मानवीय हैं। वे मनुष्यों की ही तरह बोलते, सुनते और प्रभावित होते हैं। मानवीय विशेषताएँ और दुर्बलताएँ उनका चारित्रिक आधार है। उनका अहम्, आकांक्षाएँ, आग्रह और मान्यताएँ उनके कदम धरती पर जमाये हैं तो निःस्पृश्यता और उदात्त भावनाएँ उन्हें आकाश के छोरों तक ले जाती हैं।

"महाभारत काल में उक्त ब्राह्मणवंशियों का व्यापक प्रभाव था। पराशरों और कश्यप के वंशजों से खून के रिश्ते थे। परशुराम, भार्गव, द्रोण और कृपाचार्य गौतम थे। कुरु–पाण्डवों के महापितामह द्वैपायन व्यास पराशर के पुत्र थे और कश्यपों को परशुराम के क्षत्रियों से जीती गई पृथ्वी दान में दी थी। द्रोण को शस्त्र दिए थे। इस प्रकार व्यास के नाते कुरु पांचाल और यादवों से इनके नजदीकी रिश्ते थे। पाण्डव, कौरव, पांचाल, यादव सब भारतवंशी थे ययाति के पुत्रों की परम्परा से थे। अतः वे सभी संयुक्त भारत थे। भीष्म के द्रोण और शल्य के लिए भी इतने प्रशंसायुक्त शब्दों का प्रयोग नहीं किया। कर्ण पर्व के पाँचवें अध्याय में धृतराष्ट्र ने कहा है। "ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्या यस्य शिक्षामुपासते, युवा रूपेण सम्पन्ना दर्शनीयोः महाशयः। इस प्रकार अन्य स्थान पर कहा है कि कौरव, पाण्डव, पांचाल, देश–देशान्तर के राजा राजकुमार सदा हाथ जोड़ इनकी स्तुति में खड़े रहते हैं।"[27] अश्वत्थामा उपन्यास में ओझा जी ने महाभारत के कथा की माध्यम से वर्तमान समय की युद्ध की आशंका एवं विभिन्न सामाजिक समस्याओं के संकेत देते हुए यह संदेश दिया है कि मनुष्य अपने स्वार्थ और अहम् भावनाओं से मुक्त होकर आचरण करें तो मानव समाज खुशहाल रहेगा और युद्ध जैसी स्थितियाँ जन्म नहीं लेगी।

4.7.2 (ब) रावराजा –

4.7.2.1 परिचय –

'रावराजा' उपन्यास ओझा जी का दूसरा महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय उपन्यास है। रामकुमार ओझा ने अपने दिवंगत पिता श्री को यह उपन्यास समर्पित करते हुए लिखा है मेरी होश सम्भालने की आयु से पूर्व जो बैंकुठवासी हुए उनके स्वरूप, शक्ल की याद नहीं,

उनकी फोटो, तस्वीर कभी देखी नहीं। शायद उन्होंने कभी तस्वीर खिंचवाई ही नहीं क्योंकि उन दिनों कैमरे विलायत से आते थे और वे गाँधीवादी के प्रति इस कदर प्रतिबद्ध थे कि वस्त्र भी अपने हाथ से काते गये सूत से स्वयं द्वारा घरेलू कँधें पर बने कपड़े के ही धारण किया करते। मेरे पात्र महीपाल मेरे अचेतन में अंकित पिता की श्री यशोगाथा की प्रतिकृति हो सकते हैं, किन्तु महिपाल के समान न उनका कोई प्रेम प्रसंग चला न उन्होंने सशस्त्र क्राँति में भाग लिया और न ही दादागिरी की। अहिंसक असहयोगात्मक सत्याग्रहियों के बांट पड़ी सारी यातनाएँ, जेल यात्रा निर्वासन का दण्ड उन्होंने भी सहा जो अनुवांशिक उत्तराधिकार में मिला था। उनके पिता श्री पितामह ने सामंतशाही के जुल्मों का विरोध किया। परिणाम स्वरूप निर्वासन का दण्ड मिला। रेगिस्तानी प्रदेश आगामी तीन पीढ़ियों के लिए छूट गया। पर्वतीय प्रदेश दार्जिलिंग के प्रवास जीवन में तीनों पीढ़ियों गौराशाही के विरुद्ध जूझती रही। उसी जुझारू पीढ़ी के उत्तराधिकारी पिता श्री को इसलिए अकिंचन श्रद्धांजलि स्वरूप भेंट करता हूँ। उपन्यास का प्रथम संस्करण 1993 में प्रकाशक—मानक पब्लिकेशन्स प्रा.लि., 3 ए, वीर सावरकर ब्लॉक, मधुबन रोड शकरपुर दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है।

4.7.2.2 कथासार —

इस उपन्यास में लेखक ने अंग्रेजों के समय के राजाओं की सामन्तशाही, विलासिता और ऐश्वर्य का चित्रण किया है। ये राजा अपनी शान—शौकत एवं भोग—ऐश्वर्य में इतने ढूबे रहते थे कि प्रजा के दुःख—दर्द का इन्हें कोई अहसास नहीं होता था।

रामकुमार जी ओझा ने अपने उपन्यास 'रावराजा' में बतलाया है कि रियासती दिनों में बेहड़ के ठिकाणे (जागीर) का बड़ा नाम था। वहाँ के ठाकुर साहब को रावराजा की पदवी और अतिरिक्त सम्मान प्राप्त था। महाराजा साहब के खास महलातों में जनानी ड्योढियों की गणगौर पोल तक उनकी सवारी जा सकती थी, जबकि अन्य ठाकुरों को किले की सिंह पोल पर ही घोड़े की पीठ से उतर जाना पड़ा करता था। यही नहीं महाराजा के निकट सम्बन्धी होने के कारण बेहड़ के जागीरदार तोप की सलामी के भी हकदार थे। दरबार में महाराज उनको, काको सा कहकर सम्बोधित करते और अपना पेचदान पेश करते।

इस प्रकार उन दिनों उमराव रावराजा भूपालसिंह की लाल गढ़ी नाम का गढ़। किन्तु हकीकत में एक सशक्त किला था। एक ऊंचे पठारी टीले पर दो गज मोटी लाल पत्थरों की मजबूत सफील में जागीर के अन्तर्गत आने वाले बावन गाँवों की सूचक उतनी ही बुर्जियाँ थी, जिनमें से कई एक में तोपों की नालें झाँकती नजर आती थी। चहारदीवारी

के भीतर एक विशाल चौकोर प्रांगण के गिर्द सिपाहियों के लिए बारहदरियाँ बनी थी। सफील के बाहर चतुर्दिक गहरी नहरनुमा खाई थी, जो सदा पानी से भरी रहती थी।

गढ़ी के विशाल मुख्य द्वार पर खड़े हो हाथी झूमा करते, थोड़े मोटे घुमाव के बाद प्राँगण में पहुँचने के लिए दो और अपेक्षाकृत छोटे द्वार थे। प्राँगण के बीचों बीच खास कचहरी और उसके बाद जनाना महलात और मर्दाना खण्ड थे दुमंजिलें, तीन मंजिलें गवाक्षों युक्त नस्ल के ऊँट, घोड़े तथा दुधारू पशु खड़े अधाकर जुगाली किया करते। पर ठिकाणे की छोटी फौज से बड़ी पलटन, टहलुओं, गोलों–गुलामों, लठेतों और कारकूनों की थी।

"आहिस्ता बोलो अभय राज की बात कभी जीभ से नहीं की जाती।" उमराव जरा खिसयाया और फिर जीभ दबाकर बोला, आप धन्या (मालिक) ने कैसे याद फरमाई।"

"जानते हो उमराव दिन दुबले चल रहे हैं।"

"जानता हूँ रावराजा।

"तो एक बात पूछूँ"

"हुकुम करो गरीब नैवाज"

सियार जब शेर को आँख दिखलाने लगे तो शेर क्या करे?

"दिखाई जाने वाली आँख ही पँजे से खरोंच कर निकाल ले।"

"उत्तर माकूल है पर शेर यदि खुद बूढ़ा और लाचार हो तो।"

"तो अपनी जाति के किसी जवान से मदद ले।"

"और अगर उसके लिए मैंने तुम्हें ही चुन लिया हो तो।"

"चुनाव गलत साबित न होगा अन्नदाता।"

"काम मुश्किल हो तो मुकर तो न जाओगे?"

अभय सिंह तड़पा। "अपनी गढ़ी में बुलवाकर अपमान कीजिए राव साहब।"

ऐसी मंशा नहीं, पर आशंका तो होती ही हैं। बीच में भवानी साक्षी हो तो राजपूत वचनबद्ध हो जाता है।

अभयसिंह ने सूत ली। सौगन्ध उठाना कायरों का काम है, किन्तु आपके संतोष के लिए यही सही।

"किन्तु ऐसा भी समय आ सकता है। बेबसी में जुबान खोलनी पड़ जाये।"

"राव जी को भय है कि अभय कभी गिरफ्तार भी हो सकता है और ऐसे में जुबान खोलने को मजबूर कर दिया जाये।" "आगे की सोचना कूटनीति है का एक अंग के उमराव।"

अभय सिंह ने तलवार म्यान में रख अपने गले में पड़े ताबीज को निकाल कर हाथ में लिया। "यह कुल देवता का ताबीज है। अभय सिंह जुबान खोले तो पिता पुरखों की आणे ले।"

पर जानते हो रूपराम ने क्या किया। एक रात वह चुपचाप मर गया। कफ में उलझा और जर्जर ढांचा, बगैर हिचकी लिये ही प्राण–मुक्त हो गया। तब मैं अकेली थी। पर डरी जरा भी नहीं। क्योंकि उसकी जिन्दा शक्ल ही इस कदर डरावनी थी कि मर जाने पर चेहरे के लिए और भयावह होने की सम्भावना ही न थी। अतः डरने की क्रिया सुहागरात को ही सम्पन्न हो चुकी थी। मरण रात्रि में मैंने चुपचाप लाश को एक चद्दर से ढका और शाँति से सुसताती रही।

सुबह टोले मौहल्ले की स्त्रियाँ रोने धोने का अभियान कर चुकी तो पड़ोसी अर्थी उठा ले गये। मैं जरा भी न रोई, न चूड़ियाँ तोड़ी। जब लुगाइयाँ अभिनय कर चली गई, तो मैंने चूड़ियाँ उतारी और सहज कर एक पेटी में रख दी। वह जिस मोल पर अपनी मुक्ति का मार्ग सहज बनाना चाहता था। मैंने वह योजना तहस–नहस कर दी। अब न उसके प्रति आक्रोश था, न कोई हिसाब बाकी।

दम की मारी हरखू बात क्यों काटे। सुनार अधेले को पावली बताये तो उसे कौनसा घाटा बस, कुछ बोला नहीं चिलम थाम कर फिर कस लगाने लगा। मोती ने सोचा ज्यादा दम बाजी में कहीं असल बात न गोल हो जाये, अतः असल बात पर आते कुरेदा, तो धावा होगा तो बड़ी हवेली पर ही यह बात पक्की है।

और कौन गुवाड़ी के इस गाँव में जिसके छप्पर पर बड़ी हवेली के समान सोना सूखता हो। पुरानी हवेली तो बस राम भरोसे। न राम रहा, न नाम।

लक्ष्मी कहीं एक ठौर पीढ़ा डाल कर नहीं बैठती। बड़ी चंचल और हरजाई है। "आज अटारी, कल पिटारी।" पर तुम्हें बताया किसने काका। इती बड़ी बात लाया कौन? मोती काफी जिज्ञासा दर्शाते बोला। हरखू ने भी सयानापन दर्शाते उत्तर दिया।

सयाना वह रे जो हर एक का बखाने किसी एक की।

हरखू सात गाँव, सोलह ढाणियों का नाई तो मोती सुनार सतरह गाँव सत्ताइस ढाणियों का सयाना। छूछी भस्म से सोने की कणी खोज निकाले, तो फिर कुरेद मारी। बनो भले ही काका पर कुछ–कुछ तो हम भी जानते हैं कि इत्ती बड़ी औकात तुम्हारी तो नहीं की इती बड़ी खोद लाओ। सुनकर सेठानी को फिर अपनी बहुओं पर गुस्सा आने लगा। कुढ़ कर बोली पर इस हवेली में तो पांव चला कलजुग आ गया है। मेरे बेटे दिसावर में बैठे हैं और ये बहू रानियां है कि साबुन मल नहाती है। मंजन मिस्सी करती हैं और हफ्ता

होने से पहले ही सर धोकर चोटी कंठी करने बैठ जाती है। बस आँखों में काजल भर सामने की कसर रह गई है सो वह कभी भी किसी दिन पूरी हो जायेगी। अब क्या कहूँ सेठानी जी। मरद–मानस सदा घर रहता है। पर कभी मंजन मिस्सी की तो सौगन्ध उठा लूं। ये सब तो मरदों के काम है और क्या बहू। पूरे दो कम साठ बरस आ गये। सेठ जी को पाँव पसारे दस बरस हो गये। जीते जी भी ज्यादा समय प्रदेश दिसावर में ही बिताया। ब्याह के बखत पाँवों में जो कड़ी कडुकले डाले जाते, मरने तक वे पाँवों में मरजादा बन पड़े रहते, हाथ पड़ी चुड़ियाँ तक न खुटक पाती। बात पक्की थी। महीपाल बेहड़ लौट आया था। अब वह गठिये का रोगी था। उसकी लड़की अब काफी बड़ी हो चुकी थी। डॉक्टरी का कोर्स कर चुकी है। नाम रेखा रखा है। बरसों से सूने–जूने अपने ही घर में डेरा डाला है। राव जी नाराज तो बेहद थे, पर राज पुरोहित के बेटे की जमीन जायदाद जब्त न की थी। तेजू गोला सब अपनी आँखों से देख आया था। नृसिंह गुरूजी, रूपराम के बाप के साथ पहले भी महीपाल का काफी हेलमेल था। अब भी जब से गाँव में लौटकर आया है उठना बैठना उन्हीं के साथ अधिक है। राव जी की वह संध्या गढ़ी की छत पर टहलते या जूही की डूंगरी को घूरते बड़ी उद्विग्नता के साथ कटी थी। काफी अँधेरा हुआ तो नीचे खण्ड में आ गये, किन्तु रनवासे में न जाकर कचहरी में जा बैठे। तेजू गोला को बुलाया और कई बार जो पूछ चुके थे वही बात फिर पूछने लगे। मोती का ताव देखकर माणक सकपका गया। मोती को नाराज करने का मतलब था अपने हाथों अपनी बदफेलियों को उजागर किये जाने का मौका देना। बड़े घर का बेटा मोती के शिक्षण में बदचलनी का अभ्यास करने ही लगा था। पर राज खुलने से ही डरता रहता था। प्रायः बड़े घरों के लड़के ऐसे ही लफंगों की छत्रछाया में वह सब कुटैव पूरे किया करते हैं, जो अपने घर में नहीं कर पाते। गुरु भले ही सर से पाँव तक भीगा हो पर ये लड़के तो पानी में चलकर भी बिना भीगे बने रहना चाहते हैं। गौरी की दृढ़ता देख पहले पार्वती अवाक् रही और फिर ढीली पड़ बोली। तुझे डर नहीं लगता गौरी।

"अपने लिये तो जरा भी नहीं पर रूपराम की खैर–कुशल को लेकर जरूर डरती रहती हूँ।"[28]

पार्वती जैसे बहुत छोटी हो गई। वह पति को दुत्कार कर प्रेमी को भी कांटो में घसीट चुकी थी। अब गौरी का साहस और विश्वास उसके लिए श्लाघनीय था। उधर मकड़ी कई मक्खी, मच्छर निगल चुकी थी। उसकी जान दुरूस्त थी। पार्वती हरहराती सी उठ चली। गौरी भी उसके साथ हो ली। अब गौरी उसके निकट एक ऐसी उमस थी जो उसे घेरे जा रही थी। वह घुटे जा रही थी। उसकी छाती और फेंफड़ों पर दबाव बढ़ता

रहा। उसका भीतर, बाहर तप रहा था। किसी शीतल हौद में कूद पड़े। किसी पर डंक मारे। मकड़ी बन कर किसी को जाल में उलझाये पलट कर गौरी से ही सवाल किया। "सच्ची यारी के ये ही तो लक्षण है, काका अब मैं तुम्हें कुछ दे थोड़े ही देता हूँ, फिर भी सारा गाँव छेककर आ जाते हैं।

"ठीक तो है रे मोतिया सच्चा दोस्त बड़े भाग्य से मिलता है।"

"लाख रुपये की बात कह दी काका तुमने। निर्गुणियों से जग भरा, गुणी लाख में एक और गुण ग्राहक तो लाखों–अरबों में कोई बिरला ही होता है।

सत् संगत में बैठकर अपने तो यही एक बात सीखी है बेटा कि लगाई का चरित्र और महाजन का दांव कोई नहीं समझ पाता।" मोती सावधानी की मुद्रा में बैठ कर इकोली पर गांजा मसलने लगा और बस "वैसे की" का दिखावा करते पूछा।

"पर शांति, सावित्री और राधा इस व्यस्तता में भी अपने मन की बातें किये जा रही थी। बुढ़िया भी आज उन्हें नहीं टोक रही थी। राधा के चेहरे पर ऐसी आब दौड़ रही थी, जैसी कि गौने से लौट आई लड़कियों के चेहरे पर ऐसी झलकती है और उनकी मायें उसे देख सुख की सांस लेती है। वही गुदगुदाती अब राधा के चेहरे पर भी देख शाँति ने उसे रहस्यमयी नजरों से घूरा तो राधा झेंप गयी। पर शांति की वर्षों से सोई चुहल जाग उठी।"[29]

"राधा जैसे धरती में गड़ने लगी पर प्रकट में बोली। कुछ नहीं भाभी। अगर तू सन्देह करने लगी है तो गंवई लुगाइयाँ तो मुझे फाड़ ही खायेंगी। पर वह अब तक काफी ठीक भी बन चुकी थी, अतः निश्चिंतता का अभिनय करते पलटी। मेरे तो अभी हाथ भी पीले नहीं हुए भाभी पर तुझे तो चंवरी चढ़े मुद्दत हो गई, पर तेरे चेहरे पर तो कभी आब न आई। समझ भाभी यह सब तो कुदरत का निखार है।"[30]

शाँति की चुहल जैसे जागी थी, वैसे ही शाँत भी हो गई। लम्बी साँस लेती बोली। "हम तो ब्याही–अनब्याही हैं, बहना। राधा के चेहरे पर उभरते आश्चर्य का जवाब मिला। सावित्री की ओर से सुन एक दिन मैं कलकत्ते में भैया के साथ म्यूजियम देखने गई। तू नहीं जानती (म्यूजियम) क्या होता है। समझ वह एक ऐसा अजायबघर होता है जहां मम्मी से लिपटा ऊँट भी मिलता है और चींटी का मॉडल भी। बड़ी सुन्दर आकृतियां वहाँ होती हैं। देखो तो जीवित परियों का भ्रम हो जाये पर पत्थर से बनी या मोम से ढली।"

"पर इस उल्लासमय वातावरण में रूपराम छत पर उदास बैठा था। तभी हरखू किसी काम से छत पर आया तो रूपराम बोला।" काका तनिक सुनो तो।

क्या रे रूपराम। जल्दी से कह डाल भाई जो कहना हो। इधर तो दम मारने को भी फुर्सत नहीं हैं।

"कुछ नहीं काका, तुम जाओ। मैं तो यही पूछ रहा था कि औरतों के गीतों का यह सिलसिला कब तक जारी रहेगा?"

"वाह भाई यह भी कोई पूछने की बात है। ब्याह के अवसर पर तो गीत गाये ही जाते रहेंगें और फिर यहां तो अगुआई तेरी काकी कर रही है, भला उसके मुकाबले गीतेरन (गायिका) कौन होगी, वह तो घर बैठी भी दिन भर गुनगुनाती ही रहती है। क्या सुर पाया है भगवान ने, और हरखू चला गया।"[31]

सच, राजस्थान का कण–कण संगीतमय है। चक्की चलाती गृहिणियाँ, दही बिलौती बहुएँ। कुओं–जोहड़ों पर पानी भरती कोकिल–कण्ठियाँ सब तो गीत है। भिन्न अवसरों के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के गीत, राग–रागिनियां, त्योहार, तो क्या सामान्य अवसरों एवं उपन्यासों तक का उद्यापन यहां गीतों के ही बीच होता है।

"जानते हो राम सिंह हाथ मुँह खुलने पर मैंने क्या सोचा।"

"निश्चय की भाग निकलने की तरकीब सोचने लगी। "

बुद्धू हो तुम रामसिंह। भला उस परिस्थिति से भाग निकलने की सोचना हर दर्जे की बेवकूफी न होती। मैंने यही सोचा कि हौंसले से काम लूं। फिर भी जब उन्होंने मेरे हाथ फिर जकड़े तो मैंने प्रतिरोध न किया। हां आँख पर बंधी पट्टी को जरा हटाकर बन्धन से पहले परिवेश को जरूर देखने की चेष्टा की पर सफल न हो पायी। पर भोर के उजास में चहकते पक्षियों का कोलाहल। बहते झरने का निनाद, हवा में बढ़ती नमी का अहसास बता रहे थे कि अब मैं पहाड़ की ऊँचाई पर थी। जब बहन ने भी गौरी का पक्ष लिया तो सेठानी चुप लगा गयी। मिशरानी और हरखू की बहू ने भी प्रसंग बदला और पुरानी हवेली की सावित्री बहू ने मोती को कैसे–कैसे धुना हरखू की बहू सविस्तार बताने लगी। अभी उसकी दासता पूरी भी न हो पाई थी कि रेखा आ पहुँची। उसने हाथ जोड़कर सबको नमस्कार की, तो औरतें उसे घूरती रही। वे जानती ही न थी कि पुरुषों को छोड़ औरतों के बीच भी कोई अभिवादन की, प्रणाली चलती है। यहाँ तो छोटी हुई तो झुक कर पाँव छू लिये, बड़ी हुई तो आशीष बखाने लगी।"[32]

रावराजा के पात्र –

उपन्यास साहित्य में शोध कथाकार रामकुमार ओझा ने अपने उपन्यास रावराजा में शामिल पात्रों का विवरण निम्न प्रकार से हैं–

4.7.2.3 पात्र –

ठाकुर साहब, भूपाल सिंह, सेठ धनदास, अभयसिंह, उमराव, तेजूगोला, जुली, रामसिंह, रूपराम, एवजी, रावराजा, गौरी, पारो, पार्वती, चौकीदार, मोती सुनार, हरखू, नेवगण, माणक, लाली, सावित्री, बूढ़ी मिशरानी, रामसुख, हरसुख, चाँद, धर्मदास, शाँति, महिपाल, रेखा, रावजी, अमरू, किशनू, कासनीवाल, अमरसिंह, राधा, लक्ष्मी, प्रेमसुख, मायाराम, चमत्कारी बाबा, पृथ्वीपाल सिंह, नृसिंह गुरु, मनोहर, सेठानी, ठकुराइन, सोना, करीम खां, बाघसिंह, रूड़ासिंह, अघौरी, भौमिया, जोरावर सिंह, धन्या, राधारमण, मुरलीधर, रहीम खाँ आदि।

शिक्षित पुरुष पात्र–

नृसिंह गुरु, मायाराम, ठाकुर साहब, भूपाल सिंह, सेठ धनदास, अभयसिंह, उमराव, रावराजा, धर्मदास, पृथ्वीपाल सिंह, मनोहर, बाघसिंह, राधारमण आदि।

अशिक्षित पुरुष पात्र–

तेजू गोला, रामसिंह, रूपराम, चौकीदार, मोती सुनार, हरखू, माणक, रामसुख, हरसुख, चाँद, महिपाल, अघौरी, रूड़ा सिंह, भौमिया, जोरावर सिंह, धन्या, करीम खाँ, रहीम खाँ आदि।

शिक्षित महिला पात्र –

गौरी, पार्वती, जूही, शांति, ठकुराइन, लक्ष्मी, सेठानी, रेखा आदि।

अशिक्षित महिला पात्र –

पारो, नेवगण, लाली, सावित्री, बूढ़ी मिशरानी, सोना आदि।

उपन्यास के पात्रों का परिचय एवं उपन्यास में भूमिका –

'रावराजा' उपन्यास में राव भूपाल सिंह की आदत ऐशो–आराम करने की व बैले–ठाले बैठे रहकर एक रहीश व्यक्ति के रूप में भूमिका का वर्णन करते हुए रेखांकित किया है– "राव भूपाल सिंह के पिता श्री के व्यसन कुछ इस कदर बढ़ गये थे कि राज दरबार में सम्मान भी घट गया और पीढ़ियों की संचित पूँजी भी लगभग ठिकाने लग गयी। गाँव की बड़ी हवेली के सेठ धनदास का कितना कर्ज जागीर पर चढ़ चुका था, यह नायब दीवान भी ठीक से नहीं जानते थे, क्योंकि राव साहब शरूर में ही रूक्के मांड दिया करते थे।

भूपाल सिंह भी जब नये–नये गद्दी–नशीन हुए तो कई बरसों तक ऐशों–इसरत में ही गर्क रहे। पर ज्यों–ज्यों जागीर के दिन पतले आते गये त्यों–त्यों देश के साथ–साथ सियासत और जागीरों के हालात भी बदलते गये और अन्त में एक आधी रात को फिरंगी

शासक अपना झण्डा समेट कर, देश को देशी नेताओं को सुपुर्द कर कूच कर गये तो कुछ ही दिनों बाद रियासतें भी कलम की नोक से मिटने लगी और उनके साथ ही साथ ठाकुरों की जागीरें भी जमा लग गयी।"[33]

सेठ धनदास को उपन्यास में प्रमुख रूप से धनाढ्य वर्ग के व्यक्ति के रूप में माना गया हैं और बतलाया गया है कि धनदास ने बड़े–बड़े जागीर प्राप्त लोगों को भी अपना कर्जदार बना रखा था।

1. अभय सिंह –

उपन्यास में अभयसिंह को एक अहम् भावना रखने वाले पात्र के रूप में जाना जाता है और एक–दूसरे के प्रति सम्पूर्ण उपन्यास में दुःख–दर्द समझने का भी संकेत नहीं मिलता है – अभयसिंह तड़पा। "अपनी गढ़ी में बुलवाकर अपमान न कीजिए राव साहब।"

"ऐसी मंशा नहीं, पर आशंका तो होती ही है। बीच में भवानी साक्षी हो तो राजपूत वचन बद्ध हो जाता है।"

अभयसिंह ने तलवार सूत ली। "सौगंध उठाना कायरों का काम है, किन्तु आपके संतोष के लिए यही सही।"

"किन्तु ऐसा भी समय आ सकता है, बेबसी में जुबान खोलनी पड़ जाये।"

"राव जी को भय है कि अभय सिंह कभी भी गिरफ्तार हो सकता है और ऐसे में जुबान खोलने को मजबूर कर दिया जाये।"

"आगे की सोचना कूटनीति का एक अंग है उमराव।"

अभय सिंह ने तलवार म्यान में रख अपने गले में पड़े ताबीज को निकाल कर हाथ में लिया।

"यह कुल देवता का ताबीज है। अभय सिंह जुबान खोले तो पितर–पुरखों की आणे ले डूबे।" इस तरह से अभयसिंह एक मान–मर्यादा को बनाये रखने वाले इज्जतदार व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है।

2. भूपाल सिंह –

इनका उपन्यास में ऐशो–आराम में जीवन व्यतीत करने वाले पात्र के रूप में वर्णन किया गया है जो इस प्रकार से है देखिए – "भूपाल सिंह भी जब नये–नये गद्दी–नशीन हुए तो कई बरसों तक ऐशो–इसरत में ही गर्क रहे। पर ज्यों–ज्यों जागीर के दिन पतले आते गये त्यों–त्यों सारे देश के साथ–साथ रियासत और जागीरों के हालात भी बदलते गये और अन्त में एक आधी रात को फिरंगी शासक अपना झण्डा समेट कर, देश को देशी

नेताओं को सुपुर्द कर कूच कर गये तो कुछ ही दिनों बाद रियासतें भी कलम की नोक से मिटने लगीं और उनके साथ ही साथ ठाकुरों की जागीरें भी जमा होने लग गयीं।''

3. रूपराम –

यह एक वाचाल व चतुर श्रेणी का पात्र है जो एक–दूसरे की बातों को इधर–उधर करने में माहिर है व स्त्री पात्रों के साथ अपनी कामवासना को सम्पन्न करने के लिए सम्पूर्ण उपन्यास में सम्पर्क आता रहता है –"दोहराने से घिन्न कम होती है रूपराम, पर मैं तुम्हें परेशान भी नहीं करना चाहती, बैठो।"

रूपराम एक कुर्सी पर बैठ गया। सिकुड़ा–सिकुड़ा गौरी घुटनों पर गर्दन लटकाये पलंग पर जा बैठी। रूपराम अपनी करनी पर पछताने लगा। कैसा कैसा तो बोल गया। आखिर कौन था मैं ऊलजुलूल सवाल करने वाला। आदमी अपनी औकात से ज्यादा पा कर हैसियत भूल जाता हैं सो मैं भी भूलने लगा हूँ। अगर यह सोना, झोली में पड़े तो सम्भाल रखने का शऊर भी मुझे तो नहीं। उधर रूपराम पछताता रहा। इधर गौरी अतीत की खोहों में उतर गयी।

4. हरखू –

यह एक सहनशील एवं दयालु स्वभाव की प्रकृति का पात्र है। जो कि प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करने के लिए जाना जाता है – "बनो भले ही काका पर कुछ–कुछ तो हम भी जानते हैं कि इत्ती बड़ी औकात तुम्हारी तो नहीं कि इत्ती बड़ी बात खोद लाओ।"

हरखू के घर साहनी–सयानी लुगाई। मोती हरखू को काका और उसे भूजाई कहकर बतलाता। हरखू को शुरू में तो बुरा लगा पर जब नेवगण (नाऊन) का भी वही रूख देखा तो सहज को सहने लगा। हरखू इस घर बाल काटे। उस घर जा किसी की मूँछ मूंड डाले। पूरा मूंड कर हथेली फैला दे तो उसकी घरवाली ब्याही, कुंवारी सब का पेट पहचाने। किस पर ओपरी छाया आई। किसके सर पितरानी चढ़ बोली। कौन लाग–पलेट की मारी। वह सब पहचाने तो हरखू राज जाने।

किसको पाण चढ़ा (साँप ने सूँघा) किसके घर विवाह, किस घर सगाई, किसकी जोरू सती–साधवी। किसके घर हरजाई लुगाई। उपन्यास में चित्रित पात्र हर एक क्षेत्र की खोज खबर रखता है। अतः हरखू को तेज तर्रार पात्र के रूप में रेखांकित किया गया है।

5. गौरी –

यह उपन्यास में चित्रित पात्रा स्त्री पात्र के रूप में मुख्य भूमिका का निवर्हन करती है। यह एक आधुनिक नारी की तरह बातें बनाना जानती है और प्रेमी स्वभाव की स्त्री पात्रा है– ''गौरी रूपराम की पीर को पहचानती थी। वातावरण को हल्का करने की गरज से

तनिक मुलकी। पर वह मुलक रूपराम के अन्तस् की तपिस को शीत न पायी। तभी जीने पर किसी के कदमों की आवाज सुनी। दोनों ने महसूस। मानों कोई बड़ी हड़बड़ी में ऊपर चढ़े आ रहा है।''

गौरी भी हड़बड़ा कर कमरे के बीचों बीच आ रही और इधर उधर पड़तालिया नजरों से ताकने लगी।

"मेरे लिए छुपने की जगह पड़ताल न करो गौरी। मैं छिपूंगा नहीं। ज्यादा से ज्यादा यही तो हुआ होगा कि तुम्हारे बापू को भनक लग गई होगी और वे आवेग में जीना छेकते आ रहे होंगे।"

6. उमराव जी –

उपन्यास में उमराव राजा व सामन्तशाहियों के यहां मस्का (मजाक) लगाने का कार्य करता है और सम्पूर्ण दिन का कर्ज शाम को ढ़ोलकी भर शराब की ले जाकर रात भर पीने का आनन्द लेता है –''हूँ राव जी साहस और सूझबूझ को समन्वय देखकर पूर्ण आश्वस्त हो चुके थे। उमराव को शराब पीये काफी समय हो चुका था, जाँचना चाहा अब कितना शरूर है। बोले "हम जो कहेंगे, ठीक–ठीक समझ पाओगे?"

उमराव, राव जी के बिल्कुल नजदीक हो गया। बड़ी देर तक कानाफूसी होती रही। अभय सिंह की जीभ एक बार भी नहीं लड़खड़ाई, फिर भी अधिकांश बातें संकेतों में ही हुई। जब योजना तय हो गई तो राव जी जरा ऊंचे स्वर में बोले। "तो अब तिथि भी तय हो जाये।" यह काम आपका है मुझे गाँव की खबर कम ही मिलती हैं। उपन्यास में उमराव को नशेड़ी प्रवृति कि व्यक्ति के रूप में बतलाया गया है।

4.7.2.4 चरित्र–चित्रण –

हिन्दी उपन्यास नैतिकता, शिक्षा, प्रेमतत्त्व आदि को लेकर भी लिखे गये हैं। समयांतर अनेक प्रवृत्तियाँ एवं इतिहास–पुराण जैसे आधार पर भी उपन्यासों की रचनाएँ हुई हैं। रावराजा के समस्त पात्रों का वर्गीकरण चरित्र–चित्रण अनेक आधारों पर किया जा सकता है। उपन्यास के सभी पात्र जीवन्त गत्यात्मक और सजीव है। उनका चरित्र भूमिकाओं के निर्वहन में सहायक है। सभी पात्र अपनी भूमिका से न केवल अच्छी तरह परिचित है अपितु जमीनी हकीकत से जुड़े रहकर अपने–अपने कार्यों को गति देने में सफल हुए है।

4.7.2.5 संवाद–योजना –

'रावराजा' उपन्यास में विविध प्रकार के संवादों की योजना की गई है। इसके संवाद सार्थक, सटीक, पात्र एवं प्रसंग के अनुकूल है। उपन्यासकार ने लम्बे–लम्बे तथा

छोटे–छोटे सभी प्रकार के संवादों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है। यह संवाद उद्देश्य को संप्रषित करने में सक्षम है। विस्तारभय से हम इस सम्बन्ध में बहुत अधिक न लिखकर छोटे एवं संवाद का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है। "रूपराम अचकचाता रहा। उसे याद न आया कि उसने कब ऐसा पुरुषार्थ का काम किया था कि जिसे करते देख गौरी दास पर अनुरक्त हुई।

क्या सोच रहे हो रूपराम? निश्चय ही किसी दिन किये गये पुरुषार्थ को याद करना चाह रहे हो, याद नहीं आ रहा तो सुनो। यह भी मैं ही बतलाये देती हूँ। वह होली का दिन था। हमारी हवेली के दरवाजे पर रसिये खड़े डफ (चंग) बजा रहे थे और धमाल होली के अवसर पर गायी जाने वाली राजस्थान की एक विशेष राग गा रहे थे।

बसन्ती मौसम और चील्ह दम्पत्ति की प्रण्य–स्मृति के कारण मेरा नारीत्व आकल–बाकल हो रहा था। मैं उसी झरोखे पर आ खड़ी हुई। रूपराम ने उसका अनुसरण किया।

देखो रूपराम तब उस खूँटे पर तुम्हारे पुष्ट भैंस बंधी थी। वह हिरियाई (ग्याभन) होने को आतुर थी। दूध न दे रही थी। डिडियाती और उछल जाती खूँटा तुड़ाने को धम्मा चौकड़ी मचा रही थी। तुमने लपक कर एक हाथ से उसका सींग पकड़ा, दूसरे से कसकर उसकी कनपट्टी पर झापड़ मारा। भैंस गर्दन झुकाकर खड़ी हो गयी और तुमने दूध निकाला। तब तुम एक अंगोछा भर लपेटे थे। मैंने तुम्हारी चौड़ी चक्कल छाती देखी। उछलती हुई भुजपेशियां देखी और गोरी गदराई देह देखती ही रही। मेरी चाहत अंगड़ाइयाँ लेने लगी। मैंने आव देखा न ताव ताक से उठाकर एक अनार तुम्हारी छाती पर दे मारी।"[34]

4.7.2.6 देशकाल एवं वातावरण –

रामकुमार ओझा ने अपने उपन्यास रावराजा में देशकाल एवं वातावरण से सम्बन्धित सभी बातों को मुख्यतः उल्लेखित किया है, उन्होंने सामन्त कालीन कथानक के अनुरूप समस्त देश, काल और वातावरण को संयोजित किया है। सामन्तों की भोग ऐश्वर्य प्रधान जीवन शैली एवं क्रियाकलापों के अनुरूप इस प्रकार वातावरण की सृष्टि की गयी है, जिससे पूरा उपन्यास जीवन्त बन गया है। यह उपन्यास तत्कालीन घटना, पात्र और कथा के अनुरूप वातावरण संजोये हुए है। रावराजा हिन्दी की सामाजिकता व ऐतिहासिकता पर आधारित है। युगानुकूल देशकाल एवं वातावरण का चित्रण उपन्यास का सर्वप्रथम एवं अनिवार्य लक्षण है। उपन्यास पाठक को वर्तमान से भिन्न–भिन्न किसी विगत संसार में ला पहुँचाता है। वातावरण उस संसार की उस युग की पहचान वहां के वातावरण से करता है।

ऐसे ही उपन्यास की आवरण–सृष्टि मन को आश्वस्त करने वाली नहीं है, तो पाठक का उपन्यास कथा तथा पात्र भी निराधार, हवा में उड़ते जैसे जान पड़ेंगे। वातावरण सम्पूर्ण उपन्यास में रमा रहता है किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण के बिना लक्ष्य नहीं होता। कह सकते हैं कि, उपन्यास में पात्रों के कथोपकथन तथा क्रियाकलाप को छोड़कर शेष सामग्री देशकाल एवं वातावरण से सम्बन्ध रखती है। हम ध्यान दें तो पायेंगे कि पात्रों के कथोपकथनों की भाषा तथा उनमें व्यंजित उनकी मनोवृत्ति युग की छाप से अछूती नहीं रह सकती। इसी प्रकार पात्रों के क्रियाकलाप में युग की झलक रहती है। वातावरण के निर्माण में योग देने वाले विभिन्न तत्वों का स्पष्ट वर्गीकरण करना तनिक कठिन है। ये परस्पर कुछ ऐसे उलझे हुए हैं कि एक तत्व दूसरे से मिला होने पर भी पृथक् दिखता है और स्पष्ट रूप से स्वतंत्र दिखने वाले तत्त्व मूल में कहीं न कहीं अभिन्न जान पड़ते हैं।

4.7.2.7 उद्देश्य एवं मूल संवेदना –

'रावराजा' उपन्यास सौद्देश्य उपन्यास है। जैसा कि उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है। यह उपन्यास राजाओं, सामंतों के क्रियाकलाप उनकी ऐय्याशी, ऐश्वर्य, कुटैव और आम जनता पर जुल्म, ज्यादतियों का स्पष्ट रूप से वर्णन करता है जैसा कि उपन्यासकार ने भूमिका में लिखा है। ''कि राजा, राजवाड़ों, सामन्तों, ठाकुरों की ऐय्याशी और एश्वर्य को दर्शाने वाले कई उपन्यास स्वातन्त्र्योंतर दशाब्दियों में देखने को मिले है, किन्तु उनकी कथावस्तु और चरित्रों की परिस्थितिकरण की विधि प्रायः एक पक्षीय ही मिली'' परन्तु ओझा जी ने 'रावराजा' उपन्यास में सभी पक्षों का सम्मलित किया है। वे लिखते है ''हाँ अपने प्रयास के बारे में कुछ कहना मैं प्रासंगिक समझता हूँ। अंग्रेजों के सत्ताकाल के राजा, राजवाड़े, सामन्त, ठाकुर भी उन्हीं सूर्य, चन्द्र, अग्निवंशी क्षत्रियों के उत्तराधिकारी थे जिनकी गौरवगाथा विश्वविख्यात है। काल कारणवश उनका, रहन–सहन, जीवन–पद्धति बढ़ते परन्तु आनुवंशिक गुण सर्वथा विलुप्त नहीं हुए जैसा कि रावराजा भूपाल सिंह के मानसिक उद्वेग से लक्षित होता है।'' लेखन ने उपन्यास में राजस्थानी लोक जीवन, लोक संस्कृति, लोक विश्वास को जगह–जगह चित्रित किया है उपन्यास में नारी विमर्श को भी स्थान मिला है। उपन्यास की सभी नारियाँ केवल रेखा को छोड़कर अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित और ऐसे समाज की देन है जहाँ नारी की अवमानना और उत्पीड़न परम्परागत रूढ़ीबद्ध प्रथाओं से किया जाता है। नारियों का बलात् उत्पीड़न सामान्य रिवाज है। फिर भी उपन्यास की नारियाँ आधुनिक समाज की नारियों की तरह साहसी है और अपने ऊपर होने वाले जुल्म एवं अत्याचार का विरोध करती है तथा नारी स्वाभिमान एवं मर्यादा की रक्षा करती है

लेखक ने काल्पनिक घटनाओं और कथानक के माध्यम से ऐसे कथानक का ताना बुना है जो समकालीन परिप्रेक्ष्य में भी अपना महत्व रखती है।

4.8. निशीथ (काव्य संग्रह) –

रामकुमार ओझा ने कथा–साहित्य, उपन्यास व कहानियों के साथ–साथ कविता पर भी लेखनी चलाई है। उनका एक काव्य संग्रह 'निशीथ' सन् 1992 में राजपूत प्रेस लिमिटेड से तरूण–साहित्य गोष्ठी (नोहर) के सौजन्य से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में लगभग 10 कविताएँ है। निशीथ, परिचय, टीस, दिल की बात, माँते, जिज्ञासा, बापू के प्रति आदि इन कविताओं में लेखक ने अपने जीवन के विभिन्न अनुभवों को शब्द प्रदान किए हैं। इस सम्बन्ध में मुरलीधर सारस्वत ने इस काव्य–संग्रह की भूमिका में लिखा है। प्रस्तुत संग्रह में कवि मानव जीवन की गहराई तक पहुँचने में बहुत हद तक सफल हुआ है। सम्पूर्ण चराचर की वेदना को कवि अपनी पीड़ा समझता है। शुभ चन्द्रिका का प्रवर्तक चन्द्रमा उसे निशीथ की गोद में सिर रखकर सिसकियाँ भरता हुआ दिखाई देता है और वहीं सौन्दर्य का टुकड़ा चाँद उसे नभ की छाती का हरा घाव सा नजर आता है। ठंडी रात उसे रोती सी प्रतीत होती है। इससे तो कवि एक जगह पुकार उठा है–

ओस के मिस रोती है रात और फूलों के आकर पास
कान में कुछ संदेशा छोड़, कदम धीरे से लेती मोड़।।[35]

इस रचना में लेखक ने अपनी वेदना को अभिव्यक्ति देने के साथ शोषित–वर्ग के प्रति सहानुभूति की अभिव्यक्ति की है। बीच–बीच में गद्य काव्य का योग रचना के सौन्दर्य में और अधिक अभिवृद्धि करता है। लेखक कल्पना लोक में विचलन करते हुए जमीनी हकीकत से दूर नहीं गया है। ये ठीक है कि लेखक ने अपने अनुभूत जीवन अनुभवों को अभिव्यक्ति दी है परन्तु, ये समस्त मानव जीवन की जीवन की अभिव्यक्ति है।

लेखक ने स्वयं लिखा है कि इन सभाओं में पाठकों को शायद इतना रस और आनन्द न मिल सके, जितना दुःख दर्द और टीस, बेल्की और बेचैनी। मैं सोचता हूँ 'ये केवल मेरी' ही नहीं युग मानव की बेबसी है।

'निशीथ' काव्य–संग्रह मानवीय जीवन के सुख–दुःख के साथ–साथ पारलौकिक सत्ता के आभास के भी संकेत देता है जो कहीं–न–कहीं उसे छायावादी शैली में लिखी गई कविताओं की परम्परा से उदाहरण के लिए जिज्ञासा कविता की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय है–

कौन सीखाता आँख मिचौनी,
कौन कान मैं कहे कहानी?

किसके मधुर इशारों पर हैं,
नाच रही हैं लही दिवानी।।
छिपा गगन का चाँद अचानक
और छिपी किरनें उजियारी
कौन खींच ले आया अरि यह
मधुपूरित मादक सी प्याली।।[35]

लेखक की दृष्टि मध्यमवर्गीय समाज की मजबूरियों, पीड़ाओं और समस्याओं की ओर भी हैं, मध्यवर्गीय समाज इस प्रकार दिन–रात हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद भी उसे भरपेट भोजन नहीं मिलता है। उसका सारा समय भोजन पानी के जुगाड़ में निकल जाता है, न वह बच्चों को अच्छी शिक्षा दे पाता है और न ही भरपेट भोजन और तन ढकने को वस्त्र उपलब्ध करवा पाता है। इस मध्यवर्गीय समाज के लोगों की समस्याओं का 'मध्य वर्ग' का प्राणी नामक कविता में उन्होंने बड़ी संजीदगी से व्यक्त किया है, देखिए–

मध्यवर्ग का जट–जट प्राणी,
कितना बेबस कितना गरीब?
दफ्तर में घुट–घुट मर जाता,
खाने को घुलकी मिलती
आँसू की प्यास बुझाता
बच्चों को देख भूख से बिल बिल करते
धीरे से घरवालों के पास जा पूछता
खाने को मिलेगा क्या?"[36]

इस तरह 'इस पार' कविता में उन्होंने इस दुनिया में रहने वाले लोगों को कविता एवं परिश्रम के द्वारा इस दुनिया को ही स्वर्ग बनाने का संदेश दिया है, उन्होंने इस धारा का खण्डन किया है कि स्वर्ग कोई ऐसा लोक है जहाँ विशेष भाग्यशाली लोग पहुँचते हैं। अपितु उन्होंने इस बात पर जोर दिया है, कि हम चाहे इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बना सकते हैं। वे लिखते हैं–

मेरा तो केवल प्रयत्न ये ही,
बन जाये स्वर्ग बस यही यही में लेकर
कर में कठिन कुठार
खोंदू नदियां तोडूं पहाड़
वजदा के बक्स स्थल में,

भरा पड़ा अतुल भण्डार।"

निष्कर्षतः कहना यह है, यह इस काव्य–संग्रह की कविताएँ एक व्यापक केनवास पर लिखी गई है। इस छोटे से काव्य–संग्रह में जीवन और जगत के विविध दृश्य लेखक ने संजिदगी के साथ अंकित किए हैं। लेखक ने स्वर्ग–नर्क के साथ–साथ पुनर्जन्म को भी स्वीकार करते हुए लिखा है, पूनर्जन्म भी कहते हैं, होता है मानव का बार–बार।"[37]

4.9 निष्कर्ष –

रामकुमार ओझा की दृष्टि में सामान्यतः अपने युग की उपज हैं क्योंकि साहित्यकार विशेष रूप से अपने युग की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और प्राकृतिक व सामाजिक परिस्थितियों से साक्षात्कृत होकर अपनी अनुभूतियों को रचनात्मक आकार प्रदान करता है और समस्त समाज व्यक्तियों का संगठन है, जो उद्देश्य विशेष का लक्ष्य बनाकर गतिशील रहता है। ऐसे उपन्यास इसी प्रकार की गतिशील जीवन का चित्रण करता है। वह एक ओर समाज में प्रतिष्ठित जीवन–मूल्यों का परिचय देता है, तो दूसरी और युगों की परिस्थितियों एवं मनोवृति से उत्पन्न समस्याओं को पर्याप्त करता है। उसे किसी संतोषजनक और प्रेरक अन्त तक पहुंचाने में सामर्थ्य एवं सफलता निहित है व सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, यथार्थवादी जीवनपरक दर्शन करता है और अपनी धारणा को पूरी ईमानदारी से व्यक्त करता है। वह अपनी धारणा पर कोई कल्पित रंग न चढ़ाकर उसे यथावत प्रस्तुत कर देने में अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझता है। इसी अर्थ में उपन्यास को आज के समाज का दर्पण भी कहा जाता है। हिन्दी में सामाजिक, यौन सम्बन्धी व आँचलिक, सांस्कृतिक उपन्यासों में स्त्री–पुरुष के रति–सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। उसके अतिरिक्त समाज के विभिन्न वर्गों की विषमता, आर्थिक प्रश्न, साम्प्रदायिक मतभेद, राष्ट्रीय आन्दोलन आदि प्रकरणों का उपन्यासों में आनुसंगिक रीति से भी चित्रण हुआ है।

इसी प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासों का वर्णन विश्लेषण कर बतलाया गया है कि ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करने वाले तथा ऐतिहासिक वातावरण के अतिरिक्त केवल ऐतिहासिक घटना, पात्र, कथा और पात्र से युक्त उपन्यास हिन्दी– साहित्य में प्राप्य है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन का अध्ययन चित्रण करते हैं। इनमें अतीत के मानव–समाज की भौतिक उपलब्धियों तथा सांस्कृतिक विकास का निरीक्षण किया है। साथ ही मानव, मानव– प्रगति के अवरोधक तत्त्वों को प्रत्यक्ष कर उन पर पाठकों का ध्यान केन्द्रित करने का प्रयत्न किया गया है।

अतीत के गौरव के प्रति कौतुहल भाव और जीवन की स्वछन्द उड़ान सम्बन्धी एक प्रवृत्ति है। किन्तु अधिकतर उपन्यासकारों ने इतिहास को मनुष्य के लिए कुतूहल जनक दर्शनीय मात्र न मानकर उसे मानव जीवन की अविच्छिन परम्परा के रूप में ग्रहण किया है। उन्होंने इतिहास का प्रयोग मानव स्वरूप के स्पष्टीकरण और विश्लेषण के हेतु किया है। कुछ उपन्यासकारों ने इतिहास में मनोविज्ञान दर्शन अथवा संवेदना तत्त्वों की प्रतिष्ठा कर उसे नया रंग रूप तथा नये अर्थ प्रदान किये हैं। हिन्दी के ऐसे सामाजिक, यौन–सम्बन्धी ऐतिहासिक, धार्मिक–सांस्कृतिक उपन्यासों की रचना सौद्देश्यपूर्ण हुई है। इन सभी उपन्यासों का भविष्य आशामय है। भारतीय इतिहास के प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक काल के अनगिनत मार्मिक, प्रेरक प्रसंग अभी तक उपन्यासकारों द्वारा ग्रहण किये जाने की प्रतीक्षा में है। अनेक प्रतिभावान लेखक इस क्षेत्र में पदार्पण कर, प्रचुर रचना सामग्री प्राप्त कर सशक्त, सधर्म रचनाएँ साहित्य को प्रदान कर सकते हैं और इस सांसारिकता की मोह–माया में लीन रहकर इस संसार के प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवेश से बराबर होने का विशेष रूप से अवसर मिलता है। किन्तु भाषा ज्ञान के अभाव में उसके साक्षात्कृत अनुभव या तो अतीत में खो जाता है या फिर लोक अनुभवों के रूप में मन में संचित रहते हैं, किन्तु ओझा जी ने कहा है कि उपन्यासकार सामान्यतः व्यक्ति से भिन्न प्रकार की प्रवृत्ति का होता है और उसकी मनुष्य की प्रवृत्ति से भिन्नता कुछ और नहीं, बल्कि उसकी अतिशय संवेदनशीलता ही है। यही संवेदनशीलता घनीभूत होकर, उसे उपन्यास रचना के लिए प्रेरित करती है। इनके अतिरिक्त उसकी उपन्यास अतिशय संवेदनशीलता वस्तुओं को और उनके भीतर विद्यमान सत्य से जाँच करके ही उपन्यास की रचना का आकार प्रदान करती है।

सन्दर्भ सूची –

1. 'आधुनिक साहित्य', आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 173
2. 'कुछ विचार', : प्रेमचन्द, पृ. 71
3. 'काव्य शास्त्र', डॉ. भागीरथ मिश्र, पृ. 71
4. 'साहित्यालोचन', श्याम सुन्दर दास, पृ. 180
5. 'काव्य के रूप', डॉ. गुलाबराय, पृ. 15
6. 'हिन्दी साहित्य', हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 413
7. 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास', डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ. 450
8. 'हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ', डॉ. शशि भूषण सिंघल, पृ. 127

9. 'हिन्दी उपन्यास : एक अंर्तयात्रा', डॉ. रामदरश मिश्र
10. —— वही ——
11. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा
12. —— वही ——
13. —— वही ——
14. —— वही ——
15. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 7, 68
16. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 93, 97
17. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 38
18. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 40
19. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 79
20. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 31, 34
21. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 89
22. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 18
23. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 20
24. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 22
25. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 30
26. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 36
27. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 94
28. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 96
29. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 93
30. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 84
31. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 81
32. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 80
33. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 10
34. भूमिका, 'तरूण साहित्य गोष्ठी', रामकुमार ओझा, नोहर
35. भूमिका, 'तरूण साहित्य गोष्ठी', रामकुमार ओझा, नोहर
36. भूमिका, 'तरूण साहित्य गोष्ठी', रामकुमार ओझा, नोहर
37. भूमिका, 'तरूण साहित्य गोष्ठी', रामकुमार ओझा, नोहर

अध्याय पंचम्

रामकुमार ओझा के कथा साहित्य में नारी चित्रण

अध्याय पंचम्

रामकुमार ओझा के कथा साहित्य में नारी चित्रण

समकालीन कहानीकारों में रामकुमार ओझा कथा–साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्होंने कथा–साहित्य को न केवल कथ्य की दृष्टि से अपितु शिल्प की दृष्टि से भी नये सन्दर्भ और अर्थ दिए हैं। उनके तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं– "कौन जात कबीरा", "सिराजी और अन्य कहानियाँ", "आदमी वहशी हो जायेगा"। इन कहानी संग्रहों में लगभग 41 कहानियाँ है, जो विभिन्न विषय सामाजिक समस्याओं एवं विसंगतियों को लेकर लिखी गई है। इनकी कहानियों में लगभग सभी वर्ग समुदाय आयु और समाज के पात्र हैं। ये पात्र कथ्य के अनुरूप कहानीकार के संदेश को पाठकों तक अपनी विभिन्न भूमिकाओं के माध्यम से बखूबी सम्प्रेषित करते हैं। कहानियों में पुरुष और नारी दोनों प्रकार के पात्र हैं। सक्रिय भूमिका का निर्वहन करते हैं। इस अध्याय में हम प्रमुख रूप से कहानी एवं उपन्यासों के पुरुष पात्र भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए हमने तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में पात्र चरित्र–चित्रण के अन्तर्गत यथास्थान प्रस्तुत पात्रों का विवेचन विश्लेषण किया है। प्रस्तुत अध्याय में हम अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु प्रमुख रूप से नारी पात्रों को ही बना रहे हैं क्योंकि ओझा की कथा साहित्य की नारियाँ सशक्त एवं सक्रिय रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुए, नारी सशक्तीकरण का संदेश देती है और परम्परागत रूप से चली आ रही नारी के अबला होने के मिथक को नकारती हुई, नारी जाति की सबलता आधुनिक सन्दर्भों में रेखांकित करती हैं, उनके नारी पात्र परम्पराओं और आदर्शों का निर्वहन करती हुई आधुनिक नारियों की तरह अपनी जीवन दृष्टि और सामाजिक भूमिका को बड़ी मजबूती से प्रस्तुत करती है।

5.1 पात्र –

गाँधी बाबा, सत साक्षी, औंकार, आगा खाँ, फकीरा, कप्तान, शिष्य, सदाव्रत, जपिया, साधु, मुल्ला, अच्चन काका, अलहक, लुहार, मियाँ, काकी, रावण, कुम्भकरण, असगरी, रामदीन, कालू, चमारिन, ठाकुर, सलौनी, काकू, जीतू, बीरबानी, पगली, मास्टर रोशन लाल, मसद्दी लाल, डॉक्टर, मंगोलियन, असबाब, गौरीशंकर, दीपक, नेरिमन, नर्स, मिलखाराम, लाला, मनभरी, सुधीरवा, दादी अम्मा, शोभा बहू, भोली, मंत्री महोदय, मि. धारीवाल, पी.ए. महोदय, प्रोफेसर, भारमली, बढ़ई, कुंवारी प्रांजल, प्रतिभा, यशोभद्र, शक्तिधर, मुनि, दस्युराज, प्रभु, बाबू, गोपीनाथ, कलीगस, बबुआईन, सिन्धी मालिक, अस्तबल, माधुरी, देवर्षि, महारानी,

रामरथ, रामलल्ला, सुभाष, मुंगेरीलाल, खुशवंत सिंह, सलमा, हीरामन, फकीरा, मोमिन, पुजारी आदि।

(क) शिक्षित पात्र –

गाँधी बाबा, सत् साक्षी, औंकार, अच्चन काका, रामदीन, रावण, कुम्भकरण, असगरी, ठाकुर, सलौनी, काकू, जीतू, मास्टर रोशन लाल, मसद्दी लाल, डॉक्टर, मंगोलियन, गौरीशंकर, दीपक, नेरिमन, नर्स, मिलखाराम, लाला, मनभरी, शोभा बहू, मंत्री महोदय, प्रोफेसर, बाबू गोपीनाथ, मि. धारीवाल, माधुरी, देवर्षि, महारानी, रामरथ, रामलल्ला, सुभाष, हीरामन, मुंगेरीलाल, खुशवंत सिंह, पुजारी आदि।

(ख) अशिक्षित पात्र –

आगा खाँ, फकीरा, कप्तान, शिष्य, डाबरमेन, जपिया बाबा, मुल्ला, मियाँ, साधु, लुहार, काकी, कालू, दायी, चमारिन, बीरबानी, पगली, असबाब, भोली, दादी अम्मा, भारमली, कलीगस, बबुआईन, फकीरा, सलमा, मोमिन आदि।

(ग) कथा साहित्य के पात्रों का परिचय एवं भूमिका –

रामकुमार ओझा की कहानियों में स्त्री–पुरुष दोनों प्रकार के पात्र जीवन्त रूप में चित्रित हुए हैं। उनकी कहानियों में शिक्षित एवं अशिक्षित पात्र, शहरी और ग्रामीण पात्र, उच्च वर्गीय–निम्न वर्गीय सभी प्रकार के पात्र हैं। इन पात्रों के द्वारा उन्होंने समकालीन समाज की यथार्थ, विविध स्थितियों का सजीव चित्रण किया है। उनके पात्र समाज के सक्रिय पात्र है। ऐसे पात्र समाज में निश्चित रूप से मिल जाते हैं। यद्यपि कहानी में अनेक पात्र है और सभी पात्र अपनी–अपनी भूमिका का निर्वहन आवश्यक रूप से करते हैं, परन्तु शोध प्रबन्ध की सीमा को देखते हुए हम यहाँ कहानियों में चित्रित कुछ प्रमुख पात्रों का ही परिचय देंगे। इन पात्रों के परिचय से ओझा जी की कहानी और कहानी से जुड़े विविध सन्दर्भों को अच्छी तरह समझा जा सकता है। कुछ प्रमुख कहानी पात्रों का संक्षेप में परिचय इस प्रकार है–

(1) मिलखा राम –

"अकेली रात" कहानी में शोध कथाकार ने मिलखा राम का परिचय करते हुए बतलाया है कि यह अपनी पत्नी मनभरी से बहुत प्रेम करता है और उसे दिल से चाहता है व साथ में डरपोक किस्म के मानव के रूप में भी है। जिसको रेखांकित किया है –"एक बार उसकी पत्नी मनभरी बीमार थी, तो वह उसे अस्पताल ले गया और वहाँ नर्स हड़बड़ाती हुई वार्ड में घुसी तो मिलखाराम डरा। वह अपनी पत्नी से मिल रहा था तो वक्त पूरा हो जाने के बावजूद उसे मरीज के पास देखकर जरूर उसके साथ डाँट–फटकार

करेगी। अतः वह भी उसी हड़बड़ाहट में उठते हुए मनभरी से बोला अच्छा अब मैं चलूँ, कल जरा जल्दी आ जाऊँगा और वह नर्स की नजर बचाकर जाने लगा तो नर्स ने टोका, रूको! वह रूक गया ओर अपनी सफाई में कुछ कहने को हुआ पर नर्स ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने कागजों के पुलन्दें में से एक पर्चा निकाला और उसे मिलखाराम के हाथ में थमाती हुई हकलाती सी बोली, तुम्हारे मरीज की छुट्टी इसे साथ ले जाओ।"[1]

(2) दादी अम्मा –

"शेष सब सुविधा" कहानी में दादी अम्मा एक मुख्य पात्र के रूप में अपनी भूमिका निभाती है और अपने जीवन में शहरी परिवेश को पसंद नहीं करती है उसे ग्रामीण परिवेश एवं रहन–सहन से गहरा लगाव है कहानीकार ने दादी अम्मा के सम्बन्ध में लिखा है– "दादी अम्मा को सोते वक्त डनलप का गद्दा दिया जाता है, जिसे वो रबड़ का गदेला कहती है। हर रात यूँ ही खीझते–खीझते काटती पर सुबह किसी से कुछ न कह पाती। दादी अपने भीतर टटोलती पर सुधीर को कहीं न दोषी पाती। उसने तो पहले दिन ही कह दिया था अम्मा इस शहर में यही एक दुविधा है कि बंद घरों में जाड़ा हाड़–हाड़ में पैठ जाता है शेष सब सुविधा है। मैं तो हारी रे इन सुविधाओं की मारी। दादी अम्मा ने कुनकुनाते हुए करवट लेनी चाही पर जाड़े का यह स्वभाव कि डील हिलाया और दुने जोर से चढ़ा दादी का पंजर खड़–खड़ हिला और दर्द पीठ के बीचों–बीच फैलने लगा।"[2] इस प्रकार दादी अम्मा को गाँव की रहन–सहन व दिनचर्या को अपनाते हुए खुश रहने वाली महिला के रूप में बताया गया है।

(3) शोभा बहू –

"शेष सब सुविधा" में मुख्य पात्रों में से एक शोभा बहू है, जो अपने परिवार से बहुत प्रेम करती है। वह एक–दूसरे को जीने की राह सही तरीके से बताते हुए उनका भरण–पोषण करती है। उदाहरण के लिए यह पंक्तियाँ देखिए – "शोभा बहू ने पलट कर बतलाया अम्मा जी यहाँ मिट्टी का चूल्हा कहाँ, यहाँ तो गैस से जलने वाला है। यह लोहे का जंत्र है। बस यहाँ एक यही दुविधा है, शेष सब सुविधा है और बहू ने बेडरूम में ला सुलाया तो दादी को जैसे बर्फ में धकेल दिया गया हो रबड़ के गदैले में धसी तो उस धंसोन का अंत नहीं आ रहा। रेश्मी दुलाई जयपुरी रजाई मेरे मनुआ यही एक दुविधा है, शेष सब सुविधा है। पर ऐसी सुविधा को ओढूं के बिछाऊँ, बूझे किससे? यहाँ मैं बेटे–बहू के रूतबे को दाग लगाने तो आयी नहीं, कि घर की नौकरानी माई–बाई से बोलूँ बतलाऊँ। इस शहर में छोटों को मुँह लगाना हैसीयत को दाग लगाने बराबर है, जो यह कोई गँवाई

गाँव तो यह नहीं कि हर कोई से बोलो बतलाओ, सुख—दुख बाँटो।"[3] अम्मा अपनी बहू की मान—मर्यादा को बनाये रखने के लिए। किसी से भी कोई बात नहीं करती है।

(4) अच्चन काका —

"अच्चन काका" कहानी में मुख्य पात्र उच्चन काका को ही माना गया है, जिसमें इनका चरित्र निष्कलंक व साफ—सुथरी छवि का है और पूरी कहानी में छोटे—बड़े सभी इनको प्यार भरे स्वर में उच्चन काका नाम से ही पुकारते हैं। उसी को शोध कथाकार ओझा ने उदाहरण स्वरूप बताया है कि "कोई दूसरा कहता है अरे यही तो अच्चन काका है, जो बस्ती भर का सांझा काका था बूढ़ा हो या जवान हर कोई उसे काका कहकर पुकारता था। इसी की भट्टी पर तो हर वक्त कोयला धधकता होता था। चाहे कुरमी, कुम्हार, किसान, जोतदार जो भी होता उसका हल औजार इसी के यहाँ तो बनता। गरीब, धनवान जो भी धन्ना सेठ होता या जमींदार धार या औजार बनवाने आता उसी को काका बेलौस कह देता "झोंक छौंकनी। चला पट्टा।" आगन्तुक धौंकनी झौंकने लगता, पट्टा खींचता, अच्चन ठोक—पाट करता। औजार दुरूस्त हो जाता। धारदार कैंची, ऊस्तरा चमचम करने लगता। जब चोखी धार बन जाती तो अच्चन उसका नम्बर काट कर, कहता चल पीठ के नम्बर दिखला और दूसरे प्रतीक्षारत को पुकारता।"[4] इस प्रकार से अच्चन काका को सम्पूर्ण कहानी में एक हंसी—मजाकिया पात्र के रूप में देखा गया है।

(5) रामप्यारी —

"बंधवा" कहानी में रामप्यारी को एक ऐसे पात्र के रूप में बतलाया गया है जो अपने संगी—साथी लेबर की सप्लाई साहब लोगों के टैन्टों में करती है। इसलिए इसको 'बंधवा' कहानी में एक दलाल महिला के रूप में चित्रित किया गया है जो कि साहब लोगों को महिला उपलब्ध कराने का कार्य करती है। कथाकार ने लिखा है कि — "सारी लेबर उत्कंठित और आतंकित। साहब जी सौगात देते हैं तो नत्थ भी उतार धरते हैं। कानाफूसी, सरगोशी, किस्सागोई का बाजार गर्म। मर्दों से ज्यादा लुगाई लेबर में चर्चे। रामप्यारी चटखारों में खारी बात भी मीठी बनाती है। बड़ी स्यानी सुलझानी लुगाई है रामप्यारी। जमाना देखे है उम्र पाई है। कितने कैम्प साहबों की सोहब्बत में जवानी गलाई मगर अभी बुढ़ाई नहीं है। दुःख यही है कि साहब बाबूओं के टैन्टों में अब उसकी सीधी नियुक्ति नहीं होती। पर उसकी सप्लाई ही तो अभी कैम्प साहबों के टैन्टों की रंगीली रात है। कैम्प में सप्लाई शब्द का बड़ा चलन है, जैसे बाजार में दलाल का चलन है।

रामप्यारी सीमेंट, कंकरीट, बजरी की सप्लाई नहीं देती, पर वह सारे सप्लायरों से बड़ी सप्लाई है। कैम्प की हर छोरी, टूटी, लुगाई जानती है, फिर भी रामप्यारी का रूतबा

भले जो भी हो, हैसियत तो लेबर की ही है।[5] इस प्रकार रामप्यारी अपनी मेहनत को न करने के लिए दूसरी औरतों को प्रेमजाल में फंसाकर अपना फायदा उठाती रहती है।

(6) रतनी –"बंधवा" कहानी में रतनी को एक चतुर व होशियार पात्र के रूप में चित्रित किया गया है, लेकिन उसके पिता श्री अपने घर टनक को साहबों के यहाँ गिरवी रख देता है तो साथ में बंधवा के रूप में घर के बाल–बच्चे भी उनके अधिकार क्षेत्र में आ जाते हैं, कथाकार ओझा ने लिखा है – "बापू ने तो अपनी और से हुशियारी के साथ योजना बनाई थी पर उसके लिए वह नाग फांस बन गई थी। ठेकेदार के आदमी से पेशगी लेकर बनिये की गिरवी से घर छुड़ाया और दम्पत्ति को कैम्प साहब टन की मजदूरी भी देता है। बचाओ, कर्ज चुकाओ और बंधवागिरी से छूट जाओ। उसके बापू का गणित था।

रतनी ने घर छोड़ आते समय द्वार–पूजा की थी। देहरी माता पर अपनी चूंदरी धरी थी। "ऐ देहरी माता! तू जैसे मुझे इस घर में बाबुल की द्वार से बहू बनाकर लायी, वैसे ही बंधवागिरी से छुड़वा कर लौटा लाओ। मैं तेरे ऊपर नारियल बंधारू पर धीरे– धीरे देहरी दूर और दूर होती गई। ठेकेदार का खुमाश्ता तो मियाद, हिसाब, ब्याज कुछ नहीं बतलाया।"[6] इस प्रकार इस कहानी में एक नारी साहस पूर्वक बंधवा मजदूरी से मुक्ति का प्रयास करती है।

(7) लाट बाबा –

कहानी के अन्तर्गत लाट बाबा मुख्य पात्र है और अपने आप में एक अलग ही पहचान व छवि है। लाट बाबा कहानी में इन्हें एक साधु पुरुष के रूप में बतलाया गया है। उसी को ओझा जी ने अपने शब्दों में बताया है कि "बाबा का यह रौद्र रूप पहले पहल देखा था। हजामतअली सींकचों से दो कदम पीछे हट गया। अभी नाई सोच ही रहा था कि रूके या लौट जाए कि बाबा के चेहरे पर मासूमियत झलकने लगी वह गिड़गिड़ाते हुए बोला– "हजामअली मेरा एक काम कर दो। मुझे यहाँ से निकलवा दो। वरना किसी रात में अपने गले में फंदा डालकर झूल जाऊँगा या किसी का खून कर डालूँगा"। देखो सारी छिपकलियाँ और मकड़ियाँ भी मर गई। यहाँ केवल मुर्दे बच रहे हैं, केवल मुर्दे उनसे लड़ते–लड़ते मैं थक चुका हूँ।"

बाबा ने बड़ी हाई अंदाज में वायदा किया "मैं वायदा करता हूँ कि आज की रात आने वाली किसी प्रेतात्मा पर मैं यह भेद नहीं खोलूँगा नाई सींकचों के पास गया। वे खुद तुम्हें यहाँ से निकाल ले जायेंगे।"[7]

(8) गाँधी बाबा –

"सत्यमेव जयते" कहानी में गाँधी बाबा को एक मुख्य पात्र के रूप में चित्रित कर

उन्हें राजनीतिज्ञ, अनशनकारी, अहिंसा सत्याग्रही सहित अनेक रूपों में चित्रित करते हुए ओझा जी ने लिखा है "एक ओर गाँधी बाबा का नारा "भारत छोड़ो और दूसरी ओर सत् साक्षी बाबा का जाप–सच्चे तेरी आस साक्षी बाबा की तनतन्त्री अन्तर्मुखी होकर बोल रही थी तो गाँधी बाबा की आवाज जन–जन की वाणी से मुखर हो रही थी।

भारत भारतीय "करो या मरो" करने के मसले पर सब सहमत थे। पर मरने के सवाल पर मतभेद था। मस्त फकीरा था तो गाँधी बाबा राजनीतिक विराशद था। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद नारों का अर्थ बतलाने वाला अगुआ कोई न था। कर्मठ नौजवानों के अधिकांश ने यही अर्थ निकाला था। "अब जेल जाना व्यर्थ है चक्की चलाना आत्म ताड़ना है। अब लड़ कर कुछ करना है।" व्याख्या में मतभेद था पर लड़ सब रहे थे। जेल जाने वाले जेल गये। शेष सैलाब की तरह फैल गये।"[8] इस प्रकार से सम्पूर्ण कहानी में पात्र का सच्ची सहयता की वार्तालाप करते हुए देखा गया है।

5.2 नारी का विविध रूपों में चित्रण –

ईश्वर की रचनाओं में मानव सृष्टि एक अत्यन्त रहस्यात्मक कल्पना है। उसको समझने का अब तक अनेक प्रकार से प्रयत्न किया गया, किन्तु कोई निश्चित तथ्य न मिला। किसी ने उसकी परिधि के बाहर ही अपने को पूर्ण मान लिया, किसी ने उसका एक कौना छूकर "अहं ब्रह्मास्मि" कहकर अपने को पारंगत समझ लिया और किसी ने 'नेति–नेति' कहकर अपनी जान छुड़ायी। अब तक उसके रहस्य की खोज का यही काम रहा है।

सृष्टि प्रकृति–स्वरूप होने के कारण रहस्यात्मक थी ही, उसको गम्भीरतम बनाने में नर–नारी का मिथुन–स्वरूप और भी सहायक हुआ। नर अपने शौर्य, तेज, ओज और पौरुष के कारण एक भिन्न वर्ग में आ गया और उसी प्रकार नारी भी अपनी दया, त्याग, उदारता, सहनशीलता, सुकुमारता और धैर्य के कारण एक अलग वर्ग में समझी जाने लगी। एक में चुम्बक की तरह दूसरों को आकृष्ट करने की शक्ति आ गयी और दूसरे में धातु की तरह उसकी और आकृष्ट होने की। यह आकर्षण शक्ति सृष्टि में इतनी व्याप्त है कि कोई वस्तु ऐसी नहीं जिस पर अपना प्रभाव न रखती हो। जग–जग का एक–एक कण उसके प्रभाव से अछूता नहीं।

यद्यपि उक्त आकर्षण के लिए नर–नारी दोनों वर्गों की आवश्यकता होती है, किन्तु यदि इन वर्गों में से किसी एक वर्ग का अभाव हो जाये तो दूसरे वर्ग में ही अनुपस्थित वर्ग की भी शक्ति आ जाती है और धीरे–धीरे सजातीय वर्ग ही विजातीय की तरह आपस में आकृष्ट होने लगते हैं, यहाँ तक कि यदि कोई विजातीय वर्ग अनेक न होकर एक ही रह

जाये तब भी उसी अकेले में मंथन के द्वारा दूसरा तत्व हो जाता है और वह अपनी आकर्षण–क्रियाओं में लग जाता है यह सृष्टि का वैधानिक क्रम है और इसी द्वन्द्वात्मकता के नाते हमारा सारा जीवन क्रम भी चल रहा है।

(क) भारतीय नारी –

''भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, अपोला, गार्गी, दमयन्ती हैं, मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर है, यह मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय–साख के लिए अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है, यह मत भूलना कि तुम जन्म से ही माता के लिए बलिस्वरूप रखे गए हो, यह मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट् महायात्रा की छाया मात्र है।'' प्रत्येक भारतवासी भगवान श्रीरामचन्द्र और माता सीताजी के जीवन को आदर्श मानता है। प्रत्येक बालिका सीताजी के भव्य आदर्श की आराधना करती है। भारतवर्ष की प्रत्येक स्त्री की यह आकांक्षा है, कि वह अपने जीवन को भगवती सीता के समान पवित्र, भक्तिपूर्ण और सर्वसह बनाये, सीताजी और भगवान श्रीरामचन्द्र के चरित्रों के अध्ययन से भारतीय आदर्श का पूर्ण ज्ञान हो सकता है।

भारतीय नारी के लिए डॉ. रामविलास शर्मा ने सामाजिक सोच के आधार पर साहित्य में बदलाव कैसे आता है इस पर एक बड़ा दिलचस्प निष्कर्ष दिया है। वह कहते हैं– "सूरदास के यहाँ गोपिकायें कृष्ण के विरह में गीत गाती हैं, जबकि कालिदास के यहाँ यक्ष विरही है। प्राकृतिक स्थिति यह है, कि कालिदास के यक्ष की तरह सूरदास के कृष्ण, भी विरह में पीड़ित हों और गोपिकाओं को पुकारे लेकिन यहाँ हम देखते हैं कि कृष्ण के पीछे पड़ी है। कारण यह है कि जहाँ स्त्री स्वाधीन होगी वहाँ पुरुष उसे पुकारेगा, जहाँ नारी परतन्त्र होगी वहाँ पुरुष के पीछे दौड़ेगी। हमारे समाज में कालिदास के समय से सूरदास तक इतना अंतर हो गया था।[9]

इस प्रकार भारतीय नारी को लेकर अनेक साहित्यकारों ने लिखा है भारत भूषण अग्रवाल ने भी "युग–युग की सौमित्र रखे" लाँघ न पाने वाली नारी की विवशता के प्रति पीड़ा प्रकट की।" स्वाधीन भारत में व्यक्ति और समाज की परस्परता का वैचारिक आधार है।

जीवन के पाश्चात्य और भारतीय आदर्शों में भारी अन्तर है। सीताजी का चरित्र हमारी जाति के लिए सहनशीलता का आदर्श है। पाश्चात्य संस्कृति कहती है कि तुम यन्त्रवत कार्य में लगे रहो और अपनी शक्ति का परिचय कुछ भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करके दिखाओ। भारतीय आदर्श, इसके विपरीत, कहता है कि तुम्हारी महानता दुःखों को सहन

करने की शक्ति में है। पाश्चात्य आदर्श अधिक से अधिक धन–सम्पत्ति के संग्रह में गर्व करता है, भारतीय आदर्श हमें अपनी आवश्यकताओं को न्यून से न्यून कर जीवन को सरलतापूर्वक करना सिखाता है। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम के आदर्शों में दो ध्रुवों का अन्तर है। माता सीता भारतीय आदर्श की प्रतीक है।

आज सीताजी के आदर्श के सदृश्य ऐसी कोई अन्य पौराणिक कथा नहीं है, जिसे समस्त राष्ट्र ने इतना आत्मसात् कर लिया हो, जो उसके जीवन के साथ इतनी एकाकार हो गयी हो और जातीय रक्त में इस प्रकार घुल–मिल गयी हो, भारत में माता सीता का नाम पवित्रता, साधुता और विशुद्ध जीवन का प्रतीक है, यह स्त्री के अखिल गुणों का जीवित जाग्रत आदर्श है।

भारत में कोई गुरु अथवा सन्त जब किसी स्त्री को आशीर्वाद देते हैं, तो कहते हैं, तुम सीता के समान बनो और जब वे बालिका को आशीर्वाद देते हैं, तब भी यह कहते हैं कि सीताजी का अनुसरण करो। क्या स्त्रियाँ, क्या बालिकाएँ सभी भगवती सीता की सन्तान हैं, और वे सब माता सीता के समान धीर, चिरपवित्र, सर्वसह और सतीत्वमय् जीवन बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

भगवती सीताजी को पद–पद पर यातनाएँ और कष्ट प्राप्त होते हैं, परन्तु उनके श्रीमुख से भगवान् रामचन्द्र के प्रति एक भी कठोर शब्द नहीं निकलता। सभी कठिन परिस्थितियों, विपत्तियों और कष्टों का वे कर्त्तव्य–बुद्धि से स्वागत करती है और उसे भली भाँति निभाती हैं। उन्हें भयंकर अन्यायपूर्वक वन में निर्वासित कर दिया जाता है, परन्तु उसके कारण उनके हृदय में कटुता का कलेश भी नहीं। यही सच्चा भारतीय आदर्श है।

भगवान् बुद्ध ने कहा, "जब तुम्हें कोई चोट पहुँचाता है और तुम प्रतिरोध में उसे चोट पहुँचाते हो, तो इस प्रकार प्रथम अपराध का निवारण तो नहीं होता, अपितु वह संसार में केवल दुष्टता की वृद्धि का कारण बन जाता है।"[10] सीताजी भारतीय स्वभाव की यथार्थ प्रतीक थीं, उन्हें पहुँचायी गयी चोट या कष्ट के प्रत्यूत्तर में उन्होंने किसी दूसरे को कष्ट नहीं दिया। इसी प्रकार यदि हम विश्व के भूतकालीन साहित्य को खोजें और भविष्य में होने वाले साहित्य का भी मन्थन करने के लिए तैयार रहें, तो भी हमें सीताजी के समान भव्य आदर्श कहीं प्राप्त नहीं होगा। सीताजी का चरित्र अद्‌भुत रम्य है। सीताजी के चरित्र का उद्‌भव विश्व–इतिहास की वह घटना है, जिसकी पुनरावृत्ति असम्भव है। यह सम्भव है कि विश्व में अनेक राम का जन्म हो, परन्तु दूसरी सीता कल्पनातीत हैं। सीताजी भारतीय नारीत्व की उज्ज्वल प्रतीक हैं। पूर्ण–विकसित नारीत्व के सभी भारतीय आदर्शों का मूल प्रस्रवण वही एकमात्र सीता–चरित्र है। आज सहस्रों वर्ष के उपरान्त भी भगवती सीता

कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से कामरूप तक, क्या पुरुष, क्या स्त्री और क्या बालक–बालिका, सभी की आराध्यदेवी बनी हुई हैं। पवित्रता से भी अधिक पवित्र, धैर्य और सहनशीलता की साक्षात् प्रतिमा रामदयिता सीता सदासर्वदा इस महान् पद पर आसीन रहेंगी।

माता, सीता जिन्होंने विश्व की महान् से महान् विपत्तियों और दारुण दुःखों को तनिक भी आह का उच्चारण किये बिना सहा है। वे सीताजी, जिन्होंने चिरपवित्र सतीधर्म का आदर्श उपस्थित किया वे सीताजी, जो मानव और देवता सभी की श्रद्धा और भक्ति का स्थान हैं, चिरकाल तक भारत की आराध्य–देवी बनी रहेंगी। सीताजी के जीवन से प्रत्येक भारतीय इतना परिचित है कि अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

चाहे हमारा सारा पुराण–साहित्य लुप्त हो जाये, संस्कृत भाषा और वेद भी सदा के लिए नष्ट हो जाये, फिर भी जब तक जंगली से जंगली भाषा बोलने वाले पाँच हिन्दू विद्यमान हैं, तब तक सीताजी का गुणगान होता रहेगा। वास्तव में सीताजी इस राष्ट्र का आत्मा और प्राण हैं। प्रत्येक हिन्दू स्त्री और पुरुष के रक्त में सीताजी का आदर्श विद्यमान है, हम सब उसी माता की सन्तान हैं, यदि हम भारतीय स्त्रियों को आधुनिक रूप देने के उद्देश्य से उन्हें सीता के आदर्श से वंचित करने का प्रयत्न करें तो जैसा कि हम दिन प्रतिदिन देखते हैं, हमारा यह प्रयत्न उसी क्षण विफल सिद्ध होगा। आर्यावर्त की स्त्रियों का विकास ओर उन्नति तभी सम्भव है, जब वे सीताजी के पद–चिह्नों पर चलें नान्यः पन्था'।

हर एक भारतीय कन्या की यह आकांक्षा है कि वह सती सावित्री के समान बने, जिसके प्रेम ने मृत्यु पर भी विजय पा ली, जिसने अपने सर्वविजयी प्रेम द्वारा मृत्यु देवता यम के पास से भी अपने हृदयेश की आत्मा का छुटकारा करवा लिया।

अश्वपति नामक एक राजा थे। उनकी कन्या इतनी सुन्दर और सुशील थी कि उसका नाम ही सावित्री पड़ गया। सावित्री जो कि हिन्दुओं के एक अति पावन स्रोत का नाम है। युवती होने पर सावित्री के पिता ने उसे अपना पति निर्वाचित करने के लिए कहा। प्राचीन भारतीय राजकुमारियाँ अत्यन्त स्वतन्त्र थी और अपना भावी जीवन–साथी स्वयं चुनती थी।

सावित्री ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर ली और वह एक स्वर्ण रचित रथ पर आरुढ़ हो, पिता द्वारा साथ दिये गये अनुचरों और वृद्ध मन्त्रियों सहित, विभिन्न राज–दरबारों में जा–जा कर राजकुमारों से भेंट करती रही, किन्तु उनमें से कोई भी उसका हृदय आकर्षित न कर सका। अन्त में वे लोग तपोवन–स्थित एक पवित्र मुनि–कुटीर में आये। द्युमत्सेन नामक एक नृपति को वृद्धावस्था में शत्रुओं ने पराजित कर, उसका राजपाट

छीन लिया था। बेचारा राजा इस अवस्था में अपनी आँखें भी खो बैठा। निराश और असहाय हो, इस वृद्ध अन्धे राजा ने अपनी रानी और पुत्र को साथ ले जंगल की शरण ली और कठोर व्रतोपासना में अपना जीवन बिताने लगा। उसके पुत्र का नाम सत्यवान था। सावित्री ने सत्यवान को पति के रूप में चुना।

(ख) हिन्दी कथा–साहित्य में नारी –

हिन्दी में नारी–विमर्श की बडी चर्चा है। इस चर्चा में पुरुष और नारी दोनों शामिल हैं। कुछ पत्रिकाओं के सम्पादकों ने तो जैसे युग–युग से बन्दी नारी की मुक्ति का ही आन्दोलन शुरू कर दिया है तथा 'हंस' जैसी पत्रिकाएँ तो नारी के बलात्कार और नारी की यौन–मुक्ति की कहानियों को ही पुरस्कृत तथा प्रकाशित करने का निर्णय कर चुकी हैं। हिन्दी के ऐसे लेखकों तथा सम्पादकों का ऐसा ही नारी–विमर्श है जो नारी को उसके शरीर का स्वामी मानते हुए उसे अपने शरीर को किसी भी प्रकार से भोगने की स्वतंत्रता देता है। 'हंस' के सम्पादक तथा जनवादी चेतना के मसीहा राजेन्द्र यादव यही बात कहते हैं, उसे (स्त्री को) भी सत्ता में हिस्सा चाहिए था और उसके पास हथियार के रूप में सिर्फ उसकी देह थी, चूँकि देह उसकी थी, इसलिए वह उसका इस्तेमाल करने के लिए स्वतन्त्र थी। वह फिल्मों में, राजनीति में, उद्योग में, सौन्दर्य प्रतियोगिताओं और अन्य विविध प्रकार के कार्यक्रमों में देह की कीमत वसूल रही थी। वह पुरुषों के खेल में अपनी मर्जी से शामिल हो गयी थी और उन नियमों के हिसाब से खेल रही थी। यह अमेरिकन समाज का सत्य है, जहाँ तेरह–चौदह वर्ष की किशोरियाँ एक नहीं अनेक से यौन– सम्बन्ध रखने के लिए स्वतन्त्र हैं और उसे वे नारी–मुक्ति का द्वार मानती हैं। हमारे जनवादी चेतना के सम्पादक उसी नारी–विमर्श को साहित्य और समाज में ला रहे हैं। ये लेखक पुरुष सत्तात्मक समाज और सामन्ती व्यवस्था में नारी के शोषण और दासता के इतिहास के वर्णन में जिस नारी–निष्ठा का प्रदर्शन करते हैं, तथा नारी–मुक्ति का ढोल पीटते हैं, ऐसे लेखक नारी को खुद भोग की वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझते।

सामाजिक सरोकारों से लैस बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं के बीच लम्बे समय से यह लगातार चर्चा ओर चिंता का विषय रहा है कि हिन्दी में स्त्री प्रश्न पर मौलिक लेखन आज भी काफी कम मात्रा में मौजूद है। स्त्री विमर्श की सैद्धांतिक अवधारणाओं एवं साहित्य में प्रचलित स्त्री विमर्श की प्रस्थापनाओं की भिन्नता या एकाकीपन के सन्दर्भ में पहला प्रश्न यह उठता है कि हिन्दी साहित्य जगत में स्त्री विमर्श के मायने क्या हैं? साहित्य, जिसे कथा, कहानी, आलोचना, कविता इत्यादि मानवीय संवेदनाओं की वाहक विधा के रूप में देखा जाता है वह दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक तथा अन्य हाशिए के विमर्शों को किस रूप में

चित्रित करती है? साहित्य अपने यर्थाथवादी होने के दावे के बावजूद क्या स्त्री विमर्श की मूल अवधारणाओं को रेखांकित कर उस पर आम जन के बीच किसी किस्म की संवेदना को विकसित कर पाने में सफल हो पाया है ?

स्त्री के प्रश्न हाशिए के नहीं बल्कि जीवन के केंद्रीय प्रश्न हैं। किन्तु हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा जिसे वर्चस्वशाली पुरुष लेखन भी कहा जा सकता है, में स्त्री प्रश्नों अथवा स्त्री मुद्दों की लगातार उपेक्षा की जाती रही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्री अथवा स्त्री प्रश्न सिरे से गायब हैं, बल्कि यह है, कि स्त्री की उपस्थिति या तो यौन वस्तु (Sexual object) के रूप में है या यदि वह संघर्ष भी कर रही हैं तो उसका संघर्ष बहुत हद तक पितृसत्तात्मक मनोसंरचना अख्तियार किए होता है। संघर्ष करने वाली स्त्री की निर्मिति ही पितृसत्तात्मक होती है। साहित्य की पितृसत्तात्मक परम्परा में लगातार स्त्री प्रश्नों का हास होता क्यों दिख रहा है? क्या स्त्री विमर्श को देह केंद्रित विमर्श के समकक्ष रखकर स्त्री–विमर्श चलाने के दायित्वों का निर्वाह किया जा सकता है? यदि साहित्य का कोई सामाजिक दायित्व है तो हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के नाम पर स्त्री देह को बेचने व स्त्री को सेक्सुअल ऑब्जेक्ट अथवा मार्केट के उत्पाद के रूप में तब्दील कर दिए जाने की जो पूँजीवादी पितृसत्तात्मक बाजारवादी रणनीति काम कर रही है। उस मानसिकता से यह मुक्त क्यों नहीं है? उसको पहचान कर उसके सक्रिय प्रतिरोध से ही वास्तविक स्त्री विमर्श संभव है। क्यों सत्तर के दशक में नवसामाजिक आन्दोलन के रूप में समतामूलक समाज निर्माण के स्वप्न को लेकर उभरे स्त्रीवादी आन्दोलनों की चेतना एवं उनके मुद्दों को जाने–अनजाने नजर अंदाज करने का प्रयास किया जा रहा है?

साहित्य में महिला लेखन के रूप में उपलब्ध विभिन्न कहानियों, कविताओं तथा आत्मकथाओं में स्त्री की देहिक पीड़ा से परे जाकर उसकी वर्गीय, जातीय एवं लैंगिक पीड़ा का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिंबित क्यों नहीं हो पा रहा है? स्त्री साहित्य के सवालों के मूल्याँकन के सन्दर्भ में भी हिन्दी आलोचना में गैर–अकादमिक एवं उपेक्षापूर्ण रवैया क्यों मौजूद है। साठ के दशक में पुरुष वर्चस्ववाद की सामाजिक सत्ता और संस्कृति के विरुद्ध उठ खड़े हुए स्त्रियों के प्रबल आन्दोलन को नारीवादी आन्दोलन का नाम दिया गया। वस्तुतः नारीवादी आन्दोलन एक राजनीतिक आन्दोलन है, जो स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं दैहिक स्वतंत्रता का पक्षधर है। स्त्री मुक्ति अकेले स्त्री की मुक्ति का प्रश्न नहीं है बल्कि यह सम्पूर्ण मानवता की मुक्ति की अनिवार्य शर्त है। दरअसल यह अस्मिता की लड़ाई है। इतिहास ने यह साबित भी किया है कि आधी आबादी की शिरकत के बगैर क्रांतियाँ सफल नहीं हो सकतीं।

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर में अपनी जातीय अस्मिता की पहचान और जनता के अधिकारों के माँग के साथ–साथ स्त्री मुक्ति का स्वप्न भी देखा जा रहा था। नव स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र ने महिला आन्दोलनों को यह विश्वास भी दिलाया था कि बड़े उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात स्त्री–पुरुष संबंध, लैंगिक श्रम विभाजन, आर्थिक हिंसा जैसे मुद्दे स्वतः ही हल हो जाएँगे परन्तु स्वतंत्रता के इतने वर्षो के बाद भी स्त्री–मूलक प्रश्न ज्यों के त्यों बने हुए हैं। औरत पर आर्थिक,सामाजिक यौन उत्पीड़न अपेक्षतया अधिक गहरे, व्यापक, निरंकुश और संगठित रूप से कायम है। स्त्री आन्दोलनों को इन समस्त चुनौतियों से लड़कर ही अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना होगा। निश्चित रूप से इसका स्वरूप अन्य मुक्तिकामी आन्दोलनों से किसी रूप में भिन्न नहीं है जो वर्गीय, जातीय, नस्लीय आधार पर समाज में हो रही हिंसा एवं असमानता के प्रति संघर्षरत है तथा एक समतामूलक समाज निर्माण हेतु प्रतिबद्ध हैं। स्त्रीवादी आन्दोलनों की शैक्षणिक रणनीति के रूप में स्त्री अध्ययन एक अकादमिक अभिप्रयास है जो मानवता एवं जेंडर संवेदनशील समाज में विश्वास करता है। यह समाज के प्रत्येक तबके के अनुभवों को केंद्र में रखकर ज्ञान के प्रति नया दृष्टिकोण विकसित करने के लिए प्रतिबद्ध है जो सत्तामूलक ज्ञान की रूढ़ सीमाओं को तोड़कर ज्ञान को उसके वृहद् रूप में प्रस्तुत करता है। विशेष तौर पर स्त्री विषयक मुद्दों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पक्षो पर अपनी राय रखते हुए जेंडर समानता आधारित समाज के निर्माण की और अग्रसर है। अंतरविषयक अध्ययन होने के कारण यह अन्य विषयों के साथ ज्ञानात्मक संबंध भी कायम करता है। स्त्री प्रश्नों के प्रति अकादमिक जगत में स्पेस बनाने के लिए भी स्त्रीवाद को पढ़ाया जाना अति आवश्यक हो गया है। जरूरी नहीं कि उच्च्च शिक्षा संस्थानों में स्त्रीवाद पढ़ने के बाद लोग स्त्रीवादी बनें ही परन्तु यह संभव हो सकेगा कि ज्ञान के नए क्षितिज के रूप में वह उसके बारे में समझ रखते हों।

आमतौर पर स्त्री विमर्श के अकादमिक होने के उपरान्त यह आरोप प्रत्यारोप लगते रहे हैं कि इसके कारण आन्दोलनों का संस्थानीकरण हुआ है एवं लोग स्त्री मुद्दों को टेक्स्ट के रूप में पढ़ने लगे हैं। बहुत हद तक यह सही भी है परन्तु धीरे धीरे ही सही स्त्री अध्ययन परंपरागत ज्ञान की दुनिया में अपने लिए स्थान बना पाने में सफल हो रही है। इसे शैक्षिक संस्थाओं के उदारवादी चेहरे के रूप में भी देखा जा सकता है। या यूँ कहें कि यह ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक ज्ञान व्यवस्था की मजबूरी भी है कि वह इस किस्म के विमर्शों को महत्व दे।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर में अपनी जातीय अस्मिता की पहचान और जनता के अधिकारों के माँग के साथ–साथ जो स्त्री मुक्ति चेतना निर्मित हुई थी और साठ तथा सत्तर के दशक में उसके जो विद्रोही तेवर उपस्थित हुए थे आज के समय के उन तेवरों की धार कम हो गई है। सामाजिक आन्दोलन का संवेग मद्धिम पड़ते जाने के साथ ही उसे पार्शव में ढकेल दिया गया। स्त्री आन्दोलनों में स्त्री जीवन से जुड़े प्रत्येक पक्ष में स्वतंत्रता एवं समानता की माँग कि थी, परन्तु हिन्दी साहित्य ने इसके विस्तृत फलक को सीमित करते हुए इसे दैहिक स्वतंत्रता के खाँचे में परिभाषित करने का कार्य किया है। वह स्त्री की देह मुक्ति में ही उसकी स्वतंत्रता देखने का आदी हो गया है। जो लेखक, लेखिकाएँ स्त्री विमर्श पर लेखन कर रहे हैं। वह एक किस्म का फैशन प्रतीत होता है। साहित्यिक पत्रिकाओं में जो सामग्री परोसी जा रही है उसमें स्त्री के प्रति गंभीर समझ का अभाव है। लेखक, लेखिकाएँ जाने अनजाने बाजार के माँग एवं पूर्ति के मायावी तर्क जाल में कैद होकर रह गए हैं। उनके साहित्य में क्रांतिकारी विमर्शों, संघर्षो एवं विचारधाराओं का अभाव स्पष्ट रूप से दिखता है। यह समकालीन समाज की विषमताओं की गहरे रूप में पड़ताल नहीं करता। उसके केंद्र में भी स्त्री है और परिधि पर भी।

प्रगतिशीलता के आवरण में भी स्त्री मुक्ति का मुखर स्वर अभिजन समाज की स्त्री का ही है। स्त्री प्रश्न के प्रति संकीर्ण अनुभववादी और एकांगी नजरिए के कारण भी नारी मुक्ति आन्दोलन के बारे में एक संतुलित और व्यापक दृष्टि का अभाव एक गंभीर समस्या के रूप में लगातार मौजूद रहा है। इसका बहुत बड़ा कारण उनसें स्त्रीवादी सिद्धांतों की सही समझ का नहीं होना है। मेरा उद्देश्य इन सभी प्रयासों को खारिज करना नहीं, अपितु स्त्री अधीनता से जुड़े अन्य पक्षों के प्रति भी लेखन को विस्तार देने का सुझाव मात्र है। स्त्री अस्मिता का सवाल व्यक्तिगत अस्मिता का नहीं, बल्कि सामाजिक अस्मिता का सवाल है। यह व्यक्तिगत अस्मिता के सामाजिक अस्मिता में रूपान्तरण की प्रक्रिया है। जिसके समक्ष सबसे बड़ी चुनौती पितृसत्तात्मक संबंध, मूल्य और संस्थाएँ है, परन्तु उससे भी विकट चुनौती है स्त्री की स्वयं की इच्छा। जाहिर है यदि स्त्री सामाजिक निर्मित है, तो उसकी इच्छाएँ भी इसी निर्मिति का प्रतिफलन होंगी। इसी कड़ी में उपन्यास विधा या कथा लेखन को स्त्री विधा के रूप में देखा जा सकता है, जिसे महिलाओं ने अत्यंत सहजता पूर्वक अपनाया है। प्रश्न यह है कि यह विधा ही क्यों? स्त्रियों द्वारा वैसी विधाओं का चुनाव करना जिसका पहले से बड़ा बाजार बन चुका हो स्त्रीवादी एजेंडे के प्रचार का साधन मात्र है। हालाँकि इस तथ्य से कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि स्त्री का मात्र लिखना ही

एक राजनीतिक गतिविधि है। स्त्रियों के हाथ में कलम का आना स्त्री शिक्षा के लिए लम्बे समय तक चले संघर्ष का परिणाम है।

लेखिकाएँ समाज में स्त्री के लिए स्वीकृत भूमिकाओं पर लिखकर अपने लिए स्पेस निर्मित करने की कोशिश करती है, पर पुरुष जब उन्हीं विषयों पर लिखता है तो उससे स्त्री के लिए स्पेस निर्मित नहीं होता, बल्कि स्पेस छिनता है। स्त्री का लिखना अनुभवजनित होता है। स्त्री लेखन आत्मीय भाव से भरा होता है। अतः सुधा सिंह के अनुसार यदि स्त्री की कोई शैली हो सकती है, तो वह आत्मीय शैली है। परन्तु स्त्री लेखिकाओं को यह सचेत प्रयास करने की आवश्यकता है कि आत्मकथाओं के वर्णनात्मक पहलुओं, जिस पर हमेशा मध्यमवर्गीय सवर्ण स्त्री के जीवन के झूठे छल प्रपंचों से भरे होने का आरोप लगाया जाता रहा है, से परे जाकर स्त्री प्रश्नों पर ठोस सैद्धांतिक बहसों को केंद्र में लाकर साहित्य में स्त्री–विमर्श की परम्परा की शुरुआत की जाए। अब तक यह प्रयास हमें कुछ महिला लेखिकाओं जैसे मैत्रेयी पुष्पा, सुधा अरोड़ा चित्रा मुदगल, अनामिका, कात्यायनी, प्रभा खेतान, सुधा सिंह की रचनाओं में ही देखने को मिलते है। विशेष तौर पर कात्यायनी हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की एक प्रबल पैरोकार रहीं हैं। जिनकी लड़ाई सिर्फ स्त्री शोषण से नहीं, बल्कि पूँजीवाद सांप्रदायिकता और वर्ग भेद से है। कात्यायनी ने स्त्री के अस्तित्वपरक ओर नियति संबंधी प्रश्नों को जिस तरह से आर्थिक, सामाजिक शक्लों में पहचान कर उसे हिन्दी के पाठक वर्ग तक पहुँचाया वह अभूतपूर्व प्रयास है। इनके साथ ही, मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं में भी स्त्री मुक्ति के प्रखर दावे साफ तौर पर दिखते है। चाहे चाक हो, इदन्नमम हो या अल्मा कबूरी स्त्री सामाजिक बन्धनों के बीच लगातार सजग दिखती है। युवा कथाकारों में भी वंदना राग का लेखन अपनी पूरी संरचना में स्त्री विमर्श को बहुत परिपक्व रूप में समेटता है। उनकी कहानियों में स्त्री प्रश्न, बदलते समय में स्त्री की भूमिकाएँ उनकी आर्थिक व राजनीतिक स्वतंत्रता इत्यादि तमाम बातें एक अकादमिक समझ के साथ चित्रित होती है। हिंदी साहित्य में इस किस्म के लेखन की सख्त आवश्यकता है जो पितृसत्तात्मक जनमानस में उद्वेलन पैदा कर सके। वह लेखन जो घरों के अन्दर स्त्रियों पर होने वाली मानसिक एवं शारिरिक हिंसा को स्त्री विमर्श में बतौर हथियार इस्तेमाल करने की बजाय उसकी सूक्ष्म जड़ों को तलाशने का प्रयास करे।

लेखन करते समय पुरुष लेखक की अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ वही नहीं हो सकती, जो स्त्री लेखक की होंगी। वह संभवतः नारी मुक्ति आन्दोलन का राजनीतिक सूत्रीकरण तो कर सकता है परन्तु रचनात्मक धरातल पर उसकी कृति बोध या धारणाएँ एक हद तक वह नहीं हो सकती, जो स्त्री लेखिका की होंगी। साहित्य में यह विडम्बनापूर्ण स्थिति है कि

कुछ लेखिकाएँ आज भी अपने लेखन को पारिवारिक दायरे से बाहर लाने एवं विवाहेत्तर संबंधों में स्त्री मुक्ति का रास्ता तलाशने या स्त्री पुरुष के प्रेम संबंधो का छिद्रान्वेषण करने तक सीमित हो कर रह गई है। स्त्री विमर्श के नाम पर कई पुरुष लेखक भी अश्लील प्रेम संबंधों अथवा विवाह संस्था में पत्नी के कपटपूर्ण विवाहेतर संबंधों को ही स्त्री मुक्ति के रूप में देखने के अभ्यस्त है। कुछ प्रतिष्ठित लेखक/लेखिकाओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया, कि लेखक का कोई सामाजिक दायित्व नहीं होता ओर न ही वे नारीवादी कहलाना पसन्द करते हैं। तब भी जबकि उन की लगभग सभी रचनाएँ स्त्री मुद्दों के इर्द–गिर्द घूमती हैं।

उनके अनुसार, स्त्री मुद्दों पर लिखते हुए आपके लेखों या कहानियों को साहित्य में आसानी से जगह मिल जाती है और आपको अपनी पहचान बनाने के लिए बहुत मशक्कत करने की जरूरत नहीं पड़ती। दरअसल इस किस्म के लेखक को स्वयं को किसी खाँचे में ढाला जाना पसन्द नही होता इससे उनकी रचनाओं की आत्मा के मरने का खतरा उत्पन्न होता है। जबरन किसी रचना को किसी खास विचारधारा में ढालने का प्रयास अनुचित है। सवाल यह है कि क्या कोई रचना सिर्फ कल्पना की उड़ान होती है या यर्थाथ के साथ उसका रिश्ता है। यदि हाँ तो उसके स्वीकार से इतना परहेज क्यों? वस्तुतः यह स्त्री मुद्दों को देखने का मर्दवादी नजरीया है जिसके इर्द–गिर्द स्त्री विमर्श बिखर गया है। प्रश्न यह नहीं है कि साहित्य में स्त्री का यौन उत्पीड़न या देह से मुक्ति के उसके प्रयास को प्रस्तुत किया जाए या न किया जाए, अवश्य और पुरजोर ढंग से किया जाना चाहिए। यह असम्भव है कि स्त्री जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू पर चर्चा न कि जाए। पर सवाल यह है कि जनता के साहित्य में इसे किस रूप में उकेरा जाए। उन्नीसवीं सदी के आलोचनात्मक साहित्य में भी वेश्याओं, रखैलों, बदचलन एवं मजलूम औरतों का वर्णन मिलता है परन्तु वह उनकी स्थितियाँ पाठक को यौनिक रसास्वादन नहीं कराती बल्कि उनका चित्रण मन में गहरे विक्षोभ एवं वितृष्णा को जन्म देता है।

चूँकि ज्ञान परम्परा तथा इतिहास के चालक तत्व के रूप में सदैव पुरुष आगे रहा इसलिए जाहिर सी बात हैं कि सभी मानक भी उसी ने तय किए जिसे सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया। आधुनिक महिला लेखिकाओं ने जब लेखन के क्षेत्र में कदम रखा तो उन्होंने पहले से तय मानकों के अनुसार ही अपने कथा साहित्य में लेखन किया इसलिए अनायास ही स्त्री लेखन उस पितृसत्तात्मक संरचना के मकड़जाल में उलझ कर रह गया। कैथरकला की औरतें, छत्तीसगढ़ एवं बस्तर के कोलियारी या ईंट भट्ठा पर काम करने वाली लड़कियाँ, भूमि संघर्षों में मर्दों से भी अधिक हिम्मत का परिचय देने वाली औरतें विमर्श की दुनिया से अनुपस्थित होती चली गई। कथा साहित्य का वह शिल्प और सौंदर्यशास्त्र जिसे

पुरुषवादी लेखक वर्ग ने यर्थाथवाद के नाम पर गढ़ा और जिसके इर्द–गिर्द स्त्री विमर्श पर बहस हो रही थी और जिसे स्त्री लेखन ने भी अपनाया था। उस यर्थाथवाद का मिथक अब टूट रहा हैं। दरअसल वह अपनी मूल प्रकृति में ही ब्राह्मणवादी और पितृसत्तात्मक है। जिसके बरक्स स्त्री एवं दलित विमर्श को अपना अलग सौंदर्यशास्त्र और शिल्प गढ़ने की आवश्यकता है। हिंदी साहित्य की स्त्री और उसका सरोकार अभी भी अकादमिक जगत में प्रवेश नहीं कर पाया है और न ही अकादमिक जगत साहित्य में चल रहे स्त्री विमर्श से कोई जुड़ाव महसूस कर पा रहा है। वस्तुतः आवश्यकता अकादमिक स्त्री विमर्श तथा साहित्य के स्त्री विमर्श के द्वन्द को समझने की हैं।

(ग) रामकुमार ओझा के कथा–साहित्य में नारी –

ओझा जी के कथा साहित्य में नारी का विभिन्न रूपों में यथार्थ चित्रण मिलता है भारतीय समाज में नारी के विविध रूप मिलते है व निरन्तर सोच परिवर्तित होती रही है। समय के परिवर्तन के साथ सभी कुछ बदलता है। परतन्त्रता युग के आरम्भ के साथ–साथ नारी परतन्त्रता युग भी आरम्भ हुआ। स्त्रियों का प्रेम और बलिदान ही उनके लिए विष बन गया। समाज के ठेकेदारों ने नारी का बराबरी का दर्जा समाप्त कर दिया। अब उसका पद गौण बन गया। उसे पर्दे में कैद रखा जाने लगा। वह केवल पुरुष के भोग–विलास का अंग बनकर रह गई। उससे शिक्षा का अधिकार भी छीन लिया गया। अब नारी का कार्य क्षेत्र घर तक ही सीमित रह गया। इस परिवर्तन के पीछे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ थी। वस्तुतः उस समय की विदेशी सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति के कारण हिन्दुओं की बहु–बेटियों की इज्जत सुरक्षित नहीं थी। अतः अनमेल विवाह, बाल–विवाह तथा सती प्रथा जैसी बुराइयाँ पनपने लगी।

परिस्थितियाँ सदैव समान नहीं रहती। धीरे–धीरे नारी के जीवन में परिवर्तन आने लगा। विदेशी आक्रमणों के कारण नारी का क्षेत्र सीमित होने लगा। पुरुष ने नारी की रक्षा के कर्त्तव्य को समझते हुए उसे बाहरी क्षेत्र से दूर हटाकर घर की चहारदीवारी में कैद कर दिया। उधर कुछ रूढ़िवादी पंडितों ने शूद्रों की भाँति ही नारी जाति को भी शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया। स्वयं नारी ने भी अपने रूप और यौवन के नशें में झूमकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी, जबकि उसने बनाव श्रृंगार करके केवल अपने पति को रिझाना ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। इस प्रकार कई कारणों से भारत की नारी की सम्पूर्ण स्थिति ही बदल गई। फलस्वरूप भारत की वही आदर्श नारी केवल श्रृंगार की प्रतिमा, मनोरंजन की गुड़िया, बच्चे उत्पन्न करने की सजीव मशीन तथा चौका बर्तन करने वाली एक दासी बन कर रह गई। उसे अनेक सामाजिक कुरीतियों का शिकार होना पड़ा,

जिससे आधुनिक युग तक पहुँचते–पहुँचते भारतीय समाज मे नारी एक उपेक्षा और घृणा का विषय बनकर रह गई।

अंग्रेजी शासन के साथ–साथ भारत में अनेक समाज–सुधारक आन्दोलन आरम्भ हुए। राजा राममोहनराय तथा स्वामी दयानन्द जैसे महापुरुषों ने नारी जागरण की ओर विशेष ध्यान दिया। भारत को स्वतंत्रता संग्राम ही मानों नारी की मुक्ति का सन्देश लेकर आया। असंख्य नारियाँ सत्याग्रह का ध्वज उठाए स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी भाग लेने लगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नारी जाति को उठाने का भरसक प्रयास हुआ। संविधान द्वारा उसे पुरुष के समान दर्जा दिया गया है।

ओझा जी ने नारी की विभिन्न स्थितियों का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया है। उनके कथा साहित्य में अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, पुनर्विवाह की बुराइयों पर प्रकाश डाला गया है। समाज में व्याप्त रिश्वत खोरी आदि का भी चित्रण किया गया है। कहने का तात्पर्य है कि ओझा जी ने शहरी एवं ग्रामीण जीवन को नजदीक से देखा–परखा था। ओझा जी जैसा बेबाक चित्रण करने वाला लेखक शायद ही कोई हुआ हो। वे समाज के लिए समर्पित व्यक्तित्व वाले लेखक थे। उन्हें कल्पना के किले बनाने अथवा हवाई किले बनाने में विश्वास न था। यही कारण है कि उनके उपन्यास एवं कहानियां हमारे मध्यम निम्न वर्गीय समाज का सही चित्र प्रस्तुत करती हैं।

लेखक ने भारतीय महिलाओं की अच्छाइयों पर प्रकाश डाला है कि भारतीय नारी विवाह को पवित्र बन्धन मानती है। पति को सर्वस्व मानती है। भारतीय नारी परिवार का आधार होती है जो पूरे परिवार को प्रेम सूत्र में बाँधे रखती है। संयुक्त परिवार की सुख शांति महिलाओं की सूझ–बूझ, उदारता, सहनशीलता, निष्पक्षता पर निर्भर करती है। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने जनक के मुख से पुत्री पवित्र किये कुल दोऊ कहलवाकर संतोष व्यक्त कराया है। संस्कारशील नारी के व्यवहार से ससुराल पक्ष को सुख शांति मिलती है, उसके माँ–बाप का नाम रोशन होता है। प्रसाद जी ने कामायनी में नारी के गुणों की प्रशंसा में लिखा है कि –

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में।
पीयूष स्रोत सी बाह करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।"[11]

कुछ ऐसा ही भाव ओझा जी ने व्यक्त किया है। भारतीय नारी का जीवन त्याग, कष्ट–सहिष्णुता का जीवन रहा, पर पुरुष ने कभी–कभी उस पर अत्यधिक अत्याचार किये हैं।

"ओझा जी की अनेक कहानियाँ नारी जीवन के अनेक पहलुओं को प्रकट करती है। नारी के बन्धनों, कुण्ठाओं, पीड़ाओं ओर उसकी दुरवस्था तथा विवशता को ने अनेक कहानियों में अभिव्यक्त किया है। वे समाज में नारी जागरण और नारी चेतना की आवश्यकता को अनुभव करते हैं। भारतीय समाज में नारी के विकास के साथ निश्चित रूप से प्रगतिशीलता का जन्म होगा। जब तक नारी जाग्रत अवस्था में रहेगी, तब तक भारतीय समाज का आगे बढ़ता रहेगा।''

नारी को परम्परागत रूढ़ियों कुरीतियों के बन्धन से मुक्त करना आवश्यक है। ओझा जी ने नारी जीवन के विभिन्न पक्षों का विस्तार से चित्रण करते हुए अपनी कहानियों में उसके अनेक रूपों का अंकन किया है। ओझा जी भारतीय नारी को प्राचीन भारतीय आदर्शों में ही नया रूप देना चाहते हैं। इस विचार का फल यह है कि पाश्चात्य नारी आदर्श तथा जीवन मूल्य ओझा जी वांछनीय नहीं समझते। उनका कथन है कि सेवा और त्याग का भारतीय आदर्श ही नारी को उसका सम्मानित स्थान और अधिकार दिला सकता है। नारी जीवन की दृष्टि से उन्होंने विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम विवाह आदि अनेक समस्याओं के संदर्भ में नारी को देखा है। नारी के विविध रूप उसकी विविध भावनाओं का समाहार ओझा जी ने अपनी रचनाओं में जिस प्रकार से किया है, वह उन्हें एक युग पुरुष के रूप में चित्रित करती है। उनकी कहानियों में नारी के त्याग की भावना उसका पति–प्रेम, उसका आत्म सम्मान, उसकी ममता, उसकी सेवाभावना आदि भावनाएँ सरल है, जिनका अनुभव पाठक को उनकी कहानियाँ पढ़ते ही हो जाता है। ओझा जी की कहानियों में नारी की विविध भावनाएं गहराई से ओत–प्रोत हैं। वस्तुतः ओझा जी की कहानियों को जितना मथा जाए उतना ही कम है।

वस्तुतः नारी की विविध भावनाओं को चित्रित करते हुए ओझा जी ने उसे आदर्श रूप में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है। समाज में उपजी वर्तमान स्थिति का चित्रण करते हुए उसकी विविध कठिनाइयों को दूर करने में समाज को आगे आने के लिए उत्प्रेरित किया है। उनकी कहानियाँ नारी जीवन का रेखाचित्र कही जा सकती हैं।

रामकुमार ओझा जी ने नारी के विविध रूपों को उसकी भावनाओं को अपने साहित्य में जो स्थान दिया है वह अविस्मरणीय है। निम्नांकित विभिन्न बिन्दुओं में रामकुमार ओझा द्वारा चित्रित नारी की विभिन्न भावनाओं को दृष्टिगत किया जा सकता है।

(घ) पत्नी के रूप में नारी –

भारतीय समाज में नारी का पत्नी के रूप में चित्रण प्रायः अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ओर प्रमुख स्थान पत्नी के रूप में नारी को गृहलक्ष्मी घर की मालकिन के रूप में जाना जाता

है। भारतीय समाज में घर ईंट पत्थर के बने हुए ढाँचे को न कहकर घर की संज्ञा तभी दी गई है, जब घर में गृहिणी हो गृहिणी के कंधों पर घर की व्यवस्था का सम्पूर्ण दारोमदार होता है। बिना पत्नी के या गृहिणी घर, घर न होकर कुछ और लगता है।

इसलिए भारतीय साहित्य में नारी का पत्नी के रूप में पर्याय चित्रण मिलता है। वो चाहे संस्कृत साहित्य में नारी या बंगाली, किसी अन्य भारतीय भाषा जहाँ तक भारतीय कथा—साहित्य का प्रमुख है तो आधुनिक युग में भारतेन्दु से लेकर अधानुतन काल के प्रायः कथाकारों ने अपनी कहानी और उपन्यासों में नारी का जिन विविध रूपों में चित्रण किया है उनमें पत्नी का रूप सर्वाधिक उल्लेखनीय है। हमारे शोध कथाकार श्री रामकुमार जी ओझा का कथा—साहित्य में भी नारी के विविध रूपों का उल्लेख मिलता है। जैसा कि उल्लेख कर आये हैं। उनके कथा साहित्य में नारी पत्नी के रूप में अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। यहाँ विस्तारभय से कुछ उदाहरण देकर ही अपनी बात की पुष्टि करूँगा।

जिस प्रकार किसी भवन का आधार नींव होती है, उसी प्रकार स्त्री के जीवन का आधार भी उसके पति का प्रेम ही है। अगर पति का प्रेम स्त्री के साथ है, तो वह परिवार, समाज सभी से लड़ सकती है। पति का प्रेम ही स्त्री को साहस, शक्ति, बल सब प्रदान करता हैं। इसके विपरीत अगर पति के प्रेम का साया, उसके सिर से उठ जाता है तो वह निर्बल, कमजोर एवं असक्षम हो जाती है। यहाँ तक कि उसकी जीने की इच्छा शक्ति ही मर जाती है। इसी प्रकार का वर्णन हमें ओझा जी की कहानियों में देखने को मिलता है। ओझा जी ने अपने कहानी संग्रह 'कौन जात कबीरा', 'आदमी वहशी हो जाएगा', और 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' से पत्नी रूप का एक—आध उदाहरण देकर अपनी बात पुष्ट करेंगे। 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' कहानी संग्रह में संकलित 'सयाना' कहानी से एक उदाहरण देखिए – 'अच्छा रे अब तो चलूं मोतिया। नैवगण बेचारी देहरी में बैठ बाट जोहती होगी। तू तो जाने रे, सतवन्ती लुगाई। मुझ तीजवर के पीछे ब्याही आई। हाण की न जोड़ की। पर बापड़ी पारबती की औतार। सेवा चाकरी ऐसी बजाये कि शिव बाबा ई देखे तो इसको करने लगे। जाऊं रे, सती भूखी बैठी बाट जोहती होगी।"[12] इस प्रकार से ओझा जी ने अपनी कहानियों में नारियों को अलग—अलग तरीके से चित्रित किया है।

(ड़) नारी के वियोग का चित्रण –

स्त्री—वियोग का वर्णन हमारे लिए कोई नयी बात नहीं है, बल्कि इसकी परिभाषा ओर वर्णन तो हम आदिकाल से देखते आ रहे हैं। अनेक कवियों ने वियोग का वर्णन कितने सुन्दर ढंग से किया है, जैसे सूरदास जी ने 'सूरसागर' के 'भ्रमरगीत' प्रसंग में गोपियों के विरह का जो वर्णन किया है वह तो अत्यन्त मार्मिक जान पड़ता है। सूरदास जी

ने गोपियों की विरह–वेदना का वर्णन इतनी तीव्र भाव से व्यक्त किया है कि उन पर किसी के कहने–सुनने का असर नहीं होता। जब उनको ज्ञानोपदेश देते हैं तो वे उद्धव के ज्ञान को छोड़कर प्रेम को मान लेते हैं। इसके अतिरिक्त जयशंकर प्रसाद जी ने भी 'कामायनी' में वियोग का वर्णन किया है।

यहाँ तक कि कवि का तो जन्म ही वियोग से माना जाता है। ये पंक्तियाँ देखिए –

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
निकलकर आँखों से चुपचाप
बही होगा कविता अनजान।।'

जब कवि का जन्म ही वियोग से हुआ माना जाता है तो वियोग–वर्णन तो उनके लिए सम्भव–सी बात है। अर्थात जब कवि का जन्म वियोग से हुआ तो वह वियोग–वर्णन तो अवश्य ही करेगा। लेकिन हम देखते हैं कि इस वियोग वर्णन से लेखक मुंशी प्रेमचन्द जी भी अछूते नहीं रह सके। प्रेमचन्द जी की कहानियों के पढ़ने से पता चलता है कि उन्होंने तो नारी–वियोग का खुलकर वर्णन किया है। ओझा जी ने अपनी 'मुकामों', 'सयाना' और 'रब्बो' आदि कहानियों में नारी के विरहिणी रूप का मार्मिक वर्णन किया है। 'मुकामों' कहानी की मुकामों का पति बाहर परदेस चला जाता है तो वह पति की याद में अकेली बैठी विरह से पीड़ित हो धीमें स्वर में गाती है–

'छप्पर छेका छिद रह्या बड़क्या बांदा बांस।
बेग पधारो सांवरा, म्हाने थांरी आश।।'
सांवरे के आसरे बैठी अकेली लुगाई।[13]

उपर्युक्त पक्तियों में अपने प्रियतम की याद में एक पत्नी गीत के माध्यम से पति परमेश्वर को याद कर रही है।

(च) नारी माँ के रूप में –

हमारा भारतीय समाज जहाँ पर अगर किसी भी जाति सम्प्रदाय के बच्चे को जन्म दिया जाता है, तो वो औरत एक माँ का दर्जा दिया जाता है। उसी नारी का वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि हमारे समाज में अगर औरत माँ के रूप में अपना त्याग–बलिदान जितना करती है, उतना शायद ही कोई करता है। वह औरत माँ का दर्जा रखते हुए, अपने–आपको समयानुसार या मौसम के साथ–साथ गीले, में सुखे में सुलाती है। पर अपने बच्चों को जरा भी आँच तक नहीं आने देती है। इस सम्बन्ध में श्री रामकुमार जी ओझा ने कहा है कि माँ का दर्जा दुनिया का सबसे ऊँचा दर्जा है। उसका हमेशा ही सम्मान करो,

चाहे वह किसी भी रूप में क्यों ना हो उसी का पर्याय अपने भारतीय समाज में नारी को माँ के रूप में विशेष व प्रमुख दर्जे के रूप में माना जाता है।

हाँ एक के गाँव की बूढ़ी दायी जाति है, चमारिन, तन की कमजोरी के साथ पगला भी गई है। दायी चमारिन नारी के बारे में रामकुमार जी ओझा ने माँ की ममता के रूप में पर्याय मानते हुए, बतलाया है कि कोई नजदीक जाता है, तो भाठे मारने लगती है।

दायी है चमारिन है, बूढ़ी है। मेरे भीतर कुछ झनझनाया। पूरी पहचान के साथ अतीत जागा। मेरे प्रसव के साथ मेरी माँ मरणासन्न हो गई थी। दाई माँ ने नाल काटी। आँगण में गाड़ दी। मेरी माँ खटिया पर पड़ी उस जगह की हिफाजत करती रही थी। कहीं नाल को कुत्ते न खोद खायें।

मुझे चमारिन दाई के दूध पर पलना पड़ा था। ममता के बावजूद माँ के स्तनों में दूध का संचार न हो पाया था। बड़ा होने तक उसी से हिला रहा। अन्त में माँ ने बरजना की 'अब तू काफी बड़ा हो चुका है। ब्राह्मण का बेटा है, चमारिन के गूदड़ों में सो जाता है। जन्म भर छूत न जायेगी और उसके दूध का असर? मैंने माँ से पलट कर पूछा तो वह बोली, उसने दूध सेंत में थोड़ी पिलाया है। बदले में उसे पेट भर खिलाया है। उसके बेटे को दूध पिलाने के लिए अपनी बकरी का, एक पूरा थन छोड़ा था। मेरा समाधान तो नहीं हुआ पर दाई के यहाँ मेरा आना–जाना रूक गया। लेकिन वह जहाँ भी मुझे देखती, नजर उतारती जाती। फिर मुझे शहर भेज दिया गया तब से वहीं का हो रहा। उस दिन ठाकुर के मुँह से सुना तो लगा की वह दाई हैं जरूर।

ठाकुर ने काँटों की बाड़ हटा कर रास्ता बनाया। बुढ़िया हड़बड़ा कर उठी, साथ ही हाथ में ढेला भी उठा लिया। मात्र एक काली सी परछाई। पहली नजर जो देखा तो मन में घिन जागी। पर तार–तार हुई घघरी से ऊपर उठकर लटकते स्तनों पर नजर पड़ी तो ममता का आवेग उमड़ आया।

उधर उसने ताक–झाक की ढेलों से प्रहार करना शुरू कर दिया। निश्चय ही गाँव के बिगड़ैल बच्चों से रक्षा के प्रयास में वह अच्छी निशानेबाजी सीख चुकी थी। गनीमत थी की ढेले, कच्ची बालू के थे। हमारे बदन पर धूल तो पड़ी पर चोट किसी को न आयी। अन्त में इस गोली बारी से थक कर, वह दह पड़ी। मेरे साथी उसी दृश्य को कैमरों में उतारने लगे। पर मैंने लपक कर उसे सम्भाला। इसी तरह 'कौन जात कबीरा' संग्रह में संकलित 'शेष सब सुविधा' कहानी की अम्मा एक आदर्श माँ के रूप में सामने आती है। वह जब अपने बेटे के घर मिलने जाती है, बेटा सुधीर उसका भरपूर ध्यान रखता है। बेटे की सेवा से खुश होकर वह एक जगह कहती है – ''पर मेरे बेटे, बहुओं की तो सतजुगी जोड़ी

है। सब सुविधा जुटाते हैं, पर मेरे जीवड़ा मुझ बुढ़िया की आदत ही खोटीली। जो समझे हूँ उनकी, मेरी सुविधा–दुविधा न्यारी–न्यारी। पहले दिन सीढ़ियां चढ़ते थक गयी थी तभी सुधीरवा ने कह दिया था ''अम्मा, यह यहाँ रोज–रोज सैकड़ों सीढ़ियां चढ़ना–उतरना यही एक दुविधा है, शेष सब सुविधा। पर तुझे तो बसे एक बार चढ़ना भर है।''[14] इस प्रकार से अम्मा अपने बेटे–बहू के प्रति अपने स्नेहशील स्वभाव को माँ कर ममता के रूप में चित्रित करती है।

(छ) नारी का बंधवा के रूप में चित्रण –

रामकुमार ओझा ने भारतीय नारी को अलग–अलग रूपों में चित्रण किया है। कि बंधवा के रूप में रामप्यारी का चित्रण किया है। रामप्यारी बंधवा मजदूरनी रहकर साहबों को अन्य स्त्रियों की सप्लाई का कार्य करती है। एक उदाहरण देखिए– "सारी लेबर उत्कंठित और आंतकित साहब जी सौगात देते हैं, तो नथ भी उतार धरते हैं। कानाफूसी, सरगोशी, किस्सागोई का बाजार गर्म, मर्दों से ज्यादा लुगाई– लेबर में चर्चे। रामप्यारी चटखारों में खारी बात भी मिठी बनाती है। बड़ी स्यानी सुलझानी लुगाई है, रामप्यारी। जमाना देखे हैं, उम्र पाई है। कितने कैम्प साहबों में जवानी गलाई मगर अभी बुढ़ाई नहीं है। दुःख यही है कि साहब बाबुओं के टेन्टों में अब उसकी सीधी नियुक्ति नहीं होती। पर उसकी सप्लाई ही तो अभी कैम्प, साहबों के टेन्टों की रंगीली रात है। कैम्प में सप्लाई शब्द का बड़ा चलन है, जैसे बाजार में दलाल का चलन है।''

रामप्यारी सीमेंट, कंकरी, बजरी की सप्लाई नहीं देती, पर वह सारे सप्लायरों से बड़ी सप्लाई है। कैम्प की हर छोरी, दूरी लुगाई यह जानती है, फिर भी रामप्यारी का रूतबा भले जो भी हो, हैसियत तो लेबर की ही है। कैम्प साहब तो चौदस के उजाले हैं, आते हैं, चले जाते हैं। पीछे रह जाते हैं, आदमी के आंधे चाँद बाबू लोग। बाबू, बंदों की मेहरबानी भी क्या मेहर। पत्ती पर ओस झड़ी, टपक पड़ी, मिट्टी में सनी।

अब अधिकांश लुगाइयां ही–ही करने लगी, मेट आकर उन्हें धमकाता है। वह गुर्राता है, आवारा कुत्ते की तरह दुम दबाता है। पालतू पिल्ले की मानिंद। पर रतनी न ही ही करती है, न भेंट की दबकारी सुनती है। 'ठेंगे पर, तन तोड़ कर काम करती है। मेट कुत्ते की तरह भौंकने और पूँछ हिलाने का चाकरी नहीं करती।

मेट उसे दूर–दूर से घूरता चला गया। जलते अलाव में हाथ नहीं, आँख भर सेक पाने की उसकी हैसियत है। रतनी हुकम कर गेंती चलाती है। गहराई तक गड़े पत्थर को एक दाँव में बाहर निकाल लाती है। पर रामप्यारी, कस्तूरी के चर्चों से वह शिथिल पड़ जाती है। अपने तन की सुघड़ाई दी रामजी ने राजरानी ने भाग न दिया। जग के हराये न

हारी लुगाई, पर तन से रोज–रोज हारी है। ऐसा भी क्या अमरफल खाया कि जीवन दोजाव में भी मुरझाता नहीं। कड़ी घाम में कजराता नहीं। बस गौराई पर तनिक सी तांबई बरण की झांई चढ़ कर, झीनी सी सुरमाई छोड़ गई है, जो और भी बैरिन हो गई है।

'घर–दुवारी छुट्टी। मर्द–लुगाई बंधुआ बनकर कैम्प में आकर, लेबर भी बन रहे। रूखी–सूखी खायी। बार–त्यौहारी नहाई। पर यह हरामिन तन की लुनाई न गली, न ढली। रूप की चाह लुगाई की मुराद है, पर वह तो मनौती मनाती है।

"है बेमाता तू यह हरियाली ले और मेरे तन को बोदी बाड़ बना दे। पर तन है कि और सुथराई पाकर फूटरा बने जा रहा है। अधिक न सही, जस का ताप तो बना रहे।

'तन से न सही, मन से वह जस की तस रही पर उसका भरतार तेजू उसका जस का तस न रह पाया। तन बाढ़ पर था, तो तेजू का स्वाभिमान उतार पर। घर से जब चला था, उसका आदमी मर्द था। फिर लेबर बन गया और अब महज बंधवा भर रह गया है। उसकी मूँछ लटक गई है। जात बदल गई है। बात बदल गई है। हरीश्चन्द्र की भाषा बोलने लगा है।''

सुन रतनी। बेचाऊ जिन्स का अपनापन कुछ नहीं होता हरीशचन्द्र बिका तो आप भी बेच दिया जाता है, जो बिकने जोग नहीं। उसका मरद वही धरम की वाणी बोलता है जो कैम्प का वातावरण हर लेबर के मन में छोड़ता है।

''रतनी तेजू की जवांमर्दी से नहीं डरी पर नामर्दी से डरने लगी है। आदमी धौल–धप्पड़ करता है, तो बेगाना हो जाता है। शुरूआती के दिनों में रतनी के साथ मेट ने कुचरणी करनी चाही तो तेज सिंह ने लाठी भाँज ली। तब वह सचमुच तेजसिंह था। फिर जब बड़े बाबू की नीयत बिगड़ने लगी थी तो, उसका हाथ मूंछों पर जा कर अटक गया था क्योंकि तब वह तेजू बन चुका था, किन्तु अब जो बड़े कैम्प साथ आने का है, तो उसकी आँख बोलती है। चाल सोचती है कि रतनी साब की पसंद की छंटाई में आ जाये बदले में बस, पुल्लाव की टपरी की जगह टीन की टाटी में रहवास मिल जाए। उसकी चाहत ने अब उसे तेजूड़ी बना दिया है। रतनी अपने घरवाले के मन की जानती है। मर्द के मर्म की न जान पाये, वह भी भला क्या लुगाई।"[15]

वह सीधी तनकर चलते साहब के कमरे के बगल में दाखिल हो गई। मनसद के सहारे औधक लेटे थे। वे भी तनकर बैठ गए। साहब ने नाम पूछा। उसने बतला दिया। तारीफ की सुन ली। नहाने को कहा, नहा आई अपने कपड़े उतार के किनारे लगा नया घाघरा गोट लगी चुनरी पहनने–ओढ़ने को कहा। आदेश का पालन किया, जो खाने को कहा खा लिया, पिलाने लगे सो पी गयी। मुस्कान की फरमाइश हुई तो धार सी खुल–

खिल कर बह चली। हंसमुख देह बनकर दोहरी हो गई। रतनी जो लुगई थी, परे रह गई अब जो भी बंधवा लेबर थी।[16]

(ज) नारी की त्याग भावना का चित्रण –

रामकुमार ओझा की दृष्टि में भारतीय नारी का त्याग अपने आप में एक प्रमुख स्थान रखता है। वे अपने त्याग, बलिदान को लेकर वह अपने शरीर को अग्नि तक में झोंक सकती है। व अपने कार्य–व्यवहार को लेकर अपनों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर हर कार्य क्षेत्र में सहयोग के लिए तैयार रहती है। चाहे वह किसी भी प्रकार का कठिन से कठिन काम ही क्यों ना हो उस काम को भी वह सहयोग करके सरल से सरल काम में बदल देती है। ये ही नारी की त्याग भावना का प्रमुख रूप है।

विभिन्न साहित्यकारों ने नारी की त्याग भावना का चित्रण अपनी परिभाषाओं के माध्यम से किया है जो निम्न प्रकार है–

उषा प्रियंवदा 'कोई नहीं' भी पति–पत्नी के नये सम्बन्ध की स्थापना का प्रयास है। सम्बन्ध कहानी में श्यामलता लीक को छोड़ विवाहित सर्जन से सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। उन्हें, मित्र, बन्धु व प्रेमी मानती है।"[17]

शशिप्रभा शास्त्री की 'तट के बन्धन' की नायिका नीता पति और प्रेमी दोनों को साथ पाना चाहती है। वह प्रेम के आनन्द के लिये प्रेमी को और सुरक्षित जीवन के लिए पति के रूप में 'तट के बन्धन' की कामना करती है।"[18]

मृदुला गर्ग की कहानी 'हरी बिन्दी' की नायिका दाम्पत्य जीवन से ऊब कर अकेली सिनेमा देखकर अजनबी पुरुष के साथ रेस्तरां में जाकर आनन्द लेना चाहती है।"[19]

कमलेश बक्षी स्त्री पति के अत्याचार सहने को तैयार नहीं। अन्य व्यक्ति को सुपात्र समझ पति रूप में वरण कर लेती है।[20]

रामकुमार ओझा ने नारी को एक त्याग व त्याग की प्रतिमूर्ति मानते हुए जीवन साथी व परिवार की है। सहयोगिनी के रूप में माना है पर्याय ओझा जी ने अपनी कहानी "सरदी और साँप" में बतलाया है कि सरदी की रिमझिम की झड़ी, बस, अँधेरे की पांखें समय से घड़ी भर पहले ही सिकुड़ कर कई तलों में जम गई ओर दीवारों तथा झोंपड़ियों में छिपे झींगुर झनझना उठे। उनके अलावा हवा की सांय–सांय और बूंदों की ताल बुद्ध टपटपाहट और कुछ नहीं, भीतर बाहर सर्वत्र निस्तबधता सलौनी का साहस जवाब दे गया। काकू आज देर से आयेगा, खेत में नयी मोड़, नयी मेड़ जो बनानी है। उसने ताक पर टटोला, हरीकेन की लालटेन रखी थी पर माचिस, फिर इधर–उधर टटोला, उलटा–पलटा पर माचिस कहीं न मिली, तो घर से बाहर निकल पोटी के टाटे पर आ खड़ी हुई। सामने

का नीम तो जैसे जम गया था, पर उसके साये में खड़ी एक भैंस पगरा रही थी। खैर भैंस ही सही आखिर जीवित प्राणी तो मिला। चलो कुछ तस्सली हुई।

पर जाड़े का हड़कम्प और पानी की फुहार, इनसे वह कैसे जुझे। क्षण भर में सलौनी की जैसे एक–एक हड्डी सरदा गयी। दाँत किट–किट कर बज उठे। मजबूर हो लपककर भीतर होने को हुई तभी दीवार के उस पार जीतू के अलाव पर फक् फक् कर आग जल उठी। पर फूस की आग जिस तेजी से उठी उसी शीघ्रता से दब भी गई।

फूं–फूं–फूं धत तेरे की। आँखें फूट गयी पर यह कमबख्त एक बार लौ फैंककर फिर ठिठुर गयी। जीतू अलसाया सा उठा खड़ा हुआ। छोटी सी दीवार के पहले पार झाँककर देखा तो पाया सलौनी खड़ी थरथरा रही थी। ए सलौनी। काकू अभी नहीं आया? कैसा आदमी है यह भी। ऐसा गजब का जाड़ा की परिन्दें तक पर नहीं मारते और यह काकू है कि गोड़–गोड़ पानी में खड़ा उठा रहा है। मैं कहता हूँ किसी दिन उसकी ठठरी वहीं भेड़ के पास चिपक कर रह जायेगी। तू उसे समझाती नहीं री?

मैं समझाऊँ? मेरी कौन सुनता है और उसने ओढ़नी को जकड़कर देह से लपेट लिया पर दाँत किटकिटाते रहे। वैसे ही औसारे में घुस चली और वहीं से पूछा पर तू आज सई–साँझ ही कैसे लौट आया रे?

यही कहने आई थी तू यहाँ?

और क्या? सलौनी को जैसे एक जवाब मिल गया।

जीतू ने बाटियाँ पलटते हुए पूछा–बाहर अभी झड़ी लगी है क्या री?

औसारे से जरा बाहर तो निकल कर देख सब पता चल जायेगा। अरे राम, अब तो बूंदे भी मोटी–मोटी गिरने लगी है। जीतू ने सर जरा बाहर निकाला पर शीघ्र ही भीतर हो रहा? तू आज जरूर ठण्ड खा जाएगी सलौनी।

सलौनी ने देखा उसकी ओढ़नी तर हो चुकी है। भीतर बाहर दोनों ओर से जाड़ा उमड़ा आ रहा है। सूं–सूं करती बोली– पर क्या करू ? मुझे तो बड़ा डर लग रहा हैं।

तो इधर क्यों नहीं चली आती?

हिस ऐसा भी कभी हुआ है। धत तेरी बाटियाँ फिर जलने लगी, पलट उन्हें जल्दी पलट।

जीतू ने हड़बड़ा कर बाटियाँ पलटने की कोशिश की तो दो अँगुलियों के साथ–साथ अँगूठे का पोट भी जला लिया और सी–सी कर बोला, सरसों का तेल है तेरे पास सलौनी?

आखिर हाथ जला ही लिया न। अरे लुगाई जात का काम मर्द– मानस करने लगे तो ऐसे ही दुर्गती होती है।

सी....ई अब तू तेल भी लाएगी या खड़ी उपदेश ही बघारती रहेगी।

उसका पारा चढ़ा देखकर सलौनी लपककर तेल की शीशी ले आई, तो जीतू दीवार के पास आ गया। सलौनी ने हरिकेन मुंडेर पर रख दी और जला ली।

देखूं तो कहां जला है? जीतू ने हाथ फैला दिया। अंगुली और अंगूठे के साथ–साथ चौड़ी चक्कल हथेली भी ताव खा गई थी। अरे मैं मर जाऊँ! तू तो पूरा हाथ जला बैठा।

मुझसे हुस्स पगली। जीतू ने धकिया कर ठेंगा दिखाया। ऐ नहीं। और वह बिल्कुल गुड़ी–मुड़ी बन गयी। जीतू उसे प्रायः गोद में उठा चला। देख बोले मत तेरे काकू की नींद कच्ची तो नहीं, फिर भी बुढ़ापे की नींद पर भरोसा करना ठीक नहीं ओर देख संभल तेरी ओढ़नी भी घसीटे जा रही हैं।

सलौनी झटककर सीधी खड़ी हो गई और लपक की दीवार के पास जा भूल से वहीं पड़ी रह गई। तेल की शीशी को उठाकर पल्लू में छिपाती हुई पलट पड़ी।

एक ऐसी पेशकश जिसे मानना अपनी सारी योजना को बिगाड़ना था। मैं तो एक ऐसे मिशन पर निकला था, जिसके कंधों पर कोई दायित्व न हो, जिसके जिम्मे कोई जवाबदारी न हो, पर मरणासन्न की अन्तिम चमक और लड़की की याचना करती नजर, दोनों मिल कर मेरा सम्बल बन गई। मैंने बारी–बारी दोनों को दुबारा घूरा तो लड़की की नजर में उलाहना और सरदार की दृष्टि में चुनौती थी, जो पूछ रही थी, क्या तुम कायर हो? क्या तुम केवल अपने लिये जीने वाली छुद्रप्राणी हो? क्या इस हाशिये पर आई उम्र के संयम पर तुम्हें यकीन नहीं है। क्या तुम मेरी बेटी के सौंदर्य, चंचलता से डरते हो? एक साथ न जाने कितने कड़वे प्रश्न वे बुझती आँखें कर गयी।

हाँ, हाँ। नेरिमन मेरी बेटी है। मेरे दुख से चीख भी यही निकली। मेरी भी इतनी बड़ी ऐसी ही एक बेटी थी। मैं उसी की पड़ताल में इसकी खोज के बहाने भटकता रहा। पहली झलक में ही यह मुझे, मेरी बेटी की प्रति आकृति लगी थी, जो मेरी लापरवाही के कारण भटक गई थी और जिल्लत की जिन्दगी का सामना न कर पायी तो मर गई थी ,पर मैं इसे नहीं मरने दूँगा।

ओझा जी की कहानियों में नारी को त्याग की प्रतिमूर्ति माना गया। उन्होंने नारी का यह त्याग अनेक प्रकार से चित्रित किया है। नारी का यह त्याग कहीं पति के प्रति है तो कहीं बहिन के प्रति अथवा कहीं परिवार के प्रति दिखाई देता है।" सुवर्णलता यह सब नहीं जानती थी। वह अपनी गृहत्यागिनी माँ की निंदा का सम्बल लिये गृहस्थी में आयी

थी। इसलिए उसने यह जाना था, कि वह केवल अपने असार्थक जीवन की ग्लानि का बोझा लेकर ही दुनिया से विदा हो रही है। यह जाना था कि उसके लिए किसी का कुछ आता–जाता नहीं। उसके मरने पर उसकी सत्रह साल की कुँवारी बिटिया के पैरों तले जमीन ढूंढे नहीं मिली। सुवर्णलता यह जानकर नहीं गयी, वह ना जा सकी कि उस लड़की के लिए सुवर्णलता का मृत्युदिन ही जन्मदिन है।

दक्षिण के उस चौड़े बरामदे में जहाँ सुवर्णलता संसार से आँखे फेरकर लेटी रहती थी, वह लड़की मानो हिलना ही नहीं चाहती। उस जगह को सूनी है। जाने पर भी उसने मानो सुवर्णलता को नयी नजर से देखना सीखा।

माँ को कहना ही पड़ेगा, यह सुवर्ण जानती थी किन्तु पति के पास मिठास है, आशा है। अपने पति पर न हो चाहे अपनी क्षमता पर उस समय सुवर्ण का काफी आस्था थी। जब वह कानों में इयर–रिंग पहनती, तीन कोर की डोरिया साड़ी पहनती थी और मशकत से काँच पोका पकड़कर उसे काट–काटकर टीका लगाती उस समय हर बात में इच्छा ही प्रबल थी उसकी।

चौदह साल की सुवर्णलता के लिए यह सन्देह करना कठिन था, कि ऐसा सफेद झूठ कहकर चकमा दिया जा सकता है। उस समय वह पति की प्रेम–प्रीति प्यार के परिचय से मुग्ध हो रही थी और अपनी कल्पना का स्वर्ग गढ़ रही थी।

इस टूटे–फूटे वाहियात घर को छोड़कर नये घर में गयी है, बरामदे से सटा खासा सुन्दर एक कमरा, बड़ी–बड़ी खिड़कियां, लाल टुकटुक फर्श उस कमरे को अपने मनमुताबिक सजायेगी सुवर्ण दीवारों पर तस्वीरें, ताखों में देवी–देवता के पुतले बक्स पिटारे में फूलदार ढक्कन, झालदार तकिये, साफ–सुन्दर बिछौना। उस कमरे में बैठी सुवर्ण चुपचाप फूल काढ़ेगी कथरी में भविष्य के लिए। किन्तु सुवर्ण को नीचे जाना ही पड़ा था, उसने कहा था, बरामदा नहीं रहने से मैं उस घर में रहूँगी ही नहीं हाय रे बंगाली। घर की बहू उसकी भली प्रतिज्ञा। चोट पर नाराज होकर माटी पर खाने की तरह उस बुद्धू अभिमानी के घर के सबसे ओछे कमरे की कामना की थी।"[21]

(झ) भारतीय नारी का संघषपूर्ण जीवन –

कथाकार ओझा ने अपने कहानी संग्रह 'आदमी वहशी हो जाएगा' में 'मुकामों', 'सफीनों', 'रब्बों' तथा 'सिराजी' और 'अन्य कहानियाँ' संग्रह में 'सयाना', 'बंधवा' और 'कौन जात कबीरा' कहानी संग्रह में 'भारमली नही भागी', 'अकेली रात' आदि कहानियों में नारी का चित्रण अत्यधिक तन्मयता से किया है। ये नारियाँ एक आदर्श और भारतीय संस्कृति के अनुरूप परिवार को साथ लेकर चलने वाली नारियाँ है। यह सामाजिक मूल्यों और

पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करती हुई विविध प्रकार के सामाजिक संघर्षों पर अपनी जिजीविषा से विजय प्राप्त करती है। एक उदाहरण देखिए जिसमें मुकामों भरी पंचायत में अपनी बात साहस पूर्वक और पंचायत के सम्मुख नारी सम्मान की बात कहती है –'' मुकामों ने पत्थर सा भारी प्रश्न रख दिया। पंचायत मौन। बूढ़ों के हुक्कों की निगालियों से उठता धुआँ ठकर सा गया। विवाह के समय थूथके डालने वाली बुढ़ियां जो थोड़ी देर पहले हिकारत से थू–थू कर रही थी, उनकी जवान हलक तल चली गयी। पर जवान बहुओं में सुगवुगाहट होने लगी। जवान लड़के फैसला सुनने के लिए उतावला हो उठे। तभी सरपंच ने चुप्पी तोड़ी –''चौधरी पंचायत तुम्हारे बेटे का बयान चाहती है।''

बेटा करम का मारा, धमर से हारा। माँ अंजली बांधे बैठी। बाप की नजर में जहर पत्नी की पत्त रखे तो कुल की लाज जाये। न रखे तो भी कुल की मर्यादा पर तो कालिख ही लगे। मन से हारा। तन से थका। कुछ न बोल, कमर झुकाये एक ओर चल दिया, चौधरी मारने को दौड़ा तो पंचायत ने रोक दिया।[22]

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में रामकुमार ओझा ने नारी को सम्मान देते हुए उसका जीवन पूरा संघर्षमय बतलाते हुए कहा है कि नारी डरकर भी ना करने वाला काम भी कर देती है। उसका जीवन संघर्षों से गुजरता है फिर भी वह हार नहीं मानती और निरन्तर जीवटता के साथ आगे बढ़ती है। इस दृष्टि से ओझा जी की अनेक कहानियाँ उल्लेखनीय है उनकी 'अकेली रात' कहानी की नर्स को लिया जा सकता है – नर्स हड़बड़ाती हुई वार्ड में घुसी तो मिलखाराम डरा। मुलाकात का वक्त पूरा हो जाने के बावजूद उसे मरीज के पास देखकर जरूर उसके साथ डाँट–फटकार करेगी। अतः वह भी उसी हड़बड़ाहट में उठते हुए मनभरी से बोला– "अच्छा अब चलूँ, कल जरा जल्दी आ जाऊँगा।" और वह नर्स की नजर बचाकर जाने लगा तो नर्स ने टोका, "रुको।"

वह रूक गया और अपनी सफाई में कुछ कहने को हुआ पर नर्स ने उसकी और फिर कोई ध्यान न दिया। उसने कागजों के पुलंदे में से एक पर्चा निकाला और उसे मिलखाराम के हाथ में थमाती हुई हकलाती सी बोली। तुम्हारे मरीज की छुट्टी इसे साथ ले जाओ।

मिलखाराम हैरान, इसी ने तो कल कहा था मरीज को ठीक होने में काफी वक्त लगेगा ओर अब यही छुट्टी कर रही है। ऐसी भी क्या नाराजगी अपनी जोरू के पास जरा बैठ गया तो कर दिया डिस्चार्ज। फिर भी माफी माँग लूंगा। वह कुछ कहने को हुआ पर नर्स तब तक हर बिस्तर पर वैसे ही पर्चे बांटती आखिरी छोर तक पहुँच चुकी थी और कह रही थी।

ठीक नहीं हैं। पर लुगाई जात मरते दम तक मर्द मानस को परेशान नहीं करना चाहती। आज की रात बच जाये तो बजरंग बली की जोत जलाये।

लाला और मनभरी को बजरंग बली की सुपुर्दगी में छोड़ उसका ध्यान जंगल की निःषब्द भयानकता की ओर गया। सन्नाटा दर सन्नाटा। वह किसी आम चलती सड़क पर न था। यह तो दूर–दूर तक छितरे गाँवों को मुख्य मार्ग से जोड़ने वाली संकरी सी लिंक रोड थी।

मनभरी कुनमुना रही थी। बैंलों के गले में पड़ी घंटियाँ टुनटुना रही थी। आम दिनों में मिलखाराम घंटियों की टुनटुनाहट के साथ अलाप ले लेकर हीर–रांझा के टप्पे गाया करता था। पर अब यह टुनटुनाहट खतरे की घंटी थी। पेड़ की ओर से निकल कर कोई भी लफंगा घंटी की आवाज पर लपक पड़ सकता था। जमाना ऐसा है कि आदमी अपने को ही पहचान नहीं पाता कि वह लफंगा बन चुका है या अभी भीतर कुछ शराफत बाकी है– और लफंगों का क्या? लूट भी सकते हैं, मार भी सकते हैं, इज्जत पर भी हाथ डाल सकते थे। उसने बैलों की रास खींची, जूए से उतरा और बैलों की गर्दन से झूलती घंटियाँ उतार ली। गाड़ी रूकी तो मनभरी की झपकी भी टूटी। दर्द भरी आवाज में पूछा– क्या हुआ मिलखाराम ने सब बतलाया ओर पलट कर पूछा– कैसी हो मनभरी। जवाब से पहले उससे बजरंग बली को याद दिलाया। बाबा तेरी शरणगति।

मनभरी बोली– क्या होने वाला है जवाब मिलखाराम के पास भी न था। पर वह बीमार घरवाली को निर्भय भी बनाये रखना चाहता था। अतः अपने भय को पीछे धकेल कर जरा ताता–ताता बोला मर्द के साथ रहते लुगाई को कौन डर। वह औरत को बहला रहा था। घर में मर्द की साथी लुगाई, सफर में लाठी। पर उसकी तेल पिलाई, तांबे की परत चढ़ाई, दुलारी लाठी की लाला की हट्टी पर ही रह गई थी। सच है! मुसीबत में तन के कपड़े भी साथ छोड़ जाते हैं। गनीमत है कि नंगा नहीं है। पर आदमी की नस्ल इस कदर नंगई पर उतर चुकी है, कि अभी चार लफंगे आये और उसके कपड़े उतार ले जाये ंतो वह क्या कर ले? मनभरी के मुँह पर दुलाई डाल दी। गाड़ी पक्की सड़क पर आ गई। खाड़कू ने उसे शहर की ओर घुमा दिया। पर मील भर चल कर एक कच्चे रास्ते पर चल पड़ा। फिर वैसा ही दलादल और जूए पर बैठी साक्षात् दहशत अलग। मनभरी रूक–रूक कर कुनमुना रही थी। घायल खाड़के दर्द के अहसास को रोके रखने के प्रयास में चीख को सिसकारें में बदल कर मौत से जुझे जा रहा था।

ये लड़के क्या चाहते हैं? जब इत्ती बात सरकार ही न जान पायी तो मिलखाराम कैसे जान पाता। वे कहाँ जा रहे थे, मिलखाराम तभी जान पाया जब गाड़ी एक फॉर्म के

कोठे के आगे जा खड़ी हुई। कोठे से चार स्वस्थ खाड़कू निकल आये उन्होंने घायल को कोठे में पहुँचा दिया। फिर अलग जाकर थोड़ी देर सलाह मशविरा किया। घायल के साथ आया खाड़कू कुछ बतला रहा था, मिलखाराम समझ गया बात उसी के सम्बन्ध में है। शायद उनकी मौत की तजवीज के बारे में सलाह कर रहे हैं। अब उसके सवाँग कान बन गये। साथ आने वाला कह रहा था आदमी अधेड़ सा है। औरत बीमार है जरा डरा कर भगा दे। वहीं मिलखाराम के पास आया। सीधे चले जाओ, मुँह सिये रहना। हमारे आदमी साये की तरह पीछे लगे रहेंगे, जिस दिन इस रात और रास्ते का राज खोलोगे वही तुम्हारी जिंदगी का आखिरी दिन होगा और यह लो उसने पेन्ट की जेब से निकाल कर व्हिस्की का अद्धा मिलखाराम के हाथ में थमाते हुए कहा। "बीमार ताई को घूँट–घूँट भरकर पिलाते रहना। वाहे गूरु ने चाहा तो सही सलामत घर तक पहुँच जायेगी।"

मिलखाराम की आँखों में आँसू भर आये अपनी हालत पर तरस खाकर या लड़कों की मासूमियत पर। मन के किसी कोने से उसी का प्रति–व्यक्ति बोलने लगा। "लड़के तो भले लगते हैं पर बहकाने वाले चालाक और धूर्त हैं।"

वह गाड़ी हाँक चला। "गुरु सीधी राह चला! वह अपनी राह के लिए अरदास कर रहा था या भटके लड़कों के लिए?" ... गनीमत थी पक्की सड़क पर पहुँचने तक सवेरा हो चुका था।"[23]

इसी प्रकार रामकुमार जी ओझा ने एक अन्य कहानी "शेष सब सुविधा" में भी नारी को सज्जनता व महानता का प्रतीक कहते हुए बतलाया है कि– "ओ मेरे मनुआ! यह जाड़ा है कि मेरी मौत।" तन सिकुड़ कर सो रहने के बावजूद हाड़–हाड़ में हड़कम्पी चढ़े जा रही, किसी तरह आज की यह निगौड़ी रात कटे तो सही। भोर निकलते ही सुधीरवा से बोल दूंगी, ओर भली यह तेरी जयपुरी रजाई। इसे तू ओढ़ भले तेरी लुगाई, मेरे लिए तो वह गाँव का गूदड़ा ही भला। तेरे इस रबड़ के गदैले में तो मेरा हाड़–हाड़ करकने लगा। ये जो दर्द यूँ ही बढ़ गया तो मैं तो गयी काम से।

दादी अम्मा डनल्प के गद्दे को रबड़ का गदैला कहती। हर रात यूं ही खीझते–झीकते काटती पर सुबह किसी से कुछ न कह पाती। दादी अपने भीतर टटोलती पर सुधीर को कहीं दोषी न पाती। उसने तो पहले दिन ही कह दिया था। अम्मा इस शहर में यही एक दुविधा है कि बन्द घरों में जाड़ा, हाड़–हाड़ में पैठ जाता, शेष सब सुविधा है।

मैं तो हारी रे इन सुविधाओं की मारी दादी अम्मा ने कुनकुनाते हुए करवट लेनी चाही, पर जाड़े का यह स्वभाव कि डील हिलाया और दुने जोर से चढ़ा। दादी का पंजर खड़–खड़ हिला और दर्द पीठ के बीचों बीच फैंलने लगा।

"दादी अम्मा कहानी सुनाओ।" पोता–पोती दादी को दुलारते, निहोरे निकालते। दादी कुल जमा चार कहानियाँ जानती। उन्हीं में से एक सुनाने लगती। बच्चे हुंकार भरते रहते और दादी अम्मा खुर्राटों की खुमार में खो जाती। बच्चे सोचते दादी कहानी के देव की नकल उतार रही है, पर दादी थी कि सचमुच सो जाती। यूं पूरे जाड़े भर के लिए चार कहानियाँ काफी होती। बच्चों ने घोषणा कर दी।

और सचमुच दादी बच्चों के परदेशी कथा–नायकों को नहीं जानती थी। उसकी पहचान तो राम, कृष्ण, बहुत हुआ तो राजकुमारी को उठा ले जाने वाले दैत्य तक थी और अब वे गाँव में रह गये। गाँव में वह दादी अम्मा थी और यहाँ बना दी गई ग्राण्ड मदर। ऐसे सूगले सम्बोधन से ही उसे गंध आती थीं वह सोचती जहाँ नाम रह गया वहीं अपनी पहचान रह गई। यहाँ कैसा बुरा मानना, किससे रूठ जाना।

बच्चों की सोहबत से कटी तो दादी जल्दी–जल्दी बुढ़ाने लगी। दर्ज से तने, कसे–कसे चहेरे पर झुरियाँ गहराने लगी।

हाँ अम्मा यहाँ आसमान का अरमान संजोने वाले ही रह पाते हैं। धरती से जुड़ा आदमी यहाँ भूखों मर जाता है।

भूख से ना मरे पर जाड़ा जरूर मार देता होगा। सुबह की सरदी, दोपहर की सिलहन, रात का जाड़ा पर सुना है शहर में भागमभाग की दौड़ है, पर जिस किसी ने दिल की धड़कन पर थरमामीटर धरा कि पाया ठंडा ठीर। इन घरों की घुटन में तो जब आँख मिची रात, जब आँख खुली दिन। पक्षी चहचहाते तो होंगे, पर भौं–भौं का शोर सुन भीतर ही मर जाते होंगे।

भौर के साथ दादी अम्मा को अपने मिट्टी के चूल्हे की याद आती। भट्ठी जैसा चूल्हा, लकड़ी, उपलों का ईंधन, पर इस शहराती घर में जिस सुबह घर आई ठिठुराती सी बोली–बहू चूल्हा नहीं है।

"शोभा बहू ने पलट कर बतलाया। अम्मा जी यहाँ मिट्टी का चूल्हा कहां? यहाँ तो गैस से जलने वाला यह लोहे का जंतर है, बस यहाँ यही एक दुविधा है। और बहू ने बैडरूम में ला सुलाया तो दादी को जैसे बर्फ में धकेल दिया गया। रबड़ के गदैले में धंसी तो वह धंसाने का अंत नहीं आ रहा। रेश्मी दुलाई जयपुरी रजाई। मेरे मनुआ, यही एक दुविधा है, शेष सब सुविधा। पर ऐसी सुविधा को ओढू की बिछाऊँ, पूछें किससे? यहाँ मैं बेटे, बहू के रूतबे के दाग लगाने तो आयी नहीं कि घर की नौकरानी, माई–बाई से बोलूँ–बतलाऊँ। इस शहर में छोटों को मुँह लगाना हैसियत को दाग लगाने के बराबर जो है। यह कोई गँवई, गाँव तो है नहीं कि हर कोई से बोला बतलाओ। दुःख–सुख बाँटो।[24]

(ञ) नारी का अन्तः संघर्ष एवं उलझन का चित्रण –

रामकुमार ओझा ने भारतीय नारी को अलग–अलग तौर–तरीकों के रूप में अपने समाज के अन्दर रहते हुए, उसे एक–दूसरे का पर्याय मानते हुए उलझन के रूप में भी स्वीकार किया है और कहा है कि नारी छोटी सी बात को भी बढ़ा–चढ़ाकर बहुत बड़ी कर देती है और उसे एक अर्थात् सरल बात को कठिनता से बदलने का काम करने वाली भी बतलाया है।

विमलकार के उपन्यास 'ये युवक' में आज की नवयुवतियों के भटकाव का सशक्त चित्रण किया गया है। निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की पदमा और सीतू की असफल प्रेम कथा के माध्यम से आज की पीढ़ी की लड़कियों की मानसिकता को उजागर किया गया है।"[21]

महादेवी वर्मा "नारी में जीवतंता का निरा अभाव ही पाया है : एक नारी ही नारी के उद्‌गारों को भली प्रकार समझ सकती है।"[25]

मृदुला गर्ग ने अपनी 'तुक' कहानी में विवाह और प्रेम को पूर्ण असंगत और व्यर्थ सिद्ध करती है। कथानायिका पहले तो अपने को उन बेवकूफ औरतों में से एक मानती है जो अपने पति को प्यार करती है या कहना चाहिए कि मैं ही एक बेवकूफ औरत हूँ जो अपने पति को प्यार करती हूँ। वह पति ओर विवाह संस्था दोनों को ही एक अतिषय, घृणास्पद स्थिति से देखती है। पति का होना उसके लिए एक स्थिति है, जिसके भीतर से कुछेक और सुखदायक स्थितियाँ पैदा होती है, जैसे बच्चों का होना, घर में ढेरों काम का होना और अपनी तरह का जोड़ों के साथ सामाजिक ताल्लुकात का होना। पति का होना उसके लिए व्यवसाय है, जिसके माध्यम से उन्हें पैसा और व्यस्तता दोनों मिलते हैं।[26]

निरूपमा सेवती की दृष्टि में व्यक्तित्व का हनन करता है। अपने स्वरूप को पिरोता है, जिसके लिए आधुनिक नारी किंचित भी तैयार नहीं है कितना बड़ा शोषण है, किसी व्यक्तित्व के लिए खुद ही निर्ममता से अपने पहले स्वरूप का गला घोंटना पड़ता है।[27] लक्ष्मी बहू अप्रत्याशित रूप में लौट आयी तो सेठ बड़ी उलझन में फँस गया। कौर न निगल पाता था, न उगला जाता था। पर समाज और सरकार की दोहरी त्रासदी से अनभिज्ञ सेठानी काफी खुश थी। पलक झपकते बहू के लौट आने की खबर फैल गई तो जिज्ञासु औरतों की भीड़ से बड़ी हवेली का आंगर मर गया।

औरते बहू के बारे में तरह–तरह के प्रश्न करने लगी तो सेठानी इधर–उधर के उत्तर दे उन्हें टालने की चेष्टा कर हार गई। उसके संकेत पर निगरानी ने स्त्रियों को टरकाना शुरू किया, जब सब चली गई तो हवेली का सदर फाटक बन्द करने का आदेश दे कर सेठानी बोली।

"मुझे अपनी यह बहू बेटियों से ज्यादा प्यारी हैं मिशरानी।"

"सो तो है ही सेठानी, बहू क्या है हीरे की कणी है। न जाने इन चार दिनों में बेचारी को कौन–कौन से दुःख झेलने पड़े होंगे। सोने सा तन कलूटा पड़ चुका है।"

"ओह औरत की दिलचस्पी औरत को सदा अपावन साबित करने में रही है। तुम भी अपवाद नहीं। पर सेठानी है, पर तुम जैसी उसे भी रहने न देगी।

"ठेंगा मेरी जाने जूती। लिखो सेठानी और बहूरानी का महापुराण।"

"लिखूँगा, लिखना होगा। नारी की पवित्रता पर लीक से हटकर जल्दी ही एक पुराण रचना होगा।

खाक रचोगे। अपनी सती–साध्वी पत्नी को लेकर तो, एक श्लोक तक न लिख पाये और चले हो पराई लुगाइयों का महापुराण बाँचने तभी समवेत स्वर उठने लगे... अवश्य अपयश का भागी होगा। पर दाग नहीं मिटेगा धुल नहीं सकेगा। बड़ी हवेली का कलंक लगेगा। सेठ का वंश वर्ण शंकर भ्रूण में फलेगा। अट्ठाहस चारों और उपहास। सेठानी के कानों हथोड़ों की दमक पड़ने लगी थी मोती, ने नई चोटी की। सेठानी कान मूंद बैठ जाने से काम न चलेगा। बड़ी हवेली पर एक नहीं एक साथ दो विपदाएं आई हैं। तभी कोठे के भीतर किसी की सिसकारी सुनाई दी। फिर गौरी का पहला मौका था कि उसने गौरी का सांत्वना स्वर सुना माँ थोड़ा दलिया पी लो। देखो सुबह से पानी का घूँट भी तुम्हारे हलक से न उतर पाया हैं।

"रहने दे बेटी, जब पानी देने वाले पर ही घर बैठे कर्जा मंडराने लगे है, तो अब पानी...... बुढ़िया का क्षीण स्वर टूटने लगा। मायाराम ने ढ़िबरी के प्रकाश में देखा कि गौरी ने बुढ़िया के दुलकते सर को अपनी गोद में ले लिया और हाथ से उसके मुँह में दलिया डालने लगी। बड़ी देर तक व्यापार चला। अंत में गौरी ने अपनी साड़ी के पल्लू से बुढ़िया का मुँह पूंछा और उसे आहिस्ता से लेटा कर नृसिंह गुरू के पास आ कर बोली।

तुम भी कुछ खा लो बापू।

ला बेटी ला, मैं सब खा जाऊँगा। मरते दम तक खाता रहूँगा और उन्होंने लपक कर गौरी के हाथ से प्याला लिया और दलिया पीने लगे। पर दलिया पेट में नहीं पहुँचकर घनी दाढ़ी पर बहने लगा। यह देख गौरी ने प्याला अपने हाथ में लिया और बोली।

धैर्य न छोड़ों बापू।

बूढ़ा हड़–हड़ कर हँसा और तब तक विक्षिप्त के समान, अट्टहास करता रहा, जब तक कि निढाल हो कर चारपाई पर लुढ़क न गया। गौरी ने उनकी दाढ़ी को भी अपने

पल्लू से पौंछा और प्याला रखने को मुड़ी कि ओट में खड़ी एक मानवाकृति को देखकर डर गई। पर, डर को प्रकट न कर भरसक डपट भरे स्वर में पूछा।

पार्वती के पास जाना होगा। मायाराम का खून सूख गया। इस समय वह ऐसी स्थिति में था कि गौरी के हित साधन के लिए वह शेर की माँद में भी घुस जाता, घर अपनी पत्नी के पास जाने के प्रस्ताव ने उसे ऊहापोह में डाल दिया। वहाँ उसे पार्वती के दर्ज का सामना करना था, जबकि आमना–सामना होते ही उसे उसके भीतर का पतिभाव कुरेचने लगता था। पार्वती उसे मालिकाना भाव से घूरती तो वह उस विषैली दृष्टि से धधकने लगता। गौरी समझ गई मायाराम बड़ी संकटपूर्ण स्थिति में पड़ गया। अतः बोली जाने दीजिए जीजा जी, मैंने तो बस यूं दिल्लगी की थी। पर मायाराम समझता था कि वह दिल्लगी का वक्त न था। अतः साहस बटोर कर बोला "मैं जाऊँगा गौरी। उससे क्या कहना है?" "कहना गौरी का नारीत्व आज चरम विकास पर है। भटक गया तो काँटो में उलझ जायेगा, फिर उलाहना न देना।"

"बस इतना ही।"

हाँ मेरी ओर से इतना ही पर्याप्त है। शेष जैसी परिस्थिति में से कह देगा। मायाराम पिछवाड़े के दरवाजे से हवेली में प्रविष्ट हुआ और ऊपर के खण्ड में जाकर बगैर आगा पीछा सोचे पार्वती के दरवाजे पर दस्तक दी। आज न उसे अवहेलना थी, न ही ग्लानि जैसे ही दरवाजा खुला, सीधा भीतर प्रवेश कर गया। पार्वती सन्न रह गई, वह उसके बदले–बदले तेवर देखकर अकबका तीर सी बोली तु....मैं. आप इस समय पर?

पत्नी के पास पति के आने का सर्वथा उपयुक्त समय था, रात का दूसरा पहर। पर मैं गौरी का भेजा आया हूँ। आज उसका नारीत्व चरम विकास पर है भटक गया तो कांटों में उलझ जायेगा, फिर उलाहना न देना।

मायाराम सिखाये तोते के समान एक साँस में गौरी के शब्द उगल गया तो पार्वती उलझन में पड़ गयी। सोचने लगी तो बहुत कुछ तो स्वयं ही समझ गई, शेष मायाराम से सारा किस्सा सुनकर जान गई। मायाराम शान्त स्वाभाविक मुद्रा में सधे स्वर में उसे सब समझा चुका तो पार्वती की दृष्टि पूरे तौर पर प्रथम बार उसके चेहरे पर पड़ी। उसे लगा मायाराम में साहस व समझबूझ की कमी नहीं। भली–बुरी परिस्थिति का आंकलन कर सकता है। पार्वती को पहली बार अहसास हुआ कि वह उसका पति है। पीले सूरजमुखी दुर्बल चेहरे के ओज में एक विश्वस्त इन्सान है। आप ही खोया है। सो पाया भी जा सकता है।

तो मेरा काम पूरा हुआ। मैं चलूँ, पार्वती ने मायाराम का भरभराया स्वर सुना तो अचानक अभिभूत होती बोली मैंने शायद भूल की है। क्या मुझे एक मौका न दोगे?

कोई घड़ी भर बाद सेठ दम्पती ने आकर देखा तो पाया कि दोनों बहिनें बैठी बतिया रही थी। सेठानी ने फिर भी पूछा तुम कहाँ थी गौरी?

गौरी कोई उल्टा सीधा उत्तर न दे बैठे अतः पार्वती तत्परता से बोली "क्यों क्या बात है माँ? हम दोनों तो बड़ी देर से यहीं बैठी बातें कर रही थे। नहीं, नहीं कुछ नहीं। दो–तीन बार गौरी को कमरे में देखा पर हर बार दरवाजा बन्द पाया।

बस इत्ती सी बात पर घबरा गयी माँ और तुमने बापू को भी परेशानी में डाल दिया। पर माँ लक्ष्मी अब तक सो चुकी होगी।

''पर वह अपनी मर्जी से तो गई न थी। डाकू जबरदस्ती उठा ले गये। उसकी तो बहादुरी की सराहना करो माँ जो साहस कर वहाँ से निकल आयी। तू, तू चुप रह गौरी अब तेरी राय की कोई जरूरत नहीं, जो भी निर्णय करना होगा, हम आप कर लेंगे। तू अपने को सम्भाल। बस हमारे लिये यही काफी है। सेठानी अपनी नाराजगी अभिव्यक्त कर लौट चली। पार्वती ने अपनी हथेली गौरी के मुँह पर रख दी, वह बोल तो न पायी पर उसकी आँखों से अग्नि स्फुलिंग झड़ते रहे।''

(ट) नारी का दादी अम्मा के रूप में चित्रण –

भारतीय समाज में नारी का दादी अम्मा के रूप में भी विशेष एवं प्रमुखतः स्थान माना जाता हैं। आज अगर एक घर तब तक वह अपने आप में घर नहीं कहलायेगा जब तक वहाँ पर एक बुजुर्ग औरत दादी अम्मा के रूप में नहीं होगी। भारतीय समाज के अन्दर दादी अम्मा का अपने घर–परिवार का एकत्रित या संगठित करने की विशेष जिम्मेवारी होती है। कथाकार श्री रामकुमार जी ओझा ने बताया हैं कि भारतीय परम्परानुसार जब हम खाना खाने के लिए बैठते हैं तब अगर हम एक बुजुर्ग औरत के रूप में दादी अम्मा के हाथ से परोसा हुआ खाना खायेंगे तो मजा ही कुछ और होगा। इसी प्रकार से किसी अन्य कारण या किसी रिश्तेदारी की जानकारियाँ भी बुजुर्ग औरतों की ही होती है। उनमें भी अगर बात करें तो दादी अम्मा का विशेष स्थान है और ये अपने आप में एक मिशाल के बराबर हैं।

रामकुमार ओझा ने नारी के विभिन्न रूपों में मानते हुए कहा है कि नारी का चित्रण एक दादी अम्मा के रूप में भी विशेष महत्त्व रखता है। इस बात को उन्होंने अपनी कहानी "शेष सब सुविधा" में बताते हुए कहा है कि "गाँव का खुला वातावरण, कहाँ यह शरारती चुप्पासना। यहाँ जो पाप, गुण होता है, वह इन घरों में चुपचाप हो गुजरता है। न सूरज की गवाही, न धरती की साक्षी। यहाँ अकेलापन कटता है शब्द डराता है। यहाँ मीठी बोली

में हर कोई हर किसी को डरा जाता है। हर सुबह शोभा बहू राज भरे अन्दाज में पूछ जाती है– "अम्मा जी, रात को नींद तो क्या आई होगी। "सुधीर कह जाता है। "यहाँ रात का अकेलापन आदमी को अकेले–अकेले डराता है। अम्मा यही एक दुविधा है, शेष सब सुविधा।"

घर में भोर आई तकाजा भरी चहल–पहल नौ बजे के साथ अकेलेपन खामोशी में बदल जाती है। बहू–बेटे नौकरी पर, बच्चे मदरसे चले जाते हैं। दादी अम्मा अकेली घबराती है।

एक दोपहरी में दादी ऐसी घबराई कि हड़बड़ी में एक खिड़की खोल डाली तो जाना कि घरों से बाहर भी यहाँ एक दुनिया है। "साँझ को सुधीर ने खिड़की खुली पाई तो बोला– अम्मा, यहाँ खिड़की खोलने का रिवाज नहीं। पड़ोसी समझेंगे हम उनके घर में ताक–झांक करते हैं। उधर, उस पार्क में कुछ निट्ठले बैठते हैं, कहने भर को कामगार हैं, पर पेशे से सब चोर–उच्चके हैं। इक्कला दुक्कला देख माल भी ले जाते हैं और गला भी रेंत जाते हैं। दादी डरी। मन से पूछा, क्यूं रे मनवा, सुधीरवा साची कह रहा है, या डरा कर मुझे भगाने की तरकीब कर रहा है।" भोली रे तू दादी! शहरों में कपूत जोई करते हैं वही तेरा सपूत कर रहा है। भाग वरना दहला कर मार डालेगा। अनपढ़ बेटे सीधे–सीधे दुःख देते हैं पर पढ़े लिखों के तरीके भी तो शहराती होती हैं। मीठा जहर चटाते हैं।

"दादी दहल गई। दहशत की बदहवासी में सीढ़ियों की और दौड़ चली, पर सदर गेट पर ताला पड़ा था तो सीढ़ियों की राह ऊपर चढ़ चली। सामने जो दरवाजा मिला उसी को खटखटाया। एक मोटी सी स्त्री–काया छोटा सा फटाक पहने बाहर निकली और कहाड़ती सी बोली– "कौन हो तुम? क्या माँगती? लगता है भेजा खराब हुआ। रूको, अभी पुलिस को कॉल करती।"[29]

दादी यह भी न बतला पाई कि वह कुछ माँगने–बतलाने आयी है। उलटे पाँव दौड़ी और रबड़ के गदैले में धँस गई। गाँव में घुसने के साथ ही दादी और वे ही ठाठ। मूंज का मंजा, गरदड़ा। चूल्हें की आँच, ताती लपसी, गर्म गुड़दानी। बाखल में वही धूप। औरतों से घिरी दादी की कचहरी, सूत कताई, वही पोता, पोती और वहीं कहानी। पहली रात ही दादी ने एक पूरी कहानी कह सुनाई। उसे महसूस हुआ कि आदमी कहानी से कट जाता है तो भीतर से मर जाता है। बाहर से बुढ़ाने लगता है। कहानी गढ़ी कहीं–सुनाई कि आदमी संजीवन हो गया।

(ठ) नारी का पत्नी के रूप में चित्रण –

कथा साहित्य के क्षेत्र में रामकुमार ओझा ने भारतीय नारी के विविध रूपों को सम्मान देते हुए विशेष रूप से नारी का पत्नी के रूप में भी सराहनीय योगदान रहा है। इसी को ओझा जी ने अपने उपन्यास–रावराजा में उल्लेखित कर बताया है कि तू फिक्र न कर कोई तेरी पुलिस की नौकरी बीच में छोड़कर नहीं आया। पूरे बीस वर्ष फौज की नौकरी में बिताये हैं। फिरंगी अफसरों को ठगें पर रखा है। अभी छाती पर बहादुरी का तमगा लगा है। बूढ़ा ऐवजी मूछों पर बट देते कदम–कदम पहरा देने लगा।

रामसिंह दूसरे खण्ड तक जा चुका था। रूपराम भी तीसरे खण्ड की बालकनी में आया। एक चौबारे के दरवाजे को आहिस्ता से धकेला तो वह खुल गया। भीतर दाखिल हुआ, ओर आप की कुण्डी चढ़ा दी तो पलंग पर से उठते सेठ धनदास की बेटी गौरी ने पूछा, आज बड़ी देरी से आये।

नौकरी से लौट कर आया हूँ।

रूपराम खुलकर पछताया। मैंने तो हंसी की थी गौरी। न ज्यादा पढ़ा न कभी स्त्रियों की सोहबत में बैठा।

गौरी का आक्रोश फफक पड़ा। इतना जो जानते रूपराम कि पेट की भूख तन, मन की भूख से ज्यादा उत्तेजक होती है। बड़े–बड़े जोगी भी जतन करते हार गये। फिर हम साधारण जीव तो हैं ही किस गिनती में। पर तो मैंने तन की राह से ऊपर की मन की आँखों से देखा है रूपराम। आँखे से देखा है रूपराम नारी जितनी गहराई में बिना भीगे उतर जाती है। फिर भँवर पड़ती है। तीसरे फेरे में कुंवर सा ढह पड़ते हैं, जैसे–तैसे औपचारिकता पूरी की जाती है और उसे डोली में बैठा दिया जाता है। वह रोती है पर सभी लड़कियां तो डोली चढ़ते समय रोती हैं औरों का गाँव की सरहद तक का होता है जबकि गौरी के गाँव हवेली तक रोती गई।

सुबह टोले मौहल्ले की स्त्रियाँ रोने–धोने का अभियान कर चुकी तो पड़ोसी अर्थी उठा ले गये। मैं जरा भी न रोई न चूड़ियाँ तोड़ी। जब लुगाइयाँ अभिनय कर चली गई तो मैंने चूड़ियां उतारी और सहज कर पेटी में रख दी। वह जिस मोल पर अपनी मुक्ति का मार्ग सहज बनाना चाहता था। मैंने वह योजना तहस–नहस कर दी। अब न उसके प्रति आक्रोष था, न कोई हिसाब बाकी।

चील्ह दम्पत्ति ने सिखाया और तुम मुझे प्यार करने लगी यह कैसी पहेली है, गौरी? रूपराम ने अकबका कर पूछा "नदी और नारी बाढ़ चढ़ी हो तो अपने भीतर का सब दर्शा

देती है, लहरें फेन और कचरा किनारे पर पटक जाती है और निथरा पानी आगे बह कर शाँत हो जाता है। मैं भी चाहती हूँ कि सैलाब उतर जाये और मैं शाँत बन रह सकूँ।

पर तब रात न थी, भर दोपहरी में मैंने एक चील्ह दम्पत्ति को क्रीड़ा विभोर देखा था। मादा चोंच उठाये इसी की ओर सूखी शाख पर उसे चोंच से सहलाता पर मादा उड़ कर शाख बदल कर बैठ जाती। अचानक नर ने रूख पलटा, उड़ा और एक झपाटे के साथ धरती पर उतर गया। जब लौट कर शाख पर आया तो पंजों में एक पुष्ट चूहा दबोचे था। अब मादा खुद चलकर उसके पास आयी। चोंच से नर के पंख सहलाये और चूहा अपने पंजो में झपट लिया। नर ने गर्व से अपनी थूथनी उठाई। अब मादा समर्पित थी और नर प्रणयी। अब नर उसे चोंचों से कुतरने भी लगता तो मादा प्रतिरोध न करती, तुम्हारा पौरुष ही है, जिसने मुझे तुम्हारी और आकर्षित किया।[30]

(ड) रामकुमार ओझा की दृष्टि में नारी निष्कलंक रूप में –

रामकुमार ओझा ने भारतीय नारी को विशेष आत्म सम्मान का दर्जा देते हुए अपने आप को एक निष्कलंक नारी के रूप में भी अपनी कहानी–"भारमली नहीं भागी" में बतलाया हैं कि "नींद तो आई ही नहीं। हृदय–मंथन चलता रहा। भारमली, तूने यह क्या किया। तुम्हारा आचरण गाँव के लिए मर्यादा की सीमा रेखा हैं। पंच, प्रधान पंचायत के बीच तुम्हारी साख भरते हैं। पर सुबह सुबह पता चलने पर सारा गाँव तुम्हारे नाम, थू–थू करेगा। मुकर जा भारमली, अभी भी समय है।

वह खड़ी हुई खटिया पर बैठ गई। अब आकाश में चन्द्रमा नहीं था। अथाह गगन–सागर में डूब गया, चूड़ी वाला ही कह रहा था, भारमली डूब मरूँगा यदि तुमने मेरा साथ नहीं दिया।

"उस भले मनुष्य का क्या दोष? मैं ही बेल की भाँति पसरी और चारों और लिपट गई। न खामी देखी, न बराबरी पर विचार किया वह उभरते यौवन की तरंग और मैं भटकती लहर। यह तो नित्य नियम से जीवन बिताती आयी इसलिए शरीर नहीं ढला, उम्र का पता नहीं चला और भोग से काया खीझती है। मैं तो दस वर्ष की थी तभी विधवा हो गई, चूड़ी टूटने के साथ ही वर्जनाएँ शुरू हो गई। सास–ससुर भले सयाने पर जेठ शराबी था, उसकी स्त्री रोगीनी उसे मारता–पीटता और मुझे लाड लड़ाता। पर होष सम्भालने के साथ ही मैं उसकी नीयत समझ गई एक ऐसी ही रात वह नषे में धुत आया, उसके पैर डगमगा रहे थे। मैं सचेत थी भाग छूटी। जाते–जाते उसके सिर पर बायें पैर की जूती भी मारी।"

इसी ऊहापोह और अन्तर्द्वन्द में वह गहराई के चिन्तन में उतर जाती है। धीरे–धीरे सारे दृष्य उसकी स्मृतिपथ पर आते–जाते हैं। भारमली को इस बात की संतुष्टि है कि भले ही उसने अपना यौवन एकाकी व्यतीत किया हो, लेकिन जीवन के रंग राज से दूर रही वह अपने पैर कभी फिसलने नहीं दिया। पूर्वजों ने समाज के जो मूल्य और मर्यादा स्थापित की उसका उसने पालन किया इसीलिए कहानीकार भारतीय संस्कृति के अनुरूप उसके चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित करता है।

भारमली ने पुरखों के गाँव की मर्यादा नहीं तोड़ी। कभी दाग नहीं लगने दिया निष्कलंक है। पर ससुराल की भाँति पीहर में भी मनुष्यों का सम्मान किया। सिर्फ अँधी माँ और दमाग्रस्त बाप। इस हालात में मर्यादा से जीना सीखना पड़ा। बाप–दादा का घर–गुवाड़ और खेती–बाड़ी सम्भाली। गाँव गली में अपनी मर्यादा कायम की। भारमली ने जो निश्चय किया, उसे सदैव पूरा किया। आज तक किसी को धोखा नहीं दिया तो आज क्यों दे ? मन–मारकर बैठने वाली की समाज सराहना करता है। किन्तु मन की मुराद पूरी करने वाली को छिनाल कर देता है। मैं तो गले तक भर गई। बेहूदी मर्यादा से ईश्वर ने एक रूप दिया, अरमान दिए उन्हें रेत में मिलाकर प्रभु को क्या जवाब दूँगी। इस प्रकार भारमली एक पवित्र नारी के रूप में सामने आती है।

उसने मुँह पर पानी के छींटे मारे। दीपक जगाया पेटी खोली, दर्पण निकाला, कंघी थामी, बाल संवारे। माथे पर बिंदी लगायी फिर आँगन में आयी। सखी चमेली। तुमने दिन में अपने से जीती रही। अब मुझे जीना है। नीम के पत्ते झड़ रहे थे। यह क्या बसंत ऋतु में पतझड़। उसी समय मन के भीतर से फिर कोई बोला ऋतु के अनुसार नहीं अवस्था के अनुसार पतझड़ शुरू होता है। जानती है, यह नीम तेरे पिता का समवयसी है।

विधवा औरत पचीसी आते–आते अपने को गत यौवना मान लेती है। अँधेरे में कालों बालों के बीच में भी सफेद दिखते हैं। जो तूने संयम से काया को सम्भाल कर रखा है, तो पैदल चलते–चलते मेरा शरीर भी जीर्ण नहीं हुआ है। मैं कोई अनछुआ कुँवारा नहीं हूँ। मेरी पारो मुझे दगा देकर परमात्मा को प्यारी हो गई। मैंने उसकी छवि तुम में देखी तो तुम्हें दिल दे बैठा। नहीं रे झूठ मत बोल। सम्भाल अपनी कमाई की बचत। तू अपना पराया करती है, तो तेरी मर्जी पर मैंने तो तुझे उसने आव देखा न ताव भारमली की कलाई पकड़ चूड़ियां पहिना दी। भारमली ने गर्दन ऊँची करके उसे जी भर के देखा। वह बोली आ... भीतर... आ। अब मैं भागूँगी नहीं। तूने अँधेरे में चूड़ियाँ पहनाई, यह तेरी भूल है। मैं तो दिन के उजाले में माँग भरवाऊँगी। देखती हूँ कौन रोकता है। मुझे और अपनी निष्कलंक छवि को ऐसे ही कायम रखती है।"[31]

इस प्रकार ओझा जी ने अपनी कहानियों में नारी के पवित्र आचरण का चित्रण करते हुए पाठक को सदाचरण का संदेश दिया है। उन्होंने रेखांकित किया है कि नारी आत्म सम्मान और मर्यादा का निर्वाह करने वाली होती है। इस कहानी में भारमली एक चूड़ी बेचने वाले से सहानुभूति रखती है। जब वह भूखा–प्यासा आता है तो उसको खाना खिलाकर भारतीय गृहणी का फर्ज अदा करती है। चूड़ी वाला भारमली की इस सहानुभूति को प्रेम मानता है और उसके सामने साथ भाग चलने का प्रस्ताव रखता है। यद्यपि भारमली अब धीरे–धीरे उस चूड़ी वाले से प्रेम करने लगी है। लेकिन भारतीय समाज और संस्कृति व संस्कारों की प्रेरणा से वह उसके साथ भाग जाने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं करती है। इस प्रकार वह नारी की मर्यादा का संरक्षण करती है और कहानी के अंत में सामाजिक विधि विधान से विवाह कर लेती है।

5.3 निष्कर्ष –

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रामकुमार ओझा ने समकालीन युग के कथाकारों में अपनी अलग प्रकार की अमिट छाप छोड़ी हैं। इन्होंने विशेषकर भारतीय नारियों का अलग–अलग महत्त्व अपने साहित्य के क्षेत्र में बतलाया है, जिसमें ग्रामीण परिवेश, शहरी–परिवेश, कृषक वर्ग की नारियाँ, दलित नारी, शोषणहीन नारी, समाज से पीड़ित अबला का और धनाढ्य नारी को अपने कथा–साहित्य में नारी के महत्त्व को अलग अंदाज में बतलाया है। इनकी कहानियाँ में नारी के गतिशील जीवन का चित्रण है। ये कहानियाँ एक और जीवन–मूल्यों व सामाजिक परिवेश का महत्त्व बतलाती है, तो दूसरी और मनोवृत्ति से उत्पन्न जीवन–मूल्यों का परिचय भी देती है। इन कहानियों के माध्यम से संतोषजनक और प्रेरक अन्त तक पहुँचने में सामर्थ्य, सफलता का पर्याय देती है और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, यथार्थवादी जीवन परक दर्शन करती है और इन कहानियों में अपनी मन की वैचारिक भावना को ओझा जी ने पूरी ईमानदारी से व्यक्त किया है। वे अपनी बातों को कोई कल्पनागत रंग में न रंगकर उसे यथावत् प्रस्तुत करते हैं। वे अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। इसी अर्थ में ओझा जी की कहानियाँ जिनमें मुख्यतः "कौन जात कबीरा", "सिराजी व अन्य कहानियाँ", "आदमी वहशी हो जाएगा" का आज के समाज में एक अलग ही दर्पण की तरह है। इसलिए कहा गया है ओझा जी का सूक्ष्म कोई लोकोत्तर सत्ता नहीं बल्कि पूर्ण लौकिक इंसान का अन्तर्मन है, जिसमें विविध प्रकार की जटिलताएँ बढ़ती गई। एक प्रकार से ओझा जी की कहानियों का विकास स्थूल कर्त्तव्य भावना से मानवीय चेतना, की गुत्थियों को समझने तक में हुआ है। "वीथी से जनपथ तक की यह यात्रा पाठक के मन में केवल रोमांच पैदा नहीं करती, बल्कि उसे गम्भीर मानवीय चिन्ताओं

से जोड़ती है। व अनेक प्रकार के लेखक इस क्षेत्र में अपना विशेष प्रारम्भ कर प्रचुर मात्रा में रचना सामग्री प्राप्त करके एक सशक्त वर्ग से परिपूर्ण कहानियाँ भी साहित्य जगत् को प्रदान कर सकते हैं और इस संसार की मोह–माया में रंगरलियों में लिप्त होकर संसार के प्रत्येक व्यक्ति को समय–समय पर अवसर मिलता है। किन्तु उनके भाषा ज्ञान में या फिर अपनी ही लापरवाही की वजह से उनका साहित्य अतीत में खो जाता है, रामकुमार ओझा ने कहा है कि कहानीकार सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति से भिन्न प्रकार की प्रवृत्ति का होता है। इसके अलावा उसकी कहानी अत्यन्त सामाजिक, शहरी परिवेश, शोषक–वर्ग, धनाढ्य–वर्ग, मनोवैज्ञानिक, सभी प्रकार से होती है व उसमें कहानीकार अतिशय संवेदनशीलता को कूट–कूटकर, उनके भीतर रमा देता है और ये कथा–साहित्य पूर्ण रूप से विद्यमान कहानी में सत्य से जाँच–परख कर ही अपना कहानी का आकार लेती है। इस प्रकार ओझा जी की कहानियों में भारतीय नारी के विविध रूपों का जीवन्त एवं गतिशील चित्रण हुआ है। यद्यपि उन्होंने नारी जीवन की विविध संघर्ष स्थितियों का चित्रण किया है लेकिन नारी जिजीविषा की भूमि जीवन यापन करती दिखाई देती है।

सन्दर्भ सूची –

1. 'अकेली रात', 'कौन जात कबीरा', पृ. 43
2. 'शेष सब सुविधा', 'कौन जात कबीरा', पृ. 49
3. वही, पृ. 51
4. 'अच्चन काका', 'आदमी वहशी हो जाएगा', पृ. 13
5. 'बंधवा', 'आदमी वहशी हो जाएगा', पृ. 89
6. वही, पृ. 92
7. 'लाट बाबा', 'आदमी वहशी हो जाएगा', पृ. 34
8. 'सत्यमेव जयते,' 'कौन जात कबीरा', पृ. 5
9. 'स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में नारी का स्वरूप', श्रीधर शास्त्री प्रधानमन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग बहादुरगंज, इलाहाबाद, पृ. 10
10. वही, पृ. 18
11. 'कामायनी', जयशंकर प्रसाद,
12. 'सयाना', 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' रामकुमार ओझा, पृ.सं. 56
13. 'मुकामो', 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा, पृ.सं. 16
14. 'शेष सब सुविधा', 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ.सं. 51

15. वही, पृ. 91
16. वही, पृ. 93
17. वही, पृ. 72
18. वही, पृ. 72
19. वही, पृ. 73
20. वही, पृ. 73
21. वही, पृ. 13
22. 'मुकामो', 'आदमी वहशी हो जायेगा', रामकुमार ओझा, पृ.सं. 22
23. 'अकेली रात', 'कौन जात कबीरा', पृ. 47
24. 'शेष सब सुविधा', 'कौन जात कबीरा', पृ. 51
25. 'स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में नारी का स्वरूप', श्रीधर शास्त्री प्रधानमन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग बहादुरगंज, इलाहाबाद, पृ. 28
26. वही, पृ. 28
27. वही, पृ. 51
28. वही, पृ. 52
29. 'शेष सब सुविधा', 'कौन जात कबीरा', पृ. 51
30. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 20
31. 'भारमली नही भागी', 'कौन जात कबीरा', पृ. 60

अध्याय षष्ठम्

शैली एवं भाषागत सौन्दर्य

अध्याय षष्ठम्

शैली एवं भाषागत सौन्दर्य

6.1 शैली : सामान्य विवेचन–

'शैली' का सामान्य अर्थ अभिव्यक्ति की पद्धति या तरीका है। 'शैली' शब्द अंग्रेजी के 'Style' का हिन्दी पर्याय है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अपनी 'रीति–विज्ञान' पुस्तक में अंग्रेजी शब्द 'Style' ('शैली') के लिए 'रीति' शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने 'रीति' और 'षैली' को समानार्थक माना है। काव्य–शास्त्र के ग्रन्थों में रीति का तात्पर्य है– मार्ग जिसके द्वारा गमन किया जाये। इस शब्द की व्युत्पति 'रीयते गम्यते अनेन इति की गई है। डॉ. भोलानाथ तिवारी इस विषय में अपना मत देते हुए लिखते हैं– 'हम देखेंगे' स्टाइल अथवा 'शैली' भी संरचना की होती है। अतः इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं की रीति 'style' या 'शैली' है, किन्तु केवल प्राचीन अर्थ में यह ध्यान देने की बात है कि यह आवष्यक नहीं की प्राचीन अर्थ सुरक्षित हो और यदि ऐसा नहीं है तो किसी परिवर्तित अर्थ वाले शब्द का प्राचीन अर्थ में प्रयोग कभी–कभी भ्रामक हो जाता है।"[1] 'शैली' को समझने के लिए 'style' शब्द के मूल अर्थ और उसके इतिहास को संक्षेप में समझ लेना ही आवश्यक है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इस सम्बन्ध में लिखा है– 'स्टाइल' शब्द भारोपीय परिवार की भाषाओं में अपने मूल रूप में काफी पुराना है। अवेस्ता 'स्तएर' (Staera = पर्वत शीर्ष) ग्रीक में 'स्टाइलोस' (Stylos = स्तम्भ) तथा लैटिन में 'स्ताइलुस' (Stilus) आदि रूपों में देखा जा सकता है। लैटिन शब्द 'स्टाइलुस' का प्राचीनतम प्राप्त प्रयोग पत्थर, हड्डी या धातु से बनी उस कलम के लिए मिलता है, जिससे मोम चढ़ी टिक्कियों पर लिखते थे। विभिन्न प्रकार के लेखन के लिए विभिन्न 'प्रकार' के 'स्टाइलस' की 'आवश्यकता' पड़ती थी। इसी 'प्रकार' और 'आवश्यकता' के कारण इस शब्द के अर्थ में परिवर्तन के बीच पड़े और धीरे–धीरे पहले तो इस शब्द का प्रयोग लेखन के विभिन्न 'ढंगों' तथा 'प्रकारों' के लिए होने लगा और फिर 'भाषिक अभिव्यक्ति' (लिखित अथवा मौखिक) के ढंग के लिए यह प्रस्तुत होने लगा। अंग्रेजी, फ्राँसीसी, रूसी आदि अधिकांश यूरोपीय भाषाओं में यह लैटिन शब्द ही स्टाइल, स्टाइल, स्तील आदि विभिन्न रूपों में 'शैली' के लिए प्रयुक्त होता है।[2] इस प्रकार 'style' शब्द जिसके लिए हिन्दी में 'शैली' शब्द प्रचलित है। यह कथन विधि या अभिव्यक्ति की पद्धति का अर्थ देता है।

6.2 'शैली' अर्थ एवं परिभाषा –

भारतीय आचार्य 'शैली' शब्द को संस्कृत के शील धातु से 'अण्' प्रत्यय के योग से निष्पन मानते हैं।[3] शील के अनेक अर्थ है शील के अनेक अर्थ शब्द कोश में बताये जैसे स्वभाव, लक्षण, झुकाव, चरित्र आदि।[4] उपयुक्त सभी अर्थ व्यक्ति की विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हैं, जैसे स्वभाव मन की विशेष प्रकृति का द्योतक है। लक्षण स्वरूप की विषेषता का झुकाव रूचि की विशेषता और आदत कर्म की विशेषता का इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'शील' शब्द का क्षेत्र व्यापक है। उसका सम्बन्ध मनुष्य की मनोवृत्ति, रूचि, आदत, व्यवहार, चरित्र आदि विभिन्न पक्षों से है। 'शील' से उत्पन्न, 'शैली' शब्द का व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषता उसके क्रिया–कलापों एवं रचना कौशल से अधिक सम्बन्ध है। 'शैली' के शब्द कोशगत के अनुसार अर्थ हैं, ढंग, प्रणाली, रीति, प्रथा और कथन, विधि का विशिष्ट प्रकार आदि।[5] इस प्रकार 'शैली' शब्द के मूल्य में शील शब्द है, जिसका प्रयोग वैदिक काल से ही होता आ रहा है। उदाहरण के लिए माध्यदिन संहिता (30–40) में शील देवता विशेष है, जिसका मध्य–आंजनी विधा है। इस विधा में लिपना आंजना तथा पॉलिश करना आदि का आना शील शब्द के अर्थ के स्तर पर 'शैली' के काफी नजदीक ला देता है।"[6]

6.3 'शैली' परिभाषा –

'शैली' की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने अनुसार प्रस्तुत की है। यहाँ हम कुछ विद्वानों के विचारों का उल्लेख कर रहे हैं।

मरि– 'शैली' भाषा की उस विशेषता का नाम है, जो किसी के भाव अथवा विचार को ठीक–ठीक व्यक्त करती है।"

प्लेटो– "जब विचार को रूप दे दिया जाता है, तो 'शैली' का जन्म होता है।"

शापनहावर– 'शैली' मस्तिष्क की बाह्याकृति है।"

एलिस– "कुछ लोगों की यह मान्यता रही है कि 'शैली' विचार या दृष्टि है। 'शैली' विचार ही है।"[7–10]

अरस्तू– 'शैली' से वाणी में वैशिष्ट (चमत्कार) का समावेश होता है।[11]

गैटे– "किसी लेखक की 'शैली' उसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि।"[12]

स्विफ्ट– "उचित स्थान पर उचित शब्दों के संयोजन को 'शैली' कहा जा सकता है।"[13]

चेस्टर फील्ड– 'शैली' विचारों की वेशभूषा है।"[14]

न्यूमैन– 'शैली' भाषा के माध्यम से सोचना है।"[15]

एलिस– "कुछ लोगों की मान्यता रही है कि 'शैली' विचार या दृष्टि है।"[16]

6.4 शैलीगत विशेषताएँ –

ये स्पष्ट कर चुके हैं कि 'शैली'एक अभिव्यंजना का प्रकार है। बात कहने के अनेक प्रकार होते हैं, जिनमें से प्रमुख रूप से विचारात्मकता, भावात्मकता, विवरणात्मकता, संवादात्मकता, आँचलिकता, संस्कृतनिष्ठता और अलंकारिता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। रामकुमार ओझा के कथा–साहित्य में उपर्युक्त शैलीगत विशेषताएँ अनेकत्र प्राप्त होती है। यहाँ हम उनकी कहानियाँ एवं उपन्यासों से उदाहरण लेकर अपनी बात प्रस्तुत करेंगे–

(क) विचारात्मक शैली –

विचारात्मकता वही होती है, जहाँ लेखक किसी विषय पर विचार करता हुआ चलता है, रामकुमार ओझा ने अपनी कहानियों में अनेक स्थानों पर किसी विषय अथवा घटना, पात्र, परिस्थिति, देशकाल, वातावरण, विचारात्मक 'शैली' का प्रयोग किया है। यहाँ हम एक–दो उदाहरण देकर अपनी बात पूरी करेंगे। "दिन में काम करते जो मुँह पर कालिख लगती है। उसे रातभर वह वैसे ही रहने देता है। वह दिन में 'हेड' से डरता है और रात को उसे शक्ल डराती है। इसलिए वह दीवार पर शीशा नहीं टाँगता। सुबू–सुबू उसे कालिख धोनी पड़ती है। कारखाने का नियम है कि मुँह धोकर गेट से घुसो और मुँह काला करवाकर पीछे के गेट से खिसको। मशीन काम करते–करते थककर सोने लगती है। धागे टूटने लगते हैं। पर थकी मशीनें ज्यादा शोर करती है। वे आदमी को झाँसा देती है और आदमी उनको ठोक–पीटकर राह कर लाता है। हर साल शोर बढ़ता है। बहरहाल आदमी अपने दिमाग की ईजाद मशीन के अधीन होकर जीना सीख रहा है। मशीन शनैः–शनैः उसे वहषी बनाने का ताना–बाना बुनती है। आदमी हजार हाल शोर से बचना चाहता है। पर बगैर शोर अब गुजारा नहीं होता और यह शोर ही है कि जिसके मारे दुनिया के सारे आदमी पगलाये जा रहे हैं। 'आज का दिन भी बरकतों वाला है। उसे अपने सवालों का जवाब मिलने लगता है।' अब कोई चारा नहीं कि आदमी शोर से बच सके। शोर ही है, जो आदमी की संवेदना को लील रहा है। भावना पर परत–दर–परत भोर का वरक जम गया है। अब आदमी को ख्याल ही नहीं कि वह क्या बन रहा है।[17]

उपर्युक्त पंक्तियाँ ओझा जी द्वारा लिखित 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी से उद्‌धृत है। इस कहानी में बतलाया है कि कुछ मजदूर वर्ग के लोग जो सेठ के यहाँ मशीनरी का काम किया करते हैं और दिनभर मजदूरी करते हुए इन मजदूर युवकों के मुँह पर कालिख जम जाती है और ऐसा लगता है कि ये लोग काम करके जाते समय सेठ के डर से मुँह तक नहीं धोते हैं। मजदूरों, को ऐसा महसूस होता है कि हमारा हैड दिन में हमें

डराता है और रात को हमारी शक्ल हमें डराती रहती है। सुबह उठकर ही ये लोग अपनी कालिख या मुँह जो काला हो जाता है, उसको धोते हैं और इन मजदूरों के काम करने वाले कारखाने का नियम भी है कि मुँह धोकर प्रवेश करो और मुँह काला करवा कर बाहर निकलो वो भी पीछे के गेट से और इन मशीनों के शोर से आज मजदूर पगलाया जा रहा है। ये शोर ही है जो मजदूर आदमी को लील कर रहा है और एक दिन ये इसकी लीला भी समाप्त कर देगा, लेकिन लेखक ने बतलाया कि मजदूर पगलाया सा हो गया है। लेकिन फिर भी अपने कार्य को करने के लिए पीछे नहीं हटता है और परत–दर–परत विकास की और गर्त में डूबा जा रहा है। उसे खुद भी नहीं पता कि वो क्या बन रहा है और अपनी कड़ी मेहनत कर मजदूरी करता रहता है। ओझा जी ने अपनी विचारात्मक शैली में मजदूरों की दयनीय एवं यथार्थ स्थिति का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया है कि मजदूर अत्यन्त कठिन परिश्रम करते हैं फिर भी उन्हें उचित पारिश्रमिक मिलना तो दूर रहा उनके प्रति संवेदना भी सेठ के द्वारा अभिव्यक्त नहीं की जाती है।

इसी प्रकार रामकुमार ओझा ने इसी कहानी संग्रह में संकलित 'सड़क' कहानी से विचारात्मकता से सम्बन्धित एक उदाहरण को बताया है जो इस प्रकार से है देखिये– "मुझे याद आया किसी दिन पहले भी इसी सड़क पर एक कुतिया पाँच मील तक पीछे लगी मेरे घर तक आ गयी थी। मोनू–सोनू ने उसे देखा। पसन्द आ गयी। रोटी डाली तो पहले सूंघ फिर बच्चों ने गले में पट्टा डाल दिया तो भी गुर्रायी नहीं। पालतू बन गयी। अब वह हर गर्मी में कुत्तों की भीड़ जुटाती और सरदी के मौसम में एक साथ कई पिल्ले जनती है। यह औरत भी तो उसी तरह मेरे घर में रह सकती है। पट्टे में बंधकर पालतू बनकर न सही, नौकरानी बनकर रहे तो किसी को क्या एतराज हो सकता है।

कविता को एक नौकरानी की जरूरत भी तो है। कई दफा कह चुकी है। इस विचार के साथ ही मैं औरत से मुखातिब हुआ।

'तुमने कहा था ....।'

'हाँ, कहा था।'

औरत काफी सयानी साबित हो रही थी, उसने सहज ग्रामीण सूझ से मेरा आशय भांप लिया तो विराम कर आते बोला।

'नौकरानी बनकर रह सकोगी?'

'नौकरानी छोड़ पटरानी बनाकर कौन मुझे अपने घर रखेगा।' औरत ने हाशिये पर खड़ी होते उतर दिया।

'चौका, पौंछा, बुहारी झाड़ू, जूठे बर्तन और 'और' के अलावा सब सम्भाल लूंगी। बस इसी एक 'और' के सिवा, जिसकी घिन से घिनाकर घर छोड़ आई हूँ।"[18]

इसी तरह ओझा जी ने 'उक्त' कहानी संग्रह की 'सड़क' कहानी में कविता नामक युवती के पति के द्वारा लायी गई नौकरानी का चित्रण किया है। उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ये बता रहे हैं कि कविता का पति उस नौकरानी को इस प्रकार से घर लाता है। जैसे बच्चे राह चलते पिल्लो के पट्टा बांध कर लाते हैं वैसे ही ये इस औरत या नौकरानी को भी पालतू बनाकर रखना चाहता है और पालतू ना सही अगर नौकरानी बनकर रहे तो किसी को कोई एतराज नहीं और इसी बीच कविता नौकरानी के बारे में विचार करने लग जाती है कि लुगाई तो काफी सयानी लग रही है। हाँ औरत जब कविता का पति औरत से वार्तालाप कर कहता है नौकरानी बनकर रहोगी, नौकरानी छोड़ पटरानी बनाकर मुझे कौन रखेगा। औरत ने तुरन्त कविता के पति को उत्तर दे दिया। चौका, पोछा, बुहारी और सब सम्भाल लूँगी। इसी बात पर विचार करते हुए कविता अपने पति से नौकरानी के सम्बन्ध में विचार करती है।

(ख) संवादात्मक शैली –

संवाद शब्द संस्कृत की 'वद्' धातु में 'सम्' उपसर्ग के योग से बना है। 'वद्' धातु का अर्थ होता है बोलना या कहना जब दो स्त्री–पुरुष पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं तो वह संवाद कहलाता है। अंग्रेजी में संवाद के लिए (Dialog) शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार संवाद का तात्पर्य कहानी व उपन्यास में वर्णित पात्रों का आपसी वार्तालाप जो एक–दूसरे से कथा–साहित्य के अन्दर करते हैं, संवाद कहलाता है। या यूँ कहे की एक स्त्री पात्र, अपने ही कहानी या उपन्यास में दूसरे स्त्री या पुरुष पात्र. को कथन के माध्यम से या किसी उदाहरण के माध्यम से जो बात कहता है संवाद कहलाता है। रामकुमार ओझा के कथा–साहित्य में अनेक प्रकार के ऐसे संवादों का प्रयोग देखने को मिलता है चाहे वह स्त्री या पुरुष पात्र है।

ओझा जी ने अपने कथा–साहित्य में पात्रों का वर्तालाप या संवादों को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है –

(क) संक्षिप्त संवाद

(ख) दीर्घ संवाद

(ग) हाजिर जवाबी संवाद

(घ) नाटकीय संवाद

(ङ़) चरित्रोद्घाटक संवाद

(च) प्रसंगानुकूल संवाद

(छ) कथा को गति देने वाले संवाद

(ग) संक्षिप्त संवाद –

संक्षिप्त संवाद वे कहलाते हैं, जिनमें साहित्य के किसी भी विधा में लिखे गये कृत्ति के अन्तर्गत पात्र आपसी वार्तालाप के दौरान अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं। कहने का आषय यह है कि पात्र कम शब्दों के वाक्यों में अपनी अभिव्यंजना प्रभावक रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ हम उनके उपन्यासों एवं कहानी संग्रहों से कुछ उदाहरण उल्लिखित कर रहे हैं, जिनसे स्पष्ट हो सकेगा कि संक्षिप्त संवादों के माध्यम से कथन में प्रभावात्मकता की वृद्धि हुई। देखिए– "मियाँ पिछला हिसाब चुकता और आइन्दा के लिए कोई और ढ़ाबा ढूँढ लो अब हमारा ढ़ाबा वैष्णव हो गया है।"

"बनिये ने छूटते ही पूछा, 'मियाँ, बर्तनों में गोश्त तो नहीं पका है।"

"मियाँ और मुसलमान भर रह गए। भरे मन से उत्तर दिया "शर्म तो करो कालू भैया।"[19]

"मुसलमानों ने आकर कहा– 'अच्चन मियाँ, तुम काफी कुफ्र कर चुके और न करो।"[20] इस उदाहरण में अच्चन मियाँ छोटे–छोटे वाक्यों मे अपने मंतव्य को प्रकट करता है।

इसी प्रकार से ओझा जी ने स्त्री–पुरुष पात्रों को 'सूखे की एक रपट' कहानी में बताया देखिये– "साथ के बूढ़े ने उसे हमारा परिचय दिया तो वह खीसें निपोरते बोला– "ब्यौपारी हूँ सा, के करूँ?"

""किसी और से भी मिल सकते हैं हम यहाँ? मैंने प्रश्न किया?"

"हाँ, एक है गाँव की बूढ़ी दाई। जात की चमारिन है।"

"ब्राह्मण का बेटा है, चमारिन के गूदड़ों में सो जाता है। जन्म भर छूत न जायेगी।"

"मैंने माँ से पलट कर पूछा तो वह बोली– "उसने दूध सेंत में थोड़े पिलाया है।"

"लेकिन जब मैंने पुकारा– दाई माँ मुझे पहचानो"[21] इसी प्रकार इन पंक्तियों में सलौनी, ब्राह्मण, ठाकुर संक्षिप्त संवाद में अपनी बात करते हैं, देखिये–

"ठाकुर ने और क्या कहा मेरे साथियों ने उस मृत शरीर के साथ कैसा सलूक किया।"

"सलौनी का साहब जवाब दे गया। काकू आज देर से आयेगा।"[22] इसी तरह ओझा जी ने अन्य उदाहरण से 'कौन जात कबीरा' संग्रह में से बताया है–

"ए सलौनी काकू! काकू अभी नहीं आया?"

"औसारे में घुस चली और वहीं से पूछा– 'पर तू आज सई–साँझ ही कैसे लौट आया रे?"

"बड़ी बेगानी हो गई री अब तो तू। ले उठा माचिस और जला ढिबरी।"

"ए अब तू क्यों खड़ा है, मुझे डाँट बतलाकर अब आप भीगने लगा।"

"जीतू पलटकर बोला – मेरी बात और है री।"

"दस–बीस ले ले।"

ले लूँ?

और क्या।"[23] इसी तरह "सरदी और साँप" कहानी में कुछेक उदाहरण प्रस्तुत है, देखिये– "ऐ तैने यह क्या किया।"

कुछ भी तो नहीं, तैने कहा और मैंने तेरे उपले ले लिये।"

"क्यों, क्या है री?"

"कुछ भी तो नहीं।"

तो यहाँ खड़ी क्यों चीख रही है?"

"यही कहने आई थी तू यहाँ?"

"और क्या? सलौनी को जैसे एक जवाब मिल गया।"

"मुझे तो बड़ा डर लग रहा है।"

"तो इधर क्यों नहीं चली आती?"

"सी .... ई अब तू तेल भी लाएगी या खड़ी उपदेश ही बघारती रहेगी।"[24] इसी तरह ओझा जी ने 'उक्त' कहानी संग्रह में से कुछ उदाहरण दिये हैं–

"देखूँ तो कहाँ जाता है? जीतू ने हाथ फैला दिया।"

"तू तो पूरा हाथ ही जला बैठा।"

"और क्या यूँ ही.........? और जीतू हँस दिया।"

"यूं रोज हाथ जला करे, मेरा जी चाहता है सलौनी।"

"एँडी–बैंडी बातें मत कर, बोल अब जलन है।"

"सलौनी, इसी का नाम तो मजबूरी है" और जीतू एक लम्बी साँस लेकर चुप साध गया।"[25] इस प्रकार से ओझा जी ने 'उक्त' कहानी संग्रह में से उदाहरण बताये हैं–

"सच कहूँ या झूठ?"

"जो तेरे जी आये सो कह दे।"

तो है भी और नहीं भी।"

"तू कोई बीरबानी क्यों नहीं ले आता जीतू?"

"किसी दिन में कहूँगी काकू से।"

"ए, तू अपनी बात आप क्या कहेगी?"

हाँ जीतू।

जलन हो रही है।"[26]

इसी प्रकार ओझा जी ने 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' संग्रह में संकलित 'सिराजी' कहानी से भी कुछेक संक्षिप्त संवाद प्रस्तुत किये हैं, देखिए–

"ये ऐसा ऐसा शिमला।

मगर हम वो तुमको कैसे सुनायें।"

"एक दिन मैंने न जाने क्यों पूछ लिया,

पिन्टो, तुम्हें अगर एक साथ काफी रुपये मिल जाए तो तुम उन्हें खर्च कैसे करोगे।"[27] उपर्युक्त पंक्तियों, में इसी प्रकार से सिराजी, पिन्टो अपनी बातों के मंतव्य को स्पष्ट कर रहे हैं। इसी तरह 'रावराजा' उपन्यास में से कुछेक उदाहरण दृष्टव्य है देखिये– "और क्या।"

भगवान किसी को वह घड़ी तो दिखाये ही नहीं। पर आखिर सारा धन जेवर छिपा कहाँ दिया हरखू की बहू" इसी तरह अन्य उदाहरण में बताया– "हाँ ठीक, तो है बहू" "तो अब चलू सेठानी साँझ होने को आई" "अरे अभी चली। मिशरानी जी" "नाराज न होना गुरु"

"देसी से काम नहीं चलेगा गुरू"[28] उपर्युक्त पंक्तियों में मिशरानी, बहू, गुरू–चेला ये सब लोग अपने, छोटे–छोटे वाक्यों के माध्यम से अपनी बातों के मंतव्य को पूर्णतया स्पष्ट कर रहे हैं।

(घ) दीर्घ संवाद –

दीर्घ संवाद वे कहे जाते हैं, जहाँ पात्र अपने मंतव्य एवं साहित्यकार के संदेश को लम्बे–लम्बे वाक्यों में प्रस्तुत करते हैं। ओझा जी ने अपने कहानी संग्रहों व उपन्यासों में मुख्य व सहयोगी स्त्री और पुरुष पात्रों का लम्बे–लम्बे वाक्यों में वार्तालाप चित्रित किया है। उनके कथा–साहित्य के अन्तर्गत ऐसे अनेकों प्रकार के उदाहरण दीर्घ संवाद के रूप में स्त्री व पुरुष पात्रों की बातों के वर्णन–विश्लेषण को लेकर देखे जा सकते हैं। कहीं–कहीं वाक्य इतने लम्बे हो गये हैं, कि उन्हें पढ़ते हुए पाठक ऊब जाता है लेकिन फिर भी चारूत्व और निरन्तरता बनी रहती है। यहाँ अनेक कहानी संग्रहों और उपन्यासों से कुछ उदाहरण प्रस्तुत है।

इसी तरह से ओझा जी ने अपने उपन्यास 'अश्वत्थामा' में से एक संवाद दृष्टव्य है देखिये– "तात श्री अनुकूल हो, आज मुझे बहुत कुछ कहना है। आपने अर्जुन के हित में

कर्ण को अपमानित होने दिया। उसी का अद्वितीय धनुर्धर बनाये रखने के लोभ में बेचारे एकलव्य का दक्षिण हाथ का अँगूठा गुरुदक्षिणा के रूप में माँग लिया और मुझे दिव्य अस्त्रों से वंचित रखकर अपने ही पुत्र को उसके प्राप्य यशोलाभ से अर्जुन को विभूषित किया। अकेला अर्जुन ही नहीं सौ धृतराष्ट्र पुत्रों के मुकाबले आप सदैव पाँचों पाण्डु–पुत्रों के प्रति अनुरक्त रहे। क्या यही आपका अनुशासन और आचार्य पद की निष्पक्षता है?"[29]

उपर्युक्त पंक्तियों में तात श्री अनुकूल अद्वितीय धनुर्धर का वर्णन किया गया है, जिसमें अपने अंगूठे को काटकर भी गुरू–दक्षिणा के रूप में दे देता है और अनुशासन का उदाहरण पेश करता है।

(ड़) हाजिर जवाबी संवाद –

कहानी और उपन्यास में जब एक पात्र दूसरे पात्रों के प्रश्नों का जवाब और एकदम सटीक देते हैं, तो उन्हें हाजिर जवाबी संवाद कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब किसी एक पात्र की कही गई बात का दूसरा पात्र तुरन्त एवं प्रभावी उत्तर देता है तो वह हाजिर जवाबी संवाद कहा जाता है। रामकुमार ओझा के कथा–साहित्य में हमें ऐसे यथा स्थान पर कई उदाहरण मिल जाते हैं, जहाँ उनके पात्र सटीक और तुरन्त ऐसा उत्तर देते हैं कि प्रश्न करने वाला निरूत्तर हो जाता है। यहाँ कुछ उदाहरण देकर हम अपनी बात स्पष्ट करेंगे– लेखक ने अपने कहानी संग्रह की कहानी 'शेष सब सुविधा' में संकलित स्त्री पात्रा शोभा बहू व दादी अम्मा का वर्णन कहानीकार ने बताया है, देखिये– "भोर के साथ दादी अम्मा को अपने मिट्‌टी के चूल्हे की याद आती। भट्‌टी जैसा चूल्हा। लकड़ी, उपलों का ईंधन, पर इस शहराती घर में जिस सुबह घर आई, ठिठुराती सी बोली– "बहू चूल्हा नहीं है?"

शोभा बहू ने पलट कर बतलाया। "अम्मा जी। यहाँ मिट्‌टी का चूल्हा कहाँ? यहाँ तो गैस से जलने वाला लोहे का जंतर है, बस यहाँ एक यही दुविधा है शेष सब सुविधा है।"[30] इस तरह ओझा जी इसी कहानी संग्रह में संकलित 'सरदी और साँप" कहानी में जीतू व सलौनी की आपसी वार्तालाप को भी प्रस्तुत किया जा सकता है – "ऐ सलौनी देख जलन हो रही, जरा सहला दे।"

"मेरा सहलाए ठेंगा, "और वह सूं–सूं करती औसारे की ओर बढ़ गई। जीतू ने उचककर पीछे से ओढ़नी थाम ली तो इस दफा वह बल खा गयी। छोड़ मेरी ओढ़नी। देख छोड़ता है कि नहीं– का .... आ..........आ।"[30]

(च) नाटकीय संवाद –

नाटकीय संवाद ऐसे संवादों को कहा जाता है, जिनमें पात्र उत्तर–प्रत्युत्तर देते समय या वार्तालाप करते समय नाटकीय ढंग से बातचीत करते हैं अर्थात् पात्रों के कथनों में किसी बात को नाटकीय रूप में कहने की प्रकृति दृष्टिगोचर होती है। वैसे नाटकीय संवाद प्रमुख, रूप, से नाटकों में पाये जाते हैं। कथा–साहित्य में तो कहीं–कहीं देखने को मिलते हैं। हमारे शोध अध्ययन के कथाकार ओझा जी के कथा–साहित्य में भी नाटकीय संवाद जहाँ–तहाँ देखने को मिल जाते हैं। यहाँ हम उदाहरण के लिए एक–दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। ओझा जी के कहानी संग्रह 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' में संकलित 'सयाना' कहानी में वर्णित स्त्री पात्र राधा जो कि वह हिस्ट्रीरिया रोग से ग्रस्त है, व उसका विवाह सही उम्र में नहीं हो पाता है, फलस्वरूप वो इस रोग से पीड़ित हो जाती है, और उसकी माँ व गाँव वाले उसकी अवस्था को देखकर उसमें भूतनी की फटकार मानने लग जाते हैं और एक सयाना को बुलाते हैं। राधा की भूतनी निकालने के लिए और वह उसके सुडौल आकृति वाले शरीर को देखकर उसके शरीर के एक–एक अंग को टटोलने लग जाता है और नाटक करते हुए उसके पूरे जिस्म का आनन्द लेता है भूतनी का नाटक करता है। उसी को कहानीकार ने बताया है– "मुझे कुछ नहीं हुआ है। मैं हाथ जोड़ती हूँ तुम चले जाओ।" "इलम का असर तुम्हारे भीतर उतारे कैसे चला जाऊँ। अब आया हूँ तो भूतनी निकाल कर ही जाऊँगा।"

"यहाँ कोई भूतनी नहीं है। मेरा तो कभी–कभी यूँ ही जी खराब हो जाता है।"

"हूँ .... यही तो भूतनियों की आदत होती है।

अपने होने से मुकर जाती है। सयाने के सामने दुबक जाती है और फिर सिर पर चढ़कर बोलने लगती है। मोती की नशीली नजरें उसके चेहरे पर तथा हाथ अंग–अंग टटोलते भटके–भटके। राधा को झुरझुरी चढ़ने लगी। धमनियों में कच्चा पारा प्रवाहित होने लगा। मूर्छना में चाहा वह मोती को मसल–मसल मारे। अतः सप्रयास प्रतिरोध पर उतर आई। गला घुटे जा रहा था, फिर भी बोली, "मैं शौर मचा दूंगी। चिल्लाने लगूँगी।" और वह शक्ति भर चिल्लाई भी। लोगों ने सुना तो सरगोशियां होने लगी। "भूतनियां जब्बर है। बरोबर मुकाबला किए जा रही है।"[31]

इसी तरह ओझा जी ने 'रावराजा' उपन्यास में से नाटकीयता के कुछेक उदाहरणों को भी प्रस्तुत किया है जो निम्न प्रकार से है– "रूपराम खुलकर पछताया" मैंने तो हंसी की थी गौरी। न ज्यादा पढ़ा न कभी स्त्रियों की सोहबत में बैठा।" गौरी का आक्रोश फफक पड़ा। "इतना जो जानते रूपराम की पेट की भूख तन, मन की भूख से ज्यादा उत्तेजक

होती है। बड़े–बड़े जोगी भी जतन करते हार गये। फिर हम साधारण जीव तो हैं ही किस गिनती में। पर तुम्हें तो मैंने तन की दाह से ऊपर उठकर मन की आँखों से देखा है रूपराम।"[32]

उपर्युक्त पंक्तियों में गौरी, नामक युवती जो तन–मन के भूख की प्यासी है वो अपने प्रेमी रूपराम को इशारों में समझाते हुए नाटकीय भाव से अपने झाँसे में लेकर फँसाना चाहती है व अपनी तन की भूख मिटाना चाहती है। रूपराम भोला–भाला व्यक्ति है और बात को मजाक के रूप में टालता है तो गौरी कहती है कि रूपराम मैंने तुझे तन की दाह या आग से भी, ऊपर उठकर प्रेम किया है व मेरी प्यास मिटा दो, गौरी–रूपराम से अपनी बातों को नाटकीय अंदाज में प्रस्तुत करते हुए अपनी तन की भूख को अपने प्रेमी के सम्पर्क में आकर मिटाना चाहती है। इसी तरह ओझा जी ने 'कौन जात कबीरा' कहानी संग्रह में संकलित 'सरदी और साँप' कहानी में वर्णित पात्र जीतू और सलौनी का संवाद भी नाटकीयता की दृष्टि से उल्लेखनीय है– "सूनो काकू, यह जो जीतू है न बड़ा अच्छा है, बड़ा बहादुर है।"

काकू के तेवर जरा सीधे हुए पर वह बात को समझना चाहता था, किन्तु सलौनी थी जो आकल–बाकल बके जा रही थी। अन्त में उसने जीतू से पूछा तो वह झिझका– 'यह जो कुठला है न काकू, हाँ है न ..... ना काकू।

सलौनी हड़बड़ाकर फिर बोली

"वही काला साँप था काकू, सलौनी ने देखा तो चीख मार भागी।"

"और तभी जीतू लपक कर इस पर आ गया।"

"डण्डा खोजने में जरा देर हुई–

"तो साँप सरसराता हुआ औसारे की छत में घुस गया।"

"और अभी तक नहीं है।"

"हम दोनों तब से यहीं खड़े हैं।"

"आज रात इधर सोना खतरनाक है काकू।"

"काकू इत्ता लम्बा है।" सलौनी ने हाथ फैला दिया। "मुझे तो बड़ा डर लगता है। कलेजा धक्–धक् कर रहा है।"[33]

उपर्युक्त उदाहरण में जीतू और सलौनी आपस में प्रेम करते हैं उनका यह प्रेम दोनों के भीतर चलता रहता है। एक दिन जब वे आपस में प्रेमजन्य आलाप कर रहे थे, उसी समय सलौनी के काकू अचानक आ जाते हैं, काकू के अचानक आने से सलौनी हतप्रभ रह जाती है और बड़े नाटकीय ढंग से अपने प्रेम और उससे उत्पन्न होने वाली

हलचल को छुपाने के लिए जीतू को सम्बोधित करती हुई कहने लगती है कि जीतू यहीं कठूरा के पास साँप था, जिससे काकू ये समझे की सलौनी के अकेले में जीतू और किसी कारण से नहीं अपितु साँप होने की वजह से सलौनी के बुलावे पर आया है। इन सारे प्रसंगों को जीतू और सलौनी के उक्त नाटकीय संवाद में देखा जा सकता है।

(छ) चरित्रोद्घाटक संवाद –

सामान्यतः ओझा जी ने अपने समस्त कथा–साहित्य में चरित्रोद्घाटक संवाद का प्रयोग भी एक बहुमूल्य हीरे की तरह किया है, जिसमें इन्होंने मुख्य रूप से कहानियों में स्त्री और पुरुष पात्रों को लेकर किये गये संवाद मुख्य व विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चरित्रोद्घाटक वे संवाद कहलाते है जिनमें पात्रों के आपसी वार्तालाप में उनके चरित्र एवं कर्त्तव्य के बारे में प्रकटीकरण हो जाता है। देखिये– "लक्ष्मी बहू जब निरापद गाँव की सीमा में घुस गयी तब भी रामसिंह वापिस न लौट सका। उस समय उसकी मनोदशा उस भक्त के समान थी, जो अपनी आराध्य के मंदिर की सरहद से बिना दर्शन किये नहीं लौट जाना चाहता था। पर कहीं, भीतर का आग्रह यह भी था कि रामसिंह खेल समाप्त हो चुका। बेहतर यही है कि जैसे जिसे छोड़ भागे, उसे अब भी छोड़कर ही लौट जाओ। पर वह अपने को रोक न पाया। वनराजी के सघन वृक्षों की ओर में वह सधे कदमों गाँव की ओर बढ़ने लगा पर फिर ख्याल आया। बेहतर यही है कि अभी रात और ढ़लने दी जाये। लक्ष्मी बहू लौटकर जायेगी तो बड़ी रात गये तक हवेली की गहमा–गहमी बनी रहेगी। अतः ढलती रात ही जाना ठीक रहेगा। वह झुरमुट की ओट में हो रहा तो कोई झाड़ों के भीतर से निकल कर भागा। दुष्कर्म की ओर बढ़े जाता रामसिंह डर गया पर भागने वाला कोई मनुष्य नहीं एक सियार था।"[34] इसी तरह ओझा जी ने अपने उपन्यास रावराजा में से एक अन्य उदाहरण को बताया है, जो इस प्रकार से है देखिये– "रामसिंह को भी महसूस हुआ कि पारो आधी रात को भी पलंग पर उठ बैठी, उसकी याद में आँसू बहा रही है, अपने किये पर पछता रही है, जैसे ही वह लौट कर जायेगा, पारो विलस कर उसके पांवों में पसर जायेगी। पर इस दफा, वह उसे न बक्सेगा। उसके अंग–अंग को एक में चिंचौड़ कर दह सब वसूल कर डालेगा, जिससे उसने पहले अपने को वंचित किये रखा। यदि पहले ही उससे शारीरिक सम्बन्ध बना चुका होता तो यह नौबत ही नहीं आती। कुछ औरतें केवल मन से बंधती है पर ऐश्वर्य में पली पारो तो मन के नहीं तन के सम्बन्ध के लिए लालायित थी। उसने पहले जो भूल की थी, इस दफा न करेगा। ऐसा–ऐसा नाग फाँस में बाँधेगा कि समय आने पर ऐसा बेशहर वहली प्यार करेगा, जिसकी पारो जैसी डहडही नारी आकांक्षिणी है। इसी उत्साह के अतिरेक में वह लम्बे–लम्बे डग बढ़ाते, गाँव की ओर बढ़

चला।" इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण में बताया है– "रामसिंह को वहीं खड़ा देख चीख मार पलंग पर दुबक गयी और चिल्लाती सी बोली– "जाओ चले जाओ मैंने कभी तुम्हारे साथ मुँह काला नहीं किया। भटकने से पहले बीच राह से लौट पड़ी। अब तुम कोई दुराशा न पालो। वरना नतीजा बहुत खराब हो सकता है।" सहसा उसे मायाराम की उपस्थिति का भान हुआ तो मुँह ढक कर बिसूर–बिसूर कर रोने लगी। वह फिर न चीखने लगे इसलिए मायाराम ने उसे प्रबोधते हुए शान्त रहने को कहा। तुम यहाँ किस इरादे से आये हो।"[35]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने चरित्रोद्‌घाटक संवाद के माध्यम से लक्ष्मी बहू और रामसिंह की बातों को स्पष्ट कर बताया है कि रामसिंह एक अश्लील प्रवृत्ति का व्यक्ति है और लक्ष्मी बहू पर गन्दी दृष्टि रखता है लेकिन फिर भी लक्ष्मी बहू अपने चरित्र के प्रति उत्तम होती है और जरा सा भी दाग नहीं लगने देती है। सम्पूर्ण उपन्यास में रामसिंह को अश्लीलता की प्रवृत्ति का व्यक्ति माना गया है। दूसरी तरफ पारो नामक युवती को अपने प्रेम जाल में फँसा चुका है जो कि रामसिंह की याद में आँसू बहा रही है और उसको एक सज्जन पुरुष का दर्जा देते हुए कहती है कि रामसिंह जब भी आयेगा उसके चरणों में गिरकर माफी माँगूगा इसी तरह के चरित्र से सम्बन्धित संवादों को स्पष्ट किया गया है। इसी तरह ओझा जी ने 'कौन जात कबीरा' कहानी संग्रह में संकलित 'सरदी और साँप' कहानी में से उदाहरण स्वरूप बतलाया है कि– "सुनो काकू, यह जो जीतू है न, सो बड़ा अच्छा है, बड़ा बहादुर है।" काकू के तेवर जरा सीधे हुए पर वह बात को समझना चहता था, किन्तु सलौनी थी सो आकल–बाकल बके जा रही थी। अन्त में उसने जीतू से पूछा तो वह भी झीझका– "यह जो कुंठला है न काकू "हाँ है न .... ना काकू। ना काकू हड़बड़ाकर फिर बोली"[36] उपर्युक्त पंक्तियों में जीतू और सलौनी आपस में प्रेम करते हैं जब सलौनी का काकू खेत से ऐनवक्त पर आ जाता है तो सलौनी अपने चरित्र को बचाये रखने के लिए जीतू के लिए अपने काकू के आगे आकल–बाकल बोलने लग जाती है, ताकि काकू, उसकी अन्य बातों को भूल जाये इस प्रकार से ओझा जी ने अनेकों संवाद चरित्रोद्‌घाटक संवाद के रूप में स्पष्ट किये हैं।

(ज) प्रसंगानुकूल संवाद –

प्रसंगानुकूल संवाद वे कहलाते हैं जिनमें साहित्य के अन्तर्गत किसी भी विधा में लिखी गई कृति में पात्र अपनी बात को निरन्तर कह रहा है और जब बातचीत दो पात्रों के बीच में चलते हुए जब दूसरा पात्र बात पूरी होने से पहले ही वापिस शुरू कर देता है तो इस प्रकार के संवाद प्रसंगानुकूल संवाद कहलाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पात्र अपने शब्दों में अपनी अभिव्यंजना प्रभावक रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ हम उनके

उपन्यासों व कहानी संग्रहों से कुछ उदाहरण उल्लिखित कर रहे हैं, जिनसे स्पष्ट हो सकेगा कि प्रसंगानुकूल संवाद के माध्यम से कथन में प्रभावात्मकता की वृद्धि हुई है। जैसे 'रावराजा' उपन्यास की ये पंक्तियाँ देखिए– "जब दोनों बुढ़ियाएँ अकेली रह गयी तो जमकर पीढों पर बैठी और मिशरानी ने रूका प्रसंग फिर खोला।" मुझे तो कुछ और शक होता है सेठानी। "साफ–साफ कहो मिशरानी। अब तो मुझे सचमुच डर लगने लगा है।"

"तुम कहती हो बिचौकली बहू पोथी पढ़ती है।" "लो, मैं कोई झूठ थोड़े कहती हूँ। अभी तो देखो पोथी मेरे पास मौजूद है। अरे मिशरानी मुझे तो ये बहुएं कोख जामी बेटियों से ज्यादा प्यारी हैं पर इनके लछन देखकर हीया सुलगा जाता है।" और सेठानी पोथी मिशरानी को थमाने लगी तो उसने अपना हाथ पीछे झटक लिया। अरे राम कहो सेठानी मैंने कब कहा कि पोथी मिली नहीं। तुम तो भोर–भोर उठकर दरसन करन जोगी हो रामसुख की माँ। पर यह बहू तो तुम्हारी जान की ग्राहक बनी है।"[37] उपर्युक्त पंक्तियों में दो बुर्जुग महिलाएं पीढ़ों पर बैठी बतला रही है तभी मिशरानी ने बीच में आकर वापस बातों के प्रसंग को खोल दिया है और सेठानी से कहते हुए अपनी बहू को शक की दृष्टि से देखने लगती है। सेठानी को कहती है कि बहू पोथी पढ़ती है लेकिन फिर भी मैं अपनी बहू को मेरी जन्म लेने वाली बेटी से भी ज्यादा प्रेम करती हूँ। मैं तो इनके तौर–तरीकों या यूँ कहें कि इनके लछनों से परेशान हो चुकी इसलिए मेरे ह्रदय में आग सी लग जाती है और अन्त में एक महिला दूसरी बुर्जुग महिला से यही कहती है कि अपना ध्यान रखो और सर्तक होकर रहो। ओझा जी ने प्रभावात्मकता का भाव भी प्रसंगानुकूल संवाद में उत्पन्न कर दिया है। इसी तरह ओझा जी की 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' संग्रह में संकलित 'सयाना' कहानी को भी देखा जा सकता है, जिसमें प्रसंगानुकूल संवाद का प्रभावशाली प्रयोग हुआ है–

"हाँ, हाँ, जाओं काका! सुलखनी नारी बड़भागी को मिलती है। तुम्हें सुलाये तो दो घर और सुलटाये।" हरखू हीं–हीं कर हंसा। जाते–जाते माणक को इस दफा बाई आँख का इस्तेमाल किया। कबूतर कुआँ दिखलाने वाले का आशय समझ गया। मुस्कुराया। नेवगण तो आदत भर डाल खिसक गयी। शेष काम तो काका ने ही सुलटाना है। हरखू गया तो माणक अपनी बात पर आया। "तो उसका क्या हुआ गुरु?" "किसका रे?" मोती समझ कर भी नामसमझी से बोला।

"और किसका? उसी लच्छी का।"

कबूतर के भोलेपन पर मोती 'ही–ही, कर हँसा, "उसकी भी खूब पूछी अरे उसका क्या होना जाना। राम भरोसे दिन में चार घर बसाती है, रात को आठ उजाड़ती है। पूरी

खेली खाई है।" "घर उजड़ने वालों को मारो गोली। मुझे मेरी बात से मतलब, वह हुई की नहीं?"[39] उपर्युक्त पंक्तियों में हरखू अपने काका के साथ वार्तालाप कर रहा है, और इशारों में काका को समझाते हुए उसकी पत्नी पर शक जाहिर करता है। काका जाओ ऐसी सुलखनी नार बड़े भाग्यशाली व्यक्ति को मिलती है। जाते–जाते हँसते हुए बांई आँख मारकर उठ जाता है। कहता है काका नेवगण तो आपको आदत डालकर चली गई है बचा हुआ काम तो अब आपको ही करना है और हरखू जब चला जाता है, तब माणक अपनी बात कहता है, मोती से उसका क्या हुआ तो उसके भोलेपन पर हंसते हुए कहता है कि ये तो रामभरोसे ही है। दिन में चार घर बसाती है, तो रात को आठ घर उजाड़ती है।[38] इस प्रकार से काका मोती, हरखू व काका की पत्नी का वर्णन प्रसंगानुकूल संवाद के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

इसी तरह ओझा जी के 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह में संकलित 'मुकामो' कहानी का एक उदाहरण प्रस्तुत किया, देखिये–

"चाय तैयार हो गयी।

दोनों पास बैठ पीने लगे।

"कोठे के बीच की दीवार भी धसक गयी लगती है रे।"

"नहीं, अभी दरारें भर पड़ती हैं, पर भौर में जब धूप चिटकेगी, हवा जोर से चलेगी तो सारी ढह पड़ेगी।"

'क्यों'

'यही परकीरती (प्रकृति) का नियम है।'

'और लीक कब मिटती है?'

'रातभर के मेंह–तूफान में तो मेड़ें भी टूट चुकी होंगी फिर बेचारी लीक की कौन बिसात की बनी रहे।' बादल पश्चिम में ढल गये। पूर्व में उजास फूटने लगा। मुकामों उठी चली तो करमू ने टोका– जूड़ी–बुखार में किधर चली?'

'अपने घर।'

'वह तो ढह चुका है।'

'फिर बना लूंगी।'

'पर तेरी ईंटें भी बह गयी होंगी।'

मुकामों चुक। पर रूकी नही ंतो करमू ने चेताया– जाना ही है तो अपने जनाना कपड़ों में तो जा।' 'मर्द राह न दिखाये तो औरत गार में गिर जाये। मुकामों ने महसूसा।

जीभ काटती कोठे में जो बदल आयी। करमू ने इस दफा उड़ती नजर डाली पर उसका साथ न दिया।"[39]

उपर्युक्त पंक्तियों में कहानी की स्त्री पात्र मुकामों व उसके देवर करमू के संवाद का वर्णन किया गया है, जिसमें दोनों एक साथ बैठकर चाय की चुस्की लेते बात कर रहे हैं। मुकामों के घर की दीवार मेंह आने से दरारें आकर ढ़ह गई है और करमू उसको अपने पास रहने को कहता है तो वो करमू देवर से जिद्द करते हुए अपने घर को पुनः बनाने का संकेत देती है और चल पड़ती है, तो करमू ने उसे जाते–जाते चेताया कि अपने जनानी कपड़ों में तो जाओ। तब मुकामों अपनी चेतनावस्था में आयी व कहने लगी कि मर्द अगर औरत को सही रास्ता ना दिखाए तो औरत जात पता नहीं कौनसे दलदल में जा फँस जाए और अपने कपड़े बदल कर चली जाती है। इस प्रकार कहानी में दोनों के संवादों में प्रसंगानुकूलता पाई जाती है।

(झ) कथा को गति देने वाले संवाद –

ऐसे संवाद जिनके द्वारा कथा का विकास होता है। कथानक आगे बढ़ता है, वे कथा को गति देने वाले संवाद कहलाते हैं। किसी उपन्यास या कहानी में जब दो या दो से अधिक पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं, तो कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता है कि कथा विच्छिन्न हो रही है। तभी उनमें से कोई पात्र एक ऐसा संवाद बोल देता है जिस पर पात्रों को अपनी बात कहने का अवसर मिल जाता है और विच्छिन्न होते हुए कथानक को गति मिल जाती है और कथानक जीवन्त और प्रभावात्मक होकर विकसित होता है। ओझा जी सिद्धहस्त कथाकार हैं इनके उपन्यासों और कहानियों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जो कथानक को विकसित करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। 'रावराजा' उपन्यास का यह उदाहरण प्रस्तुत है–

"सुबह टोले मौहल्ले की स्त्रियाँ रोने धोने का अभियान कर चुकी तो पड़ोसी अर्थी उठा ले गये। मैं जरा भी न रोई। न चूड़ियाँ तोड़ी। जब लुगाइयाँ अभिनय कर चली गई तो मैंने चूड़ियाँ उतारी और सहेज कर एक पेटी में रख दी। अब उसके प्रति आक्रोश था न कोई हिसाब बाकी।"

"पर बापू से हिसाब चुकता करना बाकी था। सो उस दिन प्रतिशोध की शुरूआत हो गयी, जिस दिन चील्ह दम्पत्ति से सबक सीख लेने पर तुम्हारे प्रति आसक्ति शुरू हुई।"

"चील्ह दम्पत्ति ने सिखाया और तुम मुझसे प्यार करने लगी ? यह कैसी पहेली है गौरी?" रूपराम ने अकबका कर पूछा "नदी और नारी बाढ़ चढ़ी हो तो अपने भीतर का सब दर्शा देती है, लहरें फेन और कचरा किनारे पर पटक जाती है और निथरा पानी आगे बह

कर शान्त हो जाता है। मैं भी चाहती हूँ कि सैलाब उतर जाये और मैं भी शान्त बन रह सकूँ।"

"उस बूढ़ी की–कर को देखो रूपराम, उसकी शाखों पर अब भी न जाने कितने चील्ह, चील्हों के जोड़े पंख समेटे बैठे होंगे।"[40]

उपर्युक्त पंक्तियों में एक स्त्री जिसका पति परलोक सिधार गया है, लेकिन फिर भी उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं है। जब पड़ोसी सुबह होते ही उसके पति की अर्थी उठा ले जाते हैं, तो अपनी चूड़ियाँ उतार कर पेटी में रख देती है और अब वह रूपराम के सम्पर्क में आ जाती है। चील्ह दम्पत्ति के बहाने से जब रूपराम अकबका कर उससे पूछता है, कि नदी और नारी बाढ़ चढ़ी हो तो अपना सब–कुछ दर्शा देती है। इस बात पर गौरी कहती है कि मैं भी अब चाहती हूँ मेरा सारा सैलाब उतर जाये और शान्त बनकर रहूँ।

राधा का पति हरखू मर जाता है और उसकी पत्नी दुःख का नाटक कर शान्त हो जाती है, तो ऐसा लगता है कि शायद कथानक यहाँ पर विराम ले लेगा परन्तु उसी समय रूपराम और गौरी का संवाद षिथिल कथा सूत्र को फिर आगे बढ़ा देता है। इस प्रकार ये संवाद कथा को विकास देने वाला संवाद माना जा सकता है।

(ञ) लाक्षणिक शैली –

ओझा जी के उपन्यासों एवं कहानियों में लाक्षणिक प्रयोग अनेक स्थानों पर मिल जाते हैं। प्रायः भावात्मक चित्रण करते समय उन्होंने मुहावरों एवं लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग के द्वारा कथन में विशेष सौन्दर्य प्रस्तुत किया है यहाँ दो–चार उदाहरण देकर अपनी बात स्पष्ट कर सकते हैं– "बदचलन ने खानदान की नाक ही कटवाने की ठान ली। भले घर की बहू न रही गाँव की मास्टरनी बन बैठी।"[41] "मेरा तो ब्याह हो चुका मेरा बापू बुगला भगत है। किसी बूढ़े केंकड़े की तलाश में।"[42] "मोती अनसुनी करते बोला "अब तू आँख मूँद पड़ रहा है।"[43] "श्रावण भादव की घटाटोप रातों में चाँद दिखाई नहीं देता तो रात को भी निराहार रहती है। व्रत खण्डित होने से सुहाग की अखण्डता के प्रति आशंकित हो उठती है।"[44] "सुख की साँस ले। पर औरतें तो अनाज बीनते, फटकते, छाज की ताल पर भी गाती रही तो वह उद्विग्नता के साथ चहलकदमी करने लगा।"[45] खैर, याद आये तो बतला देना पर उसी बात को लेकर उसकी बेटी के चरित्र पर कीचड़ उछालना ठीक नहीं।"[46]

उपर्युक्त पंक्तियों में लक्ष्मी बहू जो कि पुरानी हवेली में पोथी बाँचती है जबकि बहुओं के लिए ऐसा कार्य करने के लिए पाबन्दी है तभी सेठानी ने अपनी बहू को कहा कि तूने तो खानदान की नाक कटवाने की ठान ली है। इसी तरह एक और उदाहरण में राधा का पिता जो लालची किस्म का व्यक्ति है, और उम्र हो जाने पर भी राधा का ब्याह नहीं

करता है, क्योंकि वो किसी बूढ़े व्यक्ति की तलाश में है, जिससे कुछ रुपये पैसे लेकर ब्याह करना चाहता है। इसी प्रकार से इसी उपन्यास के एक अन्य उदाहरण में प्रस्तुत किया है कि माणक एक आलस्य में लीन रहने वाला व्यक्ति किसी भी कार्य की परवाह नहीं करता है। तभी मोती कहता है कि अब तूँ आँखें मूँद कर पड़ा रह यहाँ पर इसी प्रकार ओझा जी ने एक और उदाहरण में प्रस्तुत किया है कि सावन–भादवे की रातों में जब विवाहित स्त्रियाँ व्रत रखती है तब चाँद बहुत कम दिखाई देता है तब भी वे खण्डित नहीं करती है, क्योंकि वे व्रत को बरकरार रखती है। स्त्रियों के सुहाग की लम्बी आयु को लेकर इसी प्रकार से ओझा जी ने बताया है कि औरतें मंगल–कामना के गीत अनाज को छाले में डालकर साफ करते हुए एक साथ ताल मिलाकर गा रही है। तभी एक पुरुष इधर–उधर एकदम चहलकदमी करने लगा। इसी तरह ओझा जी ने 'उक्त' उपन्यास से उदाहरण स्वरूप बताया है कि बेटी अपने बाप से कहती है कि खैर कोई बात नहीं पर इस तरह से किसी बात को लेकर बेटी पर कीचड़ उछालना ठीक नहीं है। उपर्युक्त सभी मुहावरेदार भाषा शैली वाले शब्दों में लाक्षणिकता है। अतः उक्त सभी उदाहरणों में लाक्षणिक शैली है।

'रावराजा' उपन्यास से एक उदाहरण प्रस्तुत है– "अकल तो नहीं मारी गई तेरी मोतिया। भला ऐसी बात का भी कहीं जिक्र किया जा सकता है।"

क्यों? "गधा है जो यह भी नहीं जानता की सेठ दौड़ कर पुलिस में चला जायेगा। मैं भला रावजी के विरुद्ध क्या प्रमाण दूँगा। उल्टा न बांध लिया जाऊँ। बड़ों की बात जो अदना पड़ता है। वह मुफ्त में धुना जाता है। नेवगण को भी कह चुका हूँ और तुम्हें भी चेताये देता हूँ कि अगर कहीं जिक्र किया तो देही पर चाम न बच पायेगी। पुलिस वाले वह मार मारेंगे कि महिनों टकोर करते रहना होगा।"[47]

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'रावराजा' उपन्यास से उद्धधृत है। इस उपन्यास में 'रावराजा' एक शासक के रूप में हैं और मोतिया एक मजदूर पात्र है, जो कि एक सेठ के यहाँ दिहाड़ी (मजदूरी) करता है। मोतिया एक क्रोधित स्वभाव का मजदूर है वह अपने (सेठ) मालिक के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करता है। उसकी इस गलती का एहसास उमराव के द्वारा कराया जाता है। इन पंक्तियों में 'गधा' का लाक्षणिक प्रयोग मोतिया के लिए हुआ है। मोतिया गधा नहीं है। वह एक व्यक्ति है, जबकि गधा, एक चार पैरों वाला जानवर होता है। अतः मोतिया के लिए गधा शब्द का प्रयोग लाक्षणिक है, क्योंकि वह गधे की तरह मूर्खतापूर्ण कार्य कर रहा है। उपर्युक्त पंक्तियों में उल्टा बाँध लेना, मुफ्त में धुला जाना, टकोर करते रहना जैसे मुहावरे प्रयुक्त है, जो कि लाक्षणिक अर्थ देते हैं। इसी प्रकार ओझा जी ने "कौन जात कबीरा" कहानी संग्रह में से 'सूखे की एक रपट' कहानी में भी

लाक्षणिकता के उदाहरण मिलते है– हाँ, एक है गाँव की बूढ़ी दाई। जात की चमारिन है। तन की कमजोरी के साथ पगला भी गयी है। उधर सामने बाड़े में पड़ी रहती है। कोई नजदीक जाता है, तो भाठे मारने लगती हैं।

दायी है, चमारिन है, बूढ़ी है! मेरे भीतर कुछ झनझनाया। पूरी पहचान के साथ अतीत जागा। मेरे प्रसव के साथ मेरी माँ मरणासन्न हो गई थी। दाई माँ ने नाल काटी और आंगण में गाड़ दी। मेरी माँ खटिया पर पड़ी उस जगह की हिफाजत करती रही थी कहीं नाल को कुत्ते न खोद खायें।

मुझे चमारिन दाई के दूध पर पलना पड़ा था। ममता के बावजूद माँ के स्तनों में दूध का संचार न हो पाया था। बड़ा होने तक उसी से हिला रहा। अन्त में माँ ने बरजना की "अब तू काफी बड़ा हो चुका है। ब्राह्मण का बेटा है, चमारिन के गूदड़ों में सो जाता है। जन्म भर छूत न जायेगी।"[48]

उपर्युक्त पंक्तियों में अतीत जागा, आँगन में गाड़ दी, भाठे मारना इत्यादि शब्दों में लाक्षणिकता का प्रयोग हुआ है। इनके प्रयोग से शैली में विशेष चारूत्व आ गया है।

(ट) वर्णनात्मक शैली –

वर्णनात्मक शैली वहाँ होती है, जहाँ कहानी या उपन्यास वर्णन (कथन) के माध्यम से सुगठित किये जाते हैं, ये प्राचीन एवं अधिक प्रचलित शैली है। इसका प्रयोग प्रायः सभी लेखकों ने किया है। बात को समझाने के लिए अनेक उदाहरण देकर इधर–उधर की बातें जोड़कर वर्णन किया जाता है। ओझा जी ने अपनी अनेक कहानियों एवं उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग किया है। ओझा जी की निरीक्षण शक्ति प्रगल्भ अनुभव, सशक्त अभिव्यक्ति कौशल, प्रसंगों को व्यापक दृष्टि से देखने की दूर दृष्टि उनकी वर्णनात्मक शैली के साहित्य में प्राप्त होती है। उन्होंने मुहावरेदार एवं कहावतों से युक्त भाषा में कई स्थानों पर उत्कृष्ट वर्णन किये है। यहाँ हम कुछ उदाहरण देकर अपनी बात स्पष्ट करेंगे उनकी वर्णनात्मक शैली में पाठकों को रसमग्न करने की क्षमता देखने को मिलती है।

इसी प्रकार ओझा जी ने "सिराजी और अन्य कहानियाँ" संग्रह में संकलित 'एक दिन गुस्ताखियों का' कहानी से वर्णनात्मकता का उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार से है, देखिए– "मैं परेशान था और ज्यादा हैरान होना न चाहता था। मैं उसकी वर्कशॉप की मंजी पर काबिज हो बैठा पाजी ज्यों ही आएगा मार डालूँगा। वैसे उसके कबाड़खाने में औजारों की कमी न थी। जंग खाई रेतियाँ। भोथरी छेनियाँ। जड़ाबन्द प्लास। ढ़ेर सारे निकम्मे औजार। इस शहर के लोग भी अहमक है, जो उस अनाड़ी को मिस्त्री मान बैठे हैं,

उस वहशी खाने को 'वर्कशॉप' कहते हैं। टिन के बोसीदा बोर्ड के अलावा और है ही क्या, जो उसकी दुकान को वर्कशॉप का सम्मान देते हैं।

खैर, जैसा भी है, रहमान है पूरा अहमक और किसी अहमक की सोहबत अपने परिवेश से उबे–हारे आदमी को हिम्मत–हौंसला देती है। अहमक लोगों पर खुदा की ऐन इनायत यह है, कि वे खोपड़ी से ज्यादा हाथों से काम लेते हैं।"[49] उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने रहमान और अहमक की मित्रता व उसकी वर्कशॉप की दुकान का वर्णन किया है, रहमान जो कि व्यवहार का अच्छा पर आलसी प्रवृत्ति का व्यक्ति है। तभी अहमक को गुस्सा आता है और अपने मित्र के प्रति दुकान के समान की सार–संभाल और पूरी जानकारी नहीं रखने के लिए डांटता–फटकारता है और इस वार्तालाप को गुस्ताखियों में तब्दील कर देता है, जिससे उसका मित्र रहमान भी बुरा नहीं मानता है। अर्थात् इन दोनों के वार्तालाप को वर्कशॉप की दुकान का वर्णन करते हुए देखा गया है व इस भाषा–शैली में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

"तेजू कचहरी का सदर दरवाजा उढक कर चला गया, तो राव जी अपने पुरखों ठाकुरों के आदम कद तेल चित्रों के सामने आ खड़े हुए। आधा दर्जन से ज्यादा पुरखों के चित्र एक कतार में सलीके से दीवार पर लगे थे। हर चेहरे पर गलमूँछों से युक्त घनी मूंछे; और गहरी दाढियाँ हर सिर पर राजपूती शान की द्योतक भारी भरकम पंचरंगी पगड़ियां। हर कमर पर कमरबंध का कसाव। कंधे पर झूलती गेंडे की खालवाली ढाल और हाथों में भाला–तलवार। गढ़ी का ख्वास हर सुबह इन पुरखों ठाकुरों के चित्रों की धूल झाड़ कर पीतल की फ्रेमों को चमकाया करता। आकृतियों के तन पर चारेबाजी के अंगरखों पर जरी का काम आज भी नया सा लगता। खास पुरखों के चित्रों की सफाई करता तो रावराजा खानदानी सनदों की झाड़–पोंछ किया करते।

"राम भरोसे चलेगा सेठ। तेरे लिये तो उसे थोड़ा दबाना ही पड़ेगा।" मोती के लहजे में एहसान था।

"तो कब।"

"लच्छी के यहाँ उधार नहीं। इधर बयान मिला, उधर झटपट सुलटाया। आज की रात पुरानी छतरियों में राम भरोसे सीधे पहुँच जाना।" अभी माणक की बात का सुलटारा हुआ ही था, कि अमरू ठठेरा आन पहुँचा। मोती सुनार इल्म का पक्का। चेली की टोली पाले। आदमी जान पिटारी में डाले और पलक मारते कबूतर बना निकाले। किसी को किसी के लहंगे के नाड़े से बांधे तो किसी को काले डोरे से जंतरा दे। भूत–भूतनी का विवाह करवा दे।[50]

उपर्युक्त पंक्तियों में पुरानी बड़ी हवेली का वर्णन किया है, जिसमें रावजी, तेजू की बातचीत चल रही है और तेजू कचहरी का दरवाजा वार्तालाप के दौरान बन्द करके चला जाता है तो रावजी अचानक अपने पुराने पूर्वजों के चित्रों के आगे आकर खड़े हो जाते हैं और दीवार पर टंगी सभी चित्रों में पुरानी शान–षौकत, बड़ी–बड़ी गले तक बढ़ी हुई मूंछे कमर में कसा हुआ कमरबंद, हाथ में तलवार और गेंडे के खाल से बनी हुई खाल से बनी हुई ढालों को चमकाने लगते हैं। तेजू द्वारा यह ज्ञात होता है कि रावजी हमेशा से ही सुबह–सुबह अपने पूर्वजों के चित्रों को पोंछकर चमकाया करते हैं। तभी मोती आ जाता है और तेजू को बातचीत के दौरान अपने अलग ही लहजे (अंदाज) में बोलते हुए। अरे यहाँ तो सब रामभरोसे चल रहा है और इतने में माणक अपनी बात का निपटारा करने लग जाता है। तभी अकस्मात् अमरू ठठेरा सीधा हवेली में आ जाता है। ठठेरा इतना चालाक प्रवृत्ति का व्यक्ति है कि किसी को पिटारी में डालकर कबूतर बना दे, तो कहीं भूत–भूतनियों का विवाह करवा देता है। इस प्रकार से पुरानी हवेली में सेठ, तेजू, अमरू ठठेरा, मोती के वार्तालाप में वर्णनात्मकता स्पष्ट प्रतीत होती है। उक्त उदाहरण में हवेली और उससे जुड़े प्रसंगों का मार्मिक एवं विस्तृत वर्णन किया गया है। इसी तरह एक और उदाहरण प्रस्तुत किया है कि जो इस प्रकार से है देखिए–

"रावराजा और सेठ धनदास के बीच भी तनाजे का यही सिद्धान्त था। जागीरी सम्पत्ति से अलग राव जी के कब्जे में जो तीन हजार बीघा चूने की खदानों वाली पैतृक भूमि बची थी, उसे लेकर सेठ ने अनेक सपने संजो रखे थे। जूही की पहाड़ियों के पत्थर भी उसके निकट बेशकीमती जवाहरातों के भण्डार थे। इस कच्चे माल और सस्ते मजदूरों के बलबूते पर सेठ न केवल एक विशाल सीमेंट फैक्ट्री खड़ी करना चाहता था, बल्कि शेष दुनिया से अनजाने बेहड़ गाँव को वह औद्योगिक केन्द्र बनाकर संसार के नक्शे पर उतारना चाहता था।"

"तुम भी कर देखो"

"चकोरी ने सरदार को काफी मान दिया, फिर तुमने ऐसा क्यों किया?"

"पर मेरी भी तो कोई सुने, मैंने कुछ भी तो नहीं किया। फिर भी सरदार मुझे जान से भले ही मार डाले पर बेवफाई की तोहमत न लगाये।"

"देखा हरजाई फिर सतवंती बनने का दिखावा करने लगी है।" सरदार बीच में ही व्यंग्यपूर्वक बोला।

"समाज मुझे सतवंती बन किसी की गृहिणी बन जाने का मौका देता तो मैं एक बार तुम्हारे चंगुल से निकल भागने का मौका पाकर फिर आप ही वापस न लौट आती। पर

उन समाज व्यवस्थापकों ने मेरे साथ दरिन्दगी बरती तो मैं उन्हें शैतान और तुम्हें इंसान समझ कर तुम्हारे डेरे पर लौट आयी।"[51]

उपर्युक्त पंक्तियों में सेठ धनदास की वार्तालाप के दौरान ये सामने आता है कि रावजी तीन हजार बीघा भूमि के जागीरदार हैं, जिसमें चूने की खदानें व कीमती पत्थर भी हैं। सेठ, रावराजा को झाँसे में लेकर ये सब हड़पना चाहता है व गाँव में एक सीमेन्ट फैक्ट्री लगाकर गाँव को औद्योगिक केन्द्र बनाकर संसार के नक्शें में अपनी वाहवाही करना चाहता है। बीच में ही सरदार व चकोरी आ जाते हैं, व अपना व्यंग्य करने लग जाते हैं कि देखो ये सतवन्ती चकोरी फिर से सतवन्ती बनने का नाटक करने लगी है। लेकिन चकोरी ने सरदार पर समाज से ज्यादा विश्वास किया, जिसको लेकर वापस यहाँ सरकार डेरे पर लौटकर आकर रहने लगी है। पंक्तियों में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

(ठ) काव्यात्मक शैली –

काव्यात्मक शैली लेखक जब कहानी या उपन्यास में भावुकतापूर्ण वर्णन करता है, तो वहाँ काव्यात्मकता आ जाती है। लेखक काव्यात्मकता का प्रयोग कर अपनी रचना को प्रभावशाली बनाना चाहता है। इस प्रकार की रचनाएँ गद्य–काव्य की श्रेणी में आती हैं। अधिकांश लेखकों व साहित्यकारों ने इस शैली का प्रयोग किया है। रामकुमार ओझा ने अपने कथा–साहित्य में अनेक स्थानों पर काव्यात्मक शैली का ऐसे स्थलों पर प्रयोग किया है कि भावात्मकता स्वतः ही आ गई है। उन्होंने कहीं–कहीं चलते वर्णन प्रसंग में गीतों, प्रसिद्ध रचनाकारों के पद्य आदि का भी प्रयोग किया है कि रचना में वैशिष्ट्य आ गया है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है– "जिस जा पै हांडी चूल्हा, तथा और तनूर है। खालिक की कुदरतों का उसी का जहूर है।"[52]

"अँखियाँ मिलाऊँ कभी अँखियाँ चुराऊँ, क्या तूने किया जादू"

"आँखें न जीने देगी तेरी बेवफा मुझे
इन खिड़कियों से झाँक रही है कजा मुझे।"

"हुम्मा, हुम्मा, अम्मा तेरा लौण्डा बिगड़ा जाये।"[53]

"पपियाँ जफियाँ पालें हम।
अँखियों से आँख मिला लें हम।"

"राम जाने, राम जाने, राम जाने
कहते हैं लोग मुझे राम जाने
कहते हैं क्यों राम जाने?"[54]

उपर्युक्त गीत ओझा जी के "कौन जात कबीरा" कहानी संग्रह कि 'अच्चन काका' और 'चौपाटी का चेतक और हुसैन का घोड़ा" कहानियों से लिये गये हैं, जिसमें 'अच्चन काका' के पात्र मुंगेरी लाल जो कि सामने वाली लड़की से गाने गा–कर पर्ची गूपता (लपकता) है, तो लड़की की सहेली देख लेती है और वह भी गाने के माध्यम से मुंगेरी लाल को छेड़ती है। इस प्रकार ओझा जी ने अपनी अनेक कहानियों में पद्य के प्रयोग द्वारा कथ्य को रोचक सरस और भावात्मक बनाने का प्रयास किया है उपर्युक्त कुछ गीत फिल्मों के हैं, तो कुछ उनकी स्वरचित या अन्य किसी के हो सकते हैं। किन्तु इन गीतों के माध्यम से रसात्मक बोध उत्पन्न किया गया है। प्रेम सौन्दर्य आदि के वर्णन के कारण शैली में काव्यात्मकता आ गई है और पाठकों को आकर्षित करने की अपनी तरफ के प्रभाव में अभिवृद्धि हुई है।

इसी प्रकार ओझा जी ने "सिराजी और अन्य कहानियाँ" संग्रह में संकलित 'सिराजी' व 'दरख्त पर टंगी रोटी', कहानियों से एक–दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जो इस प्रकार से है। देखिए–

"गौरी उजाली मुखड़ी आशा कै भलि दिखेन्दी।
हिरणी–सी आँखों तेरी कनि भली विराजदी।।
गौरी मुखड़े मा नाक–नथुनी झल झलकादी।
हाथों की चूड़ी खुशियों की पाजेब छम–छम वाजदी।।
बन्दो भा बान्द भलि बिगरैली आशा।
जाणों छै आज मैं करवी दूर परदेशा।।
हो .... हो .... हो .... हो।"[55]
"बन्दे न होंगे जितने खुदा है खुदाई में।
किस–किस खुदा के सिजदा करे कोई।"[56]

उपर्युक्त पंक्तियों में कम्पार्टमेन्ट की लड़कियों का बखान गानों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, कि इनका मुँह गौरवर्ण सुन्दर लगता है। हिरण जैसी आँखें उस गौरे मुँह पर एक आषा की किरण जैसे लेकर आयी हो नाक में नथली झलक रही है और हाथों में खनखनाती चूड़ियाँ और पैरों की पाजेब ऐसा बतला रही हो जैसे इनका प्रियवर खुशी लेकर कहीं बाहर जा रहा हो, इस खुशी में गौरवर्ण मुँह वाली सुन्दर लड़की एक आशा लेकर इधर–उधर घूम रही है। दूसरे वक्तव्य में बतलाया है कि ईश्वर की भक्ति में अनेक लोग लीन है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो भक्ति भावना के अहम् एवं पाखण्ड में इतने अधिक रच–पच गये हैं कि अपने को ही ईश्वर मान बैठे हैं। इस कहानी में ओझा जी ने यथास्थान

पर काव्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। इन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों में ही भावुकतापूर्ण वर्णन किया है, जिससे वर्णन में काव्यात्मकता स्वतः आ गयी है।

इसी प्रकार ओझा जी के 'आदमी वहशी हो जाएगा' संग्रह में संकलित 'मुकामो', 'त्रिकाल' व 'प्रेतकुण्ठा' कहानियों से भी काव्यात्मकता के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है –

"चूण लेण रे चाव में, चिड़िया खोले चोंच।
भीतर सारों भूंजबै, चूल्हा अकरी आँच।।
अन्न जल तक भावै नहीं, हियो रहे बेचैन।
कवौ गले नहीं उतरे, कड़वों जाण कुनैन।।"[57]

उपर्युक्त पंक्तियों में मुकामो जिसका पति बेवड़ा व नजोग्ता (नामर्द) है और मुकामो अपने देवर करमू से प्रेम करती है और उसके लिए गरम–गरम रोटियां सेंक रही है। आँच पर एकदम आकरी करके और उधर से करमू का जवाब प्रत्यूत्तर में सुनकर निराश हो जाती है तो मुकामों के अन्दर जलन सी होती है, अन्न–जल कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। खाने का एक–एक टूकड़ा कुनैन के बराबर कड़वा लगता है व मुकामों बेचैन हो जाती है। इसी को गाने की भाषा के माध्यम से काव्यात्मक शैली में बताया गया है। इसी प्रकार काव्य भाषा का भी वर्णन ओझा जी ने करते हुए बताया है कि पारों और मुकामों दो औरतें है। लेकिन पारों ठण्डी व मुकामो धधकती आग के समान गर्म औरत मानी जाती है। इसलिए हर एक कार्य में मुकामों अपने जवांमर्दी का एहसास देती रहती है। ऐसी परिस्थिति में करमू अपनी भाभी मुकामों को सम्भाल नहीं पाता है और वो धधकती आग मुकामो करमू से मन ही मन प्रेम करती है। इस प्रकार कथा–साहित्य में प्रयोग में ली जाने वाली शब्दावली काव्यात्मक शैली ही कहलाती है। इसी तरह 'उक्त' कहानी संग्रह की 'त्रिकाल' कहानी में गीत व काव्यभाषा को बड़े ही अनूठे तरीके से प्रस्तुत किया है, जो उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है, देखिये– "नेहरा निढाल होकर बौराया। सांवरिया के पास कई बिध छुलावे हैं, फिर वह बार–बार मेंह बिना ही क्यों मारता है?

"छल बल कई–कई सांवरा, तो हाथो किरतार।
मारण मारग मोकला, मेंह बिना मत मार।।"

उसके संस्कार बँधे हाथ सांवरा की अरदास में जुड़े ही रह गये। वह अचेत हो गया। उसका अन्तरमन अतीत की भटकान में खो गया। त्रिकाल ने उसे कई बार दर–बदर भटकाया था। अतः बारह–बारह दिनों के अन्तराल से वह उन्हीं ठोरों में भटकता रहा।

जहाँ कभी पहले भटक चुका। हर बारहवें दिन नीम की शाख टूटती गयी और वह नये पड़ाव पर पहुँचता रहा।"[58]

"जवाब सुन उसके कंकाल के एक झंझावत निकला। हवाएँ बावली बन सनसनाने लगी। देवदार जिघाड़ने लगा और एक वर्तुल उठने लगा। फिर खोखर से आते स्वर ने बस, इतना भर कहा।"[59]

उपर्युक्त पंक्तियों में मालिक से बरसात की गुजारिश की जा रही है, लेकिन साथ ही उनके सेवार्थी यह कह कर बात टाल देते हैं कि उस संखरा के पास ना करने के बहुत बहाने व बातें हैं। साथ ही में कंकाल से झंझावत और हवाओं को बावली युवती की तरह मचल कर बहने का वर्णन हुआ है, जिससे शैली में काव्यात्मकता का समावेश हो गया है।

इसी तरह ओझा जी ने 'उक्त' उपन्यास से ही एक अन्य काव्यात्मक भाषा शैली का उदाहरण प्रस्तुत है, देखिये— "सच्ची यारी के ही तो लच्छन है काका। अब मैं तुम्हें कुछ दे थोड़े ही देता हूँ फिर भी सारा गाँव छेक कर आ जाते हों।" "ठीक तो है रे मोतिया सच्चा दोस्त बड़े भाग्य से मिलता है।" "लाख रुपये की बात कह दी काका तुमने। निर्गुणियों से जग भरा, गुणी लाख में एक और गुण ग्राहक तो अरबों—खरबों में बिरला ही होता है।" "सत्संग में बैठकर अपन तो यही एक बात सीखी है बेटा कि लुगाई का चलितर और महाजन का दांव कोई नहीं समझ पाता।"[60]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने एक सज्जन पुरुष के रूप में मोतिया व काका का आपसी वार्तालाप और उनके प्रेमजन्य व्यवहार के वर्णन में काव्यभाषा का प्रयोग किया है कि काका जैसा मोतिया को सच्चा दोस्त नहीं मिलेगा जो लाखों, अरबों—खरबों रुपये देकर भी असम्भव है। तभी काका अपनी यारी के पीछे पूरा गुवाड़ चीरकर मोतिया के यहाँ मिलने आता है और काका कहते हैं कि सत्संग में बैठकर एक यही सत्य बातें ग्रहण की है। इसमें मुख्यतः काव्यात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।

इसी प्रकार 'उक्त' उपन्यास से काव्य भाषा का प्रयोग करते हुए उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया है, देखिए—

"अरर.......... हाँ..............। कामरूप की कामनी। बिना हड्डी की नाजिनी। मेरे उस मेहरबान सिरजनहार के हनूर का नमूना। आ..........आ।" और बूढ़े उस्ताद ने गुदड़ी उलट दी।" छमू छनन्न, छुम्मा।" गुदड़ी में से लाल झड़ पड़ा। बूढ़े के फटे गुदड़ में ऐसा बेशकीमती पुखराज छिपा था। कोंपल सी कोमल। मक्खन सी मुलायम। दूध धोई, दारू डुबोई। नशीली, कंटीली। अपने से बेखबर। वन में भटकी हिरणी, नागिन जैसे चोटी लहराती नटनी निकल पड़ी, तो दर्शकों ने कलेजा थाम लिया। मादक हलाहल में डुबोई

कटार, खंजरी की ताल पर नाचने लगी। भीड़ दीवानी हो झूमने लगी। पैरों की ठुमक। कमर की गजब लचक आँखों की खारी मटक पर रुपये, पैसे पर लगाकर उड़ आने लगे।"[61]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने करतब दिखाने वाले नट का वर्णन किया है जो एक छोटी गुदड़ी के माध्यम से उसमें से कभी उसको उलट–पलट कर लाल छनछनाकर निकाल देता है तो कभी उसमें से कीमती बहुमूल्य खजाना और कभी एक प्यारी सी कामिनी जो ऐसा लग रहा है जैसे दूध की ही धोई हो शरीर से पतली व नागिन जैसी चाल वाली जो ऐसा लग रहा है कि वन में से कोई कोंपल निकलकर आयी कच्ची कली के समान और सुन्दर नृत्य करने लगी और रुपये पैसे उड़ाने लगी हो कामिनी ने अपने सुन्दर नृत्य व रूप से सबको रसमग्न कर दिया, जिससे सभी उसके साथ दीवाने होकर झूमने लगे हैं। उक्त पंक्तियों में मुख्यतः काव्यात्मक भाषा शैली प्रयोग में का प्रयोग है, जिससे शैली में काव्यात्मकता एवं रसात्मकता का संचार हो गया है।

6.5 आँचलिकता –

अँचल शब्द का अर्थ है क्षेत्र विशेष। अर्थात् किसी क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित परिवेश क्रियाकलाप लोक व्यवहार आदि को आँचलिक शब्दों एक भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करना है। उसे ही आँचलिकता शब्द से अभिहित किया जाता है। रामकुमार ओझा ने अपनी कहानी व उपन्यासों में आँचलिक भाषा को अपने साहित्य में यथा स्थान प्रयुक्त किया है।

6.5.1 आँचलिकता की परिभाषा –

डॉ. नगीना जैन, "आँचल शब्द का अर्थ किसी ऐसे भूखण्ड, प्राप्त भाग या देश विशेष से है, जिसकी अपनी एक विशेष भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, भाषा और अपनी समस्याएँ हो, अपनी विशिष्टता एक जीवित व्यक्ति हो और सामान्य के अन्दर से अपनी विशिष्टता जताता हो, बाहरी प्रभावों ने जिसके वैशिष्ट्य को समाप्त न कर दिया हो।"[62]

"आँचलिक कहानी सीमित कथांचल स्थानीय रंग में भाषा और अभिनव शिल्प ये तीन तत्व लेकर रूपायित होती है।"[62]

"एक अँचल वह भौगोलिक भूखण्ड है, जो प्राकृतिक और सामाजिक दृष्टि से आबद्ध रहता है। उसके रीति–रिवाज, आदर्शों, विश्वासों, भौगोलिक मान्यताओं और मनोवैज्ञानिक स्वरूपों में इतनी समानता रहती है कि उनके माध्यम से हम उन्हें दूसरे क्षेत्रों में सफलतापूर्वक अलग कर सकते हैं।"[63] इसी तरह यह कथन भी दृष्टव्य है।

"वह सम्पूर्ण अँचल और ग्राम परिवेश अपने सारे स्पंदन के साथ उनकी कहानियों में मूर्त हो उठा है, जिसका उन्होंने चित्रण किया है। आपकी कहानियों में आँचलिकता और

खड़ी बोली का प्रशंसनीय सन्तुलन है।"[64] "अँचल विशेष की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण करने के साथ–साथ आँचलिक कहानीकार उन स्थितियों के प्रति जनता की प्रतिक्रिया और नए विचारों के सम्पर्क के कारण होने वाली उनकी चेतना का भी वर्णन करता है। रूढ़ अंधविश्वासों, सामाजिक अनीतियो, प्रशासन की ज्यादतियों, अनाचार, रिश्वत, बेईमानी, स्वार्थपरता आदि के विरुद्ध क्रान्ति की लहर का संकेत कर वह जागरूक और सजग जनता को करवट लेती हुई चित्रित करता है।"[65] विभिन्न अँचलों से कहानीकारों ने अपने–अपने क्षेत्र में वैश्वीकरण के अभिशाप से गाँव–कस्बे की मरती हुई आत्मा और क्षरित होते श्रेष्ठ जीवन–मूल्यों का वृतान्तिक रूप रचा है।"[66]

ओझा जी ने 'रावराजा' उपन्यास एवं कहानियाँ आँचलिकता का प्रभावात्मक प्रयोग बड़े ही सहज भाषा शैली के साथ किया है। यहाँ एक–दो उदाहरण से अपनी बात प्रस्तुत करेंगे–

"क्यों न मिलेगा सोना?"

"इसलिए कि सोने के पांव तो है नहीं कि गलियों में मटरगस्ती करते घुमा फिरे।"

"पर हवेली में तो मिल जायेगा?"

"मुँह धोये रहियो। छत पर सूखता मिल लायेगा।"

"तो क्या तुम्हारी बड़ी हवेली में गहना–जेवर नहीं?"

"है क्यों नहीं?"

"फिर क्या राज है?"[67]

उपर्युक्त पंक्तियों में पुरानी बड़ी हवेली का माणक और मोती सोने के जेवरात को लेकर बतला रहे हैं, कि आजकल डाकूओं का समूह घूम रहा है। अपनी जेवरात की सुरक्षा रखना इस बात पर हँसते हुए मोती कहता है। हमारे तो मिलेगा नही तो माणक कहता है, क्यों नहीं मिलेगा तुम्हारे सोने के पाँव तो है, नहीं जो मटरगस्ती करते गलियों में घूमेगा। इस प्रकार से विशेष रूप से मटरगस्ती करना जैसे शब्दों में आँचलिकता का प्रयोग हुआ है। अतः इसमें आँचलिक भाषा शैली है।

इसी तरह ओझा जी ने 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह में संकलित 'खून' कहानी से भी आँचलिकता को उदाहरण स्वरूप स्पष्ट किया है। देखिए– "ई कोने जो हमर घर माँ जोरा–जोरी घुसतैय आये रहिल छी"।

"ठीक, आह हम बूझी। त आय रात हमर अहाँ कुटुम छी।" (ठीक यही हमने समझा तो आज की रात हमारा मेहमान रहो।) मुदा अहां ध्यान रखवै। छत ऊपर लाठी आवाज होत, अहां चुप पैर रहब।" (मगर यह ध्यान रखता छत पर लाठी की आवाज हो तो चुपचाप

पड़ रहना।) घड़ी भर बाद ही पाईप पर डण्डा बजा। स्त्री घिसटती हुई बाहर निकल गई। फिर आयी पुनः ठहठकाहट हुई। फिर गयी। रातभर आने–जाने का सिलसिला जारी रहा। स्त्री चलती रही।"[68]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने बताया है कि घर में आना–जाना लगा रहता है और हर एक व्यक्ति को मेहमान की तरह इज्जत दी जाती है। इस प्रकार से ओझा जी ने अपनी कहानियों में आँचलिक शब्दों का प्रयोग कर कथा–साहित्य को और अधिक रोचक एवं प्रभावात्मक बना दिया है और ऐसे विभिन्न शब्दों को लेकर ही इनमें आँचलिक शैली प्रस्तुत हुई है।

इसी प्रकार ओझा जी ने अपनी कहानी संग्रह "कौन जात कबीरा" में संकलित 'सूखे की एक रपट' कहानी से उदाहरण देकर अपनी बात को प्रस्तुत किया है जो निम्न प्रकार से है–

"आश्विन बीतने को था, फिर भी सूरज में जेठी तपिश भरी थी। धरती भटियारिन के भाड़ सी जल रही थी, गर्म धूल में भुनते चनों के समान रेत के वर्तुल उठ–उठ कर भूतों के समान घूम रहे थे।

किरणों के कोड़े और लूओं के थपेड़े खाते पहले हमारा शरीर ललछौंहा और फिर ताम्बई हो गया। अंधड़ से बचने के लिए जीपों के पर्दे गिराये तो उमस से दम घुटने लगा। पर्दे हटाये तो पसीने से तरबतर! जिस्म पर गर्मी उधड़ आई। टीबों–डहरों पर चढ़ती जीपें यथा–साध्य दौड़े जा रही थी। अब टायर फटा, अब गाड़ी उल्टी, इन्हीं आंशकाओं में धचकौले खाते हम गन्तव्य पर पहुँच जाने के लिए बेताब थे।[69] इसी तरह ओझा जी ने अन्य उदाहरण में दर्शाया है– "म्हैं अबार हालौ (लगान) नहीं देयण सकां सा! म्हारी हालत देखो सा,ब!"[70] उपर्युक्त पंक्तियों में म्है (हम), हालौ (हिलां), देयण (देना) इत्यादि शब्दों में आँचलिक भाषा का प्रयोग किया गया है। इसी तरह "कौन जात कबीरा" कहानी संग्रह की 'भारमली नहीं भागी' कहानी में से एक उदाहरण देकर स्पष्ट किया है– "भारमली ने बार–बार चेतना चाहा पर उसके भीतर सोई औरत ऐसी जागी कि फिर उसे चैन नहीं पड़ा। भीतर ही भीतर प्रीत का गूमड़ा पकने लगा। छोरा सिर पर पेटी उठाए गली–गुवाड़ आवाज देता, "चूड़ीवाला..... चूड़ी ले लो..... रंग–बिरंगी चूड़ियाँ। भारमली पुकार सुनती और अपनी सूनी कलाइयों को देखती–गोरे हाथ चूड़ी बिना अपने नहीं लगते। उसे महसूस होता कि ये किसी दूसरे के हाथ हैं। उसके हाथों में तो चूड़ियाँ फबती हैं।"[71] उपर्युक्त पंक्तियों में छोरा (लड़का), पुकार (आवाज देना) इत्यादि शब्दों में ओझा जी ने विशेष रूप से आँचलिक भाषा 'शैली' का प्रयोग किया है।

6.5.2 संस्कृतनिष्ठ शैली –

रामकुमार ओझा ने अपने कथा–साहित्य में संस्कृत निष्ठ भाषा–'शैली' का प्रयोग बड़ी ही सुन्दरता के साथ किया है। उन्होंने अपनी कहानी संग्रह 'कौन जात कबीरा' में संकलित 'संन्यासी' कहानी में संस्कृत के ज्यों के त्यों शब्दों को उठाकर अपने साहित्य में सम्बन्ध प्रयोग कर एक विशेष संस्कृतनिष्ठ भाषा 'शैली' का प्रयोग किया है, एक उदाहरण देखिए – "जिन शासन–शिरोमणि, संयम–मार्तण्ड, आचार्य सम्भूतविजय के संघ के चार शीर्षस्थ शिष्य पावस ऋतु के चर्तुमास्य तप की सम्पूर्ति कर लौट रहे थे, स्थिर–प्रज्ञास्थिति को प्राप्त आचार्य प्रवर का ध्यान भी क्षण–क्षण उचटे जा रहा था। शिष्यवृन्द का साफल्य गुरु की सार्थकता थी। आर्य मणिभद्र ने जल से परिपूर्ण सरोवर तट पर तृषावरोध कर चार्तुमास्य तप किया था। प्रांजल–प्रतिभा–पूत यशोभद्र ने विषधर सर्प की बाम्बी पर आसीन रह अभयव्रत सिद्ध किया था। शक्तिधर पुण्यभद्र तो दहाड़ते वनराज केसरी सिंह की अवमानना करते उसी की माँद के दहाने पर डटे रहे थे और चतुर्थ शिष्य आर्य स्थूलभद्र तो शंकर के समान साक्षात् काम विजय कर ही लौटे आ रहे थे।"[72] इसी प्रकार से ओझा जी के इसी कहानी संग्रह की 'संन्यासी' कहानी का उदाहरण देखिए – ''जिसमें चार शिष्य है जो अपने तप की सम्पूर्ति करके लौट रहे हैं व इनके गुरु आचार्य–प्रवर जो कि अपने शिष्यों के प्रति बहुत ही स्नेह की भावना रखते हैं और बार–बार जब तक शिष्य न आ जाये वो अपने ध्यान को क्षण–क्षण उन्हीं के प्रति लगाये रखते हैं। यह अपने शिष्यों के प्रति आचार्य–प्रवर की शिष्यवृन्द साफल्य गुरु की सार्थकता है और ये शिष्य जो कि अपनी विजय श्री के लिए जल से, परिपूर्ण सरोवर तट पर तृशावरोध कर चार्तुमास्य तप किया था और शक्तिधर पुण्यभद्र जो इनके विरोधी थे दहाड़ते रहे और वनराज केशरी की अवमानना करते उसी की माँद में दहाने पर डटे रहे लेकिन सभी चारों शिष्य तो आर्य स्थूलभद्र तो शंकर के समान साक्षात् काम–विजय कर ही लौटे थे। अपनी बहादुरी और वीरता का पर्याय देते है।"[73]

इसी तरह इसी कहानी से एक उदाहरण प्रस्तुत है, देखिये– "प्रथम आये मणिभ्रदादिक त्रय साधकों का आचार्य ने शान्त भाव से आतिथेय किया "दुष्कर्म–साधना के साधक वर्ग! संघ में तुम्हारा स्वागत है।" किन्तु जब आर्य स्थूलभद्र उनके दृष्टिपथ पर आये तो उनके नयन–कारों से आह्लाद झलकने लगा। चन्देक कदम आगे बढ़ उर्ध्व आशीर्मुद्रा में उन्होंने शिष्य का स्वागत करते हुए कहा, "आओ, काम–विजयी महा–दुष्कर्म" के साधक! संघ में तुम्हारा स्वागत है।" "प्रथमागत मुनित्रय के तन पर सहसा ईर्ष्या सर्पिनी दंश देने लगी।" तात्पर्य भाव से आक्रान्त पुण्यभद्र कौशा की ड्योढ़ी पर जा पहुंचा और चित्रशाला में

बैठकर तप करने की अनुमति मांगी। कौशा, मतिमान और व्यवहार प्रवीणा भी थी। मगध–साम्राज्य के सामन्तों के मणि–मुकुट उसकी देहरी पर आ आकर झुक जाते। पतंगे ही नहीं, बड़े–बड़े बाजों पर भी उसके रूप–शिखाओं में जल जाते थे। मुनि के हठ पर वह सहजभाव से मुस्कुरायी और चित्रशाला के द्वारा उन्मुक्त कर दिये।"[74] परन्तु ओझा जी ने इसके अलावा अपने इसी कहानी संग्रह में संकलित 'कोट' कहानी से भी एक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बताया है कि "षोड्शी ने उन्हें झटक कर पटक डाला तो ढ़ह पड़े। गिरने के साथ होश में आकर सरपट दौड़ पड़े। अचानक वही पुराना कोट उनके आगे–आगे दौड़ने लगा। रेलवे क्रॉसिंग का फाटक बन्द था। उसके कानों में सीटियां बजने लगी। रेल गुजर गई। फाटक खुलने के साथ ही बाबू साब की सुरता जागी। उन्होंने अनुभव किया मानों राह गुजरती रेल उन्हें पुराने कोट के साथ सुलह करने का मशविरा देती गई।"[75] इसी तरह ओझा जी ने "चौपाटी का चेतक हुसैन का घोड़ा" कहानी में भी संस्कृतनिष्ठ भाषा को बखूबी प्रयोग किया है ये पंक्तियाँ देखिये– "संसार में सत्यम् और शिवम् न भी रहें तब भी दुनिया का दस्तूर नहीं बदलेगा क्योंकि सत्यम् दलबदलू और शिवम् अल्पमत में है किन्तु सुन्दरतम् शाश्वत व अपरिहार्य है। सुन्दरता न रहे तो आदमी क्रूर हो जाये, निपट हिंसक। दुनिया में कोई दस्तूर न रहे और धरती वीरान हो जाये।"[76] इस तरह अपने उपन्यासों में भी रामकुमार ओझा ने संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग बड़े ही अच्छे तरीके से किया है। ओझा जी ने अपने 'रावराजा' उपन्यास में बताया है जो प्रस्तुत है इन पंक्तियों के माध्यम से– "आपादमस्तक लिपटी एक मानवाकृति उनके सामने आकर खड़ी हो गयी। कम्बल का आच्छादन हटाने से पूर्व ही राव जी समझ गये कि आगन्तुक कौन है। उन्होंने समान सूचक इशारा करते आगन्तुक को अपने बराबर बैठने का संकेत किया पर आगन्तुक जुहार कर जाजम से कुछ दूर हटकर बैठने का उपक्रम करने लगा पर रावजी ने उठकर हाथ पकड़ अपने बगल में बैठाते हुए कहा– उमराव तुम्हारी जगह यहाँ है और कुशल क्षेम पूछी। तो छर–हरे बदन का अभयसिंह होंठों से मुलकता बोला "सब कुशल ही कुशल है अन्नदाता। कफन सिरहाने धर कर सोते हैं और जान हथेली पर लिये घूमते हैं।" "आहिस्ता बोलो अभय राज की बात कभी जीभ से नहीं की जाती।" उमराव जरा खिसकाया और फिर जीभ दबाकर बोला "आप धन्या (मालिक) ने कैसे याद फरमाई।"

"आर्य स्थूलभद्र चर्तुमास की परिसमाप्ति तक अपनी ही पूर्व प्रेमिका मगध की श्रेष्ठ गणिका कौशा का चित्रशाला में भोगों के बीच विदेह बन, पद्मासन लगा निरन्तर साधनारत रहे थे। वे न केवल स्वयं ही पूर्ण काम–विजयी होकर उठे, बल्कि उनकी वैराग्य भावना से प्रभावित हो कौषा भी भोग से विरत हो गई। अब केवल शासन की मर्यादा ही उसे

गणिका–कर्म से बांधे थी, मन से तो वह संघ–समर्पिता थी।"[77] इसी में संकलित कहानी संग्रह की कहानी 'संन्यासी' में एक और उदाहरण में बहुत ही सुन्दरता के साथ संस्कृतनिष्ठ भाषा– 'शैली' का प्रयोग किया है जो कि इन पंक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत है देंखिये– दस्युराज के शकुनी पक्षी ने बोध दिया आयाति लक्षम्।" सहस्र मुद्राओं का धन आ रहा है। पक्षी की बोली समझ दस्यु–दल सावधान हो मार्ग घेर, खड़ा हो गया। किन्तु एक दिगम्बर साधु के सिवाय उनकी दृष्टि की हद में और कोई न आया तो परीक्षण के तौर पर उसी को जा टटोला, किन्तु उसके पास कुछ भी न पा उसे जाने दिया तो पक्षी फिर बोला– "एतल्लक्षं प्रयाति" यहाँ लक्षाधीश जा रहा है। पक्षी द्वारा पुनः संकेत पाकर दस्युओं ने मुनि को पुनः जा घेरा तो उसने घबरा कर सत्य उगलते हुए अपनी सारी कथा कह सुनाई कि किस प्रकार वह अपनी प्रिया गणिका की इच्छा पूर्ति हेतु रत्न–उतरीय प्राप्त कर लौटा है। दस्युराज को मुनि की दयनीय दशा पर दया आ गई और उसने रत्न–उतरीय सहित जाने दिया।"[78] इसी तरह ओझा जी ने इन पंक्तियों में बताया है देखिये– "स्वेच्छया मगध का अमात्यपद, पैत्रिक सम्मान और गणिका के मोह को त्याग कर जिन धर्म में दीक्षित हुए स्थूलभद्र से बोध पाई गणिका कौशा से प्रबोधित मुनि तत्क्षण प्रकृतिस्थ हो बोला– "भद्रे! तुमने ठीक समय पर मुझे बोध देकर उबार लिया। इसके लिए मैं तुम्हारा चिरकृतज्ञ रहूँगा। आचार्य समीभूत विजय के निकट आवास कर आत्मालोचनापूर्वक कायिक बुद्धि और मानसिक कैवल्य– बुद्धि अर्जित करूँगा, किन्तु सर्वप्रथम आर्य स्थूलभद्र से क्षमायाचना कर फिर मुक्ति कर्म में निरत रहूँगा। उत्तम पुरुषों के प्रति समर्पण भाव ही शोभा देता है, स्पर्धा नहीं।" और पुण्य भद्र मुनि "मंझवि संसग्गीए, अग्गीए जो तथा सुवन्नं व उच्छलिय बहलतेओ, स्थूलभद्दो मुणि जयउ ई।। नारी संसर्ग में रहकर भी जिनकी साधना का तेज अग्नि के मध्य प्रदीप्त स्वर्ण की भांति अधिक प्रक्षिप्त हुआ, उन स्थूलभद्र की जय बोलते, आचार्य के उपाश्रय स्थल की ओर प्रस्थानोन्मुखी हो चले।"[79] इसी तरह ओझा जी के कथा साहित्य में यथा स्थान संस्कृतनिष्ठ भाषा शैली का प्रयोग देखने को मिलता है।

6.5.3 अलंकारिक शैली –

अलंकार शब्द दो शब्दों के योग से बना है– अलम् + कार। यहाँ पर अलम् शब्द का अर्थ होता है 'आभूषण'। मानव समाज बहुत ही सौन्दर्योपासक है उसकी प्रवृत्ति के कारण ही अलंकारों को जन्म दिया गया है, जिस प्रकार से एक भारतीय नारी अपनी सुन्दरता को बढ़ाने के लिए आभूषणों को प्रयोग में लाती है उसी प्रकार से भाषा को सुन्दर बनाने के लिए भी अलंकारों का प्रयोग मुख्यतः जरूरी है। अर्थात् जो शब्द काव्य की शोभा बढ़ाते हैं, उसे अलंकार या अलंकारिता से अभिहित किया जाता है।

रामकुमार ओझा ने कथा–साहित्य के क्षेत्र में अपने उपन्यासों के अन्तर्गत भी अलंकारिता का प्रयोग बखूबी निभाया है जो अपने आप में एक मिशाल की तरह है और सम्पूर्ण कथा–साहित्य के अन्तर्गत अलंकारिता को लेकर ओझा जी ने चार–चाँद लगा दिये हैं। उसी का उदाहरण स्वरूप वर्णन उनके उपन्यास 'अश्वत्थामा' का प्रस्तुत है– "उसी हर्षोल्लास और कोलाहल के बीच याज ने अवशिष्ट ह्रदय की दूसरी आहुति दी तो वेदी के बीच से एक सर्वांग सुन्दरी कन्या पैदा हुई। जन्म के साथ ही उस नील–कमल वर्ण कन्या की देहयष्टि से निकली सुगन्ध एक कोस के क्षेत्र में फैल गई। वह शम वर्ण पद्म पलास के समान नीले नेत्रों वाली थी। उसके केश स्याह काले और घुंघराले थे। पीन, कटि, उन्नत उरोज, पृथुल नितम्बों वाली वह श्यामा अपनी उपमा आप ही थी। वह प्रकृति–पुरुष के संसर्ग से हीन ही इस पृथ्वी पर आयी। उस अपूर्व कन्या को देख कर, पांचाल समूह हर्ष से उन्नत ही हो गया तभी फिर आकाशवाणी हुई।"[80] इसी प्रकार से ओझा जी ने अपने कहानी संग्रह 'कौन जात कबीरा' में संकलित 'चौपाटी का चेतक और हुसैन का घोड़ा' कहानी में भी एक उदाहरण, प्रस्तुत करते हुए अलंकारिता को बड़े ही सुन्दर ढंग से बताया है– "हवा के सर्द शरारे थे। बेचद्दर मुंगेरी कंपकंपाते रहे सलमा दादी अपनी हण्डिया के अभाव में धूज रही थी। कस्बे के पत्रकार ने अपनी रिपोर्ट में कुछ पंक्तियां और जोड़ दी। बूढ़ा धुनिया दुलहेरा सज्जे हाथ को धुनकी और खब्बे को मुंगेरी बना कर गाने लगा–

'धुनक, धुनक, धुन, धुन, कबीरा चद्दर बुनता है– आया कोई गौरा बगुला, लेकर उड़ता है।। चरक चरक, चर चाक चलती है कोई हण्डिया घड़ती है। आई कोई मेम कि झपट ले चलती है।। धुनक, धुनक, धुन, धुन।" मीर कमाल मुंगेरी और सलमा को सहारा दे ले चलता है।"[81] इसी प्रकार रामकुमार ओझा ने 'कौन जात कबीरा' कहानी संग्रह की 'सूखे की एक रपट' कहानी से अलंकारिता का पर्याय देते हुए उदाहरण प्रस्तुत किया है– "आश्विन बीतने को था, फिर भी सूरज में जेठी तपिश भरी थी। धरती भटियारिन के भाड़ सी जल रही थी, गर्म धूल में भुनते चनों के समान रेत के वर्तुल उठ–उठ कर भूतों के समान घूम रहे थे।"[82] इसी प्रकार "गाँव के दूसरे छोर पर एक पीपल का बूढ़ा पेड़ मिला। पत्ते जल कर सब झड़ चुके थे।"[83] इसी तरह 'खून लामजहब है' में एक अन्य उदाहरण से बताया है "पर तभी मास्टर के भेजे में सन्देह का कीड़ा कुनबुनाया– लाश है कि भी नहीं? मौसम कोहरे की चद्दर ओढ़े था"[84] उपर्युक्त पंक्तियों में अलंकारों का प्रयोग किया गया है। इसी तरह ओझा जी ने अपनी समस्त कहानियों व उपन्यासों में अलंकारिक भाषा का विशेष रूप में प्रयोग किया है।

6.6 भाषा प्रयोग –

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाषा के द्वारा हम परस्पर विचार विनिमय करते हैं। उपन्यास की भाषा में कहावतों, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं शब्द प्रयोग का बड़ा महत्त्व होता है। रामकुमार ओझा ने अपने कथा–साहित्य में भाषा के विविध प्रयोग किये हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख भाषागत प्रयोगों को हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

(क) परिष्कृत भाषा –

परिष्कृत भाषा वहाँ पायी जाती है, जहाँ पर लिखते समय तत्सम् शब्दों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। ओझा जी के कथा–साहित्य में यथा–स्थान पर परिष्कृत भाषा का प्रयोग भी देखने को मिलता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं– "आपादमस्तक लिपटी एक मानवाकृति उनके सामने आकर खड़ी हो गई। कम्बल का आच्छादन हटाने से पूर्व ही राव जी समझ गये कि आगन्तुक कौन है।"[85] इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण में बताया है देखिये– "आर्य स्थूलभद्र चतुर्मास की परिसमाप्ति तक अपनी ही पूर्व प्रेमिका मगध की श्रेष्ठ गणिका कौशा की चित्रशाला में भोगों के बीच विदेह बन, पद्मासन लगा निरन्तर साधनारत रहे थे।"[86] उपर्युक्त उदाहरण में आपादमस्तक, मानवाकृत्ति, आच्छादन, परिसमाप्ति, स्थूलभद्र, गणिका कौशा, निरन्तर, साधनारत इत्यादि शब्दों में गाम्भीर्य व परिष्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

इसी तरह ओझा जी ने एक अन्य उदाहरण में बताया है– "जिन शासन–शिरोमणि, संयम–मार्तण्ड आचार्य सम्भूत विजय के संघ के चार शीर्षस्थ शिष्य पावस–ऋतु के चातुर्मास्य ताप की सम्पूर्ति कर लौट रहे थे, स्थिर–प्रज्ञास्थिति को प्रापत आचार्य प्रवर का ध्यान भी क्षण–क्षण उचटे जा रहा था।"[87] उपर्युक्त उदाहरण में शिरोमणि, संयम–मार्तण्ड, आचार्य सम्भूतविजय, शीर्षस्थ, पावस ऋतु, चातुर्मास्य, प्रज्ञास्थिति, आचार्य प्रवर जैसे शब्दों में गाम्भीर्य एवं परिस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है, जिससे ओझा का कथा–साहित्य और प्रभावत्मक एवं मनोरंजकतापूर्ण बन गया है।

(ख) चित्रात्मक भाषा –

चित्रात्मक भाषा–भाषागत सौन्दर्य का एक पक्ष है जब कोई साहित्यकार किसी वस्तु, घटना, पात्र इत्यादि का इस प्रकार वर्णन करता है, कि उसके वर्णन में एक शब्द चित्र सा बनता जाता है और पाठक जब उसके पाठ को पढ़ता है, तो उसके सामने सम्बन्धित वस्तु, घटना, पदार्थ या व्यक्ति का चित्र उभर कर आता है और वह उस भाषागत चित्र के माध्यम से लेखक के कथ्य से सम्प्रेषित हो जाता है। रामकुमार ओझा ने अपने कथा–साहित्य में यथा–स्थान ऐसी भाषा का प्रयोग किया है। यहाँ हम कुछ उदाहरण

प्रस्तुत हैं– "व्यवहार की खरी, स्वभाव से अनबूझ लुगाई। मीठी बोले तो मिश्री घोले। मिठास का मारा करमू धम्म से दीवार पर आ रहा। तभी आकाश में बिजली कड़की और साथ ही मुकामों गरजी– अरे आये करमू, उतर दीवार से। तनिक मीठी क्या बोली बस, सींव की उलघंना को तैयार हो गया।"[88] उपर्युक्त पंक्तियों में मुकामों व उसका देवर करमू का वर्णन किया जा रहा है, जिसमें करमू अपनी भाभी के दो–चार मीठी बातों से इस प्रकार उसमे लीन हो जाता है कि दीवार ही फांदने को तैयार हो जाता है। उसी का वर्णन करमू के आँखों के आगे एक चित्र के रूप में उभरकर ज्यों का त्यों प्रकट हो जाता है। चाहे वो किसी प्रकार का व्यक्ति, घटना, वस्तु, पदार्थ इत्यादि क्यों ना हो ये सभी चित्रात्मक भाषा में प्रयुक्त हुए हैं।

इसी तरह ओझा जी के 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह में भी एक उदाहरण प्रस्तुत है, देखिए– "कविता बाहरी गेट की दीवार का ढासना लगाये मेरे इन्तजार में खड़ी सड़क और घूर रही थी। बच्चे भी प्रतिक्षारत थे। मैं भीतर चला गया। औरत सड़क पर खड़ी रही। पर कविता दूर से ही उसे मेरे साथ लगे आती देख चुकी थी। उसकी प्रतीक्षित जिज्ञासा मुझसे देरी होने का सबब जानने के स्थान पर सीधे प्रश्न पर उतर आयी।"[89]

(ग) आँचलिक भाषा –

आँचलिक शब्द अँचल से बना है। अँचल का अर्थ है क्षेत्र–विशेष इस प्रकार आँचलिक का अर्थ हुआ क्षेत्र विशेष प्रचलित भाषा ऐसी भाषा जो किसी क्षेत्र विशेष में ही प्रचलित होती है। कहने का आशय यह है कि जब कोई साहित्यकार ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है, जो किसी एक क्षेत्र में बोले जाते हैं और उन शब्द में वहाँ का रंग संस्कृति की छाया समाविष्ट रहती है। हिन्दी में आँचलिक भाषा का प्रयोग अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में किया है, जिनमें फणीश्वरनाथ 'रेणु', रामदरश मिश्र आदि कई उल्लेखनीय है। रामकुमार ओझा ने अपने उपन्यासों और कहानियों में अनेक स्थानों पर पात्रों के वार्तालाप में आँचलिक भाषा का प्रयोग किया है। यहाँ इस शोध–प्रबन्ध में विस्तारभय से हम दो–तीन उदाहरण देकर अपनी बात पुष्ट करेंगे– "नेहरा निढ़ाल होकर बौराया। साँवरिया के पास कई बिध छुलावे हैं, फिर वह बार–बार मेंह बिना ही क्यों मारता है ?

"छल बल कई–कई सांवरा, तो हाथो किरतार।
मारण मारग मोकला, मेंह बिना मत मार।"[90]

इसी प्रकार ओझा जी ने "कौन जात कबीरा" कहानी संग्रह में प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार से है, देखिए–

"म्है अबार हालौ (लगान) नहीं देयण सकां सा! सोसायटी रो करजो नहीं चुकायण सकां सा! म्हारी हालत देखों सा,ब।"[91]

उपर्युक्त पंक्तियों में म्हैं, अबार, हालौ, देयण सकां करजो, चुकायण जैसे शब्दों अँचल विशेष का प्रयोग हुआ है। अतः इनमें आँचलिक भाषा है। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण में ओझा जी ने 'आदमी वहशी हो जाएगा' संग्रह में बताया है, जो इस प्रकार से है, देखिये– "छप्पर छेका छिद रह्या बड़क्या बांदा बांस। बेग पधारो सांवरा, म्हाने थांरी आष।।"[92]

उपर्युक्त पंक्तियों में छप्पर, छेका, छिद, बड़क्या, बांदा, बांस, बेग, पधारो, म्हाने, थांरी में आँचलिकता है। अतः इसमें आँचलिक भाषा है। इसी तरह ओझा जी ने इसी कहानी संग्रह में से एक और उदाहरण प्रस्तुत कर बताया है– "मैने सोचा, डोल इधर से ही झाल लूँ 'आज सीधे डोल झालने को मन हुआ तो कल और कुछ झालने को भी मन हो सकता है। चल, दरवाजे पै आ। देहरी पर डोल धरा मिलेगा।"[93]

उपर्युक्त पंक्तियों में डोल, झाल, झालने, धरा जैसे शब्दों में आँचलिक भाषा का प्रयोग हुआ है।

(घ) काव्यात्मक भाषा –

काव्यात्मक भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है, जिसमें इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें पढ़कर पाठक को काव्यात्मक आन्दानुभूति होने लगती है। काव्य का प्रमुख तत्त्व भावात्मकता होता है, जब रचनाकार अनुभूति समवलित् भाषा का प्रयोग करता है या कहीं–कहीं पूरा का पूरा छन्द या पद्य लिख देता है, तो वहाँ भाषागत काव्यात्मकता का संचार हो जाता है। श्री रामकुमार ओझा की कहानियों एवं उपन्यासों में अध्ययन करते समय कई स्थल ऐसे मिले जहाँ उन्होंने या तो पूरा का पूरा छन्द पद्य या किसी प्रसिद्ध लेखक के काव्य की पंक्तियाँ ज्यों की त्यों प्रस्तुत की है। तो कहीं–कहीं अलंकारों का प्रयोग करके भाषा में काव्यात्मकता उत्पन्न की है। उनके साहित्य में सामान्यतः उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक जैसे अलंकारों के उदाहरण मिल जाते हैं। इनका प्रयोग बिल्कुल सहज सरल रूप में हुआ है। कहीं पर भी ऐसा नहीं लगता कि काव्यात्मकता को जबरदस्ती लाने का प्रयास किया गया हो। यहाँ हम दो–एक उदाहरण प्रस्तुत कर अपनी बात स्पष्ट कर सकेंगे– "शब्द हमार तू शब्द का, मुनि मति जाहु सरक्क। जो चाहहु निज तत्त्व को, शब्दहु लेहु परक्क।। इसी प्रकार एक और उदाहरण में बताया है– "जिस जा पै हांडी चूल्हा, तथा औ तनूर है। खालिक की कुदरतों का उसी का जहूर है।।"[94]

उपर्युक्त पद्य में भी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है, जिससे ओझा जी के कथा साहित्य में काव्य भाषा की अभिवृद्धि हुई है। इसी प्रकार 'रावराजा' से एक उदाहरण प्रस्तुत है, देखिए– "पहाड़ गरजता नहीं बरसता है। जब बरसता है तो बादल पूरा फट जाता है। चट्टानें तैर जाती हैं। बस्तियाँ बह जाती है। तब भी अचानक बरसने लगा। रात भर धमक कर बरसता रहा। पगला झरना दहाड़ता रहा, पछाड़ खा–खा कर बहता गया। न जाने कितने न कितने प्रेमी जोड़ी निराशा के आवेग में इस पगले के अन्तराल में डूब मरे होंगे। डूब मरने वालों का इतिहास कौन लिखता है।"[95]

इसी प्रकार 'रावराजा' उपन्यास से एक और उदाहरण प्रस्तुत है –"सच्ची यारी के ये ही तो लच्छन है, काका। अब मैं तुम्हें कुछ दे थोड़े ही देता हूँ, फिर भी सारा गाँव छेक कर आ जाते हो।" "ठीक तो है रे मोतिया सच्चा दोस्त बड़े भाग्य से मिलता है।" "लाख रुपये की बात कह दी काका तुमने। निर्गुणियों से जग भरा, गुणी लाख में एक और गुण ग्राहक तो अरबों–खरबों में कोई बिरला ही होता है।" सत्संग में बैठकर अपन तो यही एक बात सीखी है, बेटा कि लुगाई का चलितर और महाजन का दांव कोई नहीं समझ पाता।"[96] इसी प्रकार ओझा जी ने 'रावराजा' उपन्यास से एक उदाहरण प्रस्तुत कर बताया है, जो इस प्रकार से है, देखिये– राव जी भी सीढ़ियों के रास्ते गढ़ी की छत पर आ खड़े हुए। उमराव का कहीं अता पता न था। चाँदनी बिलस पड़ रही थी। राव जी ने बेहड़ गाँव को चतुर्दिक निहारा और पुरखों की सूझबूझ में खा गये।"[97]

(ड़) अलंकारिक भाषा –

अलंकारिक भाषा वहाँ होती है, जहाँ लिखते समय साहित्यकार जाने–अनजाने ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है, जिनके प्रयोग करने से भाषा में अलंकारिकता आ जाती है। ओझा जी ने भी अपने कथा–साहित्य में यत्र–तत्र प्रसंगवश ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें अलंकारिता का सौन्दर्य आ गया है। पढ़ते समय कोई न कोई अलंकार दृष्टिगोचर हो जाता है, ऐसा करने से जहाँ कथ्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि हो गई है। वहीं भाषा में भी चारूत्व प्रभावात्मकता, आकर्षण और भाव–संप्रेषणीयता में वृद्धि हुई है। यहाँ कुछ उदाहरण देकर हम अपनी बात पुष्ट करेंगे– "गरजमंदी से हर वक्त गर्म की जाती रहती काका की भट्टी अब निर्बुझ रहने लगी", "किरणों के कोड़े और लुओं के थपेड़े खाते पहले हमारा शरीर ललछौंहा और फिर ताम्बई हो गया", "गाँव के दूसरे छोर पर एक पीपल का बूढ़ा पेड़ मिला।"[98]

उपर्युक्त अलंकारिक पंक्तियाँ अलग–अलग अलंकारों का प्रयोग करते हुए भाषा को और अत्यधिक रोचक तथा प्रभावात्मक बना दिया है, जिससे अलंकारिक भाषा की अभिवृद्धि

हुई है। कुछेक और अलंकारिक भाषा के उदाहरण प्रस्तुत हैं, जो इस प्रकार से है, देखिए– पर तभी मास्टर के भेजे में संदेह का कीड़ा कुनबुनाया–लाश है कि भी नहीं? (संदेह) मौसम कोहरे की चद्दर ओढ़े था।" (मानवीकरण) "शेष सैलाब की तरह फैल गये।" "सलौनी के दाँत भूरे बादल में बिजली के समान चमके", "कौशा बाल–बाल में मोती पिरोये लंवगलता सी डोलती।" "राम–जाने, राम–जाने, राम–जाने कहते हैं लोग मुझे राम जाने" "कोंपल–सी कोमल। मक्खन सी मुलायम "छतों को नरम बनाते हुए, दिशाओं को मृदंग की तरह बजाते हुए (उत्प्रेक्षा) "शरद आया पुलों को पार करते हुए"[99–107] (मानवीकरण) उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने अलंकारिता का प्रयोग कर कथ्य को और अधिक प्रभावात्मक एवं रोचकपूर्ण बना दिया है।

(च) ध्वन्यात्मक भाषा –

जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जो एक जैसी ध्वनि उत्पन्न करते है, जैसे –छन–छन, तड़–तड़–तड़ आदि। ओझा जी के कथा–साहित्य में भी अनेक स्थान पर ध्वन्यात्मक भाषा देखने को मिलती है, जिनमें से कुछ उदाहरण प्रस्तुत है, देखिये– "चरक चरक, चर चाक चलती है, कोई हण्डिया घड़ती है।" मनभरी कुनमुना रही थी। बैलों के गले में पड़ी घंटियाँ टुनटुना रही थी। आम दिनों में मिलखाराम घंटियों की टुनटुनाहट के साथ अलाप ले लेकर हीर रांझा के गप्पे गाया करता था। पर अब यह टुनटुनाहट खतरे की घंटी थी।" "बाबा की सतताई की साख वनराजी के पात–पात पांखी जात, जीव, जिनावर तक भरते हैं।"

"और उसने ओढ़नी को जकड़कर देह से लपेट लिया पर दाँत किटकिटाते रहे।"[108]

उपर्युक्त पंक्तियों में चरक–चरक, चर, चाक, हण्डिया, घड़ती, घंटिया, टुनटुना, सतताई, पात–पात, पांखी, जिनावर, लपेट, किटकिटाते जैसे शब्दों में ध्वन्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है इसी प्रकार ओझा जी ने 'सयाना' कहानी से भी ध्वन्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है, देखिये– "चिलम भक्–भक् कर सुलग उठी। हरखू के मुँह और नथुनें निगालियां बन धुआं उगलने लगे, आखिर तृप्त हो बोला, गांजा असली नेपाली नजर आता है, रे मोतिया"[109] उपर्युक्त पंक्तियों में चिलम, भक्–भक्, सुलग, नथुनें, निगालियाँ, उगलने जैसे शब्द में यथा–स्थान पर ध्वन्यात्मक भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है।

6.7 वाक्य विन्यास –

भाषा विन्यास का वह विभाग जिसके अन्तर्गत वाक्य के स्वरूप, वाक्य के प्रकार, पदक्रम और पदान्वय का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण–विवेचन किया जाता है, वाक्य–विन्यास कहलाता है। भाषा के रचनातत्त्वों में वाक्य सबसे बड़ी इकाई मानी गई है। संरचनात्मक

भाषा विज्ञानी–भाषा संरचना के विश्लेषण की महत्तम इकाई वाक्य को मानते हैं। समाज भाषा विज्ञानी के अनुसार प्रोक्ति या वार्तालाप भाषा संरचना की विश्लेषण–विवेचन के स्तर पर सबसे महत्तम इकाई हैं समाज भाषा विज्ञान में सम्पूर्ण भाषण संघटना को प्रोक्ति मानते हैं। संस्कृत में इसके लिए सूक्ति और महावाक्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। वर्तमान भाषा वैज्ञानिक प्रोक्ति के लिए संवाद अथवा वार्तालाप आदि शब्दों का भी प्रयोग करता है। समाज भाषा वैज्ञानिक सम्पूर्ण भाषा व्यापार को विश्लेषण–विवेचन की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत करते हैं।

1. भाषण
2. प्रोक्ति
3. वाक्य
4. उपवाक्य
5. पदबन्द
6. पद
7. शब्द
8. ध्वनिग्राम

इस प्रकार सम्पूर्ण भाषा व्यवस्था को संरचना स्तर पर विभिन्न भागों में विभाजित करके क्रमबद्ध रूप से उत्तराधरक्रम की दृष्टि से विश्लेषण–विवेचन करते हैं। उत्तराधक्रम के आधार पर वाक्य को परिभाषित करने से पहले संस्कृत भाषा और भारतेत्तर पश्चिमी भाषाओं में विभिन्न विद्वानों ने वाक्य की क्या परिभाषाएं दी हैं? इनका ज्ञान आवश्यक है। प्लेटों और अरस्तु जैसे यूनानी दार्शनिक रचनाकारों ने वाक्य को कम्पलीटसैन्स अर्थात् पूर्ण अर्थ बोधक इकाई माना है। अंग्रेजी भाषा के परम्परागत व्याकरणों में इसी परिभाषा को सबसे अधिक उद्धृत किया है। पूर्ण अर्थ शब्द का भी होता है, पद का भी होता है, पदबन्ध और उपवाक्यों का भी होता है।

संस्कृत में अनेक वैयाकरणों ने वाक्य को निम्नांकित रूप से परिभाषित किया है। 'पदानामसमूहोवाक्यम्' अर्थात् पदों के समूह को वाक्य कहते हैं। भाषा विज्ञान के नियमानुसार पदों का समूह पदबन्ध कहलाता है, वाक्य नहीं। संरचना स्तर पर उपवाक्यों का समूह वाक्य कहा जायेगा। इस प्रकार संस्कृत व्याकरण में दी गई यह परिभाषा भी अपूर्ण और अवैज्ञानिक कही जायेगी।

वाक्य की उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रचना, अर्थ और अनुतान के आधार वाक्य की जो परिभाषाएँ दी गई है वे अपूर्ण, एकांगी और एकपक्षी

परिलक्षित होती है। वाक्य को पूर्ण और प्रमाणिक रूप से उत्तराधर क्रम के आधार पर ही परिभाषित किया जा सकता है। उत्तराधरक्रम की दृष्टि से वाक्य की निम्नलिखित परिभाषा होगी– "भाषा संरचना की ऐसी इकाई जिसका प्रयोग प्रोक्ति से नीचे और उपवाक्य से ऊपर होता है वाक्य कहलाती है।" इसी प्रकार प्रोक्ति को भाषण से नीचे की ओर वाक्य से ऊपर की भाषिक इकाई माना जायेगा। उपवाक्य को वाक्य से नीचे और पदबन्ध से ऊपर की भाषिक इकाई कहा जायेगा। समाजभाषा वैज्ञानिकों ने प्रोक्ति को सन्दर्भबद्ध वाक्य समूह कहा है। इसी आधार पर प्रोक्ति के लिए वाक्यबन्ध शब्द का प्रयोग भी किया जाता है वास्तव में भाषा की आधारभूत इकाई वाक्य ही मानी गई है। वाक्यों की क्रमबद्ध और तार्किक प्रयोग ही भाषा का निर्माण करता है। अतः भाषा संरचना के विश्लेषण में मूलतः और प्रधानतः वाक्य का ही विश्लेषण–विवेचन किया जाता है।

(क) वाक्य भेद और उनके वर्गीकरण के आधार –

संस्कृत के वैयाकरणों ने पदक्रम और पदान्वय के आधार पर अभिहितवान्वयवाद और अन्वितानिधान वाक्य को दो भागों में वर्गीकृत किया है। अंग्रेजी भाषा में समीपीसंरचक को आधार बनाकर वाक्य को संज्ञा पदबन्ध, विशेषण, पदबन्ध, क्रिया पदबन्ध और क्रिया विशेषण पदबन्ध आदि अनेक भागों में विभाजित किया है। पश्चिमी भाषा विज्ञान में ही अन्तिम समीपीसंरचक को आधार बनाकर भी वाक्यों का विश्लेषण, वर्गीकरण और विभाजन किया गया है। संस्कृत भाषा में मुख्य रूप में पदान्वय को आधार बनाकर वाक्य का अलग–अलग तरह से विश्लेषण–विवेचन किया जाता है संज्ञा पद, सर्वनाम पद और क्रियापद आदि पद भेदों के आधार पर संस्कृत व्याकरण को आधार बनाकर हिन्दी भाषा के व्याकरण काव्यों में भी वाक्य को विश्लेषित–विवेचित, वर्गीकृत और विभाजित किया गया है। वाक्य को परिभाषित करते समय वाक्य के संरचनागत स्वरूप के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का विवेचन किया है। वाक्य की परिभाषा के समय यह भी बताया गया कि 'रचना, अर्थ प्रयोग और अनुतान आदि वाक्य के संरचनागत स्वरूप के अलग–अलग आधार रहे हैं। भाषा विज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न भाषाओं के प्रकारों का वर्गीकरण करते समय विभक्ति प्रत्ययों को आधार बनाकर भी वाक्यों को विभाजित किया गया है। अयोगात्मक वाक्य और योगात्मक वाक्य भाषा की आकृति के आधार पर भाषा के भेद माने गये हैं। ऐसे वाक्य जो विभक्ति प्रत्ययों से अनुशासित रहते हैं, उन्हें योगात्मक वाक्य कहते हैं और ऐसे वाक्य जो विभक्ति प्रत्ययों से मुक्त रहते हैं, जिनमें केवल मूल शब्दों का ही प्रयोग होता है और मूल शब्दों का स्थान बदल देने से वाक्य का अर्थ बदल जाता है। अयोगात्मक वाक्य कहलाते हैं। रामकुमार ओझा ने अपनी कहानी और उपन्यास दोनों प्रकार की काव्यकृतियों की भाषा

में योगात्मक वाक्यों का ही प्रयोग मिलता है। योगात्मक वाक्यों की प्रधानता के कारण रामकुमार ओझा की काव्य भाषा को योगात्मक भाषा कहा जायेगा। भाषा विज्ञान में वाक्यभेद की अनेक पद्धतियां प्रचलित हैं परन्तु मुख्य रूप से रचना, प्रयोग, पदक्रम और पदान्वय ये चार पद्धतियाँ प्रभावी रही है।

(ख) रचना के आधार पर –

रचना के आधार पर वाक्य तीन प्रकार के होते हैं–

(i) साधारण वाक्य–

जिस वाक्य में एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय हो, उसे साधारण वाक्य कहते हैं।

1. सलौनी झटक कर बाहर आ गई।

इस वाक्य में सलौनी कर्त्ता हैं तथा झटक कर बाहर आ गई विधेय है। इसमें आ गई क्रिया तथा झटक कर क्रिया विस्तारक है।

2. काका ने बहस की।

इस वाक्य में काका उद्देश्य हैं तथा बहस की इस वाक्य का विधेय है और बहस इसमें कर्म है।

3. काका हैरान थे।

इस वाक्य में काका उद्देश्य तथा विधेय हैरान थे हैं। (कौन जात कबीरा)

4. यह तिलिस्म टूट ना जाए।

इस वाक्य में तिलिस्म उद्देश्य है तथा यह उद्देश्य विस्तारक है, टूट ना जाए विधेय है।

5. सितारे घूमते रहते हैं।

इस वाक्य में सितारे कर्त्ता अर्थात् उद्देश्य है तथा घूमते रहते हैं विधेय है, घूमना इसमें क्रिया है।

6. हमने बोला था।[110] (सिराजी और अन्य कहानियाँ)

इस वाक्य में हम उद्देश्य हैं तथा बोलना कर्म हैं व बोला था था विधेय है।

7. मुझे आपका परामर्श स्वीकार है।

इस वाक्य में मुझे उद्देश्य का कर्त्ता तथा आपका परामर्श स्वीकार है विधेय है, जिसमें परामर्ष कर्म तथा स्वीकार है क्रिया हैं।

8. ठाकुर ने ठण्डी सांस ली।

इस वाक्य में ठाकुर उद्देश्य का कर्त्ता है तथा ठण्डी साँस ली विधेय हैं, इसमें सांस कर्म तथा ठण्डी कर्म का विस्तारक है।"[111] (आदमी वहशी हो जायेगा)

(ii) मिश्र या मिश्रित वाक्य–

जिस वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य तथा एक या एक से अधिक आश्रित उपवाक्य हों, उसे मिश्र या मिश्रित वाक्य कहते हैं।

"नहीं अपने को सत्य के हवाले करो", जो भी हो– आदेश! सच्चे तेरी आस, 'बाबा' भी बाहरी तौर पर शान्त था पर भीतर कुछ मथा जा रहा था, स्वतंत्रता ही सर्वोपरि धर्म है, कभी उसे भी किसी ने वैसे ही सत् की साख से बांधा था, बारह दिन, तक झूठ न बोलो, फिर आओ।, ब्रह्म मुहुर्त में उठ खड़ा हुआ और सदा लगाई– सच्चे तेरी आस। जवानी के दिनों में काका बस्ती की रामलीला में भरत की भूमिका किया करते।"[112] (कौन जात कबीरा)

"जवानी के दिनों में काका बस्ती की रामलीला में भरत की भूमिका किया करते।" "बुढ़ौती में नेकवक्त बीवी से बिछोह हुआ तो अच्चन काका भी बुझ चले।" रकाबी धो कर जाने लगा तो रामदीन फिर बोला" "सूखे में कुत्ते पुष्ट हो जाते हैं, कुत्ते कई किस्म के होते हैं।" "हाँ एक है गाँव की बूढ़ी दाई, जाति की चमारिन है।" "पर तू आज सई–साँझ ही कैसे लौट आया रे।" "तो यहाँ खड़ी क्यों चीख रही है? जा सो रह काकू आने ही वाला होगा।" "तो इधर क्यों नहीं चली आती।" "तू रात भर आग ही जलाता रहेगा, ये ले तेरी माचिस।" "हम दोनों तब से यहीं खड़े हैं।"[113] (सिराजी और अन्य कहानियाँ)

(iii) संयुक्त वाक्य –

जिस वाक्य में दो या दो से अधिक साधारण वाक्य या प्रधान उपवाक्य या समानाधिकरण उपवाक्य, किसी संयोजक शब्द (तथा, एवं, या, अथवा, और, परन्तु, लेकिन, किन्तु, बल्कि, अतः आदि) से जुड़े हों, उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। यथा– "भरत आया, किन्तु भूपेन्द्र चला गया।

एक और हिन्दुओं के त्योहार उनसे रौनकबरदार हो जाते थे।

यह लौंडा उनका शागिर्द रह चुका था। मगर उसने जो जवाब दिया उसे सुन कर काका सकते में आ गए।" (कौन जात कबीरा)

अच्चन काका का सदा आबाद हत्था उजाड़ रहने लगा और लौह, कबाड़ रद्दी के भाव बिक गया।

कालू ने कोई उत्तर नहीं दिया और औने–पौने दाम दे कर बर्तन रख लिए।

हमारे फ्लास्कों में पर्याप्त पानी और थैलों में काफी स्वादिष्ट भोजन भरा था।"[115] (कौन जात कबीरा)

किरणों के कोड़े और लूओं के थपेड़े खाते पहले हमारा शरीर ललछौहा और फिर ताम्बई हो गया।, हमने एक दुःसाहसिक अभियान के स्तर पर तैयारी की और भोर होने से पहले ही चल पड़े।' 'हम एक–दूसरे को भी धोखा दिये जा रहे थे और आदमी के दर्द पर अफसोस जाहिर करते जा रहे थे।' 'चोक के एक ओर ठाकुरों की पुरानी गढ़ी के अवशेष थे तो दूसरी ओर गाँव के शाहूकार की नयी हवेली थी।' 'कौए उसके शरीर को चोंचों से कुरेद रहे थे और वह कभी–कभार टांग हिला कर जीवित होने का अहसास जता रहा था।' 'दाई माँ ने नाल काटी और आंगण में गाड़ दी।' 'कुछ भी तो नहीं, तैने कहा और मैंने तेरे उपलें ले लिये।' 'भीतर बाहर दोनों ओर से जाड़ा उमड़ आ रहा है।', 'सलौनी ने हरिकेन मुंडेर पर रख दी और जला दी।'[116] (कौन जात कबीरा)

पिंडारी और जब्बरा भी पूँछ उठाये उसके पीछे लगे आये। उसने सींगमारनी भैंस और कटख्नी गाय को छोड़, शेष पशुओं की रस्सी खोल दी और नोहरे पर काबिज हो गयी। ससुर, सास और पति एक ओर बैठे। दूसरी ओर दुलाई में दुबकी बहू खड़ी 'उसने ताक में रखी संदूकची और गंडासा उठाया और जानवरों द्वारा ढहाई जाती दीवार से कुछ हटकर बैठ गयी।' 'भूरी का घी खाकर पाधा की जीभ और भी चिकना गई और कुछ दिनों तक चब्बरबाजी करती रही।', 'कांकड़ पर पड़ा उफन रहा है और इधर की सीमा का आदमी प्यासा पैदा होकर बिना पानी ही मर जाता है।"[117] (आदमी वहशी हो जाएगा)

(ग) अर्थ के आधार पर –

ऐसे वाक्य जो विभिन्न प्रकार के भावों और विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं, अर्थ आधारित वाक्य कहलाते हैं। स्वीकृति निषेध, प्रश्न, विस्मय, जिज्ञासा, अनुनय–विनय, आज्ञा और विधि सभी अर्थ के आधार पर वाक्य भेद माने गये हैं। इन्हीं भावों और विचारों की अभिव्यक्ति जिस भाषारूप द्वारा होती है वही अर्थाधृत वाक्य कहलाते हैं। रामकुमार ओझा की काव्यभाषा में प्रयुक्त वाक्यों को अर्थ के आधार पर निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) स्वीकारात्मक वाक्य–

रामकुमार ओझा ने अपनी कहानी व उपन्यासों में अलग–अलग सन्दर्भों में स्वीकारात्मक वाक्यों का प्रयोग किया है। जैसे– वह जाता है, तुम पढ़ते हो, कुत्ते भौंकते हैं, चिड़िया चहचहाती है, हवा बह रही है, वर्षा हो रही है इस प्रकार के सभी वाक्य विधेयात्मक अथवा स्वीकारात्मक वाक्य माने जायेंगे। मोहन ने सोहन से कहा क्या कल तुम विद्यालय जाओगे? सोहन ने उत्तर दिया कि हाँ मैं कल विद्यालय जाऊँगा। यह दूसरा वाक्य प्रष्नोत्तर 'षैली' पर आधारित स्वीकारात्मक वाक्य है। इस प्रकार के वाक्य प्रयोगों द्वारा कवि ने

समाज की विधेयात्मक अथवा रचनात्मक मानसिकता को द्योतित किया है। इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जा सकती है–

'जानते हो उमराव दिन दुबले चल रहे है।' हाँ जानता हूँ, 'इस दौरान तेजू मैं हुक्का ताजा करके छोड़ चुका हूँ।', 'जुहार की और दालान से बाहर आ गया था।', 'सुनकर क्या करोगे, मैं आपको गुरू मान लूँगा।' 'मैं रावजी के यहाँ पहरा दे रहा हूँ।', 'तो पलंग पर से उठते सेठ धनदास की मंझली बेटी गौरी ने पूछा "आज बड़ी देर से आये हो, नौकर जी आज देर से आया हूँ।" 'पर रूपराम चिढ़ने का अभिनय करते हुए बोला, तुम क्या जानो फेर देते पांव थक जाते हैं।' उपर्युक्त सभी वाक्यों में अपनी बात या प्रसंग जो कह रहा है। उसको पूर्णतया स्वीकार किया जाता है, अतः इस प्रकार के सभी वाक्य स्वीकारात्मक वाक्य कहलाते हैं।"[118]

(ii) निषेधात्मक वाक्य –

निषेधात्मक भावना की अभिव्यक्ति के लिए जिन वाक्यों का प्रयोग होता है उन्हें निषेधात्मक वाक्य कहते हैं। रामकुमार ओझा ने अपनी सभी काव्यकृतियों की भाषा में निषेधात्मक वाक्यों का प्रयोग किया है। ये निषेधात्मक वाक्य दो प्रकार के प्रयुक्त हुए हैं– 1. एकालाप से सम्बद्ध निषेधात्मक वाक्य, 2. वार्तालाप से सम्बद्ध निषेधात्मक वाक्य।

समस्त काव्यकृतियों की भाषा में पहले प्रकार के निषेधात्मक वाक्यों का प्रयोग अधिक हुआ है। निषेधात्मकता की अभिव्यक्ति कवि ने 'न' और 'नहीं' निषेधात्मक अव्यय जोड़कर की है। ये दोनों ही निषेधात्मक शब्द साहित्यिक हिन्दी के हैं इस प्रकार के निषेधात्मक वाक्यों की प्रधानता के कारण यह कहा जा सकता है कि रामकुमार ओझा ने अपनी काव्य रचना में मानक हिन्दी का प्रयोग किया है। 'न' और 'नहीं' निषेधात्मक शब्दों का प्रयोग वाक्य के आरम्भ, मध्य और अन्त तीनों स्थितियों में हुआ है। 'न' और 'नहीं' निषेधात्मक शब्दों के स्वच्छन्द प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रचनाकार ने बहुस्तरीय भाषा का प्रयोग किया है। इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जा सकती है–

"आइन्दा नहीं बोलूंगा। हर किसी को किसी ने किसी चीज से घिन्न होती है।", "दरवाजे से होकर बादल घुस आने की गुंजाइश न थी पर ताजा हवा चली आ रही थी।" उपर्युक्त वाक्य में बोलते समय 'न', 'नहीं' का या निषेधात्मक प्रयोग किया गया है। अर्थात् इस प्रकार के वाक्य निषेधात्मक वाक्यों की श्रेणी में शामिल होते हैं।

'पहले आवश्यकता न थी और जब सरदार दोरजी दुरंग के सामने ही कई बार अटेची को खोलकर बन्द कर चुका, तो ताला इस लिहाज से नहीं लगाया कि दोरजी

अन्यथा न लें।' 'सरदार लिखत–पढ़त का आदी न था, पर मैं था। वह कहता हम जबानी फर्दखाता रखता, हमारा पावना कोई नहीं खाने का।" यह जान पाया कि होटल के सामने चौगान से अतल की ओर दो रास्तों में से किस से होकर वह उतर गई थी।" "जबकि मैं जानता था, कि उस लड़की से मेरा कोई जज्बाती रिश्ता न था, न हो सकता था।" 'जो मेरी लापरवाही के कारण भटक गयी थी और जिल्लत की जिन्दगी का सामना न कर पायी तो मर गई थी, पर मैं इसे नहीं मरने दूँगा।"[119] (कौन जात कबीरा)

(iii) प्रश्नबोधक वाक्य –

ऐसे वाक्य जो प्रश्नबोधक अव्ययों के प्रयोग से निर्मित और विकसित होते हैं, प्रश्नबोधक वाक्य कहलाते हैं। रामकुमार ओझा ने अपनी काव्य भाषा में दो प्रकार के प्रश्नबोधक वाक्यों का प्रयोग किया है–

1. प्रश्नबोधक शब्दों से युक्त प्रश्नबोधक वाक्य –
2. प्रश्नबोधक शब्दों से रहित प्रश्नबोधक वाक्य –

रामकुमार ओझा की काव्य भाषा में क्या, कब, कहाँ, क्यों, कैसे आदि अनेक प्रश्नबोधक शब्दों की सहायता से प्रश्नबोधक वाक्यों का प्रयोग हुआ है। कवि ने काव्यभाषा होने के कारण प्रश्नबोधक शब्दों का प्रयोग स्वच्छन्द रूप से किया है। अनेक वाक्य प्रश्नबोधक शब्दों से ही आरम्भ हुए हैं। इस प्रकार की वाक्य रचना पद्धति अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त मिलती है। दूसरे प्रकार के प्रश्नबोधक वाक्यों की रचना में प्रश्नबोधक शब्दों का प्रयोग वाक्य के बीच में हुआ है और अनेक इस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग भी मिलता है जिनके अन्त में प्रश्नबोधक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार कवि ने अपनी काव्यकृतियों की भाषा में प्रश्नबोधक वाक्यों की तीन अलग–अलग पद्धतियों का प्रयोग किया है। दूसरे प्रकार के प्रश्नबोधक वाक्यों की रचना अनुतानपद्धति पर आधारित रही है। इस वाक्य रचना पद्धति में प्रश्नबोधक शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है अपितु वाक्य में प्रयुक्त पदों पर बलाघात का प्रयोग होने से वाक्य रचना प्रश्नबोधक बन गई है। यह वाक्य रचना की नितान्त स्वतंत्र प्रयोग पद्धति है। इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जा सकती है।

"किसी दिन कहूँगी काकू से। ए तू अपनी बात क्या आप कहेगी?

धार किस ओर से आती है?

इस छोर पर हिन्दू हैरान थे, उस छोर पर मुसलमान परेशान थे।

मैंने कहा मसला कैसे हल हो?

कैसी हो मनभरी?"[120] (कौन जात कबीरा)

(iv) विस्मयबोधक वाक्य –

वक्ता के मन में विस्मय और आश्चर्य उत्पन्न करने वाली भाषा संरचना विस्मय बोधक वाक्य मानी गई है। प्रकृति की रहस्यात्मकता, मानव जीवन की अद्भुतता और अलौकिक शक्तियों की विलक्षणता विस्मयबोधक वाक्यों की प्रजनक रही है। मुक्तक काव्यों की भाषा में कवि ने प्रकृति की रमणीयता और रहस्यात्मकता के दर्षन किये हैं। इन अद्भुत मनोभावों की अभिव्यंजना कवि ने विस्मयबोधक वाक्यों द्वारा की है। ओझा जी के कथा–साहित्य का अध्ययन करने पर यह अवगत हुआ है कि उन्होंने अपनी कहानी व उपन्यासों में अनेक स्थानों पर विस्मादिबोधक वाक्यों द्वारा अपने कथ्य को विस्तार दिया है यहाँ उनके साहित्य से कुछेक उदाहरण देकर हम अपनी बात पुष्ट कर सकते हैं– "जाते हुए लड़के को टोकते हुए सरदार ने समझाया, 'सुन सतनामा! बटेर का दिल लेकर जिएगा तो दुनिया जीना हराम कर देगी।" "अब उसके मन में नई ललक पैदा हुई। काश! एक बार बाबा कबीरा से मुलाकात तो हो जाती।", "यार हजामत अली! तू लफंगे जेलियों के लिए चरस, गांजा, अफीम सप्लाई करता रहा है, मेरा एक पुण का काम भी रानों में दबाकर तहमद का फड़का ठीक कर।" "अरे तुम बात की कहते उस्ताद! मेरी लाज का सवाल।" (सिराजी और अन्य कहानियाँ) सम्पूर्ण काव्य भाषा में मानक हिन्दी के ही विस्मय बोधक वाक्यों का प्रयोग हुआ है। इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जा सकती है–

जीतू जैसे मर गया। काकू के तेवर बदल गए–सलौनी।

मुझसे हुस्स पगली। जीतू ने उसे धकिया कर ठेला।

गाड़ी को रूकना ही था! हाथ उठाकर नीचे जाओ।"[121] (कौन जात कबीरा)

(v) आज्ञार्थक वाक्य –

रामकुमार ओझा ने अपनी कहानी व उपन्यासों में बहुतायत स्थान पर आज्ञार्थक वाक्यों का प्रयोग किया है। आज्ञार्थक वाक्यों की रचना वक्ता और श्रोता के व्यक्तिगत सम्बन्धों और सामाजिक स्तर भेदों से अनुशासित रही है। उपाधि, पद, आयु, गुण, योग्यता और सम्बन्ध में कनिष्ठ, वरिष्ठ पात्र, पात्रों के लिए आज्ञार्थक वाक्यों का प्रयोग करते हैं। आज्ञार्थक वाक्यों की रचना मध्यम पुरुष एकवचन और बहुवचन दोनों प्रकार के कर्ताओं से अनुशासित रही है। तू जा, तू खा, तू पी, तू सो, तू देख जैसे आज्ञार्थक वाक्य मध्यम पुरुष एकवचन कर्ता से अनुशासित है। तुम जाओ, तुम देखो, तुम पढ़ो जैसे आज्ञार्थक वाक्य मध्यम पुरुष बहुवचन कर्त्ता से अनुशासित है। इस प्रकार आज्ञार्थक वाक्यों की रचना एक और मूल मुख्य क्रिया प्रयोग से हुई है तो दूसरी ओर औकारान्त क्रिया प्रयोगों से भी

आज्ञार्थक वाक्य निर्मित हुए हैं, ये दोनों प्रकार के वाक्य प्रयोग समस्त काव्य कृतियों की भाषा में मानक हिन्दी के ही मिलते हैं। इस प्रकार के वाक्य प्रयोगों द्वारा यह कहा जा सकता है कि रचनाकार ने अपनी काव्यकृतियों की रचना मूलतः और प्रधानतः मानक हिन्दी में ही की है। इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जा सकती है।

"तू कोई बीरबानी क्यों नहीं ले आता जीतू

तो जा चुपचाप सो रह

और वह नर्स की नजर बचाकर जाने लगा तो नर्स ने टोका, "रूको"

तुम्हारे मरीज की छुट्टी, इसे साथ ले जाओ।"[122] (कौन जात कबीरा)

(vi) विध्यर्थक वाक्य –

इस प्रकार के वाक्य विन्यास जो विधि अथवा सुझाव आदि पर आधारित रहता है विध्यर्थक वाक्य कहलाता है। इन वाक्यों की रचना में वक्ता का उद्‌देश्य श्रोता को सुझाव और निर्देश देना होता है। निर्देशात्मक व्याकरण के अन्तर्गत विध्यर्थक वाक्यों को निर्देशात्मक वाक्य माना गया है। ऐसे वाक्यों की रचना अन्य पुरुष एकवचन और बहुवचन कर्त्ता प्रयोगों से अनुषासित रहती है। रामकुमार ओझा ने अपनी कहानी व उपन्यासों की भाषा में इस प्रकार के सीमित वाक्यों का प्रयोग निश्चित सन्दर्भों में किया है। अनुनय, विनय, सुझाव, परामर्श और करणीय कार्यों का निर्देश इस प्रकार के वाक्य–प्रयोगों को अनुशासित और नियंत्रित करते हैं। ओझा जी के कथा–साहित्य में (उपन्यास एवं कहानियों) में ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं, जहाँ पात्र परस्पर बातचीत करते हुए विध्यर्थक वाक्य प्रयोग करते हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है– "हाँ बेजवह शक ठीक नहीं। असलीयत का पता लगाना चाहिये।" "औरत की लाश को गाड़ी में डालकर चलना चाहिए।" "पर्यटक आने चाहिए, प्रकृति का सान्निध्य पाने के लिए।" "चूँकि अर्थव्यवस्था का सीधा सम्बन्ध समाज से हैं, अतः भाषण में समाज शास्त्र की विषद् व्याख्या तो होनी ही चाहिए।" "अब देख रे, जगती बिजली की तरह रोशनी की जिन्दगी चाहिए।" "कालू ने कोई उत्तर न दिया और औने–पौन दाम दे कर बर्तन रख देने चाहिए, हुजूर।" "जीतू का हाथ पकड़कर आहिस्ता–आहिस्ता तेल मलना चाहिए, सलौनी।" "असलीयत का पता लगाना चाहिए।"[123]

6.8 शब्द भण्डार –

(क) तत्सम् शब्द –

तत्सम् शब्द वे शब्द कहलाते हैं, जो संस्कृत के समान होते हैं। या यूँ कहे कि संस्कृत के शब्दों का सीधा प्रयोग जब कर दिया जाता है, तो वे तत्सम् शब्द कहलाते हैं, जो अपने स्वरूप में हिन्दी भाषा में प्रचलित होते हैं, जिनका प्रयोग रामकुमार ओझा ने अपने

कहानी संग्रहों, 'कौन जात कबीरा', 'आदमी वहशी हो जाएगा', 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' और अपने उपन्यास 'रावराजा', 'निशीथ', 'अश्वत्थामा' में मुख्य व विशेष रूप से किया है। तत्सम् शब्दों के प्रयोग से भाषा में एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य आ जाता है। ओझा जी ने तत्सम् शब्दों का प्रयोग अवश्य किया है। परन्तु उनके द्वारा तत्सम् शब्द बहुत अधिक तथा अप्रचलित नहीं है। उन्होंने सामान्यतः ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो पाठक को पढ़ते समय शीघ्र ही समझ आ जाते हैं। यहाँ हम रामकुमार ओझा की कहानी व उपन्यासों से कतिपय शब्दों का उल्लेख करते हुए तत्सम् शब्दों की सार्थकता एवं प्रयोग के औचित्य पर विचार करेंगे– दण्ड (सजा देना), परिवेश (परिक्षेत्र में आना), हास्यास्पद (हँसी का विषय), अवसाद (सुस्ती, थकावट, उदासी), भागिनेय (भानजा), पारदर्शी (निष्पक्ष काम करना), मातृ (माता), पाषिका (पोशाक पहनाना), जन्मजात (जन्म से), ओष्ठ (होंठ), वृक्ष (पेड़), आगामी (अगले समय तक), परिधान (पहनावा/वेशभूषा), सिद्ध (प्रमाण), मृत (मरा हुआ), नृत्य (नाचना), महाशय (महान), अवकाश (छुट्टी), वाक्चातुर्य (वार्तालाप में चालाक), सौभाग्य (भाग्यशाली), पथ–प्रदर्शक (रास्ता दिखलाने वाला), द्राक्षा (दाख), चर्मकार (चमार), परष्व (परसों), तिथिवार (तिथि के अनुसार), गृहिणी (घर की औरत), मेघ (बादल), तीक्ष्ण (तीखा), संयम (शांति/शालीनता), जिह्वा (जीभ/जुबान), शीर्षस्थ (उच्चपद), श्रेष्ठ (महान), लघु (छोटा रूप), सम्मुख (सामने), पल्लव (बड़ा), आशा (अपेक्षा), हस्त (हाथ), मयूर (मोर), आपादमस्तक (सिर से पैर तक), नग्न (नंगा), समागम (भजन/कीर्तन), पुच्छ (पूँछ), पक्ष (पंख), वल्गा (बाग), वर्त्म (बीच), बुभुझा (भूख), मत्सर (मच्छर), महार्घ (मँहगा), मधूक (महुआ), श्रावण (सावन), अरिष्ठ (रीठा), रिक्त (रीता/खाली), लगुड़ (लकड़ी), रूक्ष (रूठा), राज्ञी (रानी), रश्मि (रस्सी), नारिकेल (नारियल), मिस्ट (मीठा), शिला (सिल), सिद्ध (सीधा), शूकर (सुअर), सूत्र (सूत), सन्धि (मिलना), कमल (पुष्प), खट्वा (चारपाई), क्षेत्र (खेत/भूमि), गंभीर (गहरा/भयानक), ग्रन्थि (गाँठ), कर्पास (कपास/रूई), गर्दभ (गधा), कन्दुक (गेंद/बॉल), यव (जौ), घृणा (घिन्न), चर्वापण (चबाना), दंश (डंक), ताम्र (ताँबा), परीक्षा (परख/जाँच/मूल्याँकन), चन्द्र (चाँद) इत्यादि ऐसे अनेक शब्द हैं जो उनके कहानी संग्रहों एवं उपन्यासों में प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ ध्यातव्य हैं कि उन्होंने कहीं पर भी तत्सम् शब्दों का प्रयोग सायास् नहीं किया है। ये शब्द भाषा के चलते प्रवाह में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं–कहीं तो उन्होंने संस्कृत के क्रिया पदों का भी प्रयोग कर दिया है। जैसे– प्रयुक्त उदाहरणों में अस्तिः (हैं), सन्ति (वहाँ रहे हैं), समर्पय (समर्पित/समर्पण) आदि।"[124]

(ख) तद्भव शब्द –

रामकुमार ओझा ने अपने कहानी संग्रह 'आदमी वहशी हो जाएगा', 'कौन जात कबीरा', 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' व उपन्यास 'रावराजा', 'निशीथ', 'अश्वत्थामा' में तद्भव शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में किया है। तद्भव शब्द सामान्यतः वे शब्द कहलाते हैं जो या तो सीधे प्राकृत से हिन्दी भाषा में प्रयोग के लिए आ गये हैं या प्राकृत भाषा के द्वारा संस्कृत भाषा से निकले हैं– ऐसे शब्दों को तद्भव शब्द कहा जाता है। तद्भव का अर्थ है तद् (उससे) भव (उत्पन्न होने वाले) अर्थात् उससे (संस्कृत से विकसित होने वाले शब्द) हिन्दी में प्राकृत एवं संस्कृत से विकसित हिन्दी में अनेक शब्द प्रयोग में आ रहे हैं। इन शब्दों को तद्भव की संज्ञा दी जाती है इस प्रकार के शब्द प्रायः आम बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होते हैं। परन्तु साहित्य ने अपनी रचनाओं में भाषागत सहजता और सरलता का माध्यम रखते हुए तद्भव शब्दों का प्रयोग करता है, जिससे भाषा सह–संप्रेषणीय बन जाती हैं। रामकुमार ओझा ने अपनी कहानी से ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। यहाँ हम उनके कथा–साहित्य से कुछ शब्द उदाहरणार्थ उल्लिखित कर रहे हैं–

अंगरखा (अंगोछा), किसान (कृषक), झीना (पतला), सावन (श्रावण), रानी (राज्ञी), सास (माँ/सासु माँ), साड़ी (पहनने का वस्त्र स्त्री के), जाड़ा (सर्दी), डंक (दंश/काटना), कँवल (फूल/कमल), पहला (प्रथम), नंगा (नंगी अवस्था/नग्न), परसों (परश्व), दाढ़ (जाड़), कूड़ा (कचरा), बाँझ (बिना बच्चों की स्त्री), साँवला (श्याम वर्ण/ काला), नीम (निम्ब), जीभ (जिह्वा/जुबान), पहनना (धारण करना), झूठा (असत्य व्यक्ति), दाख (द्राक्षा), मछली (मत्स्य), भौंरा (भँवरा), गेंद (कन्दुक), साला (पत्नी का भाई/स्याला), थोड़ा (कम/अल्प), देवर (द्विवर), नन्दोई (ननद का पति/बहनोई), जानना (पहचान करना), महँगा (बहुमूल्य), भाप (वाष्प)

परख (जाँचना/मूल्याँकन), लाज (शर्म/इज्जत), भण्डार (खूब भरा पूरा), बैल (सांड/बड़ा बछड़ा), त्योहार (विशेष पर्व), घूँघट (मुँह ढकना), कौआ (काग), नाच (नृत्य करना), मौर (मोर/मयूर), जौ (यव/अनाज), खाई (गहरा/गढ़ा), घड़ा (घट), चबाना (खाना), पलंग (आराम का साधन), ऊख (इक्षु), ओंठ (ओष्ठ), कुआँ (कूप), चौगट (चतुकाष्ट), झूठा (जुष्ट), टकसाल (टंकशाला), ढीठ (धृष्ठ), ढीला (शिथिल), पहनना (परिधान), जलना (ज्वलन), दाद (दद्रु), चोच (चञ्चु), थन (स्तन), घी (घृत), सुथरा (सुस्थिर), सुहाग (सौभाग्य), हिया (हृदय), सौत (सपत्नी), सौंप (समर्पय), साँझ (सन्धया), सँभल (सफल), नाई (नापित), पंख (पक्ष), भीतर (अभ्यन्तर), रीस (ईर्ष्या/क्रोध), साहू (साधु), भाड़ा (भाटक), रीता (रिक्त/खाली), रोआँ (रोम), कौआ (काक), पड़ना (गिर जाना), चबाना (जबड़े में खाने को

चबाकर खाना), गलना (पिघल जाना), ओस (पानी की बूँदे), कई (बहुत सारे), रूठा (बुरा मानना), खोदना (जमीन में गहरा गढ़्ढ़ा करना), भण्डार (भरपूर), किवाड़ (दरवाजा), पत्थर (प्रस्तर), दही (दधि), जलना (ज्वलन), ऊन (उर्णा), झीना (पतला होना), छाता (छतरी), ताँबा (ताम्र), दाद (दद्रु), गेहूँ (कणक), लाज (शर्म रखना/इज्जत करना), मदारी (जादू दिखाने वाला व्यक्ति), पेर (पैर), लौंग (लंवग)"[125]

(ग) देशज शब्द –

वे शब्द जो क्षेत्र विशेष की या स्थानीय भाषा के शब्द होते हैं और जनके निर्माण की प्रक्रिया का पता तक नहीं होता है या अपने मनगढंत शब्द होते हैं, वो देशज शब्द कहलाते हैं। रामकुमार ओझा ने अपने उपन्यासों व कहानियों में क्षेत्र–विशेष से सम्बन्ध रखते हुए दिल खोलकर देशज शब्दों का प्रयोग अनेकत्र स्थान पर किया है, जिनमें कुछेक प्रमुख शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है–

जपिया, लुगाई, भांडा, धड़ाम, अड़कपेच, अडबली, धूनी, जामा, तपती, कण्डी, आला, जम्हाई, काका, रिजक, हण्डया, पंजा, कज्ल्फक, कुड़मुड़ाते, कुल्ला, चिलमची, छाजन, फुदक, कुरेद, कांकर, तंदूर, धौंकनी, मांडने, बींद, टोटा, बुढ़ोती, बपौती, गिरवी, दाणा, धूल, लंगोटा, धचकौले, संकरी, बछड़िया, बणिया, चमारिन, दाई, गूदड़ों, बरजना, भाठे, हड़बड़ा, हाँफगी, सिकुड़, काकू, टटोला, टाटे, हड़कम्प, सरदा, फक्फक्, थरथरा, ठठरी, हाड़गालू, सरकण्डा, झपक, ललकारा, डांडे, झड़ी, बघारती, एडी–बैंडी, हथेली, मलदूँ, फूंका, लुगाई, लठैत, मर्द, लाठी, नंगई, पिलाई, दुलाई, गाड़ी थचकी, नंगा, झाड़, गुरगंडे ताता–ताता, खाड़कू, नमूदार, पगडण्डी, इत्ती, सिसकारा, फूंकण, बिरखा, तावल, परसंगी, सिकोड़, निगौड़ी, कुरकने, गुदड़ा, टटोलती, खड़–खड़, मूंज, थूथड़ा, खुर्राटा, पोती, उझक–उझक, अजाणी, कागद, दुआरी, सतजुगी, टंगा, जीवड़ा, कांपण, फूहड़पन, बतलावन, चेता, जोई, मंजा, आंच, ताती, गुड़दानी, बाखल, चर्खा। इनमें से कुछेक देशज शब्दों को हिन्दी रूपान्तरित करके भी ओझा जी ने स्पष्ट किया है। जैसे– ब्याह (विवाह), पाण (सर्प द्वारा काटना), पंपोलना (सहलाना) दीदे (आँखें), म्हारे (हमारे), न्यारी (अलग–अलग), कुलड़ती (मिट्टी का छोटा बर्तन), माणस (आदमी), निहोरे (मनाना), हुंकारा (भरना), कागद (कागज), ताती (गर्म), ठाठ (मजा मारना), भाँत–भाँत (अलग'–अलग), गूपना (लपकना), डोकरी (बुढ़िया), परड़ (साँप)[126] इत्यादि शब्दों को हिन्दी रूपान्तरित कर अपने कथा–साहित्य में शब्दों की अभिवृद्धि करते हुए और अधिक रोचक एवं प्रभावात्मक बना दिया है।

(घ) विदेशी शब्द –

रामकुमार ओझा ने अपने कथा–साहित्य में विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। विषय–वस्तु एवं स्थिति के अनुरूप अरबी, फारसी, तुर्की, उर्दू, पुर्तगाली, चीनी आदि विविध प्रकार के शब्दों का चयन बड़ी कुशलता पूर्वक किया गया है। एक–एक शब्द ओझा जी ने आभूषण में जड़े नगीने की तरह भाषा के सौन्दर्य को और अधिक बढ़ाता है। उन्होंने अपने कथा–साहित्य से शब्दों का चयन कहानी संग्रहों व उपन्यासों से किया हैं। जहाँ तक ओझा जी का प्रष्न है वे विदेशी कथाकार तो नहीं है। परन्तु विदेशी शब्दावली का प्रयोग पूर्णतया उनके कथा–साहित्य में देखने को मिलता है। अतः हम यहाँ उनके उपन्यासों और कहानियों से विदेशी शब्द उद्धृत कर ये स्पष्ट करेंगे कि उन्होंने विदेशी शब्दों का प्रयोग आम बोलचाल की भाषा में बहुत किया है। इन शब्दों के प्रयोग से शिल्पगत सौन्दर्य के प्रयोग से निष्चित रूप से अभिवृद्धि हुई है। कुछ विदेशी शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत हैं– गमला (पौधा– लगाने की वस्तु), तरक्की (प्रगति/विकास), मसला (समस्या), तमन्ना (मन करना/जी चाहना), जुबान (जिह्वा), अनशन (बिना खाये धरना पदर्शन), खिसक (निकल जाना), बलात्कार (इज्जत लूटना/शर्मनाक घटना), मुकाबला (सामने डटकर रहना), खून (लहू/रक्त), गुजरा (बिता हुआ), चकमा (धोखा देना), आदमी (व्यक्ति/इन्सान), कत्ल (हत्या करना), असल (सही बात), तलाष (जाँच करना), काफी (पर्याप्त), दरख्वास्त (प्रार्थना पत्र), तबीयत (शारीरिक अवस्था), अचानक (एम–दम), जिस्म (शरीर), हक (हिस्सा), बेफिक्र (बिना डर के), नाराजगी (बुरा मान जाना), दीनता (गरीबी), हद (सीमा), कब्र (जनाजा दफनाने की जगह), मुद्दत (काफी समय बाद), वाजिब (एक दम सही), फैसला (निपटारा), दंगा (लड़ाई–झगड़ा), खारिश (खुजली), बेताब (बेसब्री से इंतजार), इशारा (संकेत), एहसास (जान लेना), शिनाख्त (पहचान), दफनाया (मिट्टी देना), मर्द (इन्सान), खुशबू (सुगन्ध), मदद (सहायता), लाश (मृत शरीर), मजहब (धर्म), शरारत (खुरापात करना), शराफत (सही तरीके से), फर्ज (अपना कर्त्तव्य का पालन करना), नकारा (नजरों में गिरा देना), इन्कार (मना कर देना), जायजा (जानकारी हासिल करना), नापाक (अपवित्र)"[127], इत्यादि शब्दों का ओझा जी ने अपने कहानी संग्रहों व उपन्यासों में प्रमुख रूप से प्रयोग किया है। लेखक ने कथा–साहित्य में तत्सम्, तद्भव, देशज, विदेशी ऐसे अनेक शब्दों को प्रस्तुत किया है। यहाँ ध्यातव्य है कि उन्होंने समस्त शब्दों का सायास नहीं किया है और ऐसे शब्द भाषा के चलते प्रवाह में प्रयुक्त हुए माने गये हैं। इसी प्रकार लेखक ने ऐसे अनेकों शब्दों को अपनाते हुए अपने कथा–साहित्य को पाठक के पढने हेतु और अधिक रोचक व रोमांस का भाव प्रकट किया है।

(ड़) अंग्रेजी शब्द (आदमी वहशी हो जाएगा) –

डायरेक्टर, इन्टरप्राइज, मैनेजिंग, मिस्टर,, बस्ट्ओड, क्रॉसिंग, यूनियन, गेस्ट–हाऊस, रेस्ट–हाऊस, डर्टी, ऑनली, फाइल्ज, रफ एण्ड टफ, लोंगर इन, मीटिंग, बॉयलर, बरस्ट, प्रॉपर्टी, डैमेज, डेस्ट्रॉय, कन्सर्न, बिट्रे, एरेस्ट, सेटलमेंट, परसेन्ट, बोनस, गो–बेक, प्रोडक्शन, फेस, मूवमेन्ट, ही–डज–नोट, नाईदर, सैल बी ईट, फाइट, ईस्यूड, मेनिफेस्ट, लिबर्टी, फॉर द डेड, लिविंग, हाईजिनिक, स्ट्राइक, ब्रेक, पार्टी, कन्टीन्यू, लेबर, एटेक, इन्क्वायरी, फिलिप, वेलेन्सड, वर्कर, सिलिकोसीस, फिडरशिप, ब्रिट्रेड, ऑर्डर, एक्यूट पॉज, ब्राउज, पॉकेट, नोट, ड्यूटी, पार्क, डॉक्टर, सिरिज, डस्टबिन, डिसपेन्सरी, मेडिकल, लायसेन्सी, कॉलेज, टॉर्च, कॉटेज, गेट, रेन–कोट, गॉड, कन्फेक्शन, ऑलिवर, क्लास, इंडियन, प्रोफेसर, कॉलेज, नोटिस, रेस्टोरेन्ट, कस्टमर, टेंशन, स्टन्ट, स्ट्राइक, लेक्चर, स्लॉगन, बरस्ट, मास्टर, क्लर्कों, फिजिक परसेन्स, ऑर्गेनाइजेशन, हिस्ट्री, स्टोरी, क्वाइट, कन्टरी, कम्पलीट, रिवॉल्यूशन, नेटिव, हॉस्पिटल, स्ट्रगल। इनमें से कुछेक शब्दों का हिन्दी रूपान्तरण किया है– प्लीज (कृपया), फादर (पिता), रोमांटिक (रोमांस), पॉयम (कविता), मम्मी (माँ), एप्रिन (कपड़े का वस्त्र जो डॉक्टर पहनते हैं), प्रॉमिज (वायदा करना), पार्लियामेन्ट (संसद), अण्डर–लाइन (रेखांकित करना), न्यूज (समाचार), ड्राईवर (चालक), घोस्ट (भूत), लेबर (मजदूर), टैक्स (कर), हॉस्टल (छात्रावास), ऑर्डर (आदेश), बैंगल्स (चूड़ियाँ), सप्लाई (आपूर्ति करना), सुपरीन्टेन्डेट (अधीक्षक), इडियट (बेवकूफ), इन्डिपेंडेंट (स्वतंत्रता), रेजिडेन्स (आवास), गर्वमेंट (सरकार), वेस्ट (पश्चिम), प्लेस (स्थान), होली–डे (अवकाश), करेन्सी (मुद्रा), परचेजिंग (खरीददारी), सीरियल (धारावाहिक), कॉलेज (महाविद्यालय), वोट (मत), टैक्स (कर–निर्धारण), लाइब्रेरी (पुस्तकालय), पुलिस (जनरक्षक), गार्ड (सुरक्षाकर्मी), लंच (दोपहर का भोजन), ट्राँसफर (स्थानान्तरण), ऑडियो–विडियो (श्रृव्य–दृष्य)

ओझा जी ने इनमें से कुछेक शब्दों का हिन्दी रूपान्तरण किया है, जो इस प्रकार से है देखिए–

ड्राईवर = (चालक), मैंनेजिंग = (व्यवस्था), यूनियन = (संगठन), डर्टी = (गन्दा), रेस्ट हाउस = (विश्राम गृह), मूवमेन्ट = (हलचल), लिविंग = (रहना), स्ट्राइक = (हड़ताल), लेबर = (मजदूर), इन्क्वायरी = (जाँच), ऑर्डर = (आदेश पारीत करना), डॉक्टर = (चिकित्सक), क्लास = (व्याख्यान), कॉलेज = (महाविद्यालय), इण्डियन = (भारतीय), हिस्ट्री = (इतिहास), स्टोरी = (कहानी) इत्यादि शब्दों का हिन्दी रूपान्तरण किया है। इसी प्रकार से ओझा जी ने 'कौन जात कबीरा' कहानी संग्रह से भी कुछेक अंग्रेजी शब्दों को चुनकर उनका भी हिन्दी रूपान्तरण किया है जो इस प्रकार से है देखिये– मिस्टर, फार्मूला, मार्केट,

डिसिपिलेन, टैंड, सीजनल, एरियर, स्टोर, आयोडिन, करेन्सी, सेल्समैन, इंक्रीमैंट, ट्रेजरी, चान्स, रेट, मिडलिंग, परचेजिंग, बिल, प्राईवेट, ऑफिस, सेक्टर, फैशनेबल, न्यूज, फीस, कैंसर, सिनेमा, टेलीफोन, टैक्स, नर्स, टीम, मशीन, डायरी, कार, गार्ड, ऑप्रेशन, पेपर, लाइब्रेरी, लंच, स्टॉफ, रिजल्ट, लाईट, प्रेस, डिजिटल, सर्किट, ग्लोब, ट्रॉंसफर, सप्लाई, जेण्डर, रेस–क्रॉस, बिल्डर, ऑडियो, फायरिंग, डिस्टर्ब, सेक्रेटरी, कप्तान, ऑटोमैटिक, पम्प, टायर, पंक्चर, गॉगल्स, लेन्डस्केप, बिस्किट, लिंक रोड, ग्राण्डमदर, टॉर्जन, बैडरूम, पर्सनल, एसिस्टेंट, मिनिस्टर, प्वाइन्ट, स्कीम, किंगलैण्डर, ट्रेडिशन, विडियो, डॉलर, मेप, मिडिया, डिनर

ओझा जी ने इनमें से कुछेक शब्दों का हिन्दी रूपान्तरण किया है, जो इस प्रकार से है देखिए–

रिजल्ट = (परिणाम), ट्रॉंसफर = (स्थानान्तरण), ऑडियो = (श्रव्य), सेक्रेटरी = (सचिव), ग्राण्डमदर = (दादी माँ), बैडरूम = (शयन–कक्ष), विडियो = (दृश्य), मार्केट = (बाजार), सीजनल = (समयानुसार), एरियर = (भुगतान), परचेजिंग = (खरिददारी), टैक्स = (कर), टेलीफोन = (दूरभाष) इत्यादि।

प्लीज, न्यूइसेंस, लिजेण्ड, हिस्ट्री, पेथेटिक, इम्पोरटेन्स, ब्रिटिश, ऑफिशियल, फादर, हिज, एक्सीलेन्सी, हाउसहोल्ड, काउन्सिल, मेम्बर, लव, अफेयर, ड्रेसिंग, रिज, टॉप, स्पाटग, रोमांटिक, रेलिंग, ब्राउनिंग, माइट, हैव, काल्ड, दी लास्ट, राइड, पॉयम, मम्मी, डैडी, वैस्टर्न, ओह, देज इज हैजाल्ड प्लेस, बट न्यू पार्टनर, वाज आल्सो, एन इण्डियन, किपलिंग, कॉन्वेट, आर्टिस्ट, साटिन, नेचर, घोस्ट, सेन्ट, केन्वास, ड्यूटी, मॉर्निंग, न्यूज, लोकल, होली डे, क्लीनर, मार्शल, सप्लाई, पुलिस, मैम्बर, अण्डर लाइन, अनेदर, हाटन्टाट, जस्टिस, जेल, टेन्ट, सप्लाई, सीमेंट, लेबर, कैम्प, टिकट इत्यादि शब्दों में कुछेक शब्दों का हिन्दी में अर्थ प्रस्तुत कर बताया है जो इस तरह से है देखिए–

प्लीज = (कृपया), फादर = (पिता), मेंम्बर = (सदस्य), फॉरेस्ट = (जंगल), रोमांटिक = (रोमांचित होना), प्रॉमिज = (वायदा करना), डैड–बॉडी= (मृत शरीर), पार्टनर = (सांझेदार), परमानेंट = (स्थाई), रेजिडेन्स = (आवास स्थान), घोस्ट = (भूत), गाइड = (निर्देशक), स्माइल = (मुस्कान, हँसना), हॉस्टल = (छात्रावास), अमरजेंसी = (आपातकाल), गर्वमेन्ट = (सरकार), पुलिस = (जनरक्षक)"[128] इत्यादि शब्दों का हिन्दी रूपान्तरण कर अपने कथा–साहित्य को और रोचक एवं प्रभावशाली बना दिया है, जिससे पाठक पढ़ते ही आनन्द–विभोर हो जाते हैं और इन शब्दों के रूपान्तरण से ओझा जी के कथ्य में भी सम्प्रेषणीयता आ गई है।

(च) लोकोक्ति –

किसी जगह या स्थान विशेष के प्रसिद्ध हो जाने वाले कथन को लोकोक्ति कहते हैं या यूँ कहें कि जब कोई पूरा कथन किसी प्रसंग विशेष में उद्धत किया जाता है, तो वह लोकोक्ति कहलाता है। इसी को कहावत भी कहते हैं। ओझा जी के उपन्यास व कहानियों में भी अनेकत्र स्थान पर लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है, जिसमें से कुछेक उदाहरण प्रस्तुत– "उस दिन रूपराम ने कहा, हाँ मैं अकेला ही यह सब कर देता। इस बात पर राव जी ने हँसकर कहा, व्यर्थ बकबक करते हो, 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता' यहाँ पर उपर्युक्त पंक्तियों में रूपराम के लिए रावजी द्वारा कहा गया कार्य जो, कि रूपराम अपने आप गर्वित होकर ऐसे शब्दों का प्रयोग करता जिस पर राव जी ने यहाँ 'अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता' लोकोक्ति का प्रयोग किया है, जिसके लिए हम यह कह सकते हैं कि एक व्यक्ति विशेष के करने से कोई कठिन कार्य सम्पूर्ण नहीं होता है। इसी प्रकार ओझा जी ने 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह से भी एक उदाहरण प्रस्तुत कर बताया है कि "भाभी अकरी रोटी चाहिए, इस पर मुकामों, करमू को गरम–गरम रोटी अकरी करते हुए खिलाती है। फिर भी करमू अपनी भाभी की बुराई कर देता है तो इस पर मुकामो कह देती है– "रे करमू देवर काठ की हाँठी बार–बार नहीं चढ़ती है, कहावत का प्रयोग करती है। पंक्तियों में भाभी के द्वारा खाना खिलाने के बाद भी बुराई करना रास नहीं आता और वो इस लोकोक्ति या कहावत का प्रयोग करती है। इसके अलावा भी अन्य लोकोक्तियों के उदाहरण कथा–साहित्य में देखने को मिलते हैं, जो इस प्रकार से है– "अंधी पीसे कुत्ती खायें' 'अक्ल के अंधे, गाँठ के पूरे', 'अमानत में खयानत', 'अस्सी की आमद चौरासी खर्च', 'आई मौज फकीर को दिया झोंपड़ा फूँक, 'ओस चाटने से प्यास नहीं बूझती, 'आज अटारी कल पिटारी;, 'आज तो ओढ़नी की ओट में सोना लिए जा रहे हो, 'एक कच्चे सूत की आटी और दो कुम्हार की चाक की कच्ची हाँडी, उपर्युक्त लोकोक्तियों में कुछेक का अर्थ भी बताया है, देखिये– अस्सी की आमद चौरासी (आमदनी कम खर्च अधिक), आई मौज फकीर को दिया, झोंपड़ा फूँक (सब कुछ मस्ती में लुटा देना) अक्ल के अन्धे गाँठ के पूरे (अपनी हेकड़ी बराबर रखना)[129] इत्यादि को हिन्दी में रूपान्तरित कर, ओझा जी ने कथा–साहित्य में लोकोक्तियों को और अधिक प्रभावात्मक बना दिया है।

(छ) मुहावरे –

मुहावरा मुख्यतः अरबी भाषा का शब्द माना जाता है, जिसका अर्थ बातचीत करना या उत्तर देना है। कुछेक लोग मुहावरे को रोजमर्रा और बोलचाल भी कहते हैं ओझा जी ने अपने कथा–साहित्य (उपन्यासों व कहानियों) में अनेकों जगह लगभग मुहावरों का प्रयोग

किया है, जिनमें से कुछेक प्रमुख एवं मुख्य उदाहरण प्रस्तुत है, जो इस तरह से है देखिये– "आँखें गीली होना", 'जो भर आया', 'और लाली फफक– फफक रोती हुई बुढ़िया से लिपट गई।

रपट दर्ज करवाना, भक्भक् करना, सावन भादो उमड़ गया, चबर–'चबर करना, तन–बदन में आग लग गई, टकटकी लगा कर देखने लगे तो बस, देखते ही रहे। सुधबुध खो बैठे, फूट–फूट कर रोने लगी, गुदड़ी में से लाल झड़ पड़ा, बेटी के चरित्र पर कीचड़ उछालना ठीक नहीं, लूच्चे–लफंगों से बटोर कर डाके डालने लगा, चहलकदमी करने लगा, खण्डित होना, बेटा सिहर गया, विद्रोह करना नहीं चाहती, दुःख रोना यही है, उसका हाथ थामा था, बड़ी हवेली को फूँक डालूँगा, निःशब्द हो जाता है। राव जी का मन मोटा था। बदला लेना चाहते हो, 'जाबता करना' 'तू आँख मूँद पड़ रहा है', 'सुना तो राधा फफक पड़ी', 'बगुला भगत होना', 'मिशरानी ने जैसे आँखों ही आँखों में पूछा', 'बदचलन ने खानदान की नाक ही कटवाने की ठान ली है।' उपर्युक्त उदाहरणों से कुछेक का विश्लेषण कर बताया गया है जो इस प्रकार से है, देखिये– "चबर–चबर करना (ज्यादा बोलना), तन–बदन में आग लगना (शरीर क्रोध से नियंत्रण में नही रहना) सुधबुध खो बैठे (होश–हवाश में न रहना) चरित्र पर कीचड़ उछालना (किसी को कलंकित करना) बदचलन ने खानदान की नाक ही कटवा दी (इज्जत मिट्टी में मिलाना)[130] इत्यादि मुहावरों का अर्थ स्पष्ट करते हुए ओझा जी ने अपने कथा साहित्य को और अधिक रोचक व प्रभावात्मक बना दिया है।

(ज) बिम्बात्मकता –

'बिम्ब' शब्द यद्यपि संस्कृत का है, किन्तु संस्कृत में ठीक इस अर्थ में इसका प्रयोग नहीं मिलता। वहाँ इसका अर्थ छाया, प्रतिभा, प्रतिबिम्ब आदि है। आधुनिक काल में, इस शब्द में नया अर्थ उस समय आया जब अंग्रेजी शब्द 'इमेज' के हिन्दी पर्याय के रूप में इसके प्रयोग का आरम्भ हुआ। बिम्ब (इमेज) किसी मूर्त या अमूर्त का मानश्चित्र है। मनोविज्ञान में बिम्ब को मानसिक पुनर्निर्माण कहा गया है। काव्य में बिम्ब का निर्माण सर्जनात्मक कल्पना से होता है। बिम्ब के कारण एक ओर तो अभिव्यक्ति में चित्रात्मकता आ जाती है, दूसरी ओर कवि का जो कथ्य होता है, उसे वह बिम्ब के आधार पर, अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी रूप में व्यक्त करने में समर्थ होता है। इसलिए काव्य–भाषा के लिए बिम्ब को बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है और इस तरह बिम्ब को काव्य का प्रायः अनिवार्य गुण भी माना गया है। यही कारण है कि काव्य–भाषा के लिए या साहित्यिक शैली के लिए बिम्ब बहुत ही महत्त्वपूर्ण है तो बिम्ब मानश्चित्र है। यों तो मानश्चित्र मूर्त का

भी हो सकता है, अमूर्त का भी, किन्तु काव्य बिम्ब प्रायः मूर्त ही होते हैं। रामकुमार ओझा ने भी अपने उपन्यास व कहानियों में से बिम्बात्मकता के कुछेक उदाहरण प्रस्तुत किए है, जिनकी ये पंक्तियाँ देखिए—

"पर तब रात न थी, भर दोपहरी में मैंने एक चील्ह—दम्पत्ति को क्रीड़ा विभोर देखा था। मादा चोंच उठाये इसी की—कर की सुखी शाख पर बैठी थी, नर बार—बार उसके नजदीक आने का उपक्रम करता किन्तु मादा उसे कुरेद कर दूसरी शाख पर जा बैठती। बड़ी देर तक यही क्रम चलता रहा। नर चाहत के मारे मादा को अपनी चोंच से सहलाता पर मादा उड़कर साख बदल कर बैठ जाती। अचानक नर ने रूख पलटा, उड़ा एक झपाटे के साथ धरती पर उतर गया। जब लौट कर साख पर आया तो पंजों में एक पुष्ट चूहा दबोचे था। अब मादा खुद चलकर उसके पास आयी। चोंच से नर के पंख सहलाये और चूहा अपने पंजो से झपट लिया। नर ने गर्व से अपनी थूथनी उठाई नर उसे चोंचों से कुतरने भी लगता तो मादा प्रतिरोध न करती।"[131]

उपर्युक्त पंक्तियों में ओझा जी ने एक चील्ह—दम्पत्ति के आपसी प्रेम वर्णन को लेकर बिम्बात्मकता का प्रयोग किया है। जैसे—चूहा, पँजों, झपट लेना इत्यादि शब्दों में प्रयोग हुआ है। अतः ये बिम्बात्मकता कहलाती है।

(झ) प्रतीकात्मकता —

प्रतीकात्मकता भी शैली का एक महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त आकर्षक उपकरण है। 'प्रतीक' शब्द के संस्कृत में 'की ओर मुड़ा;, 'अवयव' तथा 'चिह्न' आदि कई अर्थ हैं, किन्तु अब हिन्दी में यह अंग्रेजी शब्द 'सिंबल' के समानार्थी शब्द के रूप में प्रयुक्त हो रहा है तथा मोटे रूप से इसका अर्थ है, वह जो परम्परा या रूढ़ि आदि के कारण किसी और को द्योतित करें। उदाहरण के लिए 'सिंह' वीरता को घोतित करता है, तो गीदड़ कायरता का। यों तो साहित्य तथा चित्रकला आदि में प्रतीकवाद का आन्दोलन 1880 के पहले फ्रांस में फिर और जगह चला, किन्तु साहित्य आदि में प्रतीकों के प्रयोग की परम्परा काफी पुरानी है।"

"प्रतीकात्मक शैली का एक तो सामान्य रूप मिलता है, जिसमें प्रतीकों का प्रयोग होता है तथा प्रतीकों के वास्तविक अर्थ के आधार पर रचना का अर्थ जाना जाता है। इसके विपरीत एक और प्रकार की भी प्रतीकात्मक शैली मिलती है। इस शैली की रचनाओं के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ तो ऊपरी या बाहरी होता है, जो प्रतीकों के वास्तविक अर्थ में ये बिना उनके सामान्य अर्थ के आधार पर जाना जाता है, यह अर्थ बिल्कुल अटपटा

होता है उदाहरण के लिए कबीर की एक पंक्ति से स्पष्ट है– 'ठाढा सिंह चरावै गाई'। (शैली–विज्ञान)

इसका बाह्य अर्थ है 'सिंह खड़ा होकर गाय चरा रहा है।' यह अर्थ अटपटा है, क्योंकि सिंह तो गाय को देखते ही खा जायेगा, वह उसे खड़ा होकर घास नहीं चरायेगा। इस पंक्ति में 'सिंह' और 'गाय' में दो शब्द प्रतीक है। ऐसी प्रतीकात्मक रचनाओं का दूसरा अर्थ भीतरी या आन्तरिक होता है। यही वास्तवकि अर्थ होता है। उपर्युक्त पंक्ति में 'सिंह' ज्ञानी मन का प्रतीक है तथा 'गाय' इन्द्रियों का प्रतीक है। प्रतीकात्मक अर्थ लेने पर इसका अर्थ हुआ– ज्ञानी मन इन्द्रियों को अपने नियन्त्रण में रखे हुए है। अर्थात् ज्ञान से ही इन्द्रियाँ मनुष्य के वष में रहती है। इस प्रकार की प्रतीकात्मक शैली को उलटबाँसी या उलटवासी नाम से अभिहित किया गया है। यह ध्यान देने की बात है कि उलटबाँसी शैली में द्वि–अर्थकता होती है। पहला या ऊपरी अर्थ अटपटा होता है तथा दूसरा भीतरी अर्थ वास्तविक होता है। यह अर्थ अटपटा न होकर तर्कसंगत होता है।"[132] ओझा जी के और भी अनेक उदाहरण उपन्यास व कहानियों में देखने को मिलते हैं, जिनमें से कुछेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो इस प्रकार से है, देखिए– "सुनकर सेठानी को फिर बहुओं पर गुस्सा आने लगा। कुढ़ कर बोली "पर इस हवेली में तो पांव चला कलजुग आ गया है। मेरे बेटे दिसावर में बैठे हैं और ये बहू रानियां है कि साबुन मल–मलकर नहाती है।"[133]

उपर्युक्त पंक्तियों में कलयुग शब्द का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप में हुआ है। सामान्यतः कलयुग का अर्थ है चार युगों में से एक युग जो अनवरत प्रवर्तित होते समय का अर्थ देता है भारतीय पुराणों में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग चार युगों का उल्लेख किया है परन्तु 'रावराजा' उपन्यास में कलियुग का प्रयोग बदलते सन्दर्भ के प्रतीक के रूप में किया है। भारतीय संस्कृति में बहुएं सास के निर्देश के अनुसार काम सम्भालती रही है। यहाँ पर लक्ष्मी बहू अपनी सास की परवाह न करती हुई मौज–मस्ती में रहती है जबकि उसका पति विदेश में रोजगार के लिए गया हुआ है। ऐसी स्थिति में पत्नी को और अधिक शालीनता एवं संयत रहने की सोच, हमारी परम्पराओं में रही है। इसलिए लेखक ने कलयुग के प्रतीकात्मक प्रयोग से सन्दर्भों का विशेष चारूत्व देते हुए कथन को प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया हैं।

इस तरह ओझा जी ने 'रावराजा' उपन्यास से उदाहरण सहित प्रतीकात्मक शैली को बताया है, जो इस प्रकार से है देखिये– "सियार जब शेर को आँख दिखलाने लगे तो शेर क्या करे?" "दिखाई जाने वाली आँखें ही पंजे से खरोंच कर निकाल लें।"[134]

उक्त पंक्तियों में 'सियार' और शेर दोनों का प्रतीकात्मक प्रयोग है। 'सियार' कमजोर और डरपोक व्यक्ति का प्रतीक जबकि 'शेर' बहादुर एवं पराक्रमी व्यक्ति का प्रतीक है। उक्त पंक्तियों में अभयसिंह रावराजा से उसकी कुशल पूछता है, तभी रावराजा अभयसिंह से कहता है कि उमराव बहुत दुबले हो रहे हैं तो अभयसिंह कहता है कि मैं जानता हूँ, राजा परन्तु वे मुझे निरन्तर परेशान करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में यदि 'सियार' 'षेर' को आँख दिखलाने लगे तो क्या करना चाहिए? इसके उत्तर में वह कहता है कि पंजे से आँख को निकालना ही ठीक रहता है। यहाँ पर उमराव जो कमजोर तथा डरपोक है, वो 'सियार' का प्रतीक है और अभयसिंह पराक्रम का प्रतीक है। इस प्रकार लेखक ने प्रतीकात्मक प्रयोग के द्वारा कथन के गाम्भीर्य और सौन्दर्य की अभिवृद्धि की है।

6.9 निष्कर्ष –

उपर्युक्त विवेचन का सारांश है कि रामकुमार ओझा के कथा साहित्य का भाषा एवं शैलीगत पक्ष भी शैलीगत विभिन्न विशेषताओं से समन्वित है। भाषा की दृष्टि से देखें तो ओझा जी ने अपनी कहानी व उपन्यासों में यथा–स्थान विभिन्न प्रकार के शब्दों एवं भाषा शैलियों का प्रयोग किया है। कहीं–कहीं तत्सम् शब्दों का प्रयोग है, तो कहीं तद्भव शब्दों के द्वारा भाषागत चारूत्व में अभिवृद्धि की गई है। इसी तरह यथा–स्थान विदेशी जैसे– उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग से भाषागत अभिव्यक्ति की प्रभावात्मकता दिखाई देती है। यही नहीं यथास्थान पात्र, विषय एवं परिवेश को ध्यान में रखते हुए देशज शब्दों का प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है। कहीं–कहीं तो आँचलिक शब्दों का प्रयोग अत्यधिक भाव–सौन्दर्य की छटा लिए हुए है। लेखक ने किसी–किसी स्थान पर पूरे के पूरे वाक्य या प्रकरण में आँचलिक भाषा का प्रयोग किया है। कहानियों और उपन्यासों में ऐसे शब्दों के प्रयोग के द्वारा कथाकार ने अभिव्यक्ति को सम्प्रेषणीय बनाया है। इसी तरह संवादों की दृष्टि से देखें तो संवाद अत्यधिक प्रभावित सौद्देश्य, कथा वस्तु एवं पात्रानुकूल है। संवादों के माध्यम से कथाकार ने भाषा में गाम्भीर्य और कथ्य को अच्छी तरह स्पष्ट किया है। यथास्थान प्रचलित मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भी अभिव्यक्तिगत चारूत्व में अभिवृद्धि हुई है। कथाकार ने विषय, परिवेश एवं कथ्य के अनुकूल प्रचलित लोकोक्ति और मुहावरों का बहुतायत से प्रयोग किया हैं। कहीं–कहीं तो एक पेराग्राफ में कई मुहावरें देखने को मिल जाते हैं। मुहावरें और लोकाक्तियों के प्रयोग से कथाकार कथ्य की स्पष्टता और सटीकता तथा प्रभावात्मकता प्रदान की है। इसी प्रकार वाक्य–विन्यास की दृष्टि से देखें तो कथाकार ने सरल, मिश्र, संयुक्त आदि विभिन्न प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया है। वाक्य–विन्यासगत सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए कथाकार ने जहाँ विभिन्न प्रकार के वाक्यों

का प्रयोग किया है, वहीं कहीं–कहीं क्रिया विहिन वाक्य भी प्रस्तुत किये हैं, तो कहीं–कही कर्ता, कर्म और क्रिया की व्यवस्था को अनदेखा करते हुए कर्ता के बाद सीधे क्रिया या पहले क्रिया बाद में कर्म का प्रयोग करके भी वाक्य–विन्यास को बताया गया है। ओझा जी ने अपने कथा–साहित्य में विभिन्न प्रकार की शैलियों का वर्णन विश्लेषण करके, अपने कथ्य को और अधिक प्रभावत्मक व सम्प्रेषणीयता आ गई है।

सन्दर्भ सूची –

1. 'शैली–विज्ञान', भोलानाथ तिवारी, पृ. 10
2. वही, पृ. 10
3. 'हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति भूमिका' – डॉ. नगेन्द्र
4. 'संस्कृत शब्दार्थ कौसतु' – डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना
5. 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' – रामचन्द्र वर्मा
6. 'शैली–विज्ञान', भोलानाथ तिवारी, पृ. 11
7. वही, पृ. 12
8. वही, पृ. 15
9. वही, पृ. 16
10. वही, पृ. 17
11. 'हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृति' – डॉ. नगेन्द्र, पृ. 100
12. 'सौन्दर्य शास्त्र', 'स्वरूप एवं विकास', डॉ. चन्द्रकला माटा, पृ. 92
13. वही, पृ. 104
14. 'साहित्य शैली के सिद्धान्त', डॉ. चन्द्रकला माटा, पृ. 181
15. 'शैली विज्ञान', डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 18
16. वही, पृ. 104
17. 'आदमी वहशी हो जाएगा', पृ. 13, रामकुमार ओझा, बोधि प्रकाशन, जयपुर
18. 'सड़क'– 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा, बोधि प्रकाशन, जयपुर, पृ. 35
19. 'अच्चन काका', 'कौन जात कबीरा' – रामकुमार ओझा, पृ. 12
20. 'सूखे की एक रपट', 'कौन जात कबीरा'– रामकुमार ओझा, पृ. 20
21. 'सरदी और साँप' 'कौन जात कबीरा' – रामकुमार ओझा, पृ. 26
22. वही, , पृ. 27

23. वही, पृ. 25
24. वही, पृ. 26
25. वही, पृ. 27
26. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 43
27. वही, पृ. 44
28. वही, पृ. 46
29. 'सरदी और साँप' – कौन जात कबीरा, रामकुमार ओझा, पृ. 27
30. वही, पृ. 28
31. 'सयाना', 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', रामकुमार ओझा, पृ. 58
32. वही, पृ. 59
33. रावराजा, पृ. 16
34. 'सरदी और साँप', 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 28
35. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 44
36. वही, पृ. 45
37. वही, पृ. 46
38. 'सरदी और साँप', 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 24
39. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 31
40. वही, पृ. 56
41. 'मुकामों', रामकुमार ओझा, पृ. 24
42. 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा, पृ. 22
43. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 20
44. वही, पृ. 29
45. वही, पृ. 31
46. वही, पृ. 44
47. वही, पृ. 51
48. वही, पृ. 104
49. वही, पृ. 117
50. वही, पृ. 21
51. 'सूखे की एक रपट', रामकुमार ओझा, पृ. 73
52. 'एक दिन गुस्ताखियों की', रामकुमार ओझा, पृ. 57

53. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 33
54. वही, पृ. 60
55. 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 82
56. वही, पृ. 83
57. वही, पृ. 86
58. वही, पृ. 89
59. 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', रामकुमार ओझा, पृ. 14
60. आदमी वहशी हो जाएगा, पृ. 35
61. वही, पृ. 36
62. 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', रामकुमार ओझा, पृ. 54
63. वही, पृ. 62
64. वही
65. 'आँचलिक और हिन्दी उपन्यास', पृ. 7
66. सहदेव कांबले, 'फणीश्वरनाथ रेणू की कहानियाँ में आँचलिकता', पृ. 34
67. Encyclopedia American Vol. 17, पृ. 471
68. फणीश्वरनाथ रेणू, 'मैला आँचल', भूमिका से
69. सहदेव कांबले, 'फणीश्वरनाथ रेणू की कहानियाँ में आँचलिकता', पृ. 36
70. प्रो. सरिता वशिष्ठ, 'हिन्दी साहित्य वर्तमान दशक', पृ. 36
71. 'सूखे की एक रपट', 'कौन जात कबीरा', पृ. 18
72. वही, पृ. 58
73. 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 18
74. वही, पृ. 20
75. 'भारमली नहीं भागी', रामकुमार ओझा, पृ. 59
76. 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 62
77. वही, पृ. 63
78. वही, पृ. 64
79. वही, पृ. 65
80. वही, पृ. 4
81. वही, पृ. 62
82. 'अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा, पृ. 45

83. 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 37, 18

84. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 17

85. वही, पृ. 29

86. वही, पृ. 62

87. 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 62

88. वही, पृ. 62

89. 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा, पृ. 35

90. वही, पृ. 20

91. 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा, पृ. 36

92. 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 37

93. 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा, पृ. 16

94. वही, पृ. 18

95. 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा, पृ. 34

96. वही, पृ. 36

97. 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', रामकुमार ओझा, पृ.. 57

98. 'कौन जात कबीरा', 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', रामकुमार ओझा

99. वही, पृ. 15

100. वही, पृ. 18

101. वही, पृ. 16

102. वही, पृ. 17

103. वही, पृ. 11

104. वही, पृ. 18

105. वही, पृ. 55

106. वही, पृ. 57

107. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 30

108. वही, पृ. 32

109. 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', रामकुमार ओझा, पृ. 55

110. 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा, पृ. 52

111. 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 7, 15, 28

112. 'सिराजी और अन्य कहानियाँ', रामकुमार ओझा

113. 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 34

114. वही, पृ. 61

115. 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा

116. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 70

117. 'कौन जात कबीरा', रामकुमार ओझा, पृ. 44

118. वही, पृ. 38

119. वही, पृ. 40

120. वही, पृ. 26

121. वही, पृ. 29

122. 'उपन्यास व कहानियाँ', रामकुमार ओझा

123. वही

124. वही

125. वही

126. वही

127. 'रावराजा, अश्वत्थामा', रामकुमार ओझा,

128. 'आदमी वहशी हो जाएगा', रामकुमार ओझा

129. 'रावराजा', रामकुमार ओझा, पृ. 20

130. 'शैली विज्ञान', डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 143, 148

131. 'रावराजा', रामकुमार ओझा

132. वही, पृ. 12

133. वही, पृ. 31

134. वही, पृ. 12

अध्याय सप्तम्

उपसंहार

अध्याय सप्तम्

उपसंहार

रामकुमार ओझा का कथा साहित्य कथ्यः एवं शिल्प विषय पर प्रस्तुत शोध– प्रबन्ध को हमने निम्नलिखित 6 अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम–रामकुमार ओझा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, द्वितीय–रामकुमार ओझा का कथा–साहित्य एवं युग प्रभाव, तृतीय–रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्य विश्लेषण, चतुर्थ–रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य में कथ्य विश्लेषण, **पंचम्**–रामकुमार ओझा के कथा साहित्य में नारी, षष्ठम्–शैली एवं भाषागत सौन्दर्य में विभाजित कर अध्ययन किया है। शोध करते हुए हमें जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं, उन्हें हम संक्षेप में इस प्रकार लिख सकते हैं–

प्रथम अध्याय : रामकुमार ओझा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अन्तर्गत ओझा जी के जीवन एवं रचना संसार का अध्ययन करते हुए हमने यह पाया है कि कोई भी व्यक्ति जीवन और लेखन में अपने आरम्भिक संस्कारों से पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सकता। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में समय–समय पर ऐसे युग द्रष्टा साहित्यकार जन्म लेते रहे हैं कि जिन्होंने महान साहित्य–सर्जना द्वारा सम्पूर्ण समाज और मानवता का हित करना ही अपने जीवन का उद्देश्य माना है। रामकुमार ओझा ऐसे ही विरले लेखकों में से एक हैं। इनका जन्म 8 जुलाई, 1926 ई. को दार्जिलिंग नामक शहर में हुआ। चार भाई और तीन बहनों के पष्चात् इनका जन्म हुआ। इनके पिता का नाम श्री जगन्नाथ जी ओझा था। पिताजी सभी कलाओं में निपुण व पारंगत थे। वे श्रेष्ठ साहित्यकार व अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता भी थे। इनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। साहित्य के क्षेत्र से जुड़े रहने के कारण घर में साहित्यिक मण्डली का आना–जाना रहता था, जिससे इनकी साहित्यिक गतिविधियाँ निरन्तर चलती रहती थीं तथा घर में महान समाज–सुधारकों का भी उठना–बैठना था। ओझा जी की माँ का नाम श्रीमती धापां देवी था। ये एक अच्छे परिवार से थी तथा इनके परिवार में भी पढ़े–लिखे सदस्य थे। इनमें अनायास ही कुछ गुण पैतृक थे, जैसे– नकलचीपन, हू–ब–हू नकल करना, मजाकिया अंदाज में बातें करना। व्यक्तित्व के निर्माण में सबसे अधिक सहायतार्थ परिवार का वातावरण होता है, जो व्यक्तित्व में निखार लाता है। रामकुमार ओझा का परिवार एक मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार था। परिवार के लगभग सभी सदस्यों को उपन्यास व कहानियाँ पढ़ने का जबरदस्त शौक था। ये सभी गुण लगभग ओझा जी ने भी आत्मसात् किए। उनके व्यक्तित्व विकास में परिवार तथा आस–पास के परिवेश का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। परन्तु अपने पिताजी का देहान्त होने के पश्चात् माँ और बहनों की

जिम्मेदारियाँ उन पर आ गई। परिवार के किसी रिष्तेदार से मदद लेना जैसी बातें उन्हें कदापि पसन्द नहीं थी। आर्थिक परिस्थिति भी कुछ ठीक–ठाक नहीं थी। रोजी–रोटी के खातिर उन्होंने छात्र जीवन से ही लेखन का आरम्भ किया। हाई स्कूल की वाद–विवाद प्रतियोगिता में उन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने पर कई जगह सम्मानित किया गया। एक बात आश्चर्य की यह थी कि लेखक बनने की चाह से अन्त तक निरन्तर लिखते ही रहे। हिन्दी साहित्य को नई ऊँचाई तथा नए आयाम देकर रामकुमार ओझा 8 अक्टूबर, सन् 2001 ई. को हमसे विदा हो गए। इससे हिन्दी साहित्य के पाठकों को बड़ा सदमा पहुँचा। आज ओझा जी का अस्तित्व हिन्दी के साधारण पाठकों के लिए भले ही एक सफल प्रतिष्ठित सम्पादक का ही परन्तु हिन्दी–साहित्य के अध्येयताओं पर वे एक श्रेष्ठ कथाकार के रूप में अमिट छाप छोड़ते हैं।

द्वितीय अध्याय – 'रामकुमार ओझा का कथा–साहित्य एवं युग प्रभाव' के अन्तर्गत हमने तत्युगीन साहित्यिक परिवेश और ओझा जी के साहित्यिक अवदान का अध्ययन किया है। अध्ययन से हमने यह निष्कर्ष प्राप्त किया है रामकुमार ओझा के कथा साहित्य पर तत्युगीन वातावरण एवं सामाजिक परिवेश तथा तत्युगीन लेखन परम्परा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। ओझा जी का कथा–साहित्य नवीन प्रयोग का साहित्य है,जिसमें बहुपठन–पाठन, देशी–विदेशी, प्राचीन–अर्वाचीन साहित्य का व्यापक अनुभव के साथ चित्रण हुआ। युगानुरूप यथार्थवादी लेखन उनकी विशिष्टता का परिचायक है।

साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन काल से, आधुनिक युग तक जिन विधाओं का उद्‌भव एवं विकास हुआ, उनमें कहानी का प्रमुख स्थान है। यह सभी विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है, 'कहानी' शब्द के लिए प्राचीन काल में 'आख्यान्', 'आख्यायिका', 'कथा', 'गल्प' आदि शब्द प्रचलित थे। मनुष्य अपनी प्रारम्भिक काल से ही किसी–न–किसी रूप में 'कहानी' बुनता और सुनता आया है। कहानी के प्रारम्भ के विषय में राजेन्द्र यादव लिखते हैं– ''मैं कहानी को आदि विधा मानता हूँ, वह गद्य में लिखी गई हो या पद्य में या इससे भी पहले संकेतों में पद्य या गीतों के माध्यम से स्वयं उनका रस ग्रहण करते हुए भी इन सबके पीछे नेपथ्य में चलने वाली कहानी ही प्रमुख रही है।

ओझा जी भले नगर, महानगर में रहे हो परन्तु वे अपने गाँव के परिवेश को कभी नहीं भूल पाये। उन्होंने स्पष्ट कहा है "मेरा गाँव, बस इतने भर को, कि मैंने कभी वहाँ जन्म लिया था। होश सम्भालते ही उससे कट गया था और फिर उस मरूस्थलीय गाँव से मेरा सम्बन्ध उतना ही रह गया था, जितना कि कटी नाल से किसी शिशु का रह जाता है। किन्तु जब सुना कि वह गाँव भीषण सूखे की चपेट में है तो मेरे मन में एक मरियल सी

ममता उस उजाड़ खेड़े के प्रति जागी"। इससे ओझा जी ने यह स्पष्ट किया है कि जन्म भूमि से किसी का भी रिश्ता कभी भी नहीं छूटता। चाहे व्यक्ति कहीं भी जाकर रहे अपने ग्रामीण परिवेश को, अपने गाँव की संस्कृति को कभी भी नहीं भूला पाता। यही कारण है कि जब अपनी जन्म भूमि पर कोई संकट आता है तो अपनी अंतरात्मा में एक कचोट सी पैदा होती है और व्यक्ति के कदम अचानक ही अपने गाँव की ओर बढ़ जाते हैं। यही कारण है कि ओझा जी के कथा साहित्य में यथा स्थान पर गाँव का परिवेश समूची विशिष्टताओं के साथ रेखांकित हुआ है।

रामकुमार ओझा की कहानियों के तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 'कौन जात कबीरा' संग्रह व्यापक सामाजिक जीवन का जीवंत दस्तावेज है, जिसकी रचनाधर्मिता हमें बाँधती है। इस संकलन में संकलित कहानियाँ निम्नलिखित प्रकार से है– 'सत्यमेव जयते', 'अच्चन काका', 'सूखे की एक रपट', 'सरदी और साँप', 'खून लामजहब है', 'संन्यासी', 'कौन जात कबीरा', 'कोट', 'बनो घोड़ा', 'चौपाटी का चेतक और हुसैन का घोड़ा', 'उद्घाटन–भाषण', 'भारमली नहीं भागी' आदि हैं। इनमें से 'अच्चन काका' कहानी गरीबी, सामाजिक मान–मर्यादा का संदेश देती है, तो 'भारमली नहीं भागी' कहानी में भारमली अपने पुरखों–पूर्वजों की इज्जत को बचाये रखती है व लोक मान–मर्यादा का उल्लंघन भी नहीं करती है। इसी प्रकार 'सरदी और साँप' कहानी भी प्रेम–प्रसंग के रूप में देखी जा सकती है। इसी तरह ओझा जी ने 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' कहानी संग्रह में भी अनेक कहानियाँ संकलित है– 'सिराजी', 'लाट बाबा', 'हिश्श! भूख से भी आदमी मरता है?', 'बूढ़े बरगद और लंगड़ की कहानी', 'सयाना', 'जिंदाबाद अमर रहे', 'एक दिन गुस्ताखियों का', 'दरख्त पर टंगी रोटी', 'बंधवा' आदि हैं। इनमें से 'सयाना' कहानी में धार्मिक आडम्बर एवं पाखण्ड़ों पर करारी चोट की गयी है आज भी लोग भूत–प्रेतों में विश्वास कर भगतों और ओझाओं के हाथों के शिकार बन जाते है। पाखण्डवाद को देखा गया है, वहीं 'बंधवा' में नारी का बड़े बाबुओं व साहबों के द्वारा प्रताड़ित किया जाता है और उन्हें बंधवा मजदूरों के रूप में ही अन्त तक कहानी में प्रताड़ित करते हैं। इसी प्रकार 'आदमी वहशी हो जाएगा' संग्रह में संकलित कहानियाँ निम्नलिखित प्रकार से हैं– 'मुकामों', 'आदमी वहशी हो जाएगा', 'त्रिकाल', 'सड़क', 'सफीनों', 'रब्बों', 'हाड़फरोश', 'चीता', 'खून', 'फट्टा', 'सर्प नियति', 'वो', 'बहु–स्तरीय योजना', 'बाबा बोलने' लगे आदि कहानियाँ है।

'मुकामों' कहानी में मुकामों जिसका पति परदेस में गया हुआ है। घर का गुजर–बसर या खाने–कमाने के लिए तो उसका देवर बुरी नियत से उसके पीछे पड़ा रहता है, जिससे मुकामों नोहरे (बाड़े) में पशु बाँधने जाती है, तो भी हाथ में गँडासा रखती है और

पूरी हिम्मत व संघर्ष करते हुए अपने चरित्र की मान–मर्यादा व इज्जत को बचाये रखती है। इसी प्राकर 'सड़क' कहानी में कविता नामक स्त्री जो अपने पति के द्वारा लाई गई नौकरानी पर इसलिए शक करती है कि वह नौकरानी की तरह न तो रहती है और न व्यवहार करती है। इसी तरह 'रब्बो' कहानी में रब्बो नामक स्त्री एक कठिन परिश्रम करने वाली व प्रेमी हृदय वाली स्त्री के रूप में चित्रित हुई है। वह अपने मौहल्ले के एक लड़के से प्रेम करती है और लड़का भी रब्बो के प्रति पूरी तरह समर्पित दिखाई देता है। इस प्रकार उपर्युक्त तीनों कहानी संग्रहों में जो कहानियाँ संकलित है। वे विभिन्न सामाजिक सरोकारों से सम्बन्धित है। प्रायः कहानियों में उन्होंने कथानक के केन्द्र में किसी–न–किसी रूप में नारी विमर्श को स्थान दिया है। मुकामों, रब्बो, सफिनों आदि भले ही तत्कालिन परिवेश में जीवन–यापन कर रही है, परन्तु वे एक आधुनिक तर्कशील, निर्भीक और प्रभावशाली स्त्री पात्र के रूप में चित्रित हुई है। वे विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में अपनी मान–मर्यादा की रक्षा करती हुई स्वाभिमानपूर्वक अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करती है। उदाहरण के लिए 'बंधवा' कहानी की रामप्यारी नामक युवती जो सीमेन्ट, कंकरी, बजरी का काम (मजदूरी) करने वाली नारियों के साथ कार्य करती है। पर वह कंकरी, बजरी, इन सब चीजों की सप्लाई नहीं करती है फिर भी सब सप्लायरों से बड़ी सप्लायर है, क्योंकि वह साहब व बाबुओं की रातों को रंगीन करने में और खारी बातों को मीठी बातों में बदलने में माहिर है। इसी वजह से अपनी मान बड़ाई व साहब लोगों से वाहवाही लूट रही है। इसी तरह से इसी कहानी की रतनी नामक नारी जो अपने पति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष करते हुए कड़ी मेहनत करती है। जब वो मजदूरी करते हुए गेती चलाती है, तो एक बार में एक पत्थर उखाड़ देती है। उसको काम करते देखकर खुश हो जाते हैं और रतनी को सौगात भी देना चाहते हैं। साहब उसका पति तेजसिंह भी साहब के यहाँ नौकरी करता है और उसे भी इस बात की खुशी होती है कि मेरी पत्नी भी साहब की नजर में आ गई हे। इस प्रकार की बात का पता रतनी को लगता है तो वो अपने पति की जवांमर्दी से भी डरने लग जाती है और उसका पति ये चाहता है कि रतनी भी साहब की छँटनी में आ जाए। बस अब तो मैं भी पुलाव की टप्पटी की जगह टीन की टाटी में रहनू लगूँगा और खूब ऐशो–आराम करूंगा। इस प्रकार से पति तेजसिंह रतनी के लिए अब तेजू बन गया है और रतनी साहब की छंटाई में आ जाती है व तेज सिंह अब अपनी मूंछों पर ताव देते हुए बहुत खुश नजर आ रहा है। इस तरह 'रब्बो' कहानी की रब्बो नामक नारी पात्र जो एक निडर–स्वभाव की क्रोधी नारी है। जब अपने घर मौहल्ले से निकलकर जाती है तो उस समय कुछ मौहल्ले के मनचले लड़कों के द्वारा उसे परेशान किया जाता है तो

वह साहस व निडरता का परिचय देती हुई लड़कों से भीड़ जाती है और उन्हें परास्त कर देती है। अपनी पेशानी का जोर व दमखम और वह अपना दुपट्टा लड़कों के गले पर फेंककर डालते हुए अपनी ओर खींचकर टखनी मर मारते हुए ठुड्डी टिका देती है और दूसरे लड़कों को कहती है, जरा रूको तो साहबजादों तुम्हारी पेशानी का और दमखम देखती हूँ कितना है और रब्बो लड़कों को इतना मारती है कि उनके कपड़े फट जाते हैं। इस प्रकार वह साहस व निडरता का परिचय देते हुए अपने स्वाभिमान की रक्षा करती है। इसी प्रकार ओझा जी कहानियों में यत्र–तत्र प्रसंगानुकूल सांस्कृतिक सन्दर्भ भी देखने को मिलते हैं इससे स्पष्ट है कि ओझा जी के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति विशेष आस्था रही है। उनकी कहानियों के विषय मुख्य रूप से मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग से जुड़े हुए हैं, जिनमें इन्होंने मध्यवर्गीय समाज के क्रियाकलापों, रीति–रिवाजों और परम्पराओं का वर्णन यथा स्थान अनेक प्रसंगों में किया है, जिनमें भारतीयता की छाप स्पष्ट नजर आती है। यही नहीं पर्व–त्यौहार एवं लोकानुष्ठान भी हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुरूप सम्पन्न होते दृष्टिगोचर हुए हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा अनुराग प्रमुख रूप से इन कहानियों में– 'अकेली रात', 'अच्चन काका', 'शेष सब सुविधा', 'दरख्त पर टंगी रोटी', में देखा जा सकता है। यही नहीं अभिजात्य वर्ग की संस्कृति खान–पान, वेशभूषा, श्रृंगार–प्रसाधन, रीति–रिवाज आदि भी इनकी कहानियों में प्रतिबिम्बित हुए हैं ।

तृतीय अध्याय – रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्यः विश्लेषण– इस अध्याय में हमने रामकुमार ओझा की प्रमुख कहानियों के कथ्य का विश्लेषण करते हुए समकालीन कहानी के परिप्रेक्ष्य में उनका साहित्यिक अवदान रेखांकित किया है। ओझा जी की कहानियों की पृष्ठभूमि प्रायः ग्रामीण परिवेश है। उन्होंने ग्रामीण परिवेश, रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, रीति–रिवाज, पर्व–त्यौहार आदि को समग्र अच्छाइयों और बुराइयों के साथ रेखांकित किया है। उनके तीन कहानी संग्रह–'कौन जात कबीरा', 'आदमी वहशी हो जाएगा', और 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' प्रकाशित हुए हैं। इनमें 41 कहानियाँ है। इन कहानियों में उन्होंने वर्तमान समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की समस्या का वर्णन परिवेश तथा परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है।

ओझा जी की कहानियों में ग्रामीण और शहरी परिवेष अपनी–अपनी विशेषताओं को समेटे हुए हैं। उनके शब्दों में "कहानीकार कहानी में सत्य को काल्पनिक कथानक के माध्यम से प्रेषित करता है, पर उसके अन्तराल में वास्तविक जीवित पात्र वास करते हैं। हर कहानी में एक और कहानी होती है। हर पात्र के अन्दर दूसरा पात्र वास करता है।" 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह में संकलित 'मुकामों' कहानी में आँचलिकता स्पष्ट

परिलक्षित होती है। इस कहानी में बताया गया है कि मुकामों का पति परदेस में घर का गुजर–बसर करने के लिए कमाने गया है और मुकामों घर में बिना पति के विभिन्न प्रकार की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के साथ संघर्षशील जिन्दगी जीती हैं। फिर भी हार नहीं मानती है और घर की जो परिस्थितियाँ उनका सामना करती है। बरसात के मौसम में उसकी परेशानियाँ निम्नलिखित गीत की पंक्तियों से ध्वनित हो रही है –

"छप्पर छेका छिद रह्या बड़क्या बांदा बाँस।

बेग पधारो सांवरा, म्हाने थांरी आश।।"

वह अपने प्रियतम या किसी अन्य को अपनी परिस्थिति का अहसास तक नहीं होने देती है। चाहे सूखा हो या बरसात हो वो हर एक मौसम का संघर्ष के साथ डटकर मुकाबला करते हुए अपने घर–परिवार व स्वयं की इज्जत को भी बचाकर मान–मर्यादा को बनाये रखती। इसके अतिरिक्त भारमली भागी नहीं, संन्यासी, अच्चन काका, कोट आदि कहानियाँ आँचलिकता के रंग बिखेरते हुए दिखाई देती है।

इसी प्रकार से ओझा जी ने आर्थिक सन्दर्भ– की समस्या को भी अपनी कहानियों में उजागर किया है। उन्हीं में से 'बंधवा' कहानी की रतनी नामक महिला जो कि बहुत ही संकटग्रस्त जीवन–यापन करती हुई आर्थिक संकटों में जी रही है। घर की आर्थिक परिस्थिति को लेकर रतनी बहुत मजबूर हो जाती है व अपने आपको साहब के यहाँ काम के साथ–साथ वासना के पंक में धंस जाती है। लेकिन साहब का चाल–चलन या अभद्र तरीके के व्यवहार व आचरण को देखकर रोते हुए अपनी घर–द्वार की देहरी माता से प्रार्थना करती है कि जिस प्रकार से बाबुल के घर से मुझे यहाँ लाया गया उसी प्रकार से वापस है देहरी माता इस बंधवागिरी से पीछा छुड़वा लाओ मेरा, मैं तेरे ऊपर नारियल बंधारती हूँ। इस प्रकार से महिलायें कहानी में अपनी आर्थिक संकट को झेलते हुए सब कुछ करने तक को तैयार हो जाती हैं। ऐसी आर्थिक परिस्थिति रतनी नामक मजदूरी करने वाली नारी की हो गई हैं। इसी तरह ओझा जी ने 'सयाना' कहानी से नैवगण स्त्री पात्रा को चित्रित किया है, जो पति के प्रति पूर्णतया समर्पित हैं। पति जब अपने संगी–साथियों के साथ बातों में इतने मशगूल हो जाते हैं कि समय का ध्यान भी नहीं रहता है, उन्हें तो भी नैवगण अपने पति के लिए देहरी पर बैठी बाट देखती रहती है। नैवगण शान्त–स्वभाव की ग्रामीण अँचल में पली–बढ़ी है तो वो संस्कारों का भी पूर्णतया पूरा ध्यान रखती है और सद्मार्ग पर चलने में ही विश्वास रखती है।

चतुर्थ अध्याय – 'रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य का कथ्यः विश्लेषण' के अन्तर्गत हमने उनके प्रमुख उपन्यास– 'अश्वत्थामा' व 'रावराजा' और 'निशीथ'

(काव्य–संग्रह) के कथ्य के विविध आयामों का अध्ययन किया हैं। विद्वानों ने 'उपन्यास' को जीवन का आख्यान कहा है। अपने उन्यास और शिल्प दोनों में ही निरन्तर गतिशील रहा है। उपन्यासों के शुरूआती दौर में यह किसी ने भी नहीं सोचा होगा कि साहित्य में इतने समय बाद में आयी यह विधा एक दिन कविता, नाटक आदि अन्य साहित्यिक विधाओं को पीछे छोड़ती हुई। उनसे बहुत आगे निकल जायेगी। खास–तौर पर कथा–साहित्य में तो प्रेमचन्दोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक कथा रचना की बड़ी लम्बी परम्परा देखने को मिलती है। इस सम्बन्ध में डॉ. देवराज की ये टिप्पणी उल्लेखनीय है–"इस शताब्दी के मानव मनोविज्ञान सम्बन्धी अनुसंधानों ने व्यक्ति के विविध रूपों का अध्ययन दरअसल इसकी भी एक वजह है, मानव की भीतरी परतों को जिस तरह विस्तार के साथ कथा–कहानी में उधेड़ा जा सकता है। काव्य में वो विस्तार कलेवर की संक्षिप्तता के कारण सम्भव नहीं हो पाता। अतः मनोविज्ञान का सर्वाधिक प्रभाव हिन्दी कथा–धारा में दिखलाई पड़ता है। कोई अचरज की बात नहीं मनोविज्ञान के प्रभाव से हिन्दी, उपन्यासों को चेतना–प्रवाह के उपन्यास तक कहा जाने लगा है।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक कथाधारा की शुरूआत सन् 1930 के आस–पास से मानी जाती है। जैनेन्द्र का 'परख' और इलाचन्द्र जोशी का 'घृणामयी' (लज्जा) इस कथा–धारा के प्राथमिक उपन्यास माने जाते हैं। इसके बाद तो हिन्दी में इस तरह के उपन्यासों की बाढ़ सी आ गई। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय हिन्दी की मनोवैज्ञानिक कथा–धारा के अग्रणी कथाकार माने जाते हैं।

उपन्यास साहित्य की गद्य विधा के लिए ऐसा माना जाता है कि लगभग सन् 1980 के बाद के जितने भी उपन्यासकारों ने उपन्यास की रचना या लेखन कार्य किया है। वह मुख्य रूप से समकालीन उपन्यास के अन्तर्गत ही माना जाता है और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपन्यास के क्षेत्र में ठीक उसी प्रकार से उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में बदलाव लाना शुरू कर दिया और धीरे–धीरे समस्त प्रकार के उपन्यास साहित्यकार समकालीनता से सम्बन्धित उपन्यासों का लेखन कार्य करने लगे। यानि कि जैसे उपन्यास में समयानुसार बदलाव आया वैसे ही स्वातंत्र्योत्तर भारत की परिस्थितियों में भी समयानुसार बदलाव आता गया। हिन्दी के उपन्यासों की नयी धारा को प्रयोगवादी उपन्यास, आधुनिकता बोध के उपन्यास भी कहा जा सकता है। औद्योगिकरण, भ्रष्ट शासन–व्यवस्था, बदलता परिवेश, यांत्रिक सभ्यता के दुष्परिणाम महानगर का जीवन, व्यक्ति का अकेला रहना, निराशा, तनाव, घुटन, कुण्ठा, अवसाद आदि समस्त प्रकार के विषय और भावों से जुड़कर उपन्यास की विषय–वस्तु और उपन्यास की प्रक्रिया भी नवीनतम विविध प्रकार के रूपों को धारण करती

हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत के सम्मुख कुछ और तरह की नई–नई चुनौतियाँ भी सामने आने लग गई थी। निर्मल वर्मा के उपन्यास 'वे दिन' में यूरोप के एक नगर का चित्रण किया गया है। इसमें महायुद्ध के बाद में फैले अकेलेपन को बड़ी संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। समकालीन दौर में चल रहा उपभोक्तावाद, साम्प्रदायिकता, निम्न मध्य वर्गीय जीवन, पितृ–सत्तात्मक, नारी–मुक्ति, जीवन का तनाव, आदिवासी समाज में नारी का दायरा दिग्भ्रमित युवा पीढ़ी, पलायन, विघटन, संकटग्रस्त एवं कुण्ठाग्रस्त जीवन, पारिवारिक समस्याऐं आदि जैसे अनेक विषय जिनसे मिलजुलकर समकालीन उपन्यास–साहित्य और भी तेज गति से बढ़ता जा रहा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी बदरिया' बनारस से बुनकर समाज व जाति सम्प्रदाय को लेकर लिखा गया है, यह साड़ी बुनने वाले जुलाहों के कठिन से कठिन संघर्षशील जीवन को दर्शाता है। चित्रा मुद्गल 'आँवा' में श्रमिक वर्ग की गर्दन काटने की प्रवृत्ति का प्रतिस्पर्धाओं, स्वार्थ सिद्धि हेतु पूँजी के प्रलोभनों की गहरी संवेदना के साथ भी व्यक्त किया गया है। रवीन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यास जवाहरनगर में 1975–77 के आपातकाल और मध्यमवर्गीय पतनशीलता का चित्रण भी बखूबी रूप से किया है। इसी प्रकार ओझा जी का 'अश्वत्थामा' उपन्यास महाभारत काल के प्रसिद्ध कथानक को लेकर लिखा गया है। इस उपन्यास में अश्वत्थामा और कई गौण पात्र भी हमारे सामने आये हैं, जिनमें दुर्योधन, पाण्डव, कृष्ण, युधिष्ठिर, भीम, कुन्ती इत्यादि महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। ये सभी पात्र शिक्षित है। सेरन्ध्रि को उपन्यास में एक चालाक प्रवृत्ति की औरत और राजा विराट की पत्नी सुदेषणा की दासी के रूप में भी बताया गया है, जो मनचली हरकतें करने में माहिर है व अपने जीवन के वाकचातुर्यता की मालकिन पाँच–पाँच पतियों की पत्नी के रूप में भी प्रसिद्ध है। ऐसा माना जाता है कि लोक–लाज की परवाह किए बगैर मान–मर्यादा की सीमा को बाँधकर शासक–वर्ग के लोगों के साथ रंगरलियाँ मनाने तक का प्रस्ताव भी एक बदचलन नारी की भाँति स्वीकार करती है। इसीलिए अन्य नारी पात्रों की तुलना में सेरन्ध्रि अपनी वाक्चातुर्यता को रखते हुए अपने आप में कामुकता का भाव रखने वाली अन्तःस्थ नारी पात्रा मानी गई है।

इन सभी पात्रों का सृजन प्रंसगानुकूल सौद्देश्यपूर्ण हैं। लेखक पात्रों की भावना, संवेदना, भीषण अंतर्दवद्व की भावना में पूर्णतः सफल रहे हैं। इस प्रकार जीवन के पर्दापण करने के सुदीर्घ अन्तराल के पश्चात् उन्होंने सृजनात्मक लेखन का आरम्भ कर नवीन तथा भिन्न आयाम स्थापित करने का प्रयास किया है, अनके घटनाओं के द्वारा बदलते मानव जीवन को चित्रित करने वाला ओझा जी का उपन्यास–साहित्य अपने उद्देश्य की पूर्ति में निष्चय ही सफल एवं प्रभावात्मक रहा है। इसी प्रकार से 'रावराजा' ओझा जी का दूसरा

उपन्यास है। यह सामन्तकालीन जीवन सामाजिक व्यवस्था एवं आचार–विचार को लेकर लिखा गया है। रियासत के दिनों के बेहड़ के ठिकाणे (जागीर) का बड़ा नाम था। वहाँ के ठाकुर साहब को रावराजा की पदवी का अतिरिक्त सम्मान प्राप्त था। महाराजा साहब के खास महलातों में जनानी ड्योढ़ियों की गणगौर पोल तक उनकी सवारी जा सकती थी, जबकि अन्य ठाकुरों को किले की सिंह पोल पर ही घोड़े की पीठ से उतर जाना पड़ता था। यही नहीं महाराज के निकट सम्बन्धी होने के कारण बोहड़ के जागीरदार तोप की सलामी के भी हकदार थे। दरबार में महाराज उनको काकोसा कहकर सम्बोधित करते और अपना पेचदान पेश करते थे। इस प्रकार से रावराजा एक शासक के रूप में अपनी समस्त प्रजा के साथ भी शालीनता व संयम के साथ पेश आते हैं। वहीं दूसरी ओर प्रजा भी उनका खूब मान–सम्मान करती थी। उपन्यास 'रावराजा' में उमराव, रूपराम, गौरी, लक्ष्मी बहू, पार्वती, मायाराम, सेठ धनदास इत्यादि पात्रों में से कुछेक पात्र ही शिक्षित हैं, शेष पात्र अशिक्षित हें। इनमें से रूपराम जो कि चालाक प्रवृति का व नशे में धुत रहने वाले पात्रों में से एक है। रावजी के यहाँ हवेली में इधर–उधर मस्का लगाने का काम करता रहता है और पूरी ढोलकी भर शराब ले जाता है व दिनभर रहता है। इसी प्रकार से गौरी उपन्यास की स्त्री पात्रा जो रूपराम से प्रेम करती है। परन्तु उससे रूपराम सिर्फ अपना स्वार्थ–सिद्धि का ही प्रेम करता है। रूपराम–गौरी से प्रेम–प्रसंग के चक्कर में अपनी हवस की भूख को मिटाने के लिए उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है और अपनी वासना की इच्छापूर्ति को प्रेमभावना का रूप देता है। इस तरह से उपन्यास में सभी पात्रों का वर्णन बड़े ही रोचकपूर्ण व कौतूहल पूर्वक हुआ। इस प्रकार रावराजा उपन्यास सामंतकालीन समाज पर भी दृष्टि डालता है। उपन्यास में सामंतकालीन जीवन के ऐशो–आराम रईशों की नशेबाजी और रंगरलियों का जीवन्त चित्रण है जो सामंती के प्रभाव का भी कारण है तथा उनकी शान–शौकत और ऐय्यासी भर जिन्दगी को दर्शाता है। इस प्रकार ये उपन्यास सामंती जीवन के आचार–विचार के माध्यम से समाज का समस्त चित्र उपस्थित करता है, जो विविध सन्दर्भों में महत्त्वपूर्ण है।

'अश्वत्थामा' उपन्यास प्राचीन पौराणिक कथानक को लेकर अवश्य लिखा गया है। परन्तु इसके सभी पात्र नई सोच और नये विचारों की संकल्पना लेकर सामने आते हैं जो परम्परा से तो जुड़े ही है साथ ही युगानुरूप नवीन चिन्तन के मार्ग को भी प्रशस्त करते हैं। यह उपन्यास अपने संदेश को लेकर आज भी प्रासंगिक है और कल भी इसकी अर्थवता बनी रहेगी।

पंचम् अध्याय— 'रामकुमार ओझा के कथा—साहित्य में नारी' के अन्तर्गत नारी के विभिन्न रूपों और उसकी विभिन्न भूमिकाओं का जीवंत चित्रण हुआ है। इनके कथा—साहित्य में नारी के कन्या, पत्नी, माँ, बहू, दादी, चाची आदि सभी रूप चित्रित हुए हैं। यहाँ नारी मजदूरनी भी हैं, तो घर की बहू भी है, तो समाज—सेविका भी हैं, तो गृहिणी भी हैं। नारी के सभी रूप और भूमिकाएं जीवंत और यर्थाथ हैं। वैसे देखा जाये तो हिन्दी के साहित्यकारों ने नारीगत समस्याओं को अपने कथा—साहित्य में जोर—शोर से उठाया है। ऐसे साहित्यकारों की परम्परा का अनुसरण करते हुए अपने कथा—साहित्य में नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं एवं स्थितियों को रेखांकित कर पाठकों को कुछ सोचने के लिए प्रेरित किया है। ऐसी कहानियों में 'बंधवा' कहानी की पात्र रामप्यारी जो साहब लोगों के यहाँ दिहाड़ी (मजदूरी) करती है और उसके साथ—साथ भोली—भाली युवतियों को प्रेम—जाल में फंसाकर साहब लोगों के टैन्टों में सप्लाई भी करती है, जिससे साहब लोग रामप्यारी से खुश रहते हैं और उसकी आर्थिक परिस्थिति भी सुधार देते हैं। ओझा जी ने 'अश्वत्थामा', 'रावराजा' उपन्यास में भी नारी पात्रों का चित्रण किया है। जिसमें सावित्री नामक स्त्री पात्रा जो कि अपने सास—ससुर से प्रताड़ित की जाती है और काफी परेशान है। सावित्री को उसकी सास के द्वारा जानबूझकर उलझन की स्थिति में झोंक दिया जाता है तो सावित्री सोचती है कठिन संघर्ष भरे जीवन जीने की स्थिति से अच्छा है अगर और कहीं जाकर बस जाये। सावित्री का पति रामसिंह राजा—रजवाड़ों के यहाँ नौकर—चाकरी का कार्य करता है और सावित्री को भी यहाँ काम में लगा कर रखा है। रामसिंह नशे की लत में धुत रहता है और कभी—कभी तो अपना होशो—हवास भी नहीं सम्भाल पाता है। सावित्री के पीहर में भी एक माँ ही है जो भी अपने रिश्तेदारों पर आश्रित हैं और ये सब कहकर रोने लग जाती है। अपने मन से वार्तालाप कर कहती है भाइयों की सहानुभूति पर भाभियों की एक क्रोधभरी नजर से देखना मैं सह न पाऊँगी। उसकी सास सावित्री को घसीटती—पिटती है। पर सावित्री चूं भी नहीं करती है और ये सब सहन करते हुए अपना जीवन निर्वहन करती है।

इस प्रकार ओझा जी ने अपनी कहानियों में नारी की यथार्थ दयनीय शोषण भरी स्थिति और उसके जीवन से जुड़ी समस्याओं का चित्रण तन्मयता से किया है। उन्होंने ग्रामीण व शहरी समाज दोनों को बारीकी से देखा और समाज में व्याप्त अनमेल विवाह, दहेज प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों के बीच में पिसती हुई नारी की स्थिति का चित्रण करते हुए नारी की स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता का पक्ष लिया है। उन्होंने अपनी कहानियों में चित्रित नारी पात्रों के माध्यम से समाज को संदेश दिया है कि नारी परिवार का आधार

होती है, वह पूरे परिवार को बांधकर रखती है। वह अपनी सूझ–बूझ, उदारता सहनशीलता से परिवार में सुख–समृद्धि और शांति स्थापना करती है। आज सबसे बड़ी जरूरत ये है कि नारी को परम्परागत रूढ़ियों, कुरीतियों और बन्धनों से मुक्त कर उसके भीतर की कार्य क्षमताओं को पल्लवित करने का अवसर प्रदान किया जाये। उन्होंने नारी की विभिन्न स्थितियों और हृदयगत भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हुए भारतीय संस्कृति की मान–मर्यादाओं की रक्षा करने वाली आदर्श नारी के चित्रित किया है। उनका स्पष्ट संदेश है कि परिवार और समाज तभी खुशहाल हो सकते है जब नारी को सम्मान मिलेगा तथा वह शिक्षित होगी। जब नारी की भावनाओं को समझते हुए उसके प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण रखा जाये तो समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सकेगा। इनके कथा–साहित्य में नारी किसी भी रूप में हो चाहे वो पुत्री, प्रेमिका, पत्नी, दादी सभी रूपों में समाज के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक नारी आज पुरुष–प्रधान समाज में रहकर भी अपना अस्तित्व निर्माण कर रही है। वह अपनी अस्मिता को नये रूप में स्थापित करने की कोशिष में जुटी हुई है। ओझा जी के कथा–साहित्य में नारी का परिवर्तित रूप भविष्य में सभी नारियों को परम्पराओं से मुक्त करते हुए स्वतंत्र विचार करने के लिए नए जीवन में अपना स्थान बनाने की प्रेरणा देता है क्योंकि उनकी चित्रित नारी अपना निर्णय देने में सदा से पूर्णतः स्वतंत्र है। अतः भविष्य में नारी के लिए मुक्ति के द्वार खोलने में सक्षम दिखाई देती है। अतः हम कह सकते हैं कि लेखक ने कथा–साहित्य में नारियों को आधुनिक स्त्री–पुरुषों के यथार्थ समस्याओं को सामने लाने की कोशिश की है। समाज को वर्तमानकालीन समस्याओं को उजागर करके हम अपने जीवन को सच्ची परिस्थितियों से जोड़ने का महान कार्य किया है। उन्होंने अपने कथा–साहित्य में, नारी का वर्णन खुलकर स्वतंत्र रूप में किया है। जो अपने आप में एक मिशाल है और विविध रूपों में नारियों की भूमिका का वर्णन कर कथा–साहित्य को और अधिक रोचक व प्रभावात्मक बना दिया है।

षष्ठ अध्याय –'रामकुमार ओझा का भाषा एवं शैलीगत सौन्दर्य' के अन्तर्गत उनके कथा–साहित्य का भाषा एवं शैली की दृष्टि से अनुशीलन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हुआ है कि लेखक भाषा के प्रयोग में पारंगत है। लेखक को हिन्दी के अतिरिक्त राजस्थानी, बंगाली, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर अच्छा ज्ञान है। इन भाषाओं के प्रचलित शब्दों का कहानियों में अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाषा के द्वारा हम परस्पर विचार विनिमय करते हैं। उपन्यास की भाषा में कहावतों, मुहावरों एवं शब्द प्रयोग का बड़ा महत्त्व होता है। जहाँ तक शब्दों के प्रयोग की

बात है तो हमने इनके कथा साहित्य का अनुशीलन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि इन्होंने यथास्थान प्रसंगानुसार तत्सम्–तद्भव, देशज, विदेशी (अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी) शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है। इनके कथा–साहित्य से कुछ उदाहरण संकेत रूप में हम यहाँ उल्लिखित कर रहे है। वैसे इनका विस्तृत विवेचन इस अध्याय के अन्तर्गत हम कर चुके हैं। तत्सम् शब्दों के यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है– परिवेश, संयम, सिद्ध, श्रेष्ठ, लघु, ग्रन्थि, कन्दुक, घृणा, रिक्त, नारिकेल, मधुक, नग्न, पल्लव, हस्त, परश्व, पाशिका, ओष्ठ, द्राक्षा, मेघ, तिथिवार आदि। इसी प्रकार तद्भव शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त देखने को मिलता है। तद्भव शब्द उन्हें कहते हैं जो तत्सम् से उद्भूत होते हैं। इनके कथा–साहित्य में झीना, सावन, जाड़ा, परसों, साला, मौर, खाई, जलाना, सौत, भौंरा, भाड़ा, साँझ, दाद, सुथरा आदि है। विविध विषयों से सम्बन्धित तद्भव शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यही नहीं उन्होंने अपने कथा– साहित्य में भाषा के चलते प्रवाह में देशज शब्दों का भी प्रयोग पर्याप्त किया है। ये शब्द भाव सम्प्रेषणीयता में किसी तरह बाधक नहीं है तथा निरन्तर भाषा की गत्यात्मकता बनाए रखते हुए अर्थबोध में सहायक है। हांडी, लोटा, खूँटा, नोहरा, चूँटियों, लुगाई, टाबर–टीकर, बपौती, बिरखा, इती, पंपोलना, माणस, निहारे, हुंकारा आदि। इसी तरह विदेशी शब्द– अर्थात् अरबी, फारसी, उर्दू के स्थान–स्थान पर अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। जैसे–मर्तबा, मजहब, लाश, तलाश, तरक्की, मुकाबला, तमन्ना, गमला, बलात्कार, रिक्शा, चाय, इलाज, दफनाया, जायजा, शराफत, नकारा, फर्ज, मदद, फैसला, असल, ईलम आदि। जहाँ तक अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग की बात है तो अंग्रेजी के शब्द भी पर्याप्त प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं जैसे– मैनेजिंग, डायरेक्टर, डैमेज, स्ट्रॉक, फिलिप, वर्कर, डॉक्टर, प्रोमिज, टैक्स, लाइब्रेरी, अण्डर लाइन, स्ट्रगल, ऑर्डर, लेजर, अटैक, टॉर्च, रैन–कोट, लेक्चर, टेंशन, क्लास, ब्रेक, अरेस्ट, डर्टी, क्रॉसिंग, पार्टी आदि। इस प्रकार हम देखते हैं ओझा जी के कथा–साहित्य में विभिन्न भाषाओं के प्रचलित शब्द यत्र–तत्र पर्याप्त प्रयुक्त हुए हैं। इनके प्रयोग से जहाँ उनकी भाषा में प्रभावात्मकता और निरन्तरता बनी रही है। वहीं अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है। ओझा जी के कथा–साहित्य में भाषा का गत्यात्मक रूप देखने को मिलता है। यहाँ भाषा अपने विविध रूपों में प्रयुक्त हुई है। चित्रात्मक, काव्यात्मक, बिम्बात्मक, प्रतीकात्मक, आदि भाषा के प्रयोग देखने को मिलते हैं। चित्रात्मक भाषा–भाषागत सौन्दर्य का एक तत्व है जब कोई साहित्यकार किसी वस्तु, घटना, पात्र इत्यादि का इस प्रकार वर्णन करता है, कि उसके वर्णन में एक भाषागत चित्र सा बनता जाता है और पाठक जब उसके पाठ को पढ़ता है तो उसके सामने सम्बन्धित वस्तु, घटना, पदार्थ या व्यक्ति का चित्र उभर कर आता है और वह उस भाषागत चित्र के

माध्यम से लेखक के कथ्य से सम्प्रेषित हो जाता है। इसी प्रकार काव्यात्मक भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है, जिसमें इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें पढ़कर पाठक को काव्यात्मक आन्दानुभूति होने लगती है। काव्य का प्रमुख तत्त्व भावात्मकता होता है, जब रचनाकार अनुभूति समवलित भाषा का प्रयोग करता है या कहीं–कहीं पूरा का पूरा छन्द या पद्य लिख देता है, तो वहाँ भाषागत काव्यात्मकता का संचार हो जाता है। श्री रामकुमार ओझा की कहानियों एवं उपन्यासों में अध्ययन करते समय कई स्थल ऐसे मिले जहां उन्होंने या तो पूरा का पूरा छन्द पद्य या किसी प्रसिद्ध लेखक के काव्य की पंक्तियां ज्यों की त्यों प्रस्तुत की है। तो कहीं–कहीं अलंकारों का प्रयोग करके भाषा में काव्यात्मक उत्पन्न की है। उनके साहित्य में सामान्यतः उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक जैसे अलंकारों के उदाहरण मिल जाते हैं। इनका प्रयोग बिल्कुल सहज सरल रूप में हुआ है। कहीं पर भी ऐसा नहीं लगता कि काव्यात्मकता को जबरदस्ती लाने का प्रयास किया गया। जैसे–

"पपिया जफियाँ पालें हम।"
अँखियों से आँख मिला ले हम।"
"राम जाने, राम जाने, राम जाने
कहते हैं लोग मुझे राम जाने
कहते हैं क्यों राम जाने?" (कौन जात कबीरा)

शैली एवं भाषागत तत्त्वों की दृष्टि से ओझा जी का कथा–साहित्य समृद्ध है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में प्रचलित सभी शैलियों का प्रयोग किया है। इसी तरह भाषा में यथा स्थान प्रसंगानुकूल एवं पात्रानुकूल तत्सम्, तद्भव, विदेशी विभिन्न प्रकार के शब्दों एवं लाक्षणिकता, व्यंग्यात्मकता, बिमबात्मकता एवं प्रतीकात्मकता जैसे शैलीगत तत्त्व भी प्रयुक्त हुए है, जिनसे शैली और भाषा संप्रेषणीयता की दृष्टि में पर्याप्त प्रभावात्मक परिलक्षित होते हैं। शैली शब्द अंग्रेजी के 'style' के हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रयुक्त होता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अरस्तू से लेकर आई.ए.रिचर्ड्स तक सभी विद्वानों ने शैली शब्द का प्रयोग किया है। हिन्दी में यह शब्द पाश्चात्य प्रभाव से आया किन्तु इससे पहले संस्कृत में 'रीति' शब्द का प्रयोग होता रहा है। प्रसिद्ध विद्वान पं. विद्यानिवास मिश्र शैली के लिए हिन्दी में रीति शब्द का ही प्रयोग करते हैं।

'शैली' अर्थ एवं परिभाषा –

भारतीय आचार्य 'शैली' शब्द को संस्कृत के शील धातु से 'अण्' प्रत्यय के योग से निष्पन मानते हैं। शब्द शील के अनेक अर्थ शब्द कोष में बताये जैसे स्वभाव, लक्षण,

झुकाव, चरित्र आदि। उपर्युक्त सभी अर्थ व्यक्ति की विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हैं, जैसे स्वभाव मन की विशेष प्रकृति का द्योतक है। लक्षण स्वरूप की विशेषता का झुकाव रूचि की विशेषता और आदत कर्म की विशेषता का इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'शील' शब्द का क्षेत्र व्यापक है। उसका सम्बन्ध मनुष्य की मनोवृत्ति, रूचि, आदत, व्यवहार, चरित्र आदि विभिन्न पक्षों से है। 'शील' से उत्पन्न, 'शैली' शब्द का व्यक्ति की वैयक्ति विशेषता उसके क्रिया–कलापों एवं रचना कौशल से अधिक सम्बन्ध है। 'शैली' के शब्द कोशगत के अनुसार अर्थ हैं – ढंग, प्रणाली, रीति, प्रथा और कथन, विधि का विशिष्ट प्रकार आदि। इस प्रकार 'शैली' शब्द के मूल में शील शब्द है, जिसका प्रयोग वैदिक काल से ही होता आ रहा है। प्रसिद्ध पाश्चात्य आचार्य प्लेटो की मान्यता है कि 'विचार ही शैली है' जबकि अरस्तू कहते हैं 'वाणी में वैशिष्ट्य (चमत्कार) का समावेश शैली है। इसी तरह प्रसिद्ध विद्वान डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है कि मेरे विचार से किसी भी कार्य की करने की विशेष ढंग शैली है और यदि केवल भाषिक अभिव्यक्ति तक सीमित रखें तो कह सकते है। भाषिक अभिव्यक्ति के विशेष ढंग को शैली कहते हैं। हमने प्रस्तुत अध्ययन में शैली प्रयोग एवं शैलीगत सौन्दर्य के विविध पक्षों पर ध्यान प्रयुक्त करते हुए ये स्पष्ट किया है कि इनके कथा–साहित्य में विविध प्रकार की शैलियाँ यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं, जिनका विवेचन हमने इस अध्याय के अन्तर्गत विस्तार से किया है। यहाँ संक्षेप में कह सकते हैं कि काव्यात्मक शैली इनके कथा–साहित्य में अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुई है। ऐसे स्थानों पर लेखक ने भावुक होकर काव्यमयी शब्दावली प्रयुक्त की है तो कहीं–कहीं पद्य खण्डों का प्रयोग किया है। यहाँ एक दो उदाहरण प्रस्तुत है, जैसे–

जिस जा पै हांडी चूल्हा तथा और तनूर है,
खालिक की कुदरतों का उसी का जहूर है। (आदमी वहशी हो जाएगा)

इस प्रकार की रचनाएँ गद्य–काव्य की श्रेणी में आती है। अधिकांश लेखकों व साहित्यकारों ने इस शैली का प्रयोग किया है व ओझा जी ने भी अनेक स्थानों पर इस शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने कहीं–कहीं तो चलते वर्णन प्रसंग में गीतों, प्रसिद्ध रचनाकारों के खण्ड़ों आदि का भी प्रयोग किया है, जिससे काव्यात्मक शैली में और भी वैशिष्ट्य आ गया है।

इसी प्रकार ओझा जी के उपन्यासों एवं कहानियों में लाक्षणिक प्रयोग अनेक स्थानों पर मिल जाते हैं। प्रायः भावात्मक चित्रण करते समय उन्होंने मुहावरों एवं लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग के द्वारा कथन में विशेष सौन्दर्य प्रस्तुत किया है यहां दो–चार उदाहरण देकर अपनी बात स्पष्ट कर सकते हैं– "बदचलन ने खानदान की नाक ही कटवाने की ठान ली।

भले घर की बहू न रही गाँव की मास्टरनी बन बैठी।" "मेरा तो ब्याह हो चुका मेरा बापू बुगला भगत है। किसी बूढ़े केंकड़े की तलाश में।" "मोती अनसुनी करते बोला "अब तू आँख मूंद पड़ रहा है। (कौन जात कबीरा, रावराजा)

उपर्युक्त विवेचन का सार यह है कि ओझा जी के षष्ठ अध्याय में भाषा और शैली की दृष्टि से विविध प्रयोग हुए हैं जो उनके भाषागत पाण्डित्य और अभिव्यक्तिगत कोशलता के परिचायक है। उनका कथा–साहित्य अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से पर्याप्त सफल है। वे अपनी बात पाठकों तक पहुंचाने में स्वाभाविक रूप से ध्वस्त है। उनकी भाषा सुबोध, सरल और सम्प्रेषणीयता में सक्षम है, तो शैली रोचक, आकर्षक और पाठकों को बांधने वाली है। इस प्रकार हमने इस उपसंहार में अध्याय के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के छः अध्यायों का सार प्रस्तुत किया है।

शोध सारांश

शोध सारांश

रामकुमार ओझा का कथा साहित्य : कथ्य एवं शिल्प

प्रस्तावना

राजस्थान के साहित्यिक इतिहास में रामकुमार ओझा एक ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने सृजन की शास्त्रीय शर्तों और परम्पराओं को तोड़ते हुए अपनी अलग राह बनाई और कथा साहित्य में ऐसे चरित्रों की रचना की जो आम होते हुए भी खास हो जाते हैं। रचना का वातावरण और लेखक की दृष्टि मिलकर ऐसे जीवट पात्रों की रचना करते हैं, जो जीवन समर में संघर्ष करते हुए कभी हार नहीं मानते। ओझा जी की पहली रचना सन् 1937 में 'दीपक' में छपी थी। उस समय बाबा नागार्जुन बैजनाथ मिसिर के नाम से 'दीपक' का सम्पादन किया करते थे। लेखक के नाते बालक ओझा का मिसिर जी से व्यक्तिगत सम्पर्क हुआ। बाबा के विचारों की उन पर जो अमिट छाप पड़ी वह आजीवन ज्यों की त्यों बनी रही। वैचारिक तिक्तता, शोषण, वहशीपन तथा साम्प्रदायिकता के विरुद्ध तीखे तेवर। रामकुमार ओझा छठे दशक में एक बड़े कहानीकार के रूप में सामने आये।

महान रचनाकार रामकुमार ओझा का जन्म 08 जुलाई, 1926 को दार्जिलिंग में हुआ। ग्यारह बरस की उम्र से शुरू हुआ ओझा जी के लेखन और प्रकाशन का सिलसिला 8 अक्टूबर, 2001 को उनके महाप्रयाण के साथ ही थमा। ओझा राजस्थान के उन गिने–चुने लेखकों में से हैं, जिनकी रचनाएँ 'कल्पना' और 'विशाल भारत' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। ये हिन्दी और राजस्थानी में समान रूप से लिखते थे और उनका ग्रामीण परिवेश और जनजीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध था। दोनों भाषाओं में रामकुमार ओझा के उपन्यास संग्रह, कहानी संग्रह और बाल उपन्यास प्रकाशित हुए। अभी भी उनकी कई रचनाएँ अप्रकाशित हैं।

ओझा की सबसे बड़ी विशिष्टता चरित्र–चित्रण है। उनका विश्वास था कि जो कहानी एक–दो कालजयी, अविस्मरणीय चरित्र नहीं छोड़ जाती वह कहानी, कहानी ही नहीं, ओझा की कहानियों के पात्र जैसे मुकामों, सिराजी, अच्चन काका आदि कालजयी कहे जा सकते हैं।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में लेखक बहुत हैं, लेकिन ऐसे लेखकों का अभाव है, जिन्हें परिवेशगत सिद्धता प्राप्त हुई हो, जिनकी दृष्टि वैश्विक हो और यह लेखक के रूप में अपने व्यक्तित्व से अलग होने की क्षमता प्राप्त हुई हो। इन तीन तत्वों का एक साथ समावेश असाधारण प्रतिभा की अपेक्षा रखता है। ऐसे ही साहित्य के क्षेत्र में एक लेखक रामकुमार ओझा है।

रामकुमार ओझा मृदुभाषी स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनमें विनम्रता की पराकाष्ठा दिखाई देती हैं, क्योंकि वे एक महान प्रतिभाशाली कवि होते हुए भी सदैव अन्य कवियों के प्रति भी आदर भाव रखते हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा और कवित्व शक्ति को अपनी माँ के सान्निध्य में रहकर नैसर्गिक रूप से प्राप्त किया है। बचपन में माँ के द्वारा गुनगुनाते हुए कहानी स्वरूप सुनने पर ही उन्हें कथा–साहित्य लिखने की प्रेरणा मिली। उनकी माताजी द्वारा कही जाने वाली कथा अमिट छाप छोड़ती थी। वे कथा को अपने भाव अभिभूत करते थे। जीवन के प्रति मोह व विरक्ति के भाव वहीं से उत्पन्न हुए। वे बड़े ही कर्त्तव्यनिष्ठ एवं आडम्बरहीन व्यक्ति थे। उनमें सहजता, सहृदयता, सारग्रहिता, अनुभव, गम्भीरता, संयम आदि उनके स्वभाव के सहज गुण हमें दिखाई देते हैं। बचपन से ही 'ओझा– जी ने गरीबी को बहुत करीब से देखा, महसूस किया और भोगा है। इस समय के परिवेश की उत्पन्न विषमताओं ने ओझा जी के मन पर अमिट छाप छोड़ी जो उनके जीवन में ज्यों की त्यों आजीवन बनी रही थी। व्यक्तित्व की कई तरह से परिभाषा दी गई है। अशोक मानक हिन्दी शब्दकोष में इसे निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है– "व्यक्ति गुण या भाव, वे विशेष गुण जिनके द्वारा किसी व्यक्ति की स्पष्ट और स्वतंत्र सत्ता सूचित होती है।"[1] ओझा जी सहज और सरल विश्वास वाले व्यक्ति थे। वे अपने विचारों एवं सिद्धांतों पर अटल रहते थे। यह गुण उन्हें अपने पिता से प्राप्त हुआ। आज साहित्यिक जगत में प्रसिद्धि पाने की होड़ मची हुई हैं। इस होड़ संस्कृति में सत्य–असत्य को जाने समझे बिना प्रभावी, ख्याति प्राप्त साहित्यकार का भी गलत बातों के आगे सिर झुकाना सहज है। व्यक्तित्व को सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है। अंतरंग व्यक्तित्व और बहिरंग व्यक्तित्व।

ओझा जी के उपन्यासो एवं कहानियों में ग्रामीण और शहरी परिवेश अपनी–अपनी विशेषताओं को समेटे हुए हैं। उनके शब्दों में "कहानीकार कहानी में सत्य को काल्पनिक कथानक के माध्यम से प्रेषित करता है, पर उसके अन्तराल में वास्तविक जीवित पात्र वास करते हैं। हर कहानी में एक और कहानी होती है। हर पात्र के अन्दर दूसरा पात्र वास करता है।" इसी तथ्य को ओझा जी की कहानी 'सत्यमेव जयते' में देखा जा सकता है। गाँधी और साक्षी बाबा दोनों ऐसे चरित्र हैं, जिन्हें ओझा जी ने तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। गाँधी चाहे शहरी परिवेश के हों किन्तु उन्होंने गाँवों की जनता को इस कद्र प्रभावित किया कि गाँधी के विषय में लोग शहरी और ग्रामीण का अन्तर करना भूल गए। उनकी दृष्टि में गाँव हो या शहर जनता जनार्दन ही होती है। आजादी की लड़ाई में गाँव और शहर का भेद मिट गया वहाँ तो केवल आजादी की लड़ाई थी। एक ऐसी लड़ाई, जिसमें गाँव और शहर का भेद ना किसी ने जाना और ना ही जानने की इच्छा की। "जन

जनार्दन होता है और जब जन उद्वेलित होता है तो साक्षात रूद्र बनकर ताण्डव करने लगता है। आजादी की आखिरी लड़ाई का ताण्डव शुरू हो चुका था।

कहानीकार अपने गाँव के परिवेश को कभी नहीं भुला पाता। उन्होंने स्पष्ट कहा हैं "मेरा गाँव, बस इतने भर को, कि मैंने कभी वहाँ जन्म लिया था। होश सम्भालते ही उससे कट गया था और फिर उस मरूस्थलीय गाँव से मेरा सम्बन्ध उतना ही रह गया था, जितना कि कटी नाल से किसी शिशु का रह जाता है। किन्तु जब सुना कि वह गाँव भीषण सूखे की चपेट में है तो मेरे मन में एक मरियल सी ममता उस उजाड़ खेड़े के प्रति जागी" इससे ओझा जी ने यह स्पष्ट किया है कि जन्म भूमि से किसी का भी रिश्ता कभी भी नहीं छूटता। चाहे व्यक्ति कहीं भी जाकर रहे अपने ग्रामीण परिवेश को, अपने गाँव की संस्कृति को कभी भी नहीं भूला पाता। यही कारण है कि जब अपनी जन्म भूमि पर कोई संकट आता है तो अपनी अन्तरात्मा में एक कचोट सी पैदा होती है और व्यक्ति के कदम अचानक ही अपने गाँव की ओर बढ़ जाते हैं।

'सूखे की एक रपट' कहानी में अकाल के समय जहाँ कुत्तों का चित्रण लेखक ने किया है वहीं प्रतीक रूप में इंसानियत को नोचने वाले व्यक्तियों पर भी करारा व्यंग्य किया है। लेखक ने एक जगह जो शब्द चित्र प्रस्तुत किया है वह दर्शनीय है। "सूखे में कुत्ते पुष्ट हो जाते हैं। कुत्ते कई किस्म के होते हैं। कुत्ते जो होते हैं वे तो होते ही हैं पर आदमियों में कुत्ते वे होते हैं जो सूखा–पीड़ितों के लिए जुटाई गई राहत सामग्री को बीच में ही खा जाते हैं। वहाँ एक कुत्ता, जो असल कुत्ता था, एक शिषु को अपने जबड़े में दबाये पूरे वेग से दौड़े जा रहा था। कई एक पुष्ट कुत्ते उसका पीछा किए जा रहे थे। शिशु भी हो सकता था, नवजात मेमना भी। हम फोटो उतारने में तल्लीन थे। नस्ल की पहचान करना हमारा काम भी न था।"

रामकुमार ओझा का कथा साहित्य कथ्यः एवं शिल्प विषय पर प्रस्तुत शोध– प्रबन्ध को हमने निम्नलिखित 6 अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम–रामकुमार ओझा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, द्वितीय–रामकुमार ओझा का कथा–साहित्य एवं युग प्रभाव, तृतीय–रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्य विश्लेषण, चतुर्थ–रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य में कथ्य विश्लेषण, पंचम्–रामकुमार ओझा के कथा साहित्य में नारी, षष्ठ– शैली एवं भाषागत सौन्दर्य में विभाजित कर अध्ययन किया है। शोध करते हुए हमें जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं, उन्हें हम संक्षेप में इस प्रकार लिख सकते हैं–

प्रथम अध्याय– रामकुमार ओझा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अन्तर्गत ओझा जी के जीवन एवं रचना संसार का अध्ययन करते हुए हमने यह पाया है कि कोई भी व्यक्ति

जीवन और लेखन में अपने आरम्भिक संस्कारों से पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सकता। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में समय–समय पर ऐसे युग द्रष्टा साहित्यकार जन्म लेते रहे हैं कि जिन्होंने महान साहित्य–सर्जना द्वारा सम्पूर्ण समाज और मानवता का हित करना ही अपने जीवन का उद्देश्य माना है। रामकुमार ओझा ऐसे ही विरले लेखकों में से एक हैं। इनका जन्म 8 जुलाई, 1926 ई. को दार्जिलिंग नामक शहर में हुआ। चार भाई और तीन बहनों के पष्चात् इनका जन्म हुआ। इनके पिता का नाम श्री जगन्नाथ जी ओझा था। पिताजी सभी कलाओं में निपुण व पारंगत थे। वे श्रेष्ठ साहित्यकार व अच्छे सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थे। इनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। साहित्य के क्षेत्र से जुड़े रहने के कारण घर में साहित्यिक मण्डली का आना–जाना रहता था, जिससे इनकी साहित्यिक गतिविधियाँ निरन्तर चलती रहती थीं तथा घर में महान समाज–सुधारकों का भी उठना–बैठना था। ओझा जी की माँ का नाम श्रीमती धापां देवी था। ये एक अच्छे परिवार से थी तथा इनके परिवार में भी पढ़े–लिखे सदस्य थे। इनमें अनायास ही कुछ गुण पैतृक थे, जैसे– नकलचीपन, हू–ब–हू नकल करना, मजाकिया अंदाज में बातें करना। व्यक्तित्व के निर्माण में सबसे अधिक सहायतार्थ परिवार का वातावरण होता है, जो व्यक्तित्व में निखार लाता है। रामकुमार ओझा का परिवार एक मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार था। परिवार के लगभग सभी सदस्यों को उपन्यास व कहानियाँ पढ़ने का जबरदस्त शौक था। ये सभी गुण लगभग ओझा जी ने भी आत्मसात् किए। उनके व्यक्तित्व विकास में परिवार तथा आस–पास के परिवेश का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। परन्तु अपने पिताजी का देहान्त होने के पश्चात् माँ और बहनों की जिम्मेदारियाँ उन पर आ गई। परिवार के किसी रिश्तेदार से मदद लेना जैसी बातें उन्हें कदापि पसन्द नहीं थी। आर्थिक परिस्थिति भी कुछ ठीक–ठाक नहीं थी। रोजी–रोटी के खातिर उन्होंने छात्र जीवन से ही लेखन का आरम्भ किया। हाई स्कूल की वाद–विवाद प्रतियोगिता में उन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने पर कई जगह सम्मानित किया गया। एक बात आश्चर्य की ये थी कि लेखक बनने की चाह से अन्त तक निरन्तर लिखते ही रहे।

इनकी प्रारम्भिक एवं इंटरमीडिएट तक की शिक्षा दार्जिलिंग में हुई। कॉलेज के दिनों में पैसे न होने के कारण संघर्षों के दौर से गुजरना पड़ा। रहने के लिए अच्छे छात्रावास में रहे, पर घर से दूर रहे। हालात के प्रति समझौता करने के सिवाय और कोई चारा भी नहीं था। रामकुमार ओझा परिवार में सबसे छोटे लाडले तथा होनहार विद्यार्थी के रूप में थे, इसलिए पिताजी अपेक्षा रखते थे। दार्जिलिंग में रहकर इन्होंने जीवन के बहुत से अनुभवों को जीया, माता जी के देहान्त होने के कारण पढ़ाई को अधूरी छोड़ना पड़ा और ये वहाँ से आ गये। बाद में लाहौर विश्वविद्यालय से 'प्रभाकर रत्न' की उपाधि प्राप्त की।

वैसे तो शिक्षा और व्यक्तित्व का संस्करण जीवन के विस्तृत अनुभवों में ही मिला। अध्यापन, ट्यूशन करके अपने अध्ययन का सफर पूर्णतया पूरा किया। वास्तव में यह उनके जीवन का द्वंद्वग्रस्त समयकाल था, जो उनके संवेदनशील व्यक्तित्व को चुनौती दे रहा था। 28 नवम्बर, 1937 को श्रीमती मैनादेवी के साथ वैवाहिक मंगल कार्य वैदिक–पद्धति से सम्पन्न हुआ बड़े बुजुर्गों के होते हुए उन्हें अपने आप विवाह करने का फैसला लेने की इजाजत नहीं थी। उनका वैवाहिक जीवन बहुत ही सुखमय तथा शांतिपूर्ण रहा। श्रीमती मैनादेवी ओझा अगर सही, सत्य प्रमाण के साथ कहें तो इनकी सहयोगिनी और सृजनपोशिका रही। यह एक साहित्यकार का सौभाग्य ही है कि गृहस्थी का सुखमयी जीवन का आनन्द प्राप्त करते हुए सृजन–धर्मिता का बहुआयामी स्वरूप प्रदान करते जाते रहना। अब उनके परिवार में उनकी पत्नी श्रीमती मैनादेवी, उनके पाँच पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं व एक पुत्र–श्रीमान् सुमन ओझा वर्तमान में भी हनुमानगढ़ जिला मुख्यालय से निकलने वाली 'भटनेर' पत्रिका के मालिक व सम्पादक है। रामकुमार ओझा का व्यक्तित्व साधारण होने के कारण वे मौसम के अनुकूल वेश–भूषा धारण करते थे। कुर्त्ता और जीन्स पहनना उन्हें अत्यधिक पसन्द था। जो कहीं न कहीं उनके आधुनिकता और प्राचीनता के समन्वय का संकेत करता था। वे अपने जीवन में भी व्यावहारिक रूप से समन्वय के समर्थक रहे हैं। स्वादिष्ट खाना खाने के हमेषा से ही शौकिन थे। दिन भर काम करना तथा देर तक ज्ञान–विज्ञान की किताबें पढ़ना उनका शौक था। शोधार्थी की भाँति काम करते थे। डिक्टेशन की कला को उन्होंने अपना लिया था। अपनी माँ की तरह मजाकिया अंदाज में बातें करना उन्हें बेहद पसन्द था। उनके मित्रों और गुरुजनों का दायरा बहुत ही बड़ा था, उनका व्यवहार इतना सादगीपूर्ण था कि जिनसे भी मिलते थे घुलमिल जाते थे। इनके गुरुजनों ने उन्हें अपने पिता की तरह सदैव साहित्य के क्षेत्र में मार्गदर्शन किया, जो अपना स्थान स्थायी बनाने में प्रेरणादायी रहा।

ज्यों–ज्यों रामकुमार ओझा अपने जीवन में निरन्तर आगे बढ़ते गये, त्यों–त्यों उनकी साहित्यिक अभिरूचियाँ भी और ज्यादा विकसित होती गई। उन्हें रचनाकार एवं सम्पादक के रूप में आगे बढ़ने की प्रेरणा अच्छे शिक्षाविदों, मेलजोल व गुरुजनों के आशीर्वाद से ही प्राप्त हुई। इस प्रकार से ओझा जी चौंतीस वर्ष की आयु में सम्पादक बन गए। उन्हें साहित्यिक सृजन के श्री बाबा बैजनाथ मिसिर, हनुमान प्रसाद दीक्षित, रामस्वरूप 'किसान' साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता मार्गदर्शक व प्रेरणास्रोत के रूप में रहे हैं। समग्र व्यक्तित्व का निर्माण, पत्रकारिता और विभिन्न समाचार, पत्र–पत्रिकाओं के लिए उनके

लेखन से होता है, जहाँ उन्होंने हिन्दी की उपयोगिता को शुरूआती दौर में स्थापित कर दिया था।

हिन्दी साहित्य की नई ऊँचाई तथा कुछ नए आयाम देकर रामकुमार ओझा 8 अक्टूबर, सन् 2001 ई. को हमसे विदा हो गए। इससे हिन्दी साहित्य के पाठकों को बड़ा सदमा पहुँचा। आज ओझा जी का अस्तित्व हिन्दी के साधारण पाठकों के लिए भले ही एक सफल और प्रतिष्ठित सम्पादक परन्तु हिन्दी–साहित्य के विद्यार्थियों पर वे एक श्रेष्ठ कथाकार के रूप में अमिट छाप छोड़ते हैं।

द्वितीय अध्याय– 'रामकुमार ओझा का कथा–साहित्य एवं युग प्रभाव' के अन्तर्गत हमने तत्युगीन साहित्यिक परिवेश और ओझा जी के साहित्यिक अवदान का अध्ययन किया है। अध्ययन से हमने यह निष्कर्ष प्राप्त किया है रामकुमार ओझा के कथा साहित्य का तत्युगीन वातावरण एवं सामाजिक सरोकार तथा लेखन परम्परा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। ओझा जी का कथा–साहित्य नवीन प्रयोग का साहित्य है, जिसमें बहुपठन–पाठन, देषी–विदेशी, प्राचीन–अर्वाचीन साहित्य का व्यापक अनुभव के साथ चित्रण हुआ। युगानुरूप यथार्थवादी लेखन उनकी विशिष्टता का परिचायक है।

साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन काल से, आधुनिक युग तक जिन विधाओं का उद्भव एवं विकास हुआ, उनमें कहानी का प्रमुख स्थान है। यह सभी विधाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है, 'कहानी' शब्द के लिए प्राचीन काल में 'आख्यान्', 'आख्यायिका', 'कथा', 'गल्प' आदि शब्द प्रचलित थे। मनुष्य अपनी प्रारम्भिक काल से ही किसी–न–किसी रूप में 'कहानी' बुनता और सुनता आया है। कहानी के प्रारम्भ के विषय में राजेन्द्र यादव लिखते हैं– ''मैं कहानी को आदि विधा मानता हूँ, वह गद्य में लिखी गई हो या पद्य में या इससे भी पहले संकेतों में पद्य या गीतों के माध्यम से स्वयं उनका रस ग्रहण करते हुए भी इन सबके पीछे नेपथ्य में चलने वाली कहानी ही प्रमुख रही है।

कहानीकार अपने गाँव के परिवेश को कभी नहीं भूला पाता। उन्होंने स्पष्ट कहा है "मेरा गाँव, बस इतने भर को, कि मैंने कभी वहाँ जन्म लिया था। होश सम्भालते ही उससे कट गया था और फिर उस मरूस्थलीय गाँव से मेरा सम्बन्ध उतना ही रह गया था, जितना कि कटी नाल से किसी शिशु का रह जाता है। किन्तु जब सुना कि वह गाँव भीषण सूखे की चपेट में है तो मेरे मन में एक मरियल सी ममता उस उजाड़ खेड़े के प्रति जागी"। इससे ओझा जी ने यह स्पष्ट किया है कि जन्म भूमि से किसी का भी रिश्ता कभी भी नहीं छूटता। चाहे व्यक्ति कहीं भी जाकर रहे अपने ग्रामीण परिवेश को, अपने गाँव की संस्कृति को कभी भी नहीं भूला पाता। यही कारण है कि जब अपनी जन्म भूमि पर कोई

संकट आता है तो अपनी अंतरात्मा में एक कचोट सी पैदा होती है और व्यक्ति के कदम अचानक ही अपने गाँव की ओर बढ़ जाते हैं।

रामकुमार ओझा समकालीन यथार्थवादी कहानीकार हैं अपने समय में एक अच्छे कथाकार के रूप में उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त है। ग्रामीण परिवेश का वर्णन यथार्थ एवं आकर्षक शैली में मिलता है। हिन्दी, कथा, साहित्य, कहानी एवं उपन्यास में इनका उल्लेखनीय योगदान है। यद्यपि इनकी रचनाएँ बहुत अधिक नहीं, परन्तु इनकी रचनायें गागर में सागर की तरह पाठक को अपने समय की अच्छाइयों–बुराइयों से अवगत करवा देती है। उन्होंने समयानुसार आँचलिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि विविध विषयों से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ लिखीं हैं, जो हिन्दी–साहित्य में अपनी अलग से पहचान रखती है। वे ग्यारह वर्ष की अवस्था से लेकर जीवन के अन्तिम क्षणों तक निरन्तर लिखते रहे। 'कौन जात कबीरा', 'आदमी वहशी हो जाएगा', 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, समसामयिक जीवन के साथ–साथ ग्रामीण परिवेश भी दिखाई देता है। वास्तव में ये सभी कहानी संग्रह एक अनूठा प्रयोग लगता है। सभी घटनाओं के साथ–साथ तत्युगीन मानव के विभिन्न सरोकारों का चित्रण किया है, जो आज भी मानवीय जीवन के लिए सर्वथा प्रासंगिक है। ओझा जी की लगभग कहानियों में साहित्यिक जिजीविशा का प्रभाव दिखाई देता है।

रामकुमार ओझा की कहानियों के तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 'कौन जात कबीरा' संग्रह व्यापक सामाजिक जीवन का जीवंत दस्तावेज है, जिसकी रचनाधर्मिता हमें बाँधती है। इस संकलन में संकलित कहानियाँ निम्नलिखित प्रकार से है–'सत्यमेव जयते', 'अच्चन काका', 'सूखे की एक रपट', 'सरदी और साँप', 'खून लामजहब है', 'संन्यासी', 'कौन जात कबीरा', 'कोट', 'बनो घोड़ा', 'चौपाटी का चेतक और हुसैन का घोड़ा', 'उद्घाटन–भाषण', 'भारमली नहीं भागी' आदि हैं। इनमें से 'अच्चन काका' कहानी गरीबी, सामाजिक मान–मर्यादा का संदेश देती है, तो 'भारमली नहीं भागी' कहानी में भारमली अपने पुरखों–पूर्वजों की इज्जत को बचाये रखती है व लोक मान–मर्यादा का उल्लंघन भी नहीं करती है। इसी प्रकार 'सरदी और साँप' कहानी भी प्रेम–प्रसंग के रूप में देखी जा सकती है। इसी तरह ओझा जी ने 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' कहानी संग्रह में भी संकलित कहानियों को निम्नलिखित प्रकार से बताया है– 'सिराजी', 'लाट बाबा', 'हिश्श! भूख से भी आदमी मरता है?', 'बूढ़े बरगद और लंगड़ की कहानी', 'सयाना', 'जिंदाबाद अमर रहे', 'एक दिन गुस्ताखियों का', 'दरख्त पर टंगी रोटी', 'बंधवा' आदि हैं। इनमें से 'सयाना' कहानी में लोगों के पाखण्डवाद को देखा गया है, वहीं 'बंधवा' में नारी

का बड़े बाबुओं व साहबों के द्वारा प्रताड़ित किया जाता है और उन्हें बंधवा मजदूरों के रूप में ही अन्त तक कहानी में प्रताड़ित करते हैं। इसी प्रकार 'आदमी वहशी हो जाएगा' संग्रह में संकलित कहानियाँ निम्नलिखित प्रकार से हैं– 'मुकामों', 'आदमी वहशी हो जाएगा', 'त्रिकाल', 'सड़क', 'सफीनों', 'रब्बों', 'हाड़फरोश', 'चीता', 'खून', 'फट्टा', 'सर्प नियति', 'वो', 'बहु–स्तरीय योजना', 'बाबा बोलने' लगे आदि कहानियाँ है।

'मुकामों' कहानी में मुकामों जिसका पति परदेस में गया हुआ है। घर का गुजर–बसर या खाने–कमाने के लिए तो उसका देवर बुरी नियत से उसके पीछे पड़ा रहता है, जिससे मुकामों नोहरे (बाड़े) में पशु बाँधने जाती है, तो भी हाथ में गँडासा रखती है और पूरी हिम्मत व संघर्ष करते हुए अपने चरित्र की मान–मर्यादा व इज्जत को बचाये रखती है। इसी प्राकर 'सड़क' कहानी में कविता नामक स्त्री जो अपने पति के द्वारा लाई गई नौकरानी पर इसलिए शक करती है कि वह नौकरानी की तरह न तो रहती है और न व्यवहार करती है। इसी तरह 'रब्बो' कहानी में रब्बो नामक स्त्री एक कठिन परिश्रम करने वाली व प्रेमी हृदय वाली स्त्री के रूप में चित्रित हुई है। वह अपने मौहल्ले के एक लड़के से प्रेम करती है और लड़का भी रब्बो के प्रति पूरी तरह समर्पित दिखाई देता है। इस प्रकार उपर्युक्त तीनों कहानी संग्रहों में जो कहानियाँ संकलित है। वे विभिन्न सामाजिक सरोकारों से सम्बन्धित है। प्रायः कहानियों में उन्होंने कथानक के केन्द्र में किसी–न–किसी रूप में नारी विमर्ष को स्थान दिया है। मुकामों, रब्बो, सफिनों आदि भले ही तत्कालिन परिवेश में जीवन–यापन कर रही है, परन्तु वे एक आधुनिक तर्कशील, निर्भिक और प्रभावशाली स्त्री पात्र के रूप में चित्रित हुई है। वे विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में अपनी मान–मर्यादा की रक्षा करती हुई स्वाभिमानपूर्वक अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करती है। उदाहरण के लिए 'बंधवा' कहानी की रामप्यारी नामक युवती जो सीमेन्ट, कंकरी, बजरी का काम (मजदूरी) करने वाली नारियों के साथ कार्य करती है। पर वह कंकरी, बजरी, इन सब चीजों की सप्लाई नहीं करती है फिर भी सब सप्लायरों से बड़ी सप्लायर है, क्योंकि वह साहब व बाबुओं की रातों को रंगीन करने में और खारी बातों को मीठी बातों में बदलने में माहिर है। इसी वजह से अपनी मान बड़ाई व साहब लोगों से वाहवाही लूट रही है। इसी तरह से इसी कहानी की रतनी नामक नारी जो अपने पति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष करते हुए कड़ी मेहनत करती है। जब वो मजदूरी करते हुए गेती चलाती है, तो एक बार में एक पत्थर उखाड़ देती है। उसको काम करते देखकर साहब खुश हो जाते हैं और रतनी को भी सौगात देना चाहते हैं। व उसका पति तेजसिंह भी साहब के यहाँ नौकरी करता है और उसे भी इस बात की खुशी होती है कि मेरी पत्नी भी साहब की

नजर में आ गई हे। इस प्रकार की बात का पता रतनी को लगता है तो वो अपने पति की जवांमर्दी से भी डरने लग जाती है और उसका पति ये चाहता है कि रतनी भी साहब की छँटनी में आ जाए। बस अब तो मैं भी पूलाव की टाटी की जगह टीन की टाटी में रहने लगूँगा और खूब ऐो–आराम करूंगा। इस प्रकार से पति तेजसिंह रतनी के लिए अब तेजू बन गया है और रतनी साहब की छंटाई में आ जाती है व तेज सिंह अब अपनी मूंछों पर ताव देते हुए बहुत खुश नजर आ रहा है। इस तरह 'रब्बो' कहानी की रब्बो नामक नारी पात्र जो एक निडर–स्वभाव की क्रोधी नारी है। जब अपने घर मौहल्ले से निकलकर जाती है तो उस समय कुछ मौहल्ले के मनचले लड़कों के द्वारा उसे परेशान किया जाता है तो वह साहस व निडरता का परिचय देती हुई लड़कों से भीड़ जाती है और उन्हें परास्त कर कहती है, कि अपनी पेशानी का जोर व दमखम और वह अपना दुपट्टा लड़कों के गले पर फेंकर डालते हुए अपनी ओर खींचकर टखनी मर मारते हुए ठुड्डी टिका देती है और दूसरे लड़कों को कहती है, जरा रूको तो साहबजादों तुम्हारी पेशानी का और दमखम देखती हूँ कितना है और रब्बो लड़कों को इतना मारती है कि उनके कपड़े फट जाते हैं। इस प्रकार वह साहस व निडरता का परिचय देते हुए अपने स्वाभिमान की रक्षा करती है। इस प्रकार उनकी कहानियों में यत्र–तत्र प्रसंगानुकूल सांस्कृतिक सन्दर्भ भी देखने को मिलते हैं इससे स्पष्ट है कि ओझा जी के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति विशेष आस्था रही है। उनकी कहानियों के विषय मुख्य रूप से मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग से जुड़े हुए हैं, जिनमें इन्होंने मध्यवर्गीय समाज के क्रियाकलापों, रीति–रिवाजों और परम्पराओं का वर्णन यथा स्थान अनेक प्रसंगों में किया है, जिनमें भारतीयता की छाप स्पष्ट नजर आती है। यही नहीं पर्व–त्यौहार एवं लोकानुष्ठान भी हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुरूप सम्पन्न होते दृष्टिगोचर हुए हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा अनुराग प्रमुख रूप से इन कहानियों में– 'अकेली रात', 'अच्चन काका', 'शेष सब सुविधा', 'दरख्त पर टंगी रोटी', में देखा जा सकता है। यही नहीं अभिजात्य वर्ग की संस्कृति खान–पान, वेशभूषा, शृंगार–प्रसाधन, रीति–रिवाज आदि भी इनकी कहानियों में प्रतिबिम्बित हुए हैं।

ओझा जी ने दो उपन्यास 'रावराजा, 'अश्वत्थामा', एवं 'निशीथ' (काव्य संग्रह) लिखें हैं। इन उपन्यासों में उन्होंने तत्कालीन समाज के विविध पक्षों का सच्चा चित्र अंकित किया है। ये उपन्यास अपने समय के दस्तावेज हैं। रावराजा उपन्यास में सामंती जीवन के विविध पक्षों को समग्रता के साथ अंकित किया है, इसमें राजा, रजवाड़ों, सामन्तों और ठाकुरों की ऐय्याशी, भोग, ऐश्वर्य, कुप्रवृत्तियों और शोषण तथा ज्यादतियों का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने बताया कि अंगेजों के शासन काल के समय ये राजा, रजवाड़े,

सामंत, निरंकुश होकर उन्मुक्त भोग और विलास में डूबे रहते थे। उपन्यास के रावराजा, रूपराम, सेठ आदि इस प्रवृत्ति के पात्र हैं। उपन्यास के लगभग सभी नारी पात्र अशिक्षित हैं और नारीगत उत्पीड़न और शोषण के शिकार होते हैं तथा विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुप्रथाओं, रूढ़ियों के बोझ तले दबे हैं। गौरी, राधा, लक्ष्मी, सेठानी आदि नारी पात्र अपने–अपने तरीके से विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों और शोषण के प्रति संघर्ष करते हैं। फिर भी ये नारी पात्र स्वतः, स्फूर्त और साहसी नारी पात्र के रूप में आये हैं। सामंत और उनसे जुड़े हुए लोग रूपराम आदि नशे में धुत्त होकर रंगरेलिया करते रहते हैं। इस प्रकार यह उपन्यास सामंतों और रजवाड़ों की समस्त अच्छाइयों, बुराइयों को समग्रता से समेटे हुए हैं। इस प्रकार 'अश्वत्थामा' उपन्यास महाभारत कथा के चर्चित पात्र अश्वत्थामा को केन्द्र में रखकर लिखा गया है। अश्वत्थामा जब जन्म लेता है तो घोड़े के समान उच्च–स्तर में निनाद करता हैं, जिससे दिशाएं गुंजायमान मान होने लगती है। उसी समय एक अज्ञात वाणी होती है कि इस सहजात बालक का स्वर नाना दिशाओं में पहुँचा है। अतः ये बालक अश्वत्थामा के नाम से विख्यात होगा। उपन्यास के अधिकांश पुरुष और स्त्री पात्र शिक्षित हैं। इसमें अष्वत्थामा के जीवन का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। अश्वत्थामा की भूमिका महाभारत के युद्ध में सर्वविदित है। उपन्यास में अश्वत्थामा युद्ध करना नहीं चाहता परन्तु भीम पाण्डव आदि उसे युद्ध के लिए ललकारते हैं। उसी समय युद्ध में वह पराजित नहीं होता है। अन्त में वृद्ध पण्डितों के द्वारा ये कहा गया है कि बालक अश्वत्थामा सदैव अमर रहेगा।

ओझा जी ने बताया है कि 'अश्वत्थामा' ही क्यों लिखा क्योंकि आज के आधुनिक युग में भी ये उपन्यास पाठकों के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पढ़ने योग्य धार्मिक उपन्यास है। महाभारत जैसे दीर्घाकार ग्रन्थ में से एक उपन्यास के लिए महत्त्वपूर्ण स्थलों घटनाओं को उठाना और एक महत्त नामक का चुनाव करना एक आसान कार्य नहीं है। महाभारत का एक नहीं वस्तुतः अनेक पात्र समाहित है जो एक नायक के लिए निर्धारित सम्पूर्ण विशेषताओं का समुच्चय है और उनमें से अगर एक को ही हटा दिया जाये तो कथा–प्रवाह रूक जायेगा। 'अश्वत्थामा' महाभारत पर लिखित उपन्यास है जो कि आज की आधुनिक युगबोध का भी रोचक व प्रभावात्मक उपन्यास माना जाता है। व इस उपन्यास की पठनीय रोचकता उसके पात्रों पर निर्भर करती है। उनका चारित्रिक उत्थान देवोपम है। किन्तु उनकी अनुभूतियां एवं संवेदनाएं मानवीय विशेषताएँ और दुर्बलता उनका चारित्रिक आधार है। उनका अहम्, आकांक्षाएं, आग्रह और मान्यताएँ उनके कदम धरती पर जमाये हैं तो निःस्पृश्यता और उदात्त भावनाएँ उन्हें आकाश के छोरों तक ले जाती है। ओझा जी का

मुख्य उद्देष्य ही 'अश्वत्थामा' जैसे उपन्यास का लेखन–कार्य करके आज की आधुनिक जन–जनार्दन को चेतना–अवस्था में लाना ही मुख्य ध्येय माना गया है।

तृतीय अध्याय – रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्यः विश्लेषण– इस अध्याय में हमने रामकुमार ओझा की प्रमुख कहानियों के कथ्य का विश्लेषण करते हुए समकालीन कहानी के परिप्रेक्ष्य में उनका साहित्यिक अवदान रेखांकित किया है। ओझा जी की कहानियों की पृष्ठभूमि प्रायः ग्रामीण परिवेश है। उन्होंने ग्रामीण परिवेश, रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, रीति–रिवाज, पर्व–त्यौहार आदि को समग्र अच्छाइयों और बुराइयों के साथ रेखांकित किया है। उनके तीन कहानी संग्रह– 'कौन जात कबीरा', 'आदमी वहशी हो जाएगा', और 'सिराजी और अन्य कहानियाँ' प्रकाशित हुए हैं। इनमें 41 कहानियाँ है। इन कहानियों में उन्होंने वर्तमान समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की समस्या का वर्णन परिवेश तथा परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है।

ओझा जी की समस्त साहित्यिक कहानियाँ जो कि मानसिक क्षोभ की परिणितियाँ है। वे घटनाओं तथा पात्रों के माध्यम से वर्तमान समाज की प्रतिरोधी प्रवृत्तियों का उद्घाटन तथा उनसे मुक्त होने का संदेश देती हैं। उन्होंने कहानियों के माध्यम से शहरी व ग्रामीण जीवन, परिवार, व्यक्ति, संघर्ष, स्वार्थी प्रवृत्ति तथा अनेक सामाजिक समस्याओं को उजागर किया है। इन समस्याओं के प्रति उनका एक गहरा सरोकार है। पुरानी और नई पीढ़ी के बीच शहरी व ग्रामीण परिवेशगत का नये–पुराने मूल्यों का संघर्ष अनिवार्य रूप से उभरकर सामने आया है। शहरी व ग्रामीण लोगों का ओझा जी ने सूक्ष्म प्रामाणिक चित्रण किया है। आधुनिक युग में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और उसके अंधानुकरण से हमारी सभी मान्यताएँ बदल गई हैं। भौतिकता, आकर्षण अधिकाधिक कामभावना आदि के कारण सम्बन्धों में बदलाव आया है।

ओझा जी की कहानियों में ग्रामीण और शहरी परिवेश अपनी–अपनी विशेषताओं को समेटे हुए हैं। उनके शब्दों में "कहानीकार कहानी में सत्य को काल्पनिक कथानक के माध्यम से प्रेषित करता है, पर उसके अन्तराल में वास्तविक जीवित पात्र वास करते हैं। हर कहानी में एक और कहानी होती है। हर पात्र के अन्दर दूसरा पात्र वास करता है।" 'आदमी वहशी हो जाएगा' कहानी संग्रह में संकलित 'मुकामों' कहानी में आँचलिकता स्पष्ट परिलक्षित होती है। इस कहानी में बताया गया है कि मुकामों का पति परदेस में घर का गुजर–बसर करने के लिए कमाने गया है और मुकामों घर में बिना पति के विभिन्न प्रकार की संघर्षशील जिन्दगी जीती हैं। फिर भी हार नहीं मानती है और घर की जो परिस्थिति है बरसात के मौसम में उसको गीत के माध्यम से गा रही है–

"छप्पर छेका छिद रह्या बड़क्या बांदा बाँस।

बेग पधारो सांवरा, म्हाने थांरी आश।।"

अर्थात् अपने प्रियतम या किसी अन्य को अपनी परिस्थिति का अहसास तक नहीं होने देती है। चाहे सूखा हो या बरसात हो वो हर एक मौसम का संघर्ष के साथ डटकर मुकाबला करते हुए अपने घर–परिवार व स्वयं की इज्जत को भी बचाकर मान–मर्यादा को बनाये रखती। इसके अतिरिक्त भारमली भागी नहीं, संन्यासी, अच्चन काका, कोट आदि कहानियाँ आँचलिकता के रंग बिखेरते हुए दिखाई देती है।

इसी प्रकार सामाजिक सन्दर्भ में रामकुमार ओझा परिवार के अन्तर्गत छोटी से छोटी समस्या को भी अपनी कहानी में उजागर करने में माहिर हैं। परिवार एक महान काव्य है तो उसकी कहानी एक छोटी कविता। खुद ओझा जी ने कबीर की कथनी के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया है कि हर कहानीकार का संवेदनशील और कवि होना भी जरूरी है, जिस कहानी में कुछ कविता नहीं होती वह कहानी नहीं सड़विद्या होती है। वे शास्त्रीयता और कहानी में कोई सम्बन्ध नहीं देखते। 'सूखे की एक रपट' कहानी में दाई एक ऐसा पात्र है जो उच्च और निम्न वर्ग के लोगों की आत्मीयता का पुल कही जा सकती है। वह चमारिन है लेकिन उच्च वर्ग के परिवारों में उसकी अच्छी पैठ है। वह अपनी स्थिति की अपेक्षा अपने कर्त्तव्य को अधिक महत्त्व देती है और यही कर्त्तव्य दूसरे परिवारों से उसके जुड़ाव को और मजबूत करती है। वहाँ ब्राह्मण और चमार का नहीं बल्कि दो परिवारों के बीच में एक सामन्जस्य स्थापित करने वाली पात्र के रूप में उसे देखा जा सकता है। इसी प्रकार अम्मा को भी एक सामाजिक महिला के रूप में बताया गया है, जिस प्रकार से समस्त भारतीय समाज में बुजुर्ग महिलाओं को जो महत्त्व दिया जाता है उससे एक घर, घर–सा नजर आता है और प्रेम का माहौल भी एकल व संयुक्त परिवारों में बना रहता है और दूसरी और दादी अम्मा को अपने बेटे सुधीर व शोभा बहू के साथ शहर में जाने से वहाँ का रहन–सहन, खान–पान, घुटन महसूस होती है और अपने आप को विचलन की स्थिति में महसूस करती है। इससे ज्ञात होता है ग्रामीण और शहरी परिवेश में जीवन जीना कितना महत्त्व रखता है।

इसी प्रकार उनकी कहानियों में यत्र–तत्र प्रसंगानुकूल सांस्कृतिक सन्दर्भ में देखने को मिले हैं। इससे स्पष्ट है कि ओझा जी के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति विशेष आस्था रही है। उनकी कहानियों के विषय मुख्य रूप से मध्यवर्ग एवं निम्न–मध्यवर्ग से जुड़े हुए हैं, जिनमें इन्होंने मध्यवर्गीय समाज के क्रियाकलापों, रीति–रिवाज और परम्पराओं का वर्णन यथा स्थान अनेक प्रसंगों में किया है, जिनमें भारतीय संस्कृति की छाप स्पष्ट नजर

आती है। यही नहीं पर्व–त्यौहार एवं लोकानुष्ठान भी हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुरूप सम्पन्न होते दृष्टिगोचर हुए हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा अनुराग प्रमुख रूप से 'सत्यमेव जयते', 'अच्चन काका', 'संन्यासी', 'बंधवा', 'सफीनों' कहानियों में देखा जा सकता है। यही नहीं अभिजात्य–वर्ग की संस्कृति खान–पान, वेशभूषा, श्रृंगार–प्रसाधन, रीति–रिवाज आदि भी इनकी कहानियों में प्रतिबिम्बित हुए हैं।

यहाँ एक ओर प्राचीन संस्कारों का वर्चस्व है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक जीवन मूल्यों के प्रति विवेकपूर्ण सद्भाव है। अभिजात्य वर्ग के सभी सांस्कृतिक, धार्मिक, मानवीय मूल्य ध्वस्त हो चुके हैं। कलात्मक अभिरूचि के विकास में भी गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो चुकी है। खान–पान के क्षेत्र में विविधता का चित्रण हुआ है। वस्त्राभूषणों की विविध किस्मों और उसके विविध आकार–प्रकारों का वर्णन आया है। जो पात्र तथा देशकाल वातावरण के अनुसार रीति–रिवाज क्षेत्र की पहचान होती है जो विभिन्न क्षेत्र तथा देश की रीतियों के कथानुरूप आई है। ग्राम व शहरी जीवन का बड़ा जीवन्त चित्रण किया है।

इसी प्रकार से ओझा जी ने आर्थिक सन्दर्भ–की समस्या को भी अपनी कहानियों में उजागर किया है। उन्हीं में से 'बंधवा' कहानी की रतनी नामक महिला जो कि बहुत ही संकटग्रस्त जीवन–यापन आर्थिक परिस्थिति में जी रही है। घर की आर्थिक परिस्थिति को लेकर रतनी बहुत मजबूर हो जाती है व अपने आपको साहब के यहाँ काम में धकेल लेती है। लेकिन साहब का चाल–चलन या अभद्र तरीके के व्यवहार व आचरण को देखकर रोते हुए अपनी घर–द्वार की देहरी माता से प्रार्थना करती है कि जिस प्रकार से बाबुल के घर से मुझे यहाँ लाया गया उसी प्रकार से वापस है देहरी माता इस बंधवागिरी से पीछा छुड़वा लाओ मेरा, मैं तेरे ऊपर नारियल बंधारती हूँ। इस प्रकार से महिलायें कहानी में अपनी आर्थिक संकट को झेलते हुए सब कुछ करने तक को तैयार हो जाती हैं। ऐसी आर्थिक परिस्थिति रतनी नामक मजदूरी करने वाली नारी की हो गई हैं। इसी तरह ओझा जी ने 'सयाना' कहानी से नैवगण स्त्री पात्रा को चित्रित किया है, जो पति के प्रति पूर्णतया समर्पित हैं। पति जब अपने संगी–साथियों के साथ बातों में इतने मशगूल हो जाते हैं कि समय का ध्यान भी नहीं रहता है, उन्हें तो भी नैवगण अपने पति के लिए देहरी पर बैठी बाट देखती रहती है। नैवगण शान्त–स्वभाव की ग्रामीण अँचल में पली–बढ़ी है तो वो संस्कारों का भी पूर्णतया पूरा ध्यान रखती है और सद्मार्ग पर चलने में ही विश्वास रखती है।

चतुर्थ अध्यायः– 'रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य का कथ्यः विश्लेषण' के अन्तर्गत हमने उनके प्रमुख उपन्यास– 'अश्वत्थामा' व 'रावराजा' और 'निशीथ'

(काव्य–संग्रह) के कथ्य के विविध आयामों का अध्ययन किया हैं। विद्वानों ने जीवन का गद्यात्मक आख्यान् 'उपन्यास' अपने रूप और शिल्प दोनों में ही निरन्तर गतिशील रहा है। उपन्यासों के शुरूआती दौर में यह किसी ने भी नहीं सोचा होगा कि साहित्य में इतने समय बाद में आयी यह विधा एक दिन कविता, नाटक आदि अन्य साहित्यिक विधाओं को पीछे छोड़ती हुई। उनसे बहुत आगे निकल जायेगी। खास–तौर पर कथा–साहित्य में तो प्रेमचन्दोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक कथा रचना की बड़ी भारी परम्परा देखने को मिली इस सम्बन्ध में डॉ. देवराज की ये टिप्पणी उल्लेखनीय है– "इस शताब्दी के मानव मनोविज्ञान सम्बन्धी अनुसंधानों ने व्यक्ति के विविध रूपों का अध्ययन दरअसल इसकी भी एक वजह है, मानव की भीतरी परतों को जिस तरह विस्तार के साथ कथा–कहानी में उधेड़ा जा सकता है। काव्य में वो विस्तार कलेवर की संक्षिप्तता के कारण सम्भव नहीं हो पाता। अतः मनोविज्ञान का सर्वाधिक प्रभाव हिन्दी कथा–धारा में दिखलाई पड़ता है। कोई अचरज की बात नहीं मनोविज्ञान के प्रभाव से हिन्दी, उपन्यासों को चेतना–प्रवाह के उपन्यास तक कहा जाने लगा है।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक कथाधारा की शुरूआत सन् 1930 के आस–पास से मानी जाती है। जैनेन्द्र का 'परख' और इलाचन्द्र जोशी का 'घृणामयी' (लज्जा) इस कथा–धारा के प्राथमिक उपन्यास माने जाते हैं। इसके बाद तो हिन्दी में इस तरह के उपन्यासों की बाढ़ सी आ गई। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय हिन्दी की मनोवैज्ञानिक कथा–धारा के अग्रणी कथाकार माने जाते हैं।

उपन्यास साहित्य की गद्य विधा के लिए ऐसा माना जाता है कि लगभग सन् 1980 के बाद के जितने भी उपन्यासकारों ने उपन्यास की रचना या लेखन कार्य किया है। वह मुख्य रूप से समकालीन उपन्यास के अन्तर्गत ही माना जाता है और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपन्यास के क्षेत्र में ठीक उसी प्रकार से उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में बदलाव लाना शुरू कर दिया और धीरे–धीरे समस्त प्रकार के उपन्यास साहित्यकार समकालीनता से सम्बन्धित उपन्यासों का लेखन कार्य करने लगे। यानि कि जैसे उपन्यास में समयानुसार बदलाव आया वैसे ही स्वातंत्र्योत्तर भारत की परिस्थितियों में भी समयानुसार बदलाव आता गया। हिन्दी के उपन्यासों की नयी धारा को प्रयोगवादी उपन्यास आधुनिकता बोध के उपन्यास भी कहा जा सकता है। औद्योगिकरण, भ्रष्ट शासन–व्यवस्था, बदलता परिवेश, यांत्रिक सभ्यता के दुष्परिणाम महानगर का जीवन, व्यक्ति का अकेला रहना, निराशा, तनाव, घुटन, कुण्ठा, अवसाद आदि समस्त प्रकार के विषयाभावों से जुड़कर उपन्यास की विषय–वस्तु और उपन्यास की प्रक्रिया भी नवीनतम विविध प्रकार के रूपों को धारण करती

हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत के सम्मुख कुछ और तरह की नई–नई चुनौतियाँ भी सामने आने लग गई थी। निर्मल वर्मा के उपन्यास 'वे दिन' में यूरोप के एक नगर का चित्रण किया गया है। इसमें महायुद्ध के बाद में फैले अकेलेपन को बड़ी संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। समकालीन दौर में चल रहा है उपभोक्तावाद, साम्प्रदायिकता, निम्न मध्य वर्गीय जीवन, पितृ–सत्तात्मक, नारी–मुक्ति, जीवन का तनाव, आदिवासी समाज में नारी का दायरा दिग्भ्रमित युवा पीढ़ी, पलायन, विघटन, संकटग्रस्त, कुण्ठाग्रस्त जीवन, पारिवारिक आदि जैसे अनेक विषय जिनसे मिलजुलकर समकालीन उपन्यास–साहित्य और भी तेज गति से बढ़ता जा रहा है। अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी बदरिया' बनारस से बुनकर समाज व जाति सम्प्रदाय को लेकर लिखा गया है, यह साड़ी बुनने वाले जुलाहों के कठिन से कठिन संघर्षशील जीवन को दर्शाता है। चित्रा मुद्गल 'आँवा' में श्रमिक वर्ग की गर्दन काटने की प्रवृत्ति का प्रतिस्पर्धाओं, स्वार्थ सिद्धि हेतु पूँजी के प्रलोभनों की गहरी संवेदना के साथ भी व्यक्त किया गया है। रवीन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यास जवाहरनगर में 1975–77 के आपातकाल और मध्यमवर्गीय पतनशीलता का चित्रण भी बखूबी रूप से किया है। इसी प्रकार ओझा जी का 'अश्वत्थामा' उपन्यास महाभारत काल के प्रसिद्ध कथानक को लेकर लिखा गया है। इस उपन्यास में अश्वत्थामा और कई गौण पात्र भी हमारे सामने आये हैं, जिनमें दुर्योधन, पाण्डव, कृष्ण, युधिष्ठिर, भीम, कुन्ती इत्यादि महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। ये सभी पात्र शिक्षित है। सेरन्ध्रि को उपन्यास में एक चालाक प्रवृत्ति की औरत और राजा विराट की पत्नी सुदेषणा की दासी के रूप में भी बताया गया है, जो मनचली हरकतें करने में माहिर है व अपने जीवन के वाकचातुर्यता की मालकिन पाँच–पाँच पतियों की पत्नी के रूप में भी प्रसिद्ध है अर्थात् ऐसा माना जाता है कि लोक–लाज की परवाह किए बगैर मान–मर्यादा की सीमा को बाँधकर शासक–वर्ग के लोगों के साथ रंगरलियाँ मनाने तक का प्रस्ताव भी एक बदचलन नारी की भाँति स्वीकार करती है। इसीलिए अन्य नारी पात्रों की तुलना में सेरन्ध्रि अपनी वाक्चातुर्यता को रखते हुए अपने आप में कामुकता का भाव रखने वाली अन्तःस्थ नारी पात्रा मानी गई है।

इस प्रकार 'अश्वत्थामा' उपन्यास प्राचीन पौराणिक कथानक को लेकर अवश्य लिखा गया है। परन्तु इसके सभी पात्र नई सोच और नये विचारों की संकल्पना लेकर सामने आते हैं जो परम्परा से तो जुड़े ही है साथ ही युगानुरूप नवीन चिन्तन के मार्ग को भी प्रशस्त करते हैं। यह उपन्यास अपने संदेश को लेकर आज भी प्रासंगिक है और कल भी इसकी अर्थवता बनी रहेगी। इसी प्रकार से 'रावराजा' ओझा जी का दूसरा उपन्यास है। यह सामन्तकालीन जीवन, सामाजिक व्यवस्था एवं आचार–विचार को लेकर लिखा गया है।

रियासत के दिनों के बेहड़ के ठिकाणे (जागीर) का बड़ा नाम था। वहाँ के ठाकुर साहब को रावराजा की पदवी का अतिरिक्त सम्मान प्राप्त था। महाराजा साहब के खास महलातों में जनानी ड्योढ़ियों की गणगौर पोल तक उनकी सवारी जा सकती थी, जबकि अन्य ठाकुरों को किले की सिंह पोल पर ही घोड़े की पीठ से उतर जाना पड़ता था। यही नहीं महाराजा के निकट सम्बन्धी होने के कारण बेहड़ के जागीरदार तोप की सलामी के भी हकदार थे। दरबार में महाराज उनको काकोसा कहकर सम्बोधित करते और अपना पेचदान पेश करते थे। इस प्रकार से रावराजा एक शासक के रूप में अपनी समस्त प्रजा के साथ भी शालीनता व संयम के साथ पेश आते हैं। वहीं दूसरी ओर प्रजा भी उनका खूब मान–सम्मान करती थी।

उपन्यास 'रावराजा' में उमराव, रूपराम, गौरी, लक्ष्मी बहू पार्वती मायाराम, सेठ धनदास इत्यादि पात्रों में से कुछेक पात्र ही शिक्षित हैं, शेष पात्र अशिक्षित हैं। इनमें से रूपराम जो कि चालाक प्रवृत्ति का व नशे में धुत रहने वाले पात्रों में से एक है रावजी के यहाँ हवेली में इधर–उधर मस्का लगाने का काम करता रहता है और पूरी ढोलकी भर शराब ले जाता है व दिनभर पीता रहता है। इसी प्रकार से गौरी उपन्यास की स्त्री पात्र जो रूपराम से प्रेम करती है। परन्तु उससे रूपराम सिर्फ अपना स्वार्थ–सिद्धि का ही प्रेम करता है। रूपराम–गौरी से प्रेम प्रसंग के चक्कर में अपनी हवस की भूख को मिटाने के लिए उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं और अपनी वासना की इच्छापूर्ति को प्रेमभावना का रूप देना चाहता है। इसी तरह लक्ष्मी बहू जो कि अपनी सास के सान्निध्य में रहती है जिसका पति परदेस में खाने–कमाने के लिए गया हुआ है और वह पीछे से ऐशो–आराम करती हुई अपनी पुरानी हवेली में पोथी बाँचती है तो अपनी सास के द्वारा प्रताड़ित की जाती है और फिर सास कहती है कि हमारे यहाँ बहुओं के पोथी बाँचने का रिवाज नहीं है। इस तरह से उपन्यास में सभी पात्रों का वर्णन बड़े ही रोचकपूर्ण व कौतूहल पूर्वक हुआ। इस प्रकार रावराजा उपन्यास सामंतकालीन सामाजिक व्यवस्था और आचार–व्यवहार पर केन्द्रित अवश्य है परन्तु यह आने वाले समाज पर भी दृष्टि डालता है। तभी तो लक्ष्मी बहू पढ़ती हुई दिखाई देती है, वरन सामंतकालीन समाज में स्त्रियों की पढ़ने की बात सोचना जोखिम का कार्य है। उपन्यास में सामंतकालीन जीवन के ऐशो आराम रईशों की नशेबाजी और रंगरलियों का जीवंत चित्रण है जो सामंती के प्रभाव का भी कारण है। इस प्रकार ये उपन्यास सामंती जीवन के आचार–विचार के माध्यम से समाज का समस्त चित्र उपस्थित करता है जो विविध सन्दर्भो में महत्त्वपूर्ण हैं।

पात्र –

धृतराष्ट्र का स्थान 'अश्वत्थामा' उपन्यास के मुख्य पात्रों में से एक हैं। इसका वर्णन उपन्यास में अन्धे राजा के रूप में है, व जो आँख का तो अन्धा था ही और सच्चाई और धर्म के प्रति भी अन्धा था, जिसके कारण वह महाभारत युद्ध होने का कहीं ना कहीं कारण बना क्योंकि वह सदैव अपने पुत्र दुर्योधन का पक्षधर था।

'अश्वत्थामा' उपन्यास में इनका वर्णन आरम्भ से लेकर अंत तक दिया है। ये इस उपन्यास के सबसे सफल एवं प्रमुख पात्र हैं। रामकुमार ओझा ने कहा है कि–गीता के अनुसार सब उनके ही द्वारा मारे हुए थे। कौन कैसे मरे, कौन किसके मरण का निमित बना यह उन्हीं का रचा विधान था, फिर भी औरों को दोष न लगा तो अकेले अश्वत्थामा ही उस विनाशक युद्ध के समापन के लिए किए गए अंतिम संहार के लिए उन्हीं केशव द्वारा शापित क्यों हुए। उस युग के अभिशापों का आज भी अन्त नहीं हुआ है, जिस युग में आप, हम सब जीते हैं उस युग के अपने द्वन्द्व है। विचारनाएँ है, समस्या है और समाधान है। उस युग की समस्याओं के समाधान के लिए कृष्ण ने कारणों और परिणामों का शोध किया था और अपने युग के लिए हम सब मिलकर करें। समता विरोधी, विभेदक और ज्ञान–विज्ञान के मार्ग के अवरोधक पत्थरों को हमें हटाना है, हटाएं। उनमें से कुछ उस युग की पाषाण–मान्यताएँ भी हैं और इनके कारक भूत कारणों और समाधानों को किन्चित चिह्नित किया है। इसके लिए मुझे वर्षों तक महाभारत, उसके सन्दर्भ ग्रन्थों और व्याख्यानों का अनुशीलन करना है, और अपने निर्णय का निर्धारण करना पड़ा है। निष्कर्ष यही निकलता है कि इतिहास की आवृत्ति होती रहती है और एक बार फिर महाभारत का खतरा मंडराने लगा है।" श्री कृष्ण दूरदर्शी थे और रामकुमार ओझा ने भी दूरदर्शी पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है, आपने भविष्य को ठीक पहचाना है, द्विज श्रेष्ठ मैं आपका सम्मान करता हूँ। इसी तरह रामकुमार ओझा के उपन्यास अश्वत्थामा में कर्ण भी एक अहम् पात्र है, जिसका वर्णन उन्होंने अपने उपन्यास में बहुत सुन्दर तरीके से किया है। कर्ण पाण्डु की पत्नी कुन्ती की अवैध सन्तान थी। इसलिए कर्ण को सूत पुत्र कहा जाता था। सूतपुत्र कर्ण का भी लालन–पालन कुरुवंश में हुआ। कर्ण भी अन्य कुरुवंशी राजकुमार के साथ ही अस्त्र–शस्त्र की शिक्षा लेते थे। वे आचार्य द्रोण के नियमित शिष्य बने। रामकुमार ओझा ने इस उपन्यास के द्वारा यह बताया है कि वैध संतान के मुकाबले अवैध संतान को बहुत कुछ सहना पड़ता है जैसे कि रंगशाला में सभी राजकुमारों को अपने कौशल दिखाने का मौका दिया गया जबकि कर्ण को यह मौका नहीं मिला क्योंकि वह कुरूवंशी पाण्डु की पत्नी की अवैध संतान थी।

इन सभी पात्रों का सृजन प्रसंगानुकूल सौद्देश्यपूर्ण हैं। लेखक पात्रों की भावना, संवेदना, भीषण अंतद्र्वद्व की भावना में पूर्णतः सफल रहे हैं। इस प्रकार जीवन के पर्दापण करने के सुदीर्घ अन्तराल के पश्चात् उन्होंने सृजनात्मक लेखन का आरम्भ करके नवीन तथा भिन्न आयाम स्थापित करने का प्रयास किया है, अनेक घटनाओं के द्वारा बदलते मानव जीवन को चित्रित करने वाला ओझा जी का उपन्यास–साहित्य अपने उद्देश्य की पूर्ति में निश्चय ही सफल एवं प्रभावात्मक रहा है।

पंचम् अध्याय – 'रामकुमार ओझा के कथा–साहित्य में नारी' के अन्तर्गत नारी के विभिन्न रूपों और उसकी विभिन्न भूमिकाओं का अध्ययन जीवंत चित्रण हुआ है। इनके कथा–साहित्य में नारी के कन्या, पत्नी, माँ, बहू, दादी, चाची आदि सभी रूप चित्रित हुए हैं। यहाँ नारी मजदूरनी भी हैं, तो घर की बहू भी है, तो समाज–सेविका भी हैं, तो गृहिणी भी हैं। नारी के सभी रूप और भूमिकाएं जीवंत है। वैसे देखा जाये तो हिन्दी के साहित्यकारों ने नारीगत समस्याओं को अपने कथा–साहित्य में जोर–शोर से उठाया है। ऐसे साहित्यकारों की परम्परा का अनुसरण करते हुए अपने कथा–साहित्य में नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं एवं स्थितियों को रेखांकित कर पाठकों को कुछ सोचने के लिए प्रेरित किया है। ऐसी कहानियों में 'बंधवा' कहानी की पात्र रामप्यारी जो साहब लोगों के यहाँ दिहाड़ी (मजदूरी) करती है और उसके साथ–साथ भोली–भाली युवतियों को प्रेम–जाल में फंसाकर साहब लोगों के टैन्टों में सप्लाई भी करती है, जिससे साहब लोग रामप्यारी से खुश रहते हैं और उसकी आर्थिक परिस्थिति भी सुधार देते हैं। ओझा जी ने 'अश्वत्थामा', 'रावराजा' उपन्यास से नारी पात्रों को बताया है जिसमें सावित्री नामक स्त्री पात्रा जो कि अपने सास–ससुर से प्रताड़ित की जाती है और काफी परेशान है। सावित्री को उसकी सास के द्वारा जानबूझकर उलझन की स्थिति में झोंक दिया जाता है तो सावित्री कठिन संघर्ष भरे जीवन जीने की स्थिति से अच्छा तो अगर और कहीं जाकर बस जाये तो ही सही है। सावित्री का पति रामसिंह राजा–रजवाड़ों के यहाँ नौकर–चाकरी का कार्य करता है और सावित्री को भी यहाँ काम में लीन कर रखा है। रामसिंह नशे की लत में धुत रहता है और कभी–कभी तो अपना होशो–हवास को भी नहीं सम्भाल पाता है। सावित्री के पीहर में भी एक माँ ही है जो भी अपने रिश्तेदारों पर आश्रित हैं और ये सब कहकर रोने लग जाती है। अपने मन से वार्तालाप कर कहती है भाइयों की सहानुभूति पर भाभियों की एक क्रोधभरी नजर से देखना मैं सह न पाऊँगी। इस प्रकार से उसकी सास सावित्री घसीटती–पिटती है। पर सावित्री चूँ भी नहीं करती है और ये सब सहन करते हुए भी अपना जीवन निर्वहन करती है।

इसी प्रकार उपन्यास में चित्रित पात्रा गौरी जिसके पिताजी एक लोभी व लालची किस्म के व्यक्ति है और सामन्तों के दबाव में आकर अपनी बेटी गौरी का विवाह वह एक बूढ़े आदमी से तय कर देता है। कुछ दिनों पश्चात् गौरी के द्वार पर दुल्हा जब तोरण मारने आता है तो उसकी सहेलियां लोकगीत गाती हैं और कहती हैं। तेरा दुल्हा तो बड़ा सज–संवर के आया है मोतियों की लड़ियां माथे पर लटक रही है तो दूसरी सहेली कहती है। उसके माथे पर कलंगी भी लगी है, फिर तीसरी कहती है कि उसकी शरीर को देखो, शरीर से बूढ़ा लगता है। इस पर गौरी की अंतरात्मा में एक कचोट सी पैदा होती है व रोने लग जाती है तो उसकी सहेली अन्य सहेलियों से वार्तालाप करते हुए अपनी बात बदल देती है कि उसकी छड़ी सोने की है और उसकी दंतावली (बत्तीसी) भी सोने से जड़ित है। गौरी उस बूढ़े दूल्हे से विवाह करवाने के लिए बिल्कुल भी राजी नहीं होती है। पर उसका पिता सामन्तों के चक्कर में आकर चन्द रूपयों के लालच के खातिर अपनी बेटी का एक बूढ़े व्यक्ति के साथ विवाह कर देता है और गौरी जो कि इस विवाह को करवाकर खुश नहीं है और मजबूरन उसका विवाह सम्पन्न कर दिया जाता है।

इसी तरह 'सरदी और साँप' कहानी की पात्र सलौनी कहानी में मुख्य भूमिका अदा करती है। सलौनी एक तेज–तर्रार बात करने वाली वाक्चार्तुय तथा प्रेमी स्वभाव की युवती व कृषक बाला है। वीरता और भावुकता का उसके चरित्र में सुन्दर संगम और नारीगत विविधता भी देखने को मिलती हैं। उसका काकू जब खेत में मेड़ बनाने चला जाता है व बहुत देर हो जाती है और अँधेरा हो रहा है। इतने में भी अचानक उससे प्रेम करने वाला जीतू आ जाता है व पूछता है कि अरि तुम बाहर क्यों खड़ी है तो वो कहती है। भीतर अकेले में डर लगता है मुझे, अंधेरा बहुत है, सलौनी के चरित्र में एक पारम्परिक सामाजिक मर्यादा को निभाने वाली नारी के गुण भी है। वह आधुनिक नारी की तरह बात बनाना भी जानती है, उसे और जीतू को बात करते हुए अचानक उसके काकू देख लेते हैं, तो वह तुरन्त बात बदल देती है और काकू से कहती है कि काकू एक काला साँप था। उसको मारने के लिए जीतू यहाँ आया था परन्तु साँप औसारे में छिप गया तभी से जीतू साँप निकलने के इंतजार में खड़ा है। इस प्रकार वह झूठ बोलकर काकू को संतुष्ट कर देती हैं और काकू के सो जाने पर पुनः जीतू से प्रेमभरी बातें करने लग जाती है। इस प्रकार सलौनी एक प्रेमप्रसंग में लीन रहने वाली नारी के रूप में मानी गई है। ओझा जी ने बताया है कि पत्नी के रूप में नारी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है और पत्नी रूप में नारी को गृहलक्ष्मी घर की मालकिन के रूप में जाना जाता है। भारतीय समाज में घर ईंट, पत्थर के बने हुए ढाँचे को न कहकर घर की संज्ञा तभी दी गई है, जब घर में गृहिणी हो गृहिणी के

कंधों पर घर की व्यवस्था का सम्पूर्ण दारोमदार होता है। बिना पत्नी के या गृहिणी के घर, घर न होकर कुछ और लगता है। जब–जब ओझा जी के मन में नारी के प्रति अन्याय अत्याचार दिखाई देता था, तब उनका हृदय नारी की असली वेदनाओं से विवश हो उठता है। ओझा जी ने अपनी कलम की सहायता से अपना दृष्टिकोण समाज के सामने लाया। नारी की स्थिति सदियों से चिंताजनक रही है। अतः ऐसी परिस्थितियों को बदलने के लिए अनेक प्रयास होते रहे। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के मुद्दे उठाये गये। नारियों के लिए कानून बनाए गए। साहित्य के कारण नारी की इस स्थिति को ललकारने के कारण अनेक स्त्रियों में परिवर्तन आया। अनेक लेखक तथा लेखिकाओं ने नारी की प्रचलित दषाओं को अपनी रचनाओं में चित्रित करके समाज के सामने नारी पर होने वाले अन्याय–अत्याचारों के प्रति आवाज उठाने के लिए मजबूर किया है। इस तरह ओझा जी ने नारी को माँ के रूप में इस तरह से चित्रण कर बताया है कि हमारे भारतीय समाज में जहाँ पर अगर किसी भी जाति सम्प्रदाय के बच्चे को जन्म दिया जाता हैं तो वो औरत एक माँ (जननी) का दर्जा प्राप्त कर लेती है। उसी नारी का वर्णन किया गया है कि हमारे समाज में अगर औरत माँ के रूप में अपना त्याग–बलिदान जितना करती है, उतना शायद ही कोई करता है। वह औरत माँ का स्थान रखते हुए अपने आपको समयानुसार या मौसम के साथ–साथ गीले–सूखे में सोती पर अपने बच्चे को जरा भी आँच तक नहीं आने देती है। ओझा जी ने कहा है कि माँ का स्थान दुनिया का सबसे ऊँचा स्थान है। उसका हमेशा ही सम्मान करो चाहे वो किसी भी रूप में क्यों ना हो उसी का पर्याय अपने भारतीय समाज में नारी को माँ के रूप में विशेष व प्रमुख दर्जे के रूप में माना जाता है।

भारतीय नारी का संघर्षपूर्ण जीवन भी बहुत महत्त्व रखता है। ओझा जी ने नारी को सम्मान देते हुए उसका जीवन पूरा संघर्षमय बतलाते हुए कहा है कि नारी डरकर भी ना करने वाला काम भी कर देती है। 'अकेली रात' कहानी की नर्स इसी तरह की स्त्री पात्रा है। वह हडबड़ाती हुई वार्ड में घुसी तो मिलखाराम जरा डरा। मुलाकात का वक्त पूरा हो जाने के बावजूद उसे मरीज के पास देखकर जरूर उसके साथ डाँट–फटकार करेगी। अतः वह भी उसी हड़बड़ाहट में उठते हुए मनभरी से बोला–अच्छा अब चलूँ, कल जरा जल्दी आ जाऊंगा और वह नर्स की नजर बचाकर जाने लगा तो नर्स ने टोका, रूको। वह रूक गया और अपनी सफाई में कुछ कहने को हुआ पर नर्स ने उसकी और फिर कोई ध्यान न दिया। उसने कागजों के पुलंदे में से एक पर्चा निकाला और उसे मिलखाराम के हाथ में थमाती हुई हकलाती सी बोली। तुम्हारे मरीज की छुट्टी इसे साथ ले जाओ।

मिलखाराम हैरान, इसी ने तो कल कहा था मरीज को ठीक होने में काफी वक्त लगेगा और अब यह छुट्टी कर रही है। ऐसी भी क्या नाराजगी अपनी जोरू के पास बैठ गया तो कर दिया डिस्चार्ज। फिर भी माफी माँग लूंगा। वह कुछ कहने को हुआ पर तब तक हर बिस्तर पर वैसे ही पर्चे बाँटती आखिरी छोर तक पहुँच चुकी थी और कह रही थी। ठीक नहीं है। पर लुगाई जात मरते दम तक मर्द मानस को परेशान नहीं करना चाहती। आज की रात बच जाये तो बजरंग बली की जोत जलाये। इस प्रकार नारी अन्त समय तक अपने संघर्षमयी जीवन का परिचय देती हैं।

इस प्रकार ओझा जी ने अपनी कहानियों में नारी की दयनीय स्थिति और उसके जीवन से जुड़ी समस्याओं का चित्रण तन्मयता से किया है। उन्होंने ग्रामीण व शहरी समाज दोनों को बारीकी से देखा और समाज में व्याप्त अनमेल विवाह, दहेज प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों के बीच में पिसती हुई नारी की स्थिति का चित्रण करते हुए नारी की स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता का पक्ष लिया है। उन्होंने अपनी कहानियों में चित्रित नारी पात्रों के माध्यम से समाज को संदेश दिया है कि नारी परिवार का आधार होती है, वह पूरे परिवार को बांधकर रखती है। वह अपनी सूझ–बूझ, उदारता सहनशीलता से परिवार में सुख–समृद्धि और शांति स्थापना करती है। आज सबसे बड़ी जरूरत ये है कि नारी को परम्परागत रूढ़ियों, कुरीतियों और बन्धनों से मुक्त कर उसके भीतर की कार्य क्षमताओं को पल्लवित करने का अवसर देना आवश्यक है। उन्होंने नारी की विभिन्न स्थितियों और हृदयगत भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हुए नारी के आदर्श रूप को बताने का प्रयास किया है। उनका ये संदेश है कि परिवार और समाज खुशहाल हो तभी आगे नारी बढ़ सकती है। जब नारी की भावनाओं को समझते हुए उसके प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण रखा जाये तो समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सकेगा। इनके कथा–साहित्य में नारी किसी भी रूप में हो चाहे वो पुत्री, प्रेमिका, पत्नी, दादी सभी रूपों में समाज के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

दादी अम्मा "शेष सब सुविधा" कहानी में दादी अम्मा एक मुख्य पात्र के रूप में अपनी भूमिका निभाती है और अपने जीवन में शहरी परिवेश को न आने देते हुए ग्रामीण अँचल के प्रति लगाव रखती है। उदाहरण स्वरूप वर्णन करते हुए बताया गया है– "दादी अम्मा को सोते वक्त डन्लप का गदैला दिया जाता है, जिसे वो रबड़ का गदैला कहती है। हर रात यू हीं खीझते–खीझते काटती पर सुबह किसी से कुछ न कह पाती। दादी अपने भीतर टटोलती पर सुधीर को कहीं न दोषी पाती है। उसने तो पहले दिन ही कह दिया था अम्मा इस शहर में यही एक दुविधा है कि बंद घरों में जाड़ा हाड़–हाड़ में पैठ जाता है शेष सब सुविधा है। मैं तो हारी रे इन सुविधाओं की मारी। दादी अम्मा ने कुनबुनाते हुए करवट

लेनी चाही पर जाड़े का यह स्वभाव कि डील हिलाया और दुने जोर से चढ़ा दादी का पंजर खड़–खड़ हिला और दर्द पीठ के बीचों–बीच फैलने लगा। भारतीय समाज में नारी का पत्नी के रूप में चित्रण प्रायः अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और प्रमुख स्थान पत्नी के रूप में नारी को गृहलक्ष्मी घर की मुखिया मालकिन के रूप में जाना जाता है। भारतीय समाज में घर ईंट पत्थर के बने हुए ढाँचे को न कहकर घर की संज्ञा तभी दी गई हैं, जब घर में गृहिणी हो गृहिणी के कंधों पर घर की व्यवस्था का सभी प्रकार का दारोमदार होता है। बिना पत्नी क या गृहिणी घर, घर न होकर कुछ और लगता है। जब–जब ओझा जी के नारी के प्रति अन्याय, अत्याचार दिखाई देता था तब उनका हृदय नारी की वेदनाओं से विवश हो उठता है। ओझा जी ने अपनी कलम की सहायता से अपना दृष्टिकोण समाज के सामने प्रस्तुत किया। नारी की स्थिति सदियों से चिंताजनक रही है। अतः ऐसी परिस्थितियों को बदलने के लिए अनेक प्रयास होते रहे। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के प्रश्न उठाये गये हैं। नारियों के लिए कानून बनाए गए। साहित्य के कारण नारी की इस स्थिति को ललकारने के कारण अनेक स्त्रियों में परिवर्तन आया। अनेक लेखक तथा लेखिकाओं ने नारी की प्रचलित दशाओं को अपनी रचनाओं में चित्रित करके समाज के सामने नारी पर होने वाले अन्याय–अत्याचारों के प्रति आवाज उठाने के लिए मजबूर किया। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में नारी की दशा में परिवर्तन आया है।

साहित्य एक ऐसा माध्यम रहा है, जिसमें नारी अपने अस्तित्व को भिन्न–भिन्न आयामों में तराषने लगी, जिसकी सच्ची सहानुभूति साहित्य में दिखाई देती हैं। ओझा जी के कथा–साहित्य में नारी पात्र–शिक्षित, अशिक्षित, मुख्य व सहायक और गौण पात्रों की भरमार रही हैं। ये सभी नारी पात्र पुरानी रूढ़ियों और परम्पराओं को तोड़कर जीवन में अपने आप मार्ग तय करती है, क्योंकि उनमें अपनी स्थितिवश सजगता दिखाई देती हैं। शोषण के प्रति बंधवा नारी के रूप में आवाज उठाती है तथा विद्रोह की भावना रखती है। अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष करने की कोशिश करती है और अपनी मुक्ति की छटपटाहट भी है। अतः शोषित होने पर भी नारी पुरुष से हार नहीं मानती, बल्कि अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति द्वारा पुरुष प्रधान संस्कृति का विरोध करती है।

इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक नारी आज पुरुष–प्रधान समाज में रहकर भी अपना अस्तित्व निर्माण कर रही है। वह अपनी अस्मिता को नये रूप में स्थापित करने की कोशिश में जुटी हुई है। ओझा जी के कथा–साहित्य में नारी का परिवर्तित रूप भविष्य में सभी नारियों को परम्पराओं से मुक्त करते हुए स्वतंत्र विचार करने के लिए नए जीवन में

अपना स्थान बनाने की प्रेरणा देता है क्योंकि उनकी चित्रित नारी अपना निर्णय देने में सदा से पूर्णतः स्वतंत्र है। अतः भविष्य में नारी के लिए मुक्ति के द्वार खोलने में सक्षम दिखाई देती है। अतः हम कह सकते हैं कि लेखक ने कथा–साहित्य में नारियों को आधुनिक स्त्री–पुरुषों के यथार्थ समस्याओं को सामने लाने की कोशिश की है। समाज को वर्तमानकालीन समस्याओं को उजागर करके हम अपने जीवन को सच्ची परिस्थितियों से जोड़ने का महान कार्य करें। अतः ओझा जी ने अपने कथा–साहित्य में, नारी का वर्णन खुलकर स्वतंत्र रूप में किया है। जो अपने आप में एक मिशाल है और विविध रूपों में नारियों की भूमिका का वर्णन कर कथा–साहित्य को और अधिक रोचक व प्रभावात्मक बना दिया है।

षष्ठ अध्यायः–'रामकुमार ओझा का भाषा एवं शैलीगत सौन्दर्य' के अन्तर्गत उनके कथा–साहित्य का भाषा एवं शैली की दृष्टि से अनुशीलन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हुआ है कि लेखक भाषा के प्रयोग में पारंगत है। लेखक को हिन्दी के अतिरिक्त राजस्थानी, बंगाली, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर अच्छा ज्ञान है। इन भाषाओं के प्रचलित शब्दों का कहानियों में अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाषा के द्वारा हम परस्पर विचार विन्मय करते हैं। उपन्यास की भाषा में कहावतों, मुहावरों एवं शब्द प्रयोग का बड़ा महत्त्व होता है। जहाँ तक शब्दों के प्रयोग की बात है तो हमने इनके कथा साहित्य का अनुशीलन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि इन्होंने यथास्थान प्रसंगानुसार तत्सम्–तद्भव, देशज, विदेशी (अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी) शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है। इनके कथा–साहित्य से कुछ उदाहरण संकेत रूप में हम यहाँ उल्लिखित कर रहे है। वैसे इनका विस्तृत विवेचन इस अध्याय के अन्तर्गत हम कर चुके हैं। तत्सम् शब्दों के यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है– परिवेश, संयम, सिद्ध, श्रेष्ठ, लघु, ग्रन्थि, कन्दुक, घृणा, रिक्त, नारिकेल, मधुक, नग्न, पल्लव, हस्त, परश्व, पाशिका, ओष्ठ, द्राक्षा, मेघ, तिथिवार आदि। इसी प्रकार तद्भव शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त देखने को मिलता है। तद्भव शब्द उन्हें कहते हैं जो तत्सम् से उद्भुत होते हैं। इनके कथा–साहित्य में झीना, सावन, जाड़ा, परसों, साला, मौर, खाई, जलाना, सौत, भौंरा, भाड़ा, साँझ, दाद, सुथरा आदि। विविध विषयों से सम्बन्धित तद्भव शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यही नहीं उन्होंने अपने कथा–साहित्य में भाषा के चलते प्रवाह में देशज शब्दों का भी प्रयोग पर्याप्त किया है। ये शब्द सम्प्रेषणीयता में किसी तरह बाधक नहीं है तथा निरन्तर भाषा की गत्यात्मकता बनाए रखते हुए अर्थबोध में सहायक है। हांडी, लोटा, खूँटा, नोहरा, चूँटियों, लुगाई, टाबर–टीकर, बपौती, बिरखा, इती, पंपोलना, माणस, निहारे, हुंकारा आदि। इसी तरह

विदेशी शब्द–अर्थात् अरबी, फारसी, उर्दू के स्थान–स्थान पर अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। जैसे–मर्तबा, मजहब, लाश, तलाश, तरक्की, मुकाबला, तमन्ना, गमला, बलात्कार, रिक्शा, चाय, इलाज, दफनाया, जायजा, शराफत, नकारा, फर्ज, मदद, फैसला, असल, ईलम आदि। जहाँ तक अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग की बात है तो अँग्रेजी के शब्द भी पर्याप्त प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं जैसे– मैनेजिंग, डायरेक्टर, डैमेज, स्ट्रॉक, फिलिप, वर्कर, डॉक्टर, प्रोमिज, टैक्स, लाइब्रेरी, अण्डर लाइन, स्ट्रगल, ऑर्डर, लेजर, अटैक, टॉर्च, रैन–कोट, लेक्चर, टेंशन, क्लास, ब्रेक, अरेस्ट, डर्टी, क्रॉसिंग, पार्टी आदि। इस प्रकार हम देखते हैं ओझा जी के कथा–साहित्य में विभिन्न भाषाओं के प्रचलित शब्द यत्र–तत्र पर्याप्त प्रयुक्त हुए हैं। इनके प्रयोग से जहाँ अनेकों भाषा में प्रभावात्मकता और निरन्तरता बनी रही है। वहीं अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है। ओझा जी के कथा–साहित्य में भाषा का गत्यात्मक रूप देखने को मिलता है। यहाँ भाषा अपने विविध रूपों में प्रयुक्त हुई है। चित्रात्मक, काव्यात्मक, बिम्बात्मक, प्रतीकात्मक, आदि। भाषा के प्रयोग देखने को मिलते हैं। चित्रात्मक भाषा–भाषागत सौन्दर्य का एक पक्ष है जब कोई साहित्यकार किसी वस्तु, घटना, पात्र इत्यादि का इस प्रकार वर्णन करता है, कि उसके वर्णन में एक भाषागत चित्र सा बनता जाता है और पाठक जब उसके पाठ को पढ़ता है तो उसके सामने सम्बन्धित वस्तु, घटना, पदार्थ या व्यक्ति का चित्र उभर कर आता है और वह उस भाषागत चित्र के माध्यम से लेखक के कथ्य से सम्प्रेषित हो जाता है। इसी प्रकार काव्यात्मक भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है, जिसमें इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें पढ़कर पाठक को काव्यात्मक आन्दानुभूति होने लगती है। काव्य का प्रमुख तत्त्व भावात्मकता होता है, जब रचनाकार अनुभूति सम्वलित भाषा का प्रयोग करता है या कहीं–कहीं पूरा का पूरा छन्द या पद्य लिख देता है, तो वहाँ भाषागत काव्यात्मकता का संचार हो जाता है। श्री रामकुमार ओझा की कहानियों एवं उपन्यासों में अध्ययन करते समय कई स्थल ऐसे मिले जहाँ उन्होंने या तो पूरा का पूरा छन्द पद्य या किसी प्रसिद्ध लेखक के काव्य की पंक्तियाँ ज्यों की त्यों प्रस्तुत की है। तो कहीं–कहीं अलंकारों का प्रयोग करके भाषा में काव्यात्मक उत्पन्न की है। उनके साहित्य में सामान्यतः उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक जैसे अलंकारों के उदाहरण मिल जाते हैं। इनका प्रयोग बिल्कुल सहज सरल रूप में हुआ है। कहीं पर भी ऐसा नहीं लगता कि काव्यात्मकता को जबरदस्ती लाने का प्रयास किया गया। जैसे–

"पपिया जफियाँ पालें हम।"
अँखियों से आँख मिला ले हम।"

"राम जाने, राम जाने, राम जाने
कहते हैं लोग मुझे राम जाने
कहते हैं क्यों राम जाने?" (कौन जात कबीरा)

इसी प्रकार रामकुमार ओझा ने अपने कथा–साहित्य में संस्कृत निष्ठ भाषा–'शैली' का प्रयोग बड़ी ही सुन्दरता के साथ किया है। उन्होंने अपनी कहानी संग्रह 'कौन जात कबीरा' में संकलित 'संन्यासी' कहानी में संस्कृत के ज्यों के त्यों शब्दों को उठाकर अपने साहित्य में सम्बन्ध स्थापित कर एक विशेष संस्कृतनिष्ठ भाषा 'शैली' का प्रयोग करते हुए एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार से है–"जिन शासन–शिरोमणि, संयम–मार्तण्ड, आचार्य सम्भूतविजय के संघ के चार शीर्षस्थ शिष्य पावस ऋतु के चर्तुमास्य तप की सम्पूर्ति कर लौट रहे थे, स्थिर–प्रज्ञास्थिति को प्राप्त आचार्य प्रवर का ध्यान भी क्षण–क्षण उचटे जा रहा था। शिष्यवृन्द का साफल्य गुरु की सार्थकता थी। आर्य मणिभद्र ने जल से परिपूर्ण सरोवर तट पर तृषावरोध कर चार्तुमास्य तप किया था। (कौन जात कबीरा)

इसी तरह अँचल शब्द का अर्थ है क्षेत्र विशेष के साथ सम्बन्ध स्थापित करना अर्थात् क्षेत्र की बोली–भाषा को लेकर जो पर्याय लगाया जाता है उसे ही आँचलिकता शब्द से अभिहित किया जाता है। इसी प्रकार से रामकुमार ओझा ने अपनी कहानी व उपन्यासों में क्षेत्रीय भाषा को ज्यादा मान्यता देकर अपने साहित्य का लेखन कार्य किया है।

"पर हवेली में तो मिल जायेगा?"
"मुँह धोये रहियो। छत पर सूखता मिल लायेगा।"
"तो क्या तुम्हारी बड़ी हवेली में गहना–जेवर नहीं?"
"है क्यों नहीं?"
"फिर क्या राज है?"[68] (रावराजा)

उपर्युक्त पंक्तियों में पुरानी बड़ी हवेली का माणक और मोती सोने के जेवरात को लेकर बतला रहे हैं कि आजकल डाकूओं का समूह घूम रहा है। अपनी जेवरात की सुरक्षा रखना इस बात पर हँसते हुए मोती कहता है हमारे तो मिलेगा नही ंतो माणक कहता है, क्यों नहीं मिलेगा तुम्हारे सोने के पांव तो है, नहीं जो मटरगस्ती करते गलियों में घूमेगा। इस प्रकार से विशेष रूप से मटरगस्ती करना जैसे शब्दों में आँचलिकता का प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार अलंकारिक भाषा वहाँ होती है, जहाँ लिखते समय साहित्यकार जाने–अनजाने ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है, जिनके प्रयोग करने से भाषा में अलंकारिकता

आ जाती है। ओझा जी ने भी अपने कथा–साहित्य में यत्र–तत्र प्रसंगवश ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जिसमें अलंकारिता का सौन्दर्य आ गया है। पढ़ते समय कोई न कोई अलंकार दृष्टिगोचर हो जाता है, ऐसा करने से जहाँ कथ्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि हो गई है। वहीं भाषा में भी चारूत्व प्रभावात्मकता, आकर्षण और भाव–संप्रेषणीयता में वृद्धि हुई है। यहाँ कुछ उदाहरण देकर हम अपनी बात पुष्ट करेंगे– "गरजमंदी से हर वक्त गर्म की जाती रहती काका की भट्टी अब निर्बुझ रहने लगी", "किरणों के कोड़े और लुओं के थपेड़े खाते पहले हमारा शरीर ललछौंहा और फिर ताम्बई हो गया", "गाँव के दूसरे छोर पर एक पीपल का बूढ़ा पेड़ मिला। (कौन जात कबीरा)

शैली एवं भाषागत तत्त्वों की दृष्टि से ओझा जी का कथा–साहित्य समृद्ध है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में प्रचलित सभी शैलियों का प्रयोग किया है। इसी तरह भाषा में यथा स्थान प्रसंगानुकूल एवं पात्रानुकूल तत्सम्, तद्भव, विदेशी विभिन्न प्रकार के शब्दों एवं लाक्षणिकता, व्यंग्यात्मकता, बिमबात्मकता एवं प्रतीकात्मकता जैसे शैलीगत तत्त्व भी प्रयुक्त हुए है, जिनसे शैली और भाषा संप्रेषणीयता की दृष्टि में पर्याप्त प्रभावात्मक परिलक्षित होते हैं। शैली शब्द अंग्रेजी के 'style' के हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रयुक्त होता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अरस्तू से लेकर आई.ए.रिचर्ड्स तक सभी विद्वानों ने शैली शब्द का प्रयोग तो पाश्चात्य प्रभाव से आया किन्तु इससे पहले संस्कृत में 'रीति' शब्द का प्रयोग होता रहा है। प्रसिद्ध विद्वान पं. विद्यानिवास मिश्र शैली के लिए हिन्दी में रीति शब्द का ही प्रयोग करते हैं।

'शैली' अर्थ एवं परिभाषा –

भारतीय आचार्य 'शैली' शब्द को संस्कृत के शील धातु से 'अण्' प्रत्यय के योग से निष्पन मानते हैं। शील के अनेक अर्थ है शील के अनेक अर्थ शब्द कोष में बताये जैसे स्वभाव, लक्षण, झुकाव, चरित्र आदि। उपयुक्त सभी अर्थ व्यक्ति की विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हैं, जैसे स्वभाव मन की विशेष प्रकृति का द्योतक है। लक्षण स्वरूप की विशेषता का झुकाव रूचि की विशेषता और आदत कर्म की विशेषता को इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'शील' शब्द का क्षेत्र व्यापक है। उसका सम्बन्ध मनुष्य की मनोवृत्ति, रूचि, आदत, व्यवहार, चरित्र आदि विभिन्न पक्षों से है। 'शील' से उत्पन्न, 'शैली' शब्द का व्यक्ति की वैयक्ति विशेषता उसके क्रिया–कलापों एवं रचना कौशल से अधिक सम्बन्ध है। 'शैली' के शब्द कोशगत के अनुसार अर्थ हैं, ढंग, प्रणाली, रीति, प्रथा और कथन, विधि का विशिष्ट प्रकार आदि। इस प्रकार 'शैली' शब्द के मूल्य में शील शब्द है, जिसका प्रयोग वैदिक काल से ही होता आ रहा है। प्रसिद्ध पाश्चात्य आचार्य प्लेटो की मान्यता है कि

'विचार ही शैली है' जबकि अरस्तू कहते हैं 'वाणी में वैशिष्ट्य (चमत्कार) का समावेश शैली है। इसी तरह प्रसिद्ध विद्वान डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है कि मेरे विचार से किसी भी कार्य की करने की विशेष ढंग का शैली है और यदि केवल भाषिक अभिव्यक्ति तक सीमित रखें तो कह सकते है। भाषिक अभिव्यक्ति के विशेष ढंग को शैली कहते हैं। हमने प्रस्तुत अध्ययन में शैली प्रयोग एवं शैलीगत सौन्दर्य के विविध पक्षों पर ध्यान प्रयुक्त करते हुए ये स्पष्ट किया है कि इनके कथा–साहित्य में विविध प्रकार की शैलियाँ यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं, जिनका विवेचन हमने इस अध्याय के अन्तर्गत विस्तार से किया है। यहाँ संक्षेप में कह सकते हैं कि काव्यात्मक शैली इनके कथा–साहित्य में अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुई है। ऐसे स्थानों पर लेखक ने भावुक होकर काव्यमयी शब्दावली प्रयुक्त की है तो कहीं–कहीं पद्य खण्डों का प्रयोग किया है। यहाँ एक आध उदाहरण प्रस्तुत है, जैसे–

जिस जा पै हांडी चूल्हा तथा और तनूर है,
खालिक की कुदरतों का उसी का जहूर है। (आदमी वहशी हो जाएगा)

इस प्रकार की रचनाएँ गद्य–काव्य की श्रेणी में आती है। अधिकांश लेखकों व साहित्यकारों ने इस शैली का प्रयोग किया है व ओझा जी ने भी अनेक स्थानों पर इस शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने कहीं–कहीं तो चलते वर्णन प्रसंग में गीतों, प्रसिद्ध रचनाकारों के पद्य आदि का भी प्रयोग किया है, जिससे काव्यात्मक शैली में और भी वैशिष्ट्य आ गया है।

इसी प्रकार वर्णनात्मक शैली वहाँ होती है जहाँ कहानी या उपन्यास वर्णन (कथन) के माध्यम से सुगठित किये जाते हैं ये प्राचीन एवं अधिक प्रचलित शैली है। इसका प्रयोग प्रायः सभी लेखकों ने किया है। बात को समझाने के लिए अनेक उदाहरण देकर इधर–उधर की बातें जोड़कर वर्णन किया जाता है। ओझा जी ने अपनी अनेक कहानियों एवं उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग किया है। ओझा जी की निरीक्षण शक्ति प्रगल्भ अनुभव, सशक्त अभिव्यक्ति कौशल, प्रसंगों को व्यापक दृष्टि से देखने की दूर दृष्टि उनकी वर्णनात्मक शैली के साहित्य में प्राप्त होती है। उन्होंने मुहावरेदार एवं कहावतों से युक्त भाषा में कई स्थानों पर उत्कृष्ट वर्णन किये है। यहाँ हम कुछ उदाहरण देकर अपनी बात स्पष्ट करेंगे उनकी वर्णनात्मक शैली में पाठकों को रसमग्न करने की क्षमता देखने को मिलती है।

इसी प्रकार ओझा जी के उपन्यासों एवं कहानियों में लाक्षणिक प्रयोग अनेक स्थानों पर मिल जाते हैं। प्रायः भावात्मक चित्रण करते समय उन्होंने मुहावरों एवं लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग के द्वारा कथन में विशेष सौन्दर्य प्रस्तुत किया है यहां दो–चार उदाहरण देकर

अपनी बात स्पष्ट कर सकते हैं– "बदचलन ने खानदान की नाक ही कटवाने की ठान ली। भले घर की बहू न रही गाँव की मास्टरनी बन बैठी।" "मेरा तो ब्याह हो चुका मेरा बापू बुगला भगत है। किसी बूढ़े केंकड़े की तलाश में।" "मोती अनसुनी करते बोला "अब तू आँख मूंद पड़ रहा है। (कौन जात कबीरा, रावराजा)

इसी प्रकार प्रतीकात्मकता भी शैली का एक महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त आकर्षक उपकरण है। 'प्रतीक' शब्द के संस्कृत में 'की ओर मुड़ा;, 'अवयव' तथा 'चिह्न' आदि कई अर्थ हैं, किन्तु अब हिन्दी में यह अंग्रेजी शब्द 'सिंबल' के समानार्थी शब्द के रूप में प्रयुक्त हो रहा है तथा मोटे रूप से इसका अर्थ है, वह जो परम्परा या रूढ़ि आदि के कारण किसी और को द्योतित करें। उदाहरण के लिए 'सिंह' वीरता को घोतित करता है, तो गीदड़ कायरता का। यों तो साहित्य तथा चित्रकला आदि में प्रतीकवाद का आन्दोलन 1880 के पहले फ्रांस में फिर और जगह चला, किन्तु साहित्य आदि में प्रतीकों के प्रयोग की परम्परा काफी पुरानी है।"

"प्रतीकात्मक शैली का एक तो सामान्य रूप मिलता है, जिसमें प्रतीकों का प्रयोग होता है तथा प्रतीकों के वास्तविक अर्थ के आधार पर रचना का अर्थ जाना जाता है। इसके विपरीत एक और प्रकार की भी प्रतीकात्मक शैली मिलती है। इस शैली की रचनाओं के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ तो ऊपरी या बाहरी होता है जो प्रतीकों के वास्तविक अर्थ में ये बिना उनके सामान्य अर्थ के आधार पर जाना जाता है, यह अर्थ बिल्कुल अटपटा होता है उदाहरण के लिए डॉ. भोलानाथ तिवारी की एक पंक्ति से स्पष्ट है– 'ठाढा सिंह चरावै गाई'। (शैली–विज्ञान)

इसी तरह बिम्बात्मकता 'बिम्ब' शब्द यद्यपि संस्कृत का है, किन्तु संस्कृत में ठीक इस अर्थ में इसका प्रयोग नहीं मिलता। वहाँ इसका अर्थ छाया, प्रतिभा, प्रतिबिम्ब आदि है। आधुनिक काल में, इस शब्द में नया अर्थ उस समय आया जब अंग्रेजी शब्द 'इमेज' के हिन्दी पर्याय के रूप में इसके प्रयोग का आरम्भ हुआ। बिम्ब (इमेज) किसी मूर्त या अमूर्त का मानश्चित्र है। मनोविज्ञान में बिम्ब को मानसिक पुनर्निर्माण कहा गया है। काव्य में बिम्ब का निर्माण सर्जनात्मक कल्पना से होता है। बिम्ब के कारण एक ओर तो अभिव्यक्ति में चित्रात्मकता आ जाती है, दूसरी ओर कवि का जो कथ्य होता है, उसे वह बिम्ब के आधार पर, अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी रूप में व्यक्त करने में समर्थ होता है। इसलिए काव्य–भाषा के लिए बिम्ब को बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है और इस तरह बिम्ब को काव्य का प्रायः अनिवार्य गुण भी माना गया है। यही कारण है कि काव्य–भाषा के लिए या साहित्यिक शैली के लिए बिम्ब बहुत ही महत्त्वपूर्ण है तो बिम्ब मानश्चित्र है। यों तो मानश्चित्र मूर्त का

भी हो सकता है, अमूर्त का भी, किन्तु काव्य बिम्ब प्रायः मूर्त ही होते हैं। रामकुमार ओझा ने भी अपने उपन्यास व कहानियों में से बिम्बात्मकता के कुछेक उदाहरण प्रस्तुत किए है।

"पर तब रात न थी, भर दोपहरी में मैंने एक चील्ह–दम्पत्ति को क्रीड़ा विभोर देखा था। मादा चोंच उठाये इसी की–कर की सुखी शाख पर बैठी थी, नर बार–बार उसके नजदीक आने का उपक्रम करता किन्तु मादा उसे कुरेद कर दूसरी शाख पर जा बैठती। बड़ी देर तक यही क्रम चलता रहा। नर चाहत के मारे मादा को अपनी चोंच से सहलाता पर मादा उड़कर साख बदल कर बैठ जाती। अचानक नर ने रूख पलटा, उड़ा एक झपाटे के साथ धरती पर उतर गया। जब लौट कर साख पर आया तो पंजों में एक पुष्ट चूहा दबोचे था। अब मादा खुद चलकर उसके पास आयी। चोंच से नर के पंख सहलाये और चूहा अपने पंजो से झपट लिया। (रावराजा)

इसी प्रकार ओझा जी के कथा–साहित्य में भी अनेक स्थान पर धवन्यात्मकता देखने को मिलती है, जिसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है, देखिये– "चरक चरक, चर चाक चलती है, कोई हण्डिया घड़ती है।" मनभरी कुनमुना रही थी। बैलों के गले में पड़ी घंटियाँ टुनटुना रही थी। आम दिनों में मिलखाराम घंटियों की टुनटुनाहट के साथ अलाप ले लेकर हीर रांझा के गप्पे गाया करता था। पर अब यह टुनटुनाहट खतरे की घंटी थी।" लेखक ने लिखा है जैसे– चरक–चरक, चाक–हण्डियां, घड़ती घंटिया, टुनटुना, सत्ताई, जिनावर आदि शब्दों में पूर्ण रूप से ध्वन्यात्मकता प्रयुक्त हुई है। उपन्यासकार ने कहीं–कहीं विषयानुकूल या परिस्थितियों को द्योतित करने के लिए एक जैसे ध्वनि वाले विभिन्न शब्दों का चमत्कारिक प्रयोग किया है। ऐसे शब्द अपनी ध्वन्यात्मकता से एक विशेष प्रभाव अभिव्यक्ति कौषल में उत्पन्न करते हैं। (सिराजी और अन्य कहानियाँ)

उपर्युक्त विवेचन का सारांश यह है कि ओझा जी का कथा–साहित्य कथ्यः एवं भाषा शैली की दृष्टि से विविध प्रयोग लिए हुए है। उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में मानवीय जीवन और समाज की विभिन्न समस्याओं पर ध्यान आकर्षित किया है तथा तत्कालीन समाज की वास्तविकता को रेखांकित किया है। उनका कथा साहित्य अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से पर्याप्त सफल है। वे अपनी बात को पाठकों तक पहुँचाने से सिद्धहस्त है। उनकी भाषा सुबोध सरल एवं संप्रेषणीय और अभिव्यक्तिगत कुशलता से परिपूर्ण है, तो शैली रोचक आकर्षक और पाठकों को बाँधने वाली है। 'रामकुमार ओझा' का कथा साहित्यः कथ्य एवं शिल्प' का अनुशीलन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ–

1. ओझा जी का कथा–साहित्य समस्त मानव समाज के लिए उपयोगी है क्योंकि उसमें मानवीय संवेदनाओं का केन्द्र में रखकर मानवीय जीवन के विविध पहलुओं पर यर्थाथ दृष्टि से विचार किया गया है।

2. ओझा जी के कथा–साहित्य के अध्ययन से सामान्य से सामान्य मनुष्य के मन में भी मानव समाज, धर्म, राष्ट्र एवं कर्त्तव्य के प्रति चेतना जाग्रत कर सकेगी।

3. रामकुमार ओझा के कथा–साहित्य पर किए गए इस अनुसंधान से आम आदमी की चिंताओं, समस्याओं और सामाजिक अंर्तविरोधों एवं जीवन में व्याप्त मानसिक अशांति की समस्या के समाधान में सहायता मिलेगी।

4. ओझा जी के समायानुसार आँचलिक आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक आदि विविध विषयों से सम्बन्धित कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं जिनमें मानववाद, स्त्रीविमर्श, धार्मिक एवं सामाजिक मूल्यबोध तथा समसामयिक चिंतन को अभिव्यक्ति मिली है, जिनसे समाज को एक नवीन दिशा प्राप्त होगी।

5. ओझा जी के कथा साहित्य पर किए गये शोध से हमारे समाज में हमारी उदात्त परम्पराओं, रीति–रिवाजों और मानवीय मूल्यों को समझने एवं आचरण में लाने के लिए प्रेरणा प्राप्त होगी।

6. ओझा जी के कथा–साहित्य पर किए गए अध्ययन से धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक क्षेत्र में पनप रही विसंगतियों और विडम्बनाओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त होगा।

7. हमारे समाज में निरंतर बढ़ रही सामाजिक दुष्पवृत्तियों जैसे–शोषण, आलस्य, पाखण्ड, ढ़ोंग, नैतिकता, सदाचरण के अभाव के प्रति उपेक्षा का भाव जाग्रत होगा और मानवीय मन में करूणा, समता, ममता, सदाचार जैसे मानवीय भाव उत्पन्न हो सकेंगे।

8. उक्त अनुसंधान से स्पष्ट है कि लेखक पात्रों की भावना, संवेदना और अंर्तद्वन्द्व को चित्रित करने में पूर्णतः सफल रहा है। उन्होंने अनेक घटनाओं के द्वारा बदलने हुए मानवीय जीवन की गहराई से रेखांकित कर अपने साहित्यकार होने के कर्त्तव्य को पूरा किया है। वे अपने कथा–साहित्य में मानवीय जीवन के विविध रंगों को चित्रित करने के उद्देश्य में पूर्णतः सफल हुए है।

9. शोध–ग्रन्थ के विस्तारभय के कारण मैंने ओझा जी की कृतियों का अध्ययन एवं उनसे प्राप्त समीक्षात्मक निष्कर्षों पर अपने विवेचन को यथा–सम्भव सीमित रखने को प्रयास किया है। मैंने यह कोशिश की है, इस अध्ययन में उनके कथा–साहित्य के विविध पक्षों को

रेखांकित किया जाए फिर भी मुझे लगता है। दार्शनिक, सांस्कृतिक और पर्यावरण आदि दृष्टि को लेकर ओर अधिक विचार किया जा सकता है।

10. ओझा जी के साहित्य पर अधिकाधिक शोध को प्रोत्साहन मिले यह शोध समाज के लिए संजीवनी का कार्य करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

11. ओझा जी का कथा साहित्य को अगर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में लागू किया जा सके तो विद्यार्थियों को नैतिक और सामाजिक जीवन में उन्नयन की दिशा प्राप्त हो सकेगी।

मेरे इस अनुसंधान कार्य से मानवीय जीवन और समाज को कोई नवीन दिशा प्राप्त सकी तथा शोधार्थियों को शोध को प्रेरणा मिल सकी, तो मैं अपने इस शोध कार्य को सार्थक समझूँगा। मैं आह्लादित हूँ, कि मुझे ओझा जी के कथा साहित्य को पढ़ने, समझने और अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। अंत में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची देकर शोध–प्रबन्ध पूर्ण किया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रन्थ –

1. अश्वत्थामा, रामकुमार ओझा, मानक पब्लिकेशन्स प्रा.लि. 3ए, वीर सावरकर, ब्लॉक, मधुबन रोड, शकरपुर, दिल्ली–110092, 1992
2. आदमी वहशी हो जाएगा, रामकुमार ओझा, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 1999
3. कौन जात कबीरा, रामकुमार ओझा, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 1999
4. सिराजी और अन्य कहानियाँ, रामकुमार ओझा, सम्पर्क प्रकाशन, 7/101 आर.एच. बी, हनुमानगढ़ संगम (राज.), 1992
5. निशिथ (काव्य–संग्रह), रामकुमार ओझा, तरूण साहित्य गोष्ठी, नोहर, 1996
6. रावराजा, रामकुमार ओझा, मानक पब्लिकेशन्स प्रा.लि. 3ए, वीर सावरकर, ब्लॉक, मधुबन रोड, शकरपुर, दिल्ली–110092, 1993

सहायक ग्रन्थ सूची –

1. आधुनिक साहित्य, नन्द दुलारे वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, 2007
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, 1973
3. इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1956
4. इण्डियन फिलॉसफी (दो खण्ड) मैकमिलन कं., लंदन, 1951
5. काव्य शास्त्र, डॉ. भागीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2015
6. काव्य के रूप, डॉ. गुलाबराय, दिल्ली प्रतिभा प्रकाशन, 1950
7. कामायनी, जय शंकर प्रसाद, डायमण्ड पैकेट बुक, 1935
8. कुछ विचार, प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1965
9. गद्य के प्रतिमान, डॉ. विश्वनाथ तिवारी, लोक भारती प्रकाशन, 1996
10. डॉ. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, 1968
11. डॉ. शशि भूषण सिंघल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ,
12. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, 2007
13. जातियों का अनूठापन (निबन्ध), धनंजय भट्ट "सरल" निबन्धमाला भाग, 2, 2004
14. धर्म और समाज, डॉ. राधाकृष्णन, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली
15. नियम, सुमित प्रताप सिंह

16. भगवान ने कहा था, सूर्यबाला, (मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचना–प्रेम जनमेजय), ग्रन्थ अकादमी, 2008
17. भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–1, ब्रजरतन दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 2007
18. राष्ट्रीय संस्कृति, अरविंद हुसैन, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 1987
19. रीतिकाव्य की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1993
20. लोहिया के विचार, राम मनोहर लोहिया सं. ओंकार शरद, लोकभारती प्रकाशन, 2008
21. वृहत प्रामाणिक हिन्दी कोश, रामचन्द्र वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, 2014
22. शैली–विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, 1997
23. संस्कृत शब्दार्थ कौसतु, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, 1928
24. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य में नारी का स्वरूप', श्रीधर शास्त्री प्रधानमन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग बहादुरगंज, इलाहाबाद
25. साहित्यालोचन, श्याम सुन्दर दास, लोक भारती प्रकाशन, 2017
26. सौन्दर्य शास्त्र, स्वरूप एवं विकास, डॉ. चन्द्रकला माटा
27. हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य, सं. श्री प्रेम नारायण टंडन, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ
28. हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृति, डॉ. नगेन्द्र, आत्मा एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली
29. हिन्दुस्तान की कहानी, जवाहरलाल नेहरू, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 2016
30. हिन्दी साहित्य का अतीत, डॉ. विश्वनाथ तिवारी प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन
31. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई
32. हिन्दी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, 1994

शब्द कोष –

1. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड क्लोरेडन प्रेस, 1960
2. मानक हिन्दी अंग्रेजी कोश, राममूर्ति सिंह, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 1974
3. मानक हिन्दी कोश, रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1964
4. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, तरिनीश झा व्याकरण वैदान्ताचार्य, लाला नारायण लाला पब्लिशर्स और बुक सेलर, इलराबाद, 1927
5. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर, रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1958

6. हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, 2000

कोष ग्रन्थ –

हिन्दी कोष ग्रन्थ –

1. अमर सिंह, अमर कोश, चौखम्भा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1998
2. कालिका प्रसाद (सम्पा.) वृहद् हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1992 (सप्तम् संस्करण)
3. द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी (आचार्य), संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, रामनारायण लाल बेनी प्रसाद, इलाहाबाद, 1967
4. नगेन्द्रनाथ बसु (डॉ.) हिन्दी विश्वकोष, बी.आर. पब्लिकेशन, दिल्ली, 1986
5. रमाशंकर शुक्ल (डॉ.), भाषा शब्दकोष, रामनारायण लाल बेनी प्रसाद, इलाहाबाद, 1921
6. रामचन्द्र वर्मा (सम्पा.) संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर, नगारी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1958
7. रामचन्द्र वर्मा (सम्पा.), प्रामाणिक हिन्दी कोष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000 (तृतीय संस्करण)
8. शिवराम वामन आप्टे, संस्कृत–हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1969
9. हरदेव बाहरी (डॉ.) श्यामलकान्त गर्ग (डॉ.) मुहावरा एवं लोकोक्ति कोश, विद्या प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 2001

संस्कृत कोष ग्रन्थ –

1. अथर्ववेद, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, 1976
2. ऋग्वेद, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (क्लसाड), 1957
3. ऐतरेयोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2025
4. छान्दोग्योपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2026
5. दण्डी, काव्यादर्श, मास्टर खेली लाल एण्ड सन्स, बनारस
6. प्रश्नोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2026
7. भर्तृहरि, भृतहरि शतक (सम्पा. गजेन्द्र सिंह) साधना पब्लिकेशन, दिल्ली, 2026
8. मम्मट; काव्यादर्श, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, 1921

अंग्रेजी कोष ग्रन्थ –

1. A.P. Cowie, Oxford Advanced Learner's Dictionary, Oxford Press, Madras, 1994.
2. Bhargav, Standard Illustrated Dictionary, Bhargav Book Depot., Varansi, 1965 (Twelfth Ed.)
3. Britannica Ready Reference Encyclopedia Britannica, New Delhi, 2004
4. Moniar Williams (Sir) A Sanskrit-English Dictionary, Oxford University Press, 156
5. Moniar Williams (Sir); A Dictionary, English and Sanskrit, Akhil Bhartiay Sanskrit Prishad, Lakhnow, 1957
6. Robert Allen (Ed.); The New Penguin English Dictionary, Penguin Books India, Delhi, 2000
7. Sally Wehmeier, Oxford Advanced Learner's Dictionary; Oxford University Press, Delhi, 2000 (Sixth Ed.)

पत्र–पत्रिकाएँ –

1. आलोचना, त्रैमासिक – नामवर सिंह, नई दिल्ली
2. कथेसर – परलीका (नोहर)
3. जागती जोत, बीकानेर
4. टाबरटोली – प.दीनदयाल शर्मा (हनुमानगढ़ जं.)
5. तद्भव, सं. हरि भटनागर – साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश
6. दैनिक भास्कर
7. नोहर टाईम्स, नोहर (हनुमानगढ़)
8. भटनेर, हनुमानगढ़ जं.
9. पंचशील शोध समीक्षा– डॉ. हेतु भारद्वाज, जयपुर
10. मरू–परिक्रमा, नोहर (हनुमानगढ़)
11. मधुमती, जनवरी, 2011
12. राजस्थान पत्रिका
13. वसुधा, सं. कमलाप्रसाद – निराला नगर, भोपाल
14. संबोधन, सं. कमर मेवाड़ी–चांदगोपाल काँकरोली
15. सृजन कुंज, श्रीगंगानगर

प्रकाशित शोध पत्र

16-

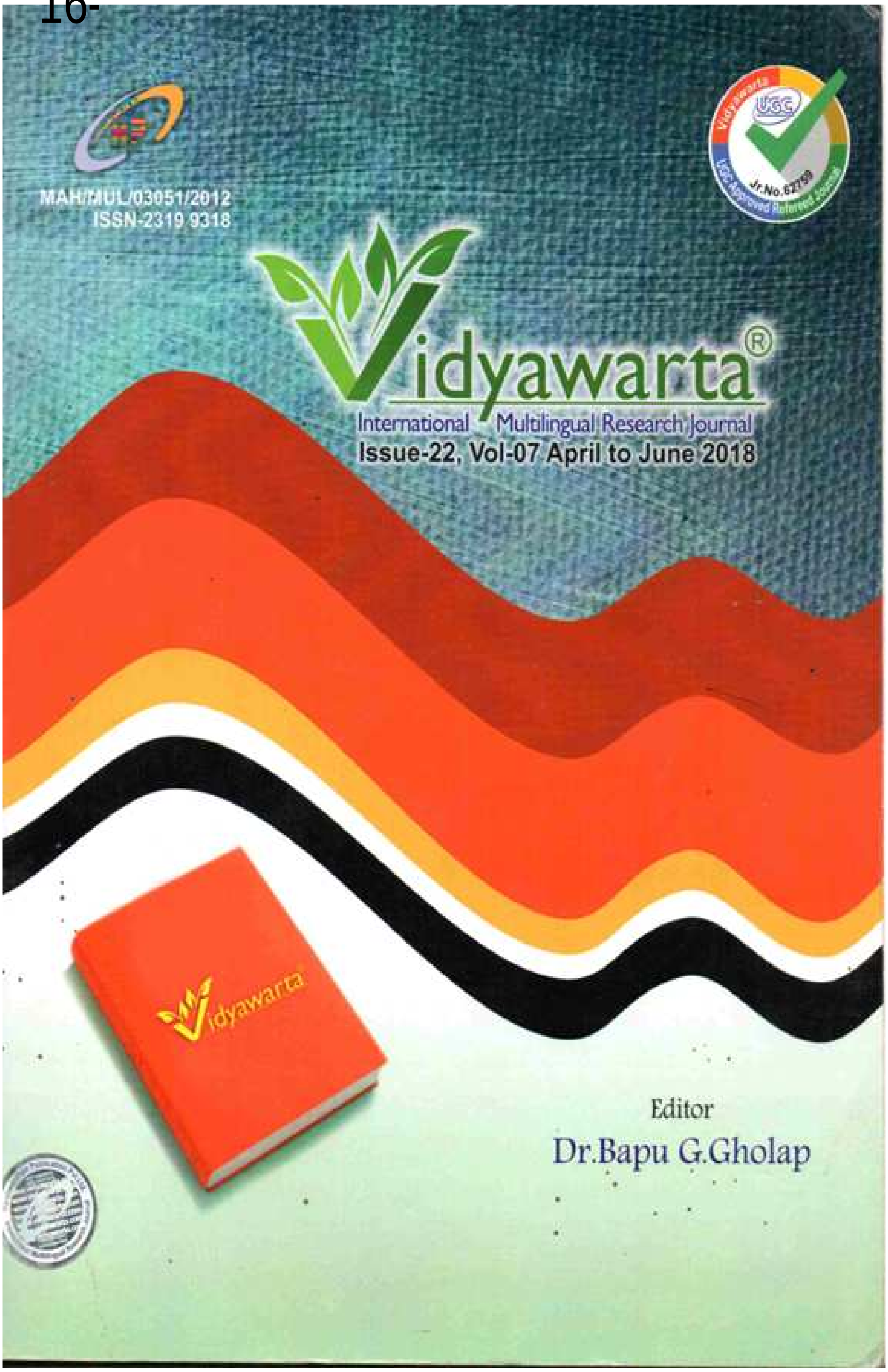
MAH/MUL/03051/2012
ISSN-2319 9318
UGC
Jr.No.62759
Vidyawarta®
International Multilingual Research Journal
Issue-22, Vol-07 April to June 2018
Vidyawarta
Editor
Dr.Bapu G.Gholap

17-

MAH/MUL/ 03051/2012 ISSN :2319 9318

आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

विद्यावार्ता™

April To June 2018
Issue-22, Vol-07

Editor
Dr. Bapu g. Gholap
(M.A.Mar.& Pol.Sci.,B.Ed.Ph.D.NET.)

विद्येविना मति गेली, मतीविना नीति गेली
नीतिविना गति गेली, गतिविना वित्त गेले
वित्तविना शूद्र खचले, इतके अनर्थ एका अविद्येने केले

-महात्मा ज्योतीराव फुले

❖ विद्यावार्ता या आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक त्रैमासिकात व्यक्त झालेल्या मतांशी मालक, प्रकाशक, मुद्रक, संपादक सहमत असतीलच असे नाही. न्यायक्षेत्र:बीड

"Printed by: Harshwardhan Publication Pvt.Ltd. Published by Ghodke Archana Rajendra & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor Dr. Gholap Bapu Ganpat.

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205
Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.
At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed
Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295
harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com
All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

18-

MAH MUL/03051/2012
ISSN: 2319 9318
UGC Approved Sr.No.62759
Vidyawarta®
April To June 2018
Issue-22, Vol-07

14) Mobilization of Human Resources for Economic Development ......
Dr Gyan Prakash Yadav || 69

15) ग्रामीण समुदायाच्या विकासात पंचवार्षिक योजनांचे योगदान : एक अभ्यास
पवार शितल शिवाजी, प्रा. डॉ. नजिर शेख || 75

16) जात व वर्ग विरहित समाज निर्मिती संदर्भातील डॉ. आंबेडकर यांच्या —
डॉ. एन.एस.डोंगरे || 79

17) द्विशिक्षकी शाळांमध्ये शिक्षकांना येणाऱ्या अडचणी
डॉ. श्री. निळकंठ || 84

18) रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्य विश्लेषण
कृष्ण कुमार || 88

19) भाषा की भाषा
डा. रचना बिमल || 95

20) संगीत कला में रसानुभूती
श्री. सुमेध बाबुराव सगणे || 99

21) 'विभिन्न व्यवसायो में कार्यरत महिलाओं के समायोजन और .....
डॉ. रितु शर्मा || 102

22) समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित पारिस्थितिक संकट
डॉ. सुरेश ए. || 106

23) 'महिला लेखिकाओं की आत्मकथाएँ और उपन्यासों में नारी .....
मुल्ला आदम अली || 109

24) सामाजिक सरोकारों में शिक्षकों की भूमिका का उनकी .....
गायत्री धूड़िया || 112

25) संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति तथा संयुक्त राष्ट्र सतत् विकास ......
डॉ. सुनीता श्रीवास्तव || 117

26) डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याएँ
अशोक पी. वाणवी || 122

https://sites.google.com/site/vidyawartajournal | http://www.vidyawarta.blogspot.com

MAH MUL/03051/2012
ISSN: 2319 9318 UGC Approved Sr.No.62759 Vidyawarta® April To June 2018 Issue-22, Vol-07 088

१५.कंटाळवाण्या वाटणाऱ्या विषयांच्या ई–लर्निंगच्या सी.डी. मुलांना दाखविल्या.

१६.शाळेतील जेष्ठ आणि तज्ञ शिक्षिका सौ. देवरे मॅडम यांच्याकडून मुलांचे वेळोवेळी प्रबोधन करून घेतले.

१७.'अभ्यासाचे व वेळेचे जीवनातील महत्त्व' या विषयावर जेष्ठ शिक्षकांनी मार्गदर्शन केले.

१८. मुलांना चांगले काम केले तर 'बक्षिस योजना' राबविली. त्याबद्दल त्यांचे कौतुक केले.

❑❑❑

18

रामकुमार ओझा की कहानियों का कथ्य विश्लेषण

कृष्ण कुमार,
शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

****

प्रस्तावना

कोई भी रचनाकार अपने परिवेश से अछूता नहीं रहता। ओझा जी एक ऐसे कहानीकार हैं, जिन्हें रेगिस्तान का प्रेमचन्द कहा जा सकता है। उनकी कहानियों में गाँव और शहर का अन्तर स्पष्ट बताया गया है, वहीं संस्कृति की दृष्टि से उन्होंने बहुत गहरा अध्ययन प्रस्तुत किया है। वे स्वंय ग्रामीण परिवेश से सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु शहरी संस्कृति को भी उन्होंने बहुत करीब से देखा है। उनकी कहानियाँ वास्तविकता से भरपूर है, जिनमें बनावटी पन कहीं दिखाई नहीं देता। इस शोध पत्र में उनकी कहानियों का कथ्य विश्लेषण किया जाए तो उसमें अलग–अलग बिन्दुओं का अलग–अलग महत्त्व अपने आप दिखाई देता है। शोधकर्त्ता ने उनकी कहानियों को अलग–अलग परिवेश में आंका है।

परिवेशगत कथा (ग्रामीण और शहरी)

ओझा जी की कहानियों में ग्रामीण और शहरी परिवेश अपनी–अपनी विशेषताओं को समेटे हुए है। उनके शब्दों में "कहानीकार कहानी में सत्य को काल्पनिक कथानक के माध्यम से प्रेषित करता है, पर उसके अन्तराल में वास्तविक जीवित पात्र वास करते हैं। हर कहानी में एक और कहानी होती है। हर पात्र के अंदर दूसरा पात्र वास करता है।"1 इसी तथ्य को ओझा जी की कहानी सत्यमेव जयते में देखा जा सकता है। गाँधी और साक्षी बाबा दोनों ऐसे चरित्र हैं, जिन्हें ओझा जी ने तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। गाँधी चाहे शहरी परिवेश के हों किन्तु उन्होंने गाँवों की जनता को

MAH MUL/03051/2012
ISSN: 2319 9318 UGC Approved Sr.No.62759 Vidyawarta® | April To June 2018 Issue-22, Vol-07 | 089

इस कद्र प्रभावित किया कि गाँधी के विषय में लोग शहरी और ग्रामीण का अंतर करना भूल गए। उनकी दृष्टि में गाँव हो या शहर जनता जनार्दन ही होती है। आजादी की लड़ाई में गाँव और शहर का भेद मिट गया वहाँ तो केवल आजादी की लड़ाई थी। एक ऐसी लड़ाई, जिसमें गाँव और शहर का भेद न किसी ने जाना और न ही जानने की इच्छा की। 'जन जनार्दन होता है और जब जन उद्वेलित होता है तो साक्षात रूद्र बनकर तांडव करने लगता है। आजादी की आखिरी लड़ाई का तांडव शुरू हो चुका था।'2

अकाल की विभीषिका जन–जन को प्रभावित करती है। वह न तो हिन्दू–मुस्लिम का भेद देखती है और न ही गरीब–अमीर में अंतर करती है। सूखे की एक रपट कहानी में ओझा जी ने जहाँ गाँव के रेगिस्तान को हू–ब–हू पाठक के सामने प्रस्तुत किया है वहीं उनके प्रतीक आज भी प्रासंगिक है। गाँव में अपनी नंगी आंखों से रेगिस्तान को निहारते लेखक का यह कथन बहुत प्रभावी बन पड़ा है– 'नंगी आंखों देखे जाने का आदि है रेगिस्तान। रंगीन चश्मा चढ़ाकर देखने वालों की आंखों मे खारीश पैदा करता है रेगिस्तान। खुली आंखों से देखे जाने पर रेगिस्तान का पूरा लेंडस्केप पुतलियों पर उतर आया। आश्विन बीतने को था, फिर भी सूरज में जेठ की तपिश भरी हुई थी। ध रती भटियारिन के भाड सी जल रही थी, गर्म धूल में भूनते चनों के समान रेत के वर्तुल उठ–उठ की भूतों के समान घूम रहे थे।'3

कहानीकार अपने गांव के परिवेश को कभी नहीं भूला पाता। उन्होंने स्पष्ट कहा है 'मेरा गाँव, बस इतने भर को, कि मैंने कभी वहाँ जन्म लिया था। होश सम्भालते ही उससे कट गया था और फिर उस मरूस्थलीय गांव से मेरा सम्बन्ध उतना ही रह गया था, जितना कि कटी नाल से किसी शिशु का रह जाता है। किन्तु जब सुना कि वह गांव भीषण सूखे की चपेट में है तो मेरे मन में एक मरियल से ममता उस उजाड़ खेड़े के प्रति जागी'4 इससे ओझा जी ने यह स्पष्ट किया है कि जन्म भूमि से किसी का भी रिश्ता कभी भी नहीं छूटता। चाहे व्यक्ति कहीं भी जाकर रहे अपने ग्रामीण परिवेश को, अपने गांव की संस्कृति को कभी भी नहीं भूला पाता। यही कारण है कि जब अपनी जन्म भूमि पर कोई संकट आता है तो अपनी अंतरात्मा में एक कचोट सी पैदा होती है और व्यक्ति के कदम अचानक ही अपने गांव की ओर बढ़ जाता है।

सूखे की एक रपट कहानी में अकाल के समय जहाँ कुत्तों का चित्रण लेखक ने किया है वहीं प्रतीक रूप में इंसानियत को नोचने वाले व्यक्तियों पर भी करारा व्यंग्य किया है। लेखक ने एक जगह जो शब्द चित्र प्रस्तुत किया है वह दर्शनीय है। 'सूखे में कुत्ते पुष्ट हो जाते हैं। कुत्ते कई किस्म के होते हैं। कुत्ते जो होते हैं वे तो होते ही हैं पर आदमियों में कुत्ते वे होते हैं जो सूखा–पीड़ितों के लिए जुटाई गई राहत सामग्री को बीच में ही खा जाते हैं। वहां एक कुत्ता, जो असल कुत्ता था, एक शिशु को अपने जबड़े में दबाये पूरे वेग से दौड़े जा रहा था। कई एक पुष्ट कुत्ते उसका पीछा किए जा रहे थे। शिशु भी हो सकता था, नवजात मेमना भी। हम फोटो उतारने में तल्लीन थे। नस्ल की पहचान करना हमारा काम भी न था।'5

स्पष्ट है कि ऐसा चित्रण अकाल में गांव की स्थिति का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करता है।

पारिवारिक कथा (ग्रामीण और शहरी)

रामकुमार ओझा परिवार के अन्तर्गत छोटी से छोटी समस्या को भी अपनी कहानी में उजागर करने में माहिर है। परिवार एक महान काव्य है तो उसकी कहानी एक छोटी कविता। खुद ओझा जी ने कबीर की कथनी के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया है कि हर कहानीकार का संवेदनशील और कवि होना भी जरूरी है, जिस कहानी में कुछ कविता नहीं होती वह कहानी नहीं सखविद्या होती है। वे शास्त्रीयता और कहानी में कोई सम्बन्ध नहीं देखते। सूखे की रपट कहानी में दाई एक ऐसा पात्र है जो उच्च और निम्न वर्ग के लोगों की आत्मीयता का पुल कही जा सकती है। वह चमारिन है लेकिन उच्च वर्ग के परिवारों में उसकी अच्छी पैठ है। वह अपनी स्थिति की अपेक्षा अपने कर्त्तव्य को अधिक महत्त्व देती है और यही कर्त्तव्य दूसरे परिवारों से उसके जुड़ाव को और मजबूत करती है। वहाँ ब्राह्मण और चमार का नहीं बल्कि दो परिवारों के बीच में एक सामन्जस्य करने वाली पात्र के रूप में उसे देखा जा

सकता है।

सरदी और साँप कहानी में विभिन्न पात्रों में पारिवारिक मनोविज्ञान खुलकर सामने आता है। जीतू और सलोनी के बीच में जो बातचीत होती है वह पारिवारिक मर्यादाओं को भी बताती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखा जा सकता है– "मेरा सहलाए ठेंगा, 'आह वह सूं–सूं करती औसारे की ओर बढ़ गयी। जीतू ने उचककर पीछे से ओढ़नी थाम ली तो इस दफा वह बल खा गई। 'छोड़ मेरी ओढ़नी। देख छोड़ता है कि नहीं– का....आ....आ....!

'ए नहीं, काकू को नहीं पुकारना।'

'तो जा, चुपचाप सो रह।– सलौनी के दांत भूरे बादल में बिजली के समान चमके। बिजली तो औसारे में जाकर छिप गई पर जीतू वहीं खड़ा उल्लू बना घूरता रहा। बड़ी देर तक वैसे ही खड़ा रहा और जब रिमझिम बूंदों से बिल्कुल सराबोर हो गया तो बुदबुदाया–'समझ में नहीं आता औरत जात ऐन वक्त पर पलट क्यों जाती है?'6

लेखक ने ऐसी कहानियों की भी रचना की है जिनमें पति और पत्नी के बीच सांस्कृतिक अंतराल स्पष्ट दिखाई देता है। दरख्त पर टंगी रोटी कहानी में मुख्य पात्र के द्वारा यह कहना इसी बात को दर्शाता है।

"डैडी खुद के प्रति आश्वस्त थे। सत्तासीनों के बदलाव से न नाराज थे न चिन्तित थे। वे तो ऐसे मंजे हुए नौकरशाह पुर्जे थे जो नई मशीन में आसानी से फिट हो सकते थे। पर मेरी मां के स्वभाव के प्रति वे आशंकित थे।'7

यहीं संस्कृति के अन्तर को पात्र के द्वारा इन शब्दों में भी अभिव्यक्त किया गया है "गनीमत थी कि गधे पालने का युग न था अन्यथा मेरा जन्म किसी गधे के थान में हुआ होता। माँ को जब–तब आज के तौर पर जेल जाना पड़ता और मुझे अनाथालय भिजवा दिया जाता।'16 ऐसी कहानियों में परिवार में एक–दूसरे के विचारों में होने वाला अन्तर लेखक ने बताया है वहीं आधुनिकता का व्यंग्य भी प्रस्तुत किया है। किस प्रकार से औरत और मर्द अलग–अलग रास्तों पर चलकर भी अपने परिवार का पालन करते हैं किन्तु उनके अलग–अलग रास्ते उनकी संतान के लिए कितने कांटे बो देते हैं इसका उन्हें ध्यान ही नहीं होता।

बंधवा कहानी एक ऐसी कहानी है, जिसमें ओझा जी ने गरीब परिवारों की गिरी हुई स्थिति को प्रस्तुत किया है। परिवार के लोगों को यह पता ही नहीं होता कि उन्होंने कितना कर्ज लिया है और वह कब तक उसे चुका पायेंगे। इसके लिए उन्हें उम्र भर ठेकेदारों के बंधुआ मजदूरों की तरह जीवन गुजारना होता है। वे अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कर सकते। गरीब लोगों की सामाजिक स्थिति के संदर्भ में ओझा जी ने इस कहानी में यह लिखा है– "सारी लेबर उत्कंठित और आतंकित। साहब जी सौगात देते हैं तो नत्थ भी उतार धरते हैं। कानाफूसी, सरगोशी, किस्सागोई का बाजार गर्म। मर्दों से ज्यादा लुगाई–लेबर में चर्चे। रामप्यारी चटखारों में खारी बात भी मीठी बनाती है। बड़ी स्यानी–सुलझानी लुगाई है रामप्यारी। जमाना देखे है, उम्र पाई है। कितने कैम्प साहबों की सोहबत में जवानी गलाई मगर अभी बुढ़ाई नहीं है। दुःख यही है कि साहब बाबुओं के टैन्टों में अब उसकी सीधी नियुक्ति नहीं होती। पर उसकी सप्लाई ही तो अभी कैम्प साहबों के टेन्टों की रंगीली रात है। कैम्प में सप्लाई शब्द का बड़ा चलन है, जैसे बाजार में दलाल का चलन है।'8

औरत के लिए उसका पति ही सब कुछ होता है। विवाह के बाद औरत के अपने सपने होते हैं, उन सपनों में सबसे ऊँचा स्थान उसके पति का होता है, जिसके साथ फेरे लेते समय वह सुख–दुख में साथ देने की कसम खाती है। ओझा जी की कहानियों में इस यथार्थ को देखा जा सकता है कि यद्यपि नारी अपने पति को हर तरह से सहयोग करना चाहती है किन्तु सामाजिक स्थिति उसे वह नहीं रहने देती, जो वह रहना चाहती है।

तेजू की लुगाई की मन की व्यथा को लेखक ने इन शब्दों में प्रकट किया है– "घर–दुवारी छूटी। मर्द–लुगाई बंधुआ बनकर कैम्प में आकर, लेबर भर बन रहे। रूखी–सूखी खायी। बार–त्यौहारी नहाई। पर यह हरामिन तन की लुवाई न गली, न ढली। रूप की चाह लुगाई की मुराद है। पर वह तो मनौती मनाती है। "हे बैमाता तू यह हरियाली ले और मेरे तन को बोदी बाड़ बना दे। पर तन है कि और सुथराई पाकर फटरा

MAH MUL/03051/2012 ISSN: 2319 9318 UGC Approved Sr.No.62759 Vidyawarta® April To June 2018 Issue-22, Vol-07 091

बने जा रहा है। अधिक न सही, जस का तस तो बना रहे।"9

यौवन तो वैसा बना रहा किन्तु अपने पति की बदलती हालत पत्नी से नहीं छुपी रहती। वह यह जानती थी कि उसका पति जितना स्वाभीमानी था अब वह उतना ही डरपोक हो गया है। तेज सिंह से वह तेजू बन गया है, उसकी मूछों के ताव ढीले पड़ गए हैं। वह तो खुद ही बंधुआ मजदूर है वह अपनी औरत की इज्जत नहीं बचा सकता। उसकी पत्नी रत्नी अपने ही परिवार में जवान मर्दो से नहीं डरी किन्तु अपने पति की नामर्दी से वह डरने लग गई। परिवार में वह टीन की टाटी में रहना अच्छा मानती है अगर उसका पति उसके परिवार में सच्चा मर्द हो। वह अपने पति पर खीझती भी है तथा उसकी परिस्थिति को भाँपकर उस पर तरस भी खाती है, किन्तु वह यह सोचती है कि उसका पति भी अब कैम्प के साहब की नजरें अपनी पत्नी की ओर मोड़ना चाहता है ताकि उसे भी धन और सुविधाएँ मिल सके।

शेष सब सुविधा कहानी में परिवार में पीढ़ियों की अन्तर्दशा का चित्रण लेखक ने बखूबी किया है। दादी अम्मा जब शहर में आती है तो अपने बेटे के बंद घर में उसे गांव की न तो वह खुली धूप दिखाई देती है और न ही मूंज की चारपाई का आनंद उसे मिलता है। वह तो प्रत्येक दिन यही सोचती है कि किसी तरह आज की रात कट जाए, भोर होते ही बेटे से कहूंगी की तेरी यह जयपुरी रजाई तुम लोग ही ओढ़ो, मुझे तो गांव का गुदड़ा ही ठीक है। यहाँ लेखक ने यह चित्रण किया है कि जयपुरी रजाई का रेशमी मखमल आधुनिकता में तो प्रगति का परिचायक हो सकता है किन्तु भरी सर्दी में वह कंपकंपी को नहीं रोक सकती। गाँव में भारी रजाई जितने अच्छे ढंग से सर्दी को रोकती है वैसा आनन्द इस रजाई में नहीं आता।

लेखक के अनुसार "हर रात की यही सांसत, अपने आप से बात, बतलावन। आधी रात के बाद दर्द गहराने लगता और भोर तक पोर-पोर में पैठ जाता। दादी तोसक का ढासना दे बैठ जाती। अपने मनुआ से बतियाती थक जाती तो हरि नाम की टेर लगाती पर जाड़े के ज्वार में हरि नाम की लहर डूब जाती तो दादी अम्मा अतीत में पहुँच जाती। गाँव का घर। कसा कसाया मूंज का पलंग। पलंग पर लोगड़, चीथड़ों भरा गदैला। सोती तो जाड़ा और घर ढूंढता।"10

निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट है कि रामकुमार ओझा किसी पारिवारिक परिवेश को अपने आप में समेटे हुए पूर्ण कहानी भले ही प्रस्तुत न करते हों, किन्तु अपनी प्रत्येक कहानी में कहीं न कहीं पारिवारिकता की झलक वे सशक्त शब्दों में प्रस्तुत कर देते हैं। यही स्थिति उनके ग्रामीण और शहरी परिवेश के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है क्योंकि लगभग सभी कहानियाँ इन्हीं तथ्यों की पूरक नजर आती है।

मध्य एवं निम्न वर्ग की कथा

जिस प्रकार ग्रामीण और शहरी, पारिवारिक और सामाजिक तथ्यों को लेखक ने अपनी कहानियों में उजागर किया है उसी प्रकार से उनकी कहानियों में विभिन्न वर्गों की कथाएँ भी दृष्टिगत होती हैं। सिराजी एक ऐसी कहानी है, जिसमें ग्रामीण सौन्दर्य दिखाई देता है तो शहरी आवरण के प्रति उसका अवनत भाव भी दिखाई देता है। लेखक के शब्दों में "पहाड़ पर कोई तिलिस्म नहीं होता। पहाड़ गलता है। पहाड़ गरजता है। गलने में सौन्दर्य की तरलता, गरजने में संगीत की मृदुता। मासूम मेमनों से बादल टहलते हैं, भाग-दौड़ करते हैं, आंख-मिचौनी का खेल खेलते हैं। अज्ञात यौवना प्रकृति परिधान बदलती है और बगल में जरूर कोई लड़की होती है। यही है पहाड़ का संवेदित आकर्षण, पर्वत का तिलिस्म।"11

लेखक ने निम्न वर्ग को दूसरों के डण्डे के नीचे काम करने के लिए ईश्वर की बनाई हुई कृति समझा है। वह तो सुबह के सायरन के बजते ही भागने वाला और अपनी मजदूरी के लिए दौड़-धूप करने वाला एक कमजोर प्राणी होता है। यदि वह रास्ते में भी चलेगा तो उसकी जिंदगी बचाने के लिए वह स्वयं भी बचता चलेगा। लेखक के शब्दों में "रास्तों पर चलता है तो कितने किस्म के वाहनों का शोर। भागम-भाग। जिन्दगी की दौड़ में जिन्दगी को बचाये सावधानी से चलता है। शोर-शराबे के बीच कुचलकर मर जाये तो शिनाख्त भी नहीं हो पाती। अलग-अलग की खोलियों में वर्षों में रहने वाले एक-दूसरे को नहीं पहचानते।

23-

शोर–शराबे में वह अपनी ही पहचान खो चुका है।"12

काम के समय में भी निम्न वर्ग के व्यक्ति को तो कुछ न कुछ सुनना ही पड़ता है। चाहे अस्थि पंजर में जान न हो किन्तु पेट भरने के लिए तो भागदौड़ करनी ही होती है। 'तभी एक लारी धधड़ धड़धड़ाती आयी। उसके बोदे अस्थि–पंजर खड़खड़ा रहे थे। ऐसी सड़ियल गाड़ी में तो परमेश्वर क्या आया होगा!' त्रिच...च्। त्री....च....र।' ड्राइवर ब्रेक भी लगाये जा रहा था और क्लीनर को धमका भी रहा था......'ओये... हरामी दे पुत्तर।"13

मुकामो कहानी में औरत की हाड़–तोड़ मेहनत और सारे परिवार के उत्तरदायित्व को सम्भालना निम्न वर्ग में प्रचलन सा ही हो गया है। लेखक के अनुसार "यह अकेली लुगाई गृहस्थी बसाये है। और जो अकेली लुगाई घर बसाती है, सुना है वह नागफणी होती है, मर्द के तई ऐसी लुगाई से काण मानने में ही त्राण, नहीं तो कांटो में उलझ जाने का अंदेशा"14

मध्यम वर्ग में भी जो व्यक्ति ईमानदारी से अपने बच्चों का जीवन निर्वाह करता है उन बच्चों के मन में भी अपने माँ–बाप के प्रति श्रद्धा का भाव सदैव बना रहता है। जब बाबा बोलने लगे कहानी में घर का बुजुर्ग अपने बच्चों से यह कहता है कि मुझे बाबा के पास जाने दो तो बेटा यह स्पष्ट कहता है– "मगर हमारे बाबा आप हैं। आपके संस्कार के हम साकार रूप हैं। हमें एक मौका चाहिए। और बाबा को मौका न मिला। परिपूर्ण बाबू फिर एक बार घर में थे।"15

इस कहानी में लेखक ने मध्यम वर्गीय परिवार में बुजुर्ग के मन की ऊहापोह को अच्छे ढंग से चित्रित किया है। वास्तव में परिपूर्ण बाबू तन से नाजुक, मन से भावुक और कर्म से कवि थे। उनका मन बार–बार घर से ऊबकर एक ऐसे वातावरण में जाने का प्रयास करता था, जहाँ उन्हें मानसिक शांति मिले। किन्तु वहां भी जो मिलता है वह एक ही प्रश्न करता है कि आप यहाँ कैसे? ऐसी ही एक बानगी इन पंक्तियों में दिखाई देती है–

"तभी कोई अंधेरे को चीरते हुए आया। चौकीदार था। दोनों ने एक–दूसरे को पहचाना। 'बाबूजी आप, इतनी रात गये, इस सरदी में यहां?' बाबूजी न बोले तो खुद उत्तर तलाश लिया। शायद लेखकों के ऐसे जानमारू वातावरण से ही कोई प्रेरणा मिलती हो। मैं अपढ़ क्या समझूं।– और चौकीदार खिसग गया। इस ख्याल से कि बाबूजी की एकाग्रता भंग न हो।"16

ओझा जी की कहानियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि उन्होंने निम्नवर्गीय व्यवस्था पर अधिक ध्यान दिया है। सम्भवतः उनकी संवेदना निम्न वर्ग के प्रति अधिक परिपुष्ट हुई है। उन्होंने अपने आस–पास के वातावरण से ही इन पात्रों को देखा है तथा उन पर पूरा प्रकाश डाला है। उनकी कहानियों में वर्ग भेद वास्तविकता में प्रस्तुत हुआ है। यदि निम्न वर्ग और मध्यम वर्ग में किसी बात पर कहा सुनी भी हुई है तो उसे भी उन्होंने छुपाने का प्रयास नहीं किया है। हाँ एक बात अवश्य है कि कहीं भी नारीगत समस्या से उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा है।

सांस्कृतिक संदर्भ

रामकुमार ओझा की कहानियों के संदर्भ में उन्हीं के शब्दों में यह कहा जा सकता है "कहानी एक ऐसी विधा है जिसमें प्रेषक (लेखक) और ग्राहक (पाठक) का सीधा सम्पर्क स्थापित होता है। कहानीकार कहानी में सत्य को काल्पनिक कथानक के माध्यम से प्रेषित करता है, वह उसके अन्तराल में वास्तविक जीवित पात्र वास करते हैं। हर कहानी में एक और कहानी होती है। हर पात्र के अन्दर दूसरा पात्र वास करता है।"17 जब सांस्कृतिक परिवेश की बात करें तो लेखक ने कबीर की उलटवासी से भी बहुत कुछ ग्रहण किया है और प्रत्येक पात्र के मन में उठने वाले सांस्कृतिक ऊहापोह को भी देखा है। संस्कृति के प्रति मन में उठने वाले संघर्ष को लेखक ने बहुत बारीकी से देखा है तथा उसे अपनी कहानियों में स्थान दिया है।

संस्कृति विचारों में स्वच्छंदता देती है, सोचने की शक्ति देती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए रामकुमार ओझा ने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि "विचारों की स्वच्छन्दता कहानीकार की श्रेष्ठता की निशानी है। मनोभावों के उद्घलेन के अलावा श्लीलता अश्लीलता कुछ नहीं है। बात–बात में चरित्र, मर्यादा की दुहाई देने वाले ही अक्सर दुराचारी होते हैं, किन्तु मनुष्य और पशु समाज के बीच अंतराल बनाये रखने के लिए कुछ मानवीय मर्यादाओं की उलंघना भी नहीं की

24-

जा सकती।"18 इन्हीं मर्यादाओं की पालना उन्होंने अपनी कहानियों में की है।

भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र सत्यमेव जयते हैं। गांधी जी ने इसी मंत्र के बल पर सारी दुनिया को अपने व्यक्तित्व से परिचित कराया। सत्य जब साथ में होता है तो वह जन–जन को प्रभावित करता है। वह स्वयं की पहचान कराता है और इसी पहचान से व्यक्ति अपनापन भूलकर दूसरे को भी अपने में ही देखने लगता है।

लेखक के अनुसार "एक ओर गांधी बाबा का नारा। 'भारत छोड़ो!' और दूसरी ओर सत साक्षी बाबा का जाप 'सच्चे तेरी आस! साक्षीबाबा की तनतन्त्री अन्तर्मुखी होकर बोल रही थी तो गांधी बाबा की आवाज जन–जन की वाणी से मुखर हो रही थी।"19

भारतीयों में करो या मरो की प्रेरणा संस्कृति के मूल मंत्र सत्यमेव जयते के आधार पर ही आयी थी। लेखक के शब्दों में "भारत भारतीयों 'करो या मरो।' करने के मसले पर सब सहमत थे, पर मरने के सवाल पर मतभेद था। मस्त फकीरा था तो गांधी बाबा राजनीति विशारद था। जनता का यह मत था–अंग्रेजों की कमर दूसरे महायुद्ध में टूट चुकी है अब तो एक धक्के भर की जरूरत है वह उछल कर सात समुद्र पार जा गिरेगा। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद नारों का अर्थ बतलाने वाला अगुआ कोई न था। कर्मठ नौजवानों के अधिकांश ने यही अर्थ निकाला था। "हब जेल जाना व्यर्थ है चक्की चलाना आत्मताड़ना है अब तो लड़ कर कुछ करना है।" व्याख्या में मतभेद था पर लड़ सब रहे थे। जेल जाने वाले जेल गये। शेष सैलाब की तरह फैल गए।"20

श्री रामकुमार ओझा बदलते परिवेश में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में जो सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं उन पर भी अपनी कहानियों में पूर्ण प्रकाश डालते हैं। अपनी कहानी चौपाटी का चेतक और हुसैन का घोड़ा में उन्होंने इस चित्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया है

कस्बे न भारत होते हैं, न इंग्लिस्तान बन पाते हैं। यहाँ से उल्टे बांस बरेली जाने लगते हैं। पहले पचास–साठ हजार की आबादी वाली बस्तियाँ शहर कहलाने लगती थीं, उससे पहले चार–पांच हजार की जनसंख्या वाले प्लेटों और अफलातून की कल्पना के नगर–राज्य तक होते थे। अब तो बस, बीस लाख वाली आबादी वाले शहर तो मान लिये जाते हैं पर वहां कॉरपोरेशन नहीं बनती।

खैर, कनखजूरा शहर न बना हो पर वहां से गांवों वाली शांति सहकारिता पलायन कर चुकी थी। शनैः शनैः वाटर सप्लाई, सड़कों का कोलतारीकरण होने लगा, हो गया। फोन, टी.वी. ऑडियों, वीडियो, श्रृंगार प्रसाधन सामग्री से नया बना बाजार पट गया तो इश्की का बाजार भी काफी गर्म हो गया। कुड़ियाँ, मुण्डे सारे सड़क पर गाने लगे–

"पपियाँ जफियाँ पालें हम।
अंखियों से आंख मिला लें हम।"
"राम जाने, राम जाने, राम जाने
कहते हैं लोग मुझे राम जाने
कहते हैं क्यों राम जाने?"

पर राम तो जियारत करने निकल गए थे।

हजारों स्वतंत्र कृषक भूमिहीन काश्तकार बन गये। कुछ गांवों में गये पर अधिकांश शहरों की ओर दौड़े। वन वे मार्ग पर एक ओर से कस्बे वाले शहरों की ओर जा रहे थे दूसरी ओर से शहर वाले कस्बे के रूख आ रहे थे।

जब सारे संसार में सांस्कृतिक, औद्योगिक आदान–प्रदान हो रहा था तो कस्बा कनखजूरा ही उससे वंचित कैसे रह पाता। शहर वाले जो भी आते कोई स्कीम लेकर आते, वे कस्बे का कच्चा माल शहर और शहर का तैयारी माल कस्बे तक पहुँचाते थे। इस दरमियान उद्योग चल निकले जिससे छोटे गृह–उद्योग पिटने लगे। टीले को नाजायज ढंग से कब्जाने के जुर्म में वहां से दूरदर्शी को खदेड़ दिया गया और वहां एक यांत्रिक बूचड़खाना खुल गया। मोमिन और पुजारी ने मिल कर ऐसा पासा फेंका कि ना खून गिरा, ना सर कटा और बाड़ा कबीर चौरा को दोनों मजहब के मुखियाओं ने आधा–आधा बांट लिया।"21

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहना उपयुक्त है कि श्री रामकुमार ओझा पुरानी और नई पीढ़ी के बीच में आने वाले अन्तराल को अपनी कृतियों से पाटने का कार्य करते हैं। उन्होंने जो कुछ भी कहा है वह स्पष्ट कहा है तथा उनकी वाणी कभी भी बनावटीपन को नहीं

25-

अपनाती। उनकी प्रत्येक कहानी किसी न किसी यथार्थ को अपने आप में समेटे हुए है। केवल काल्पनिक दृश्य दिखाना उनका मकसद नहीं, उन्होंने तो अपनी कहानियों में प्रत्येक पात्र को उसकी स्थिति के अनुसार पाठक के सामने लाकर खड़ा कर दिया है। कहीं भी और किसी भी रूप में वे अपने पात्रों को बढ़ा–चढ़ा कर पेश नहीं करते।

ओझा जी ने सामाजिक यथार्थ का चित्रण अपनी कहानियों में किया है वहीं राजनीतिक उठाव पटक तथा नेताओं की स्वार्थपरता को उन्होंने अपनी कहानियों में बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। लगता है कि गांव में हिन्दू और मुसलमान एक साथ भाई–भाई के रूप में रहते थे, उन्हें आज क्या हो गया है? इस पर लेखक अपने ढंग से हमें बताता है। एक बात स्पष्ट है कि नारी की पीड़ा को उन्होंने अपनी कहानियों में जिस ढंग से प्रस्तुत किया है वह अन्य लेखकों के लिए प्रेरणादायी है। सरकार के विकास कार्यक्रम चलते हैं उनमें मेहनत मजदूरी करने वाली औरतों की क्या स्थिति होती है तथा उनके पति अपनी गरीबी की अवस्था में कितने विवश हो जाते हैं यह सब ओझा जी ने बहुत करीब से अनुभव किया है।

विषय की विविधता उनकी कहानियों की एक अलग पहचान बनाती है। कहीं भी एक ही रूढ़ी में वे बंधे हुए दिखाई नहीं देते। अंग्रेजी हकुमत हो या हमारे देश का स्वशासन, ओझा जी ने बिना किसी लार–लपेट के अपने ढंग से सम्बन्धित कथ्य को सफलता से प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ

1. भूमिका, कौन जात कबीरा, रामकुमार ओझा, पृ.सं. 4
2. सत्यमेव जयते, पृ. सं. 5
3. सूखे की एक रपट, पृ. सं. 18
4. वही, पृ. सं. 18
5. वही, पृ. सं. 19
6. सरदी और साँप, पृ. सं. 28
7. दरख्त पर टंगी रोटी, पृ. सं. 87
8. वही, पृ.सं. 86
9. बंधवा, पृ.सं. 89
10. वही, पृ. सं. 90
11. शेष सब सुविधा, पृ.सं. 49
12. सिराजी, पृ. सं. 9
13. आदमी वहशी हो जाएगा, पृ. सं. 14
14. वही, पृ. सं. 10
15. मुकामो, पृ. सं. 15
16. वही, पृ. सं. 141
17. वही, पृ. सं. 139
18. कबीर की कथनी, रामकुमार ओझा, पृ.सं
19. वही
20. सत्यमेव जयते, पृ.सं. 5
21. कौन जात कबीरा, पृ.सं. 86–87

❑❑❑

26-

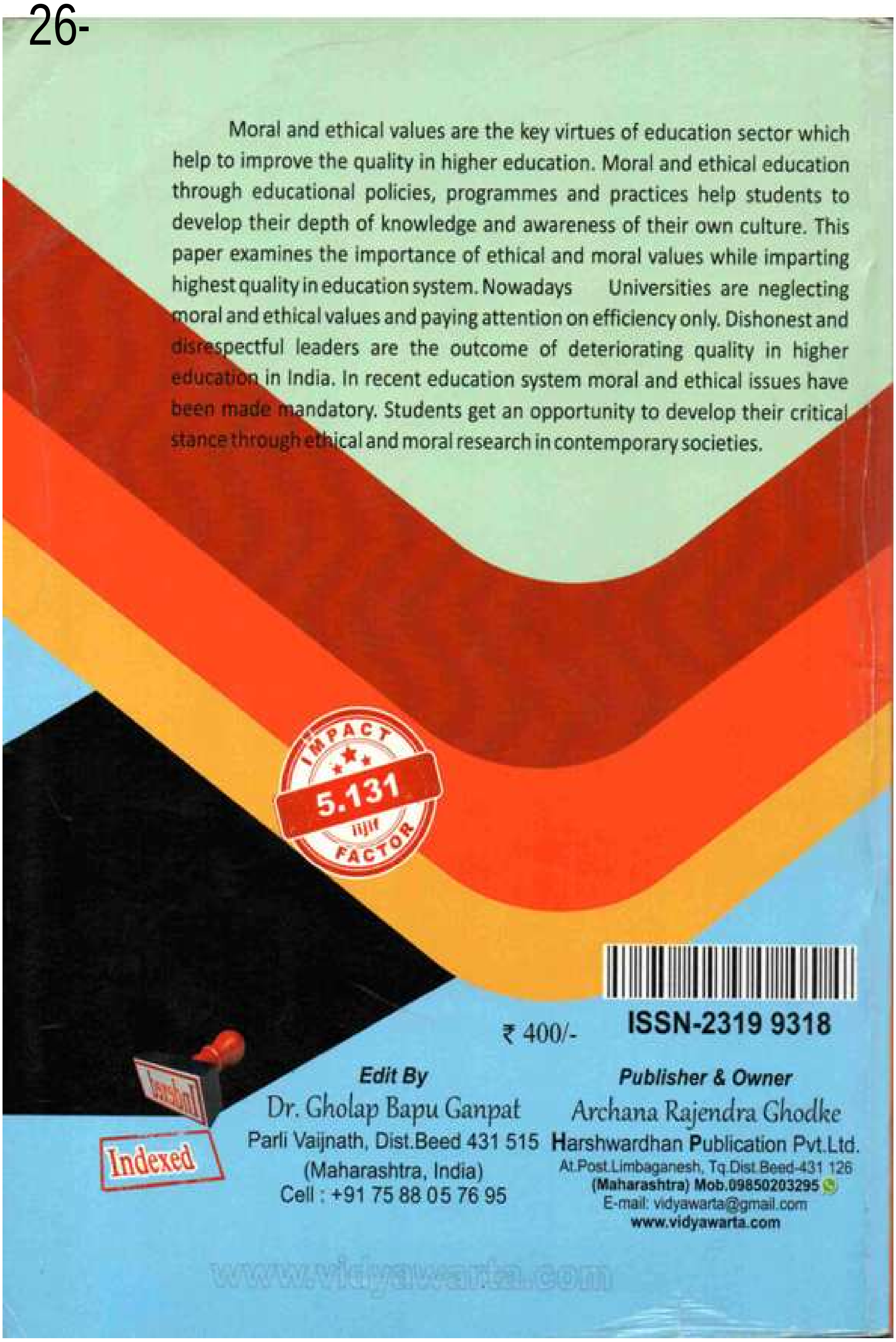

Moral and ethical values are the key virtues of education sector which help to improve the quality in higher education. Moral and ethical education through educational policies, programmes and practices help students to develop their depth of knowledge and awareness of their own culture. This paper examines the importance of ethical and moral values while imparting highest quality in education system. Nowadays Universities are neglecting moral and ethical values and paying attention on efficiency only. Dishonest and disrespectful leaders are the outcome of deteriorating quality in higher education in India. In recent education system moral and ethical issues have been made mandatory. Students get an opportunity to develop their critical stance through ethical and moral research in contemporary societies.

IMPACT 5.131 iijif FACTOR

Indexed

₹ 400/-
ISSN-2319 9318

Edit By
Dr. Gholap Bapu Ganpat
Parli Vaijnath, Dist.Beed 431 515
(Maharashtra, India)
Cell : +91 75 88 05 76 95

Publisher & Owner
Archana Rajendra Ghodke
Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.
At.Post.Limbaganesh, Tq.Dist.Beed-431 126
(Maharashtra) Mob.09850203295
E-mail: vidyawarta@gmail.com
www.vidyawarta.com

www.vidyawarta.com

27-

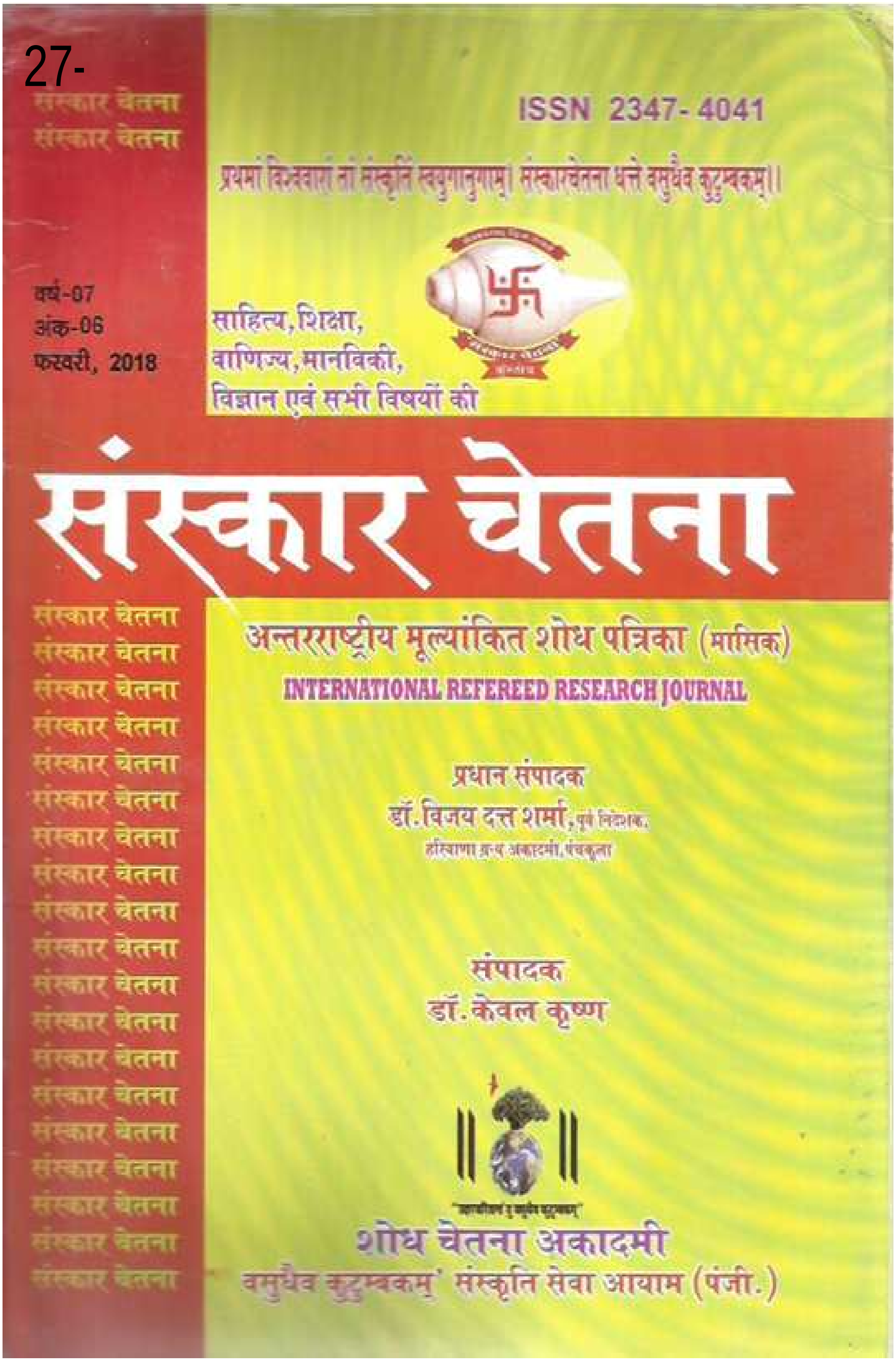

ISSN 2347-4041
प्रथमां विश्ववारां तां संस्कृतिं स्वयुगानुगाम्। संस्कारचेतना धत्ते वसुधैव कुटुम्बकम्।।
संस्कार चेतना
संस्कार चेतना
वर्ष-07
अंक-06
फरवरी, 2018
साहित्य, शिक्षा,
वाणिज्य, मानविकी,
विज्ञान एवं सभी विषयों की
संस्कार चेतना
अन्तरराष्ट्रीय मूल्यांकित शोध पत्रिका (मासिक)
INTERNATIONAL REFEREED RESEARCH JOURNAL
प्रधान संपादक
डॉ. विजय दत्त शर्मा, पूर्व निदेशक,
हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला
संपादक
डॉ. केवल कृष्ण
शोध चेतना अकादमी
'वसुधैव कुटुम्बकम्' संस्कृति सेवा आयाम (पंजी.)

28

✓ प्र[illegible]वेदविद्यायाः सामयिकमहत्त्वम्

मनु आर्या — 186-188

✓ Impact Of Social Networking Sites For Academic Purpose And On Society: A Critical Study

Seema Saini — 189-193

✓ 'स्वामी विवेकानन्द : कर्म योग'

डॉ॰ कंचन गोयल — 194-198

✓ हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्त्री : संघर्ष और यातना

राखी देवी — 199-202

✓ ''आधुनिक युग में श्रीमद्भगवद्गीता की सार्थकता''

महेश दत्त शर्मा — 203-206

✓ ब्रह्मचारी व गृहस्थी रूप में श्रीहनुमान्

Nitish Sharma — 207-211

✓ रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य में कथ्य विश्लेषण

डॉ. आदित्य कुमार गुप्ता, कृष्ण कुमार — 212-214

✓ स्त्री सशक्तिकरण के परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्त्रियों की प्रेरणास्रोत: 'जीजीबी उपन्यास'

कामिनी देवी — 215-219

✓ हरियाणा के नुक्कड़ नाटकों में चरित्र-चित्रण एवं लोकवाद्य यंत्रों के विलुप्त होने के कारण : हरियाणा के प्रमुख रंग व्यक्तित्वों की नज़र से

डॉ॰ अजय कुमार शर्मा — 220-225

✓ करियाम सिंह सन्धू की कहानियों में कृषक-त्रासदी की मार्मिक अभिव्यंजना

डॉ. किरनदीप सिंह, डॉ. विनोद कुमार — 226-230

✓ रामचरितमानस' की प्रासंगिकता:मेरे सपनों का भारत

डॉ॰ श्याम सुन्दरी — 231-234

✓ प्रो. मोहिनी टाया के काव्य में चित्रित भारतीय संस्कृति

सुमन रानी — 235-237

✓ Imposition of President's Rule in Indian States From 1950-2006

Amandeep kaur — 238-248

✓ कृष्णकुतूहलम् नाटक में श्रीकृष्ण

विवेक शर्मा — 249-253

✓ Value of Emotions in Our Life

Gurpreet Kaur — 254-255

✓ आधुनिक युग में संगीत शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ और नवीन प्रयोग

तरूण जोशी — 256-260

✓ Reinventing the self in Different Culture in Bharti Mukherjee's *Jasmine* and *The Tree Bride*

Pinki Yadav — 261-263

✓ प्राचीन उत्तर भारत में, उच्च शिक्षा के प्रमुख केंद्र : एक विवेचन (तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला के विशेष संदर्भ में)

डॉ. गीता सिंह, प्रवीण चौबे — 264-270

29-
ISSN : 2347-4041
Impact Factor 2.003
संस्कार चेतना अन्तरराष्ट्रीय मूल्यांकित शोध पत्रिका
वर्ष 7, अंक 6, फरवरी 2018

रामकुमार ओझा के उपन्यास साहित्य में कथ्य विश्लेषण

कृष्ण कुमार
शोधार्थी
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास

आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। उपन्यास हिन्दी गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा है, जिसका उदय सन् 1870 से माना जाता है। उपन्यास शब्द शब्दों के योग से बना है उप और न्यास। उप का अर्थ है गौण और न्यास का अर्थ है स्थापना करना। उपन्यासकार इस साहित्यिक विधा द्वारा अपने विचारों की गौण सृष्टि करता है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास का आविर्भाव उन्नीसवी शती के अंतिम दौर में हुआ। आधुनिक काल की विकसित गद्य विधाओं में उपन्यास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अंग्रेजी और बांग्ला उपन्यासों की लोकप्रियता से हिन्दी साहित्य में इस विधा का श्रीगणेश हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती में प्रकाशित एक निबन्ध 'उपन्यास रहस्य' में इस बात को स्वीकार किया है कि उपन्यास के प्रचलन, विकास एवं सृजन का श्रेय पश्चिमी देशों के लेखकों को ही है, जिससे प्रेरणा लेकर हिन्दी में भी उपन्यास रचना की जाने लगी है।

हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास को लेकर प्रायः विद्वानों में मतभेद रहा है। इस सम्बन्ध में जिन दो उपन्यासों को लेकर विद्वानों में मतभेद है वे श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत भाग्यवती सन् 1877 तथा लाला श्रीनिवास दास कृत परीक्षा गुरु, 1882। प्रथम उपन्यास में भाग्यवती के चरित्र में सद्व्यवहार और सेवा के महत्त्व पर बल देते हुए लेखक की सुधारवादी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। दूसरे स्थान पर वे श्रद्धाराम फुल्लौरी के भाग्यवती का निर्माण करते हैं। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है।

'उपन्यास' शब्द का अर्थ

उपन्यास विधा हिन्दी साहित्य के लिए सर्वथा एक नई देन है। हिन्दी की सबसे बड़ी लोकप्रिय गद्य-विधा उपन्यास है। 'उपन्यास' शब्द संस्कृत के अस् धातु से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ 'रखना' होता है। इसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग तथा 'ध' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। इस शब्द का अर्थ 'सम्यक् रूप से उपस्थापन' ऐसा होता है। संस्कृत, अंग्रेजी शब्दकोश में 'उपन्यास' के कई अर्थ है, जैसे-उल्लेख, अभिकथन, सम्मति, उद्धरण, सन्दर्भ। इसके अतिरिक्त संस्कृत नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में 'उपन्यास' शब्द का अर्थ भरतमुनि के अनुसार 'उपन्यास प्रसादनम्' किया गया है।

उपन्यास की परिभाषा

हिन्दी के भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों, साहित्यकारों ने अपने-अपने अनुसार विविध प्रकार की उपन्यास की विविध परिभाषाएँ दी है, जिनमें प्रसिद्ध भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्न प्रकार है-

अज्ञेय के मतानुसार- ''उपन्यास व्यक्ति का अपनी परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध की अभिव्यक्ति के उत्तरोत्तर विकास का प्रतिनिधित्वकरण है।'' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- ''कथा कहानी की पुस्तक जिसे प्रकाशक-लेखक उपन्यास कहना पसंद करे।''

डॉ0 श्याम सुन्दर दास के अनुसार- ''मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा उपन्यास है।''

30-

चरित्र प्रधान उपन्यास

ऐसे उपन्यासों में घटनाओं के स्थान पर पात्रों की प्रधानता रहती है। घटनाएँ गौण होती है। चरित्र प्रधान होने के कारण इसका कथानक प्राय: शिथिल और असंगत होता है। इनमें पात्रों के चारित्रिक विकास पर ही पूर्ण ध्यान दिया जाता है। पात्र घटनाओं से पूर्ण, स्वतन्त्र रहते हैं। वे स्वयं परिस्थितियों के निर्माता होते है न कि परिस्थितियाँ उनकी। पात्रों के चारित्रिक गुण-दोष आरम्भ से अन्त तक एक रस बने रहते है।

ऐतिहासिक उपन्यास

इस प्रकार के उपन्यासों में भी पात्रों और घटनाओं का समन्वित रूप मिलता है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता इन उपन्यासों में देशकाल का चित्रण है। इन उपन्यासों का यह प्राण है। यदि ऐसे उपन्यासों में देशकाल का पूर्ण और संगत चित्रण नहीं होता तो ऐसे उपन्यासों का कोई मूल्य नहीं है। इनकी ऐतिहासिकता का रक्षक यही देशकाल का चित्रण है। देशकाल के चित्रण से अभिप्राय है कि जिस देश अथवा स्थान का और इतिहास के जिस काल-खण्ड का वर्णन हो, वह उचित यथार्थ और इतिहासपरक होना चाहिए।

आँचलिक उपन्यास

हिन्दी में उपन्यास को आँचलिक उपन्यास की संज्ञा देने वाले सर्वप्रथम फणीश्वरनाथ रेणु है। उन्होंने अपने पहले उपन्यास 'मैला आँचल' की भूमिका में लिखा है- ''यह है मैला आँचल' एक आँचलिक उपन्यास है। कथानक पूर्णिया.........मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक बनाकर इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।''

1954 में लेखक की इस घोषणा से हिन्दी साहित्य में 'आँचलिक उपन्यास' शब्द प्रचलित एवं प्रसिद्ध हुआ। 'आँचलिक उपन्यास' को हिन्दी कथा साहित्य की एक मौलिक और नवीन उपलब्धि माना जा सकता है, क्योंकि ऐसे उपन्यासों में क्षेत्र विशेष ही स्थानीय रंग के साथ उसका सम्पूर्ण जनजीवन अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ सजीव और साकार हो उठता है।

संवेदना शब्द का अर्थ

'संवेदना' शब्द आज मनोविज्ञान और साहित्य दोनों के क्षेत्रों में प्रचलित है। दोनों क्षेत्रों में इस शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ लिए जाते है। मनोविज्ञान में 'संवेदना' का अर्थ- 'ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव' होता है। 'साहित्य' में इस शब्द का अर्थ 'मानव-मन की गहराइयों में छिपी उदात्त वृत्तियाँ, ऐसा एक विशाल अर्थ लिया जाता है, जो ज्ञानेन्द्रियों की अनुभूतियों तक ही सीमित नहीं है।

वैसे तो 'संवेदना' शब्द मूलत: संस्कृत भाषा का है, जो संवेदन शब्द के मूल रूप से बना है, जिसमें 'आ' प्रत्यय लगने से यह 'संवेदन' पुरूष-शब्द, स्त्रीलिंग शब्द संवेदना बन गया है। संस्कृत शब्दकोश में इस संवेदना शब्द की परिभाषा इस प्रकार है- जीवन का व्यापक अनुभव ज्ञान या अनुभूति ही संवेदना है। अत: संवेदना व्यापक अर्थ में अनुभूति का भी व्यंजक शब्द है। इस संस्कृत शब्द संवेदना का अर्थ हिन्दी शब्द कोश में डॉ0 हरदेव बाहरी ने इस प्रकार दिया है- "सुख-दु:ख की अनुभूति या प्रतीति-संवेदना कही जाती है।"

डॉ0 मुकुंद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो- ''साहित्यकार संवेदनशील मनुष्य होता है। वह समाज में रहता है। अत: सामाजिक परिस्थितियाँ उसे प्रभावित करती है। अत: वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की किसी भी विधा को क्यों न चुने, उसमें युग-चेतना के स्वर उभर ही आते है। किसी युग-विशेष की चेतना में भी कई धाराएँ पाई जाती है। इसका कारण यह है कि एक ही युग में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा वह उनकी निजी संवेदना के अनुरूप ग्रहण की जाती है। संवेदना के स्तरों में विविध स्तर होने के भी कई कारण है, जिनमें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ प्रमुख है। लेखक की एक अलग संवेदना होती है जिसके द्वारा वह साहित्य में अपने को अभिव्यक्त करता है।''

31-

महादेवी वर्मा ने 'अतीत के चलचित्र' में अपने बचपन के अतीत के चित्र रेखांकित किये हैं। शैशव में ... खोई हुई महादेवी जी को रामा ने जब हलवाई की दुकान पर पाया था ''मुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते रामा के प्राण कंठगत हो रहे थे। संध्या समय जब सबसे पूछते-पूछते बड़ी कठिनाई से रामा उस दुकान के सामने पहुँचा। तब मैने ... के बिन्दु ... मेरा कोई अंग मेले में छूट गया है।'' इसी प्रकार कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर ने भी अपने 'माटी हो गई सोना' के रेखाचित्रों को कलेजे के खून से लिखे हैं। उन्होंने स्वयं कहा है, ''इन कथाओं के पात्र मेरे लिए कभी कोरे पात्र नहीं रहें, वे मेरे निकट सदा सजीव बन्धु रहे है। मैंने उनके साथ बातें की हैं, मै उनके साथ रोया-हँसा हूँ और हँसी की बात नही, फाँसी भी चढ़ा हूँ, जीते जी जला भी हूँ। शायद कोरा अहंकार ही हो, पर मुझे सदा यही लगा है कि वे इतिहास के (मारिसेंट और सांवज एक फ्रैंच कहानी के) कंकाल थे, मैंने उन्हें अपना रक्त-माँस देकर यों खड़ा कर दिया है। इस स्थिति में भारत की नयी पीढ़ी को जब आज उन्हें भेंट कर रहा हूँ, तो अपना रक्त ही तो भेंट कर रहा हूँ।''

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु युग के साथ ही हिन्दी साहित्य नवजागरण का प्रादुर्भाव होता है। इस युग में साहित्य के दोनों पक्षों गद्य और पद्य का अभूतपूर्ण विकास हुआ जिसमें एक नवीन चेतना दिखाई देती है। भारतेन्दु से हिन्दी गद्य का बहुमुखी विकास हुआ है। गद्य साहित्य के विविध अंग नाटक, निबन्ध, कहानी आदि का उद्भव एवं विकास हुआ है। भारतेन्दु नव जागरण काल के अग्रदूत थे। विषेशकर गद्य साहित्य के विकास के लिए उन्होंने कई पत्र-पत्रिकाएं निकाली।

आधुनिक युग के जनक भारतेन्दु हरिषचन्द्र के समय से ही साहित्य का आविर्भाव दिखाई पड़ता है। इस सम्बन्ध में डॉ0 श्रीनिवास षर्मा का कथन है- ''भारतेन्दु हरिषचन्द्र ने 'कविवचन सुधा' में एक कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती लिखी।''

हिन्दी के प्रख्यात कथाकार एवं नाटककार उपेन्द्र नाथ अश्क ने लिखा है 'रेखाएं व चित्र' 1955 ई. राहुल सांकृत्यायन के 'बचपन की स्मृतियाँ' 1955 ई. प्रकाशित हुए हैं। राहुल सांकृत्यायन के संस्मरणों के विषय में डॉ. नगेन्द्र का मत है- "बोलचाल की प्रवाहपूर्ण भाषा के द्वारा अपने सम्पर्क में आने वाले छोटे-बड़े तथा मामूली महान अभिव्यक्तियों को समान रूप से महत्त्व देते हुए मर्मस्पर्शी रचनाओं का प्रणयन उनके लेखन की विशेषता है।" ऐतिहासिक उपन्यास के स्वरूप पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसने इतिहास, कल्पना और युगानुरूप परिवेश का महत्त्वपूर्ण स्थान है सफल ऐतिहासिक उपन्यास वे ही माने जाते है, जो अतीत की उपलिब्धयों, वर्तमान के सत्य और भविष्य की प्रेरणा के आधार पर रचित होते है। डॉ. बदरीदास के शब्दों में कहें तो सफल ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास का ज्ञान रचनात्मक कल्पना और मानव-स्वभाव की परख होनी चाहिए।

संदर्भ-----------------------------------

1. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास, एक अर्न्तयात्रा, पृ.स. 11
2. डॉ0 मुकुन्द द्विवेदी, हिन्दी साहित्यक युग चेतना और पाठकीय संवेदना, पृ.सं. 2
3. महादेवी वर्मा, अतीत के चलचित्र, पृ.सं. 15-16
4. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, माटी हो गई सोना, पृ.सं. 7
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 729
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 726